PRINTED AT THE KALPATARU PRESS
BY KAVIRAJ S K SEN, M Sc
and Published by same
FROM KALPATARU PALACE,
223, Chittaranjan Avenue Calcutta

हिन्दी प्रत्यक्षशारीर

द्वितीय भाग

विषय सूची

चित्र-सूची ।

चित्रसंख्या	चित्रनाम	पृष्ठांक

चित्रसंख्या	चित्रनाम	पृष्ठांक

हिन्दी
प्रत्यक्षशारीर
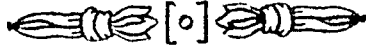
पेशीखण्ड ।

प्रथम अध्याय ।

—पेशीसामान्यविज्ञानीय—

पेशियां * प्राणियों की कुल चेष्टाओं के मुख्य साधन है। ये प्रधानतः मास से बनी है। सब चेष्टाओं के मूल कारण पेशियों के आकुञ्चन और प्रसारण है। चेष्टाओं के वेग चेष्टावहा नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क से, सुषुम्ना काण्ड से, अथवा नाड़ी चक्रो से प्रवृत्त होते है। इन नाड़ियो की अन्तिम प्रशाखायें पेशियो के अन्दर घुसी है। इनको उन पेशियो को प्रचेष्टनी या अनुप्राणना नाड़ी कहते है। चेष्टावेगो का प्रवर्त्तक अचिन्त्यशक्ति 'वायु' हैं। प्राचीनों ने कहा है—"स हि प्रवर्त्तकश्चेष्टानामुच्चावचानाम्" अर्थात् 'वायु ही सब प्रकार की ऊंची-नीची चेष्टाओं का प्रवर्त्तक है।'

पेशियों की चेष्टाय अङ्गावयवा मे लगी हुई पेशियों के आकर्षण, अपकर्षण, उन्नमन, अवनमन, सङ्कोचन, प्रसारण, मुद्रण, विस्फारण आदि नाम की होती है। इनमें 'आकर्पण' का अर्थ मध्यरेखा की ओर खीचना है। 'अपकर्षण' मध्यरेखा से बाहर की तरफ खींचना हैं। 'उन्नगन' ऊपर की ओर खीचना है, इसी को कहीं 'उत्कर्षण' या 'कर्षण' भी कहते हैं। 'अवनमन' नीचे को झुकाने का नाम है। 'सङ्कोचन' अंगुली आदि को हाथ-पांव के तलुवे की ओर खीचना है। इसका विपरीत 'प्रसारण' है। सङ्कोच और प्रसार शब्द कहीं पर साधारण अर्थ मे भी अर्थात्—सिकुडना और फैलना—अर्थ मे प्रयुक्त होते है।

पेशियों की चेष्टा प्रवृत्तिया मृतक शरीर मे एक-एक पेशी के खीचने से देखी जाती हैं, परन्तु जीवित शरीर मे एक-एक पेशी की चेष्टा उसी प्रकार अलग-अलग नहीं होती है। उसमे एक-एक प्रकार की चेष्टा की प्रवृत्ति पेशियों के समूह से

---

* पेशी पदका अर्थ—मांस पिण्डिका है, झिल्ली नही। इसका अनेक प्रमाणयुक्त विचार हमारे "सञ्ज्ञापञ्चक-विमर्श" पुस्तकमें देखिये।

होती है—एक-एक पेशी से नहीं। यथा—मणिबन्ध का सङ्कोचन करने में प्रकोष्ठ के सम्मुख मे स्थित 'सङ्कोचनी' नाम की तीन-चार पेशियां एक साथ संकुचित होती है, और इनकी विपरीत पेशिया शिथिल होती है, और उसी समय प्रगण्ड देश की अन्यान्य पेशिया प्रकोष्ठ को स्थिर रखती हैं। इसी दृष्टान्त से पेशियों की युगपत् प्रवृत्तियों को अन्यत्र भी जानना चाहिये।

पहले कह चुके हैं कि क्रिया की विशेषता के कारण पेशिया दो प्रकार की है—स्वतन्त्र और परतन्त्र। इनमे स्वतन्त्र पेशियां[1] अपने आप क्रियाशील होती है, ये पुरुष को इच्छा की अपेक्षा नहीं करती—यथा अन्त्र, हृदय, और आमाशय की पेशिया। परतन्त्र पेशिया[2] पुरुषकी इच्छा से ही क्रियाशील होती है—यथा हाथ पाव की पेशियाँ। इसलिये इनको इच्छानुगा भी कहते हैं। इनमें प्रथम प्रकार की पेशियां प्रायः कोष्ठ के अन्दर रहती हैं और अन्तिम प्रकार की पेशियां वाहर की अवयवो मे रहती है।

आकृति से पेशिया अनेक प्रकार की दीखती हैं। इनमें स्वतन्त्र पेशियां तीन प्रकार की है—कोषाकार, नलकाकार और सूत्राकार। इनमें वस्ति, हृदय, आमाशय आदि मे कोषाकार, अन्त्र आदि मे नलकाकार, प्लीहा आदि मे सूत्राकार पेशियाँ हैं। सूक्ष्म अवयवों के पृथक् करने पर सभी पेशी सूत्राकार दीखती हैं। परतन्त्र पेशिया प्रायः पांच प्रकार की है—कोई लम्बी रज्जुके समान, कोई बीच से मोटी तकुवे[3] के आकार की, कोई ताल के पंखे की आकार की, दूसरी शरपुङ्ख के आकार की कोई चद्दर के आकार की। सहति और परिमाण के कारण पेशियों के बहुत से भेद है। प्राचीनो ने कहा है कि—"तासां वहल-पेलवस्थूलाणु-पृथु-वृत्त ह्रस्व-दीर्घ-स्थिर-मृदु-श्लक्ष्ण-कर्कश भावाः सन्ध्यस्थि -सिरा-स्नायु-प्रच्छादका यथादेशं स्वभावत एव भवन्ति"। [सु० शा० अ० ५]

अर्थात्, पेशियां प्रयोजन के अनुसार स्वभाव से ही ठोस, कोमल, मोटी, पतली, चौड़ो, गोल, ह्रस्व, दीर्घ, स्थिर, मृदु चिकनी, खुरदरी नाना प्रकार की होती है और अस्थि, सन्धि, सिरा, स्नायु आदिको ढापती हैं।

इनमे प्रत्येक इच्छानुगा पेशी के दोनो प्रान्त प्रायः स्नायुसूत्रों से वने है। ये सूत्र अस्थिधरा कला के साथ अस्थियो मे वंधे रहते है, कहीं-कहीं स्नायु रज्जु मे,

---

१ स्वतन्त्र पेशी=Involuntary Muscle २ परतन्त्र पेशी=Voluntary Muscle
३ वेमा=Spindle कपड़ा विनने वालोंका यन्त्र विशेष, जिसका मध्यभाग मोटा और दोनों प्रान्त पतले होते है। वहुत पेशियां इसी प्रकारकी होती है।

या मांसधरा कला मे, या त्वचा मे भी बधे हैं। इनमे ऊपरका बन्धन स्थिर है, इसका नाम प्रभव है। और नीचे का बन्धन अस्थिर है, उसका नाम-निवेश है। पेशियों के श्वेत चिकने, डोर के समान लम्बे और दृढ़ प्रान्त कण्डरा[1] कहलाते है। और चौड़े चद्दर के समान प्रान्तों का नाम कलाकण्डरा या कला वितान[2] है।

इच्छानुगा पेशियां प्रायः करके प्रथम त्वचा से, फिर मेदोधरा कला से, फिर मांसधरा कला से ढपी रहती है। इनमे मेदोधरा कला मोटी एवं चर्बी से भरी है—इसको कही पर बहिःप्रावरणी[3] भी कहते हैं। मांसधरा कला पेशियों को घेर कर धारण करती है। इसको कही पर अन्तःप्रावरणी[4] या गम्भीरप्रावरणी भी कहते है। इसकी चादर के आकार की शाखायें पेशियो के अन्तरालों मे फैली हैं—जिनका नाम पेश्यन्तराला[5] है। इनकी बहुत सी शाखाये कञ्चुक रूपमें परिणत हो जाती हैं। मांसधरा कला के कुछ अंश पृथक् प्रदेशों मे प्रयोजनानुसार विभक्त होकर भिन्न-भिन्न नाम से प्रसिद्ध हैं। यथा—ग्रीवा में—ग्रीवाच्छदा, कटि मे—कटिच्छदा। कहीं पर वस्तिगुहादि को अन्दर से घेर कर ढापने वाली अन्य प्रकार की भी मांसधरा कला होती है, यथा वस्तिगुहामे—'वस्तिगुहान्तश्छदा', उदरगुहा में—'उदरान्तश्छदा'।

इनमे मेदोधरा कला शरीर के स्वाभाविक ताप की रक्षा करती है। यह कहीं पर पतली, कहीं पर मोटी, और कही पर दो स्तरों में विभक्त है। और कभी-कभी पतली पेशियां भी इसमे सम्बद्ध होती है यथा—मुखमण्डल मे और ग्रीवा मे। इसी कला मे नाड़ी, सिरा धमनी, और रसायनियों की त्वाच शाखाये फैलती हैं। मांसधरा कला प्रायः बहुत मोटी नहीं होती परन्तु यह कहीं-कही दो स्तरो मे विभक्त होती है। इसमे बहुत जगह पेशियों के प्रभव और निवेश का सम्बन्ध होता है। और इसी पर प्रायः नाड़ी, सिरा, धमनी, रसायनियो की मांसगा शाखाये फैलती है।

शरीर का आधा वजन प्रायः पेशियों से ही बनता है और शारीरिक बल

---

१ कण्डरा = Tendons (महास्नायु) २ कलाकण्डरा वा कण्डरावितान = Aponeuroses
३ मेदोधरा कला या बहिःप्रावरणी = Superficial Fascia ४ मांसधरा कला या आन्तर प्रावरणी = Deep Fascia ५ पेश्यन्तराला कला = Intermuscular Septa.

प्रायः पेशियो से ही होता है क्यों कि पुष्ट और संहत पेशी वाला पुरुष ही बलवान् कहाता है।

पेशियों की रचना जोंक के शरीर की भाति आकुञ्चन-प्रसरण शील मांस तन्तुओं से होती हैं—पेशियो के अलावे मांस नाम की कोई पृथक वस्तु नहीं है। पेशियों के प्रान्त प्रायः स्नायुमय होते हैं—यह कह चुके हैं। इनमें परतन्त्र पेशियों के मांसतन्तु अनुलम्ब रेखाओं से चिन्हित और लम्बे हैं और इनका सङ्घात ठोस नहीं है। स्वतन्त्र पेशियो के मांसतन्तु अनुप्रस्थ रेखाओं से चिन्हित, ह्रस्व और घन सङ्घात वाले हैं। हृदय की पेशियो मे दोनों प्रकार की पेशियों के लक्षण दिखाई देते हैं। परन्तु हृदय की पेशिया सर्वथा 'स्वतन्त्र' हैं।

पेशियों का पोषण इनके अन्दर फैली हुई सूक्ष्म-सूक्ष्म सिरा धमनी जालको से चूती हुई लसीका[1] नाम की धातु से होता है। जीवित पुरुष की पेशियों में सञ्चरण करता हुआ यह रस इनको नर्म और तर रखता है—इसका विशेष नाम पेशीरस[2] है। प्राण निकल जाने पर यह जम जाता है, तव पेशिया दृढ़ता के साथ संकुचित हो जाती हैं। इस सङ्कोच का नाम मरणसङ्कोच[3] या मरणाक्षेप है। थोड़ी देरमे सड़ना शुरू होनेपर यह सङ्कोच आप ही चला जाता है।

पेशी-संज्ञा—पेशियो में चेष्टावहा नाड़ियोंके अलावे कुछ संज्ञावहा नाड़िया भी हैं। इनके द्वारा सब प्रकार चेष्टाओ के संज्ञान या खबर मस्तिष्क को ओर पहुंचाये जाते है। यह संज्ञा त्वाच संज्ञा से पृथक् है, क्यो कि यह सङ्कोच और प्रसार से उत्पन्न होती है। इस संज्ञा विशेष को पेशीसंज्ञा[4] कहते है। द्रव्यों के लघुत्व और गुरुत्वादि का ज्ञान भी इसी पेशी संज्ञा के द्वारा होता है।

पेशियों के नाम कहीं पर स्थान विशेष के अनुसार होते है यथा—शङ्खच्छदा। कहीं प्रभव और निवेश से यथा—उरःकर्णमूलिका। कहीं कार्य से यथा—अंगुलिसङ्कोचनी। कही आकृति विशेष से यथा—द्विशिरस्का। कहीं यदृच्छा[5] से यथा—काकलकिनी। इनका सग्राहक श्लोक यह है:--

"अ स्थानान्निवेशादेः कार्यतश्चाकृतेस्तथा।
यदृच्छया च पेशीना चित्राः संज्ञाः प्रकल्पिताः॥" (प्र०शा०मूल०)

---

१ लसीका=Lymph २ पेशीरस = Muscle-Juice ३ मरणसङ्कोच=Rigor Mortis ४ पेशी संज्ञा—Muscle Sense ५ यदृच्छा—कहने वालेकी कल्पना मात्र।

पेशियों की संख्या ।

शारीरशास्त्र के पण्डित पेशियोंकी संख्या बहुत प्रकार की कहते है। प्राचीनों के कथनानुसार कुल संख्या पांच सौ है। पाश्चात्य विद्वान् लोग छः सौ के लगभग मानते—किसी ने ५०० भी कहा है। संख्या भेद का मुख्य कारण संयोग और विभाग का भेद है। यथा—अङ्गुलीसङ्कोचनी आदि पेशियों की शाखाओं की पृथक् गणना से प्राचीनों की संख्या बढ़ जाती है और संयुक्त भाव से गणना करने पर पाश्चात्यो की संख्या कम हो जाती है। शिर मे पेशियों की संख्या संयुक्त गणना के कारण प्राचीनों की कम हैं और पृथक् गणना के कारण नवीनों की अधिक है।

यहां पर संक्षेप के लिए केवल चार सौ पेशियों का ही वर्णन होगा। और यह गिनती परतन्त्र पेशियों की ही होगी। परतन्त्र पेशियां आशयों के वर्णन में आ जायंगी, इसलिये अलग नहीं गिनी गयीं।

यहां पेशियों की गणना स्थानों के विभाग से की जायगी। यथा—मुखमण्डल सहित शिर मे ब्यासी (८२)। ग्रीवा मे इक्यासी (८१)। मध्यशारीर में एक सौ ग्यारह (१११)। ऊर्द्ध्व शाखाओं मैं अठानवे (९८) और निम्नशाखा में एक सौ आठ (१०८)।

पेशियों का विवरण यहां संक्षेप से कह दिया गया। विस्तार से इसके आगे कहेंगे। स्मरण रखना चाहिए कि पेशी ज्ञान की आवश्यकता क्या है :—

"अङ्ग चेष्टा विवेकार्थं पेशीविज्ञानमुच्यते।
भग्न-विश्लिष्टसन्धान सं कर्य्यार्थं विशेषतः॥" (प्र०शा०मूल०)

अर्थात्—अङ्गो की चेष्टाओ को समझने के लिये और भग्न तथा सन्धिच्युत अङ्गों के सन्धान की सुभीता के लिये यह पेशी विज्ञान कहा जाता है।'

इति प्रथम अध्याय।

द्वितीय अध्याय।

=शिरोग्रीव पेशी वर्णनीय=

शिर एवं मुखमण्डल में ब्यासी (८२ पेशिया हैं- ये नौ स्थानो पर विभक्त है। यथा—करोटिपटल मे एक। प्रत्येक भ्रू मे दो। प्रत्येक नेत्र के अन्दर सात। प्रत्येक नासापार्श्व मे पांच। मुखविवर को घेरती हुई एक और उसके एक-एक

[६४ वां चित्र]

शिर और ग्रीवा को बाह्य पेशियां (उत्तान—अर्थात बाहर की)
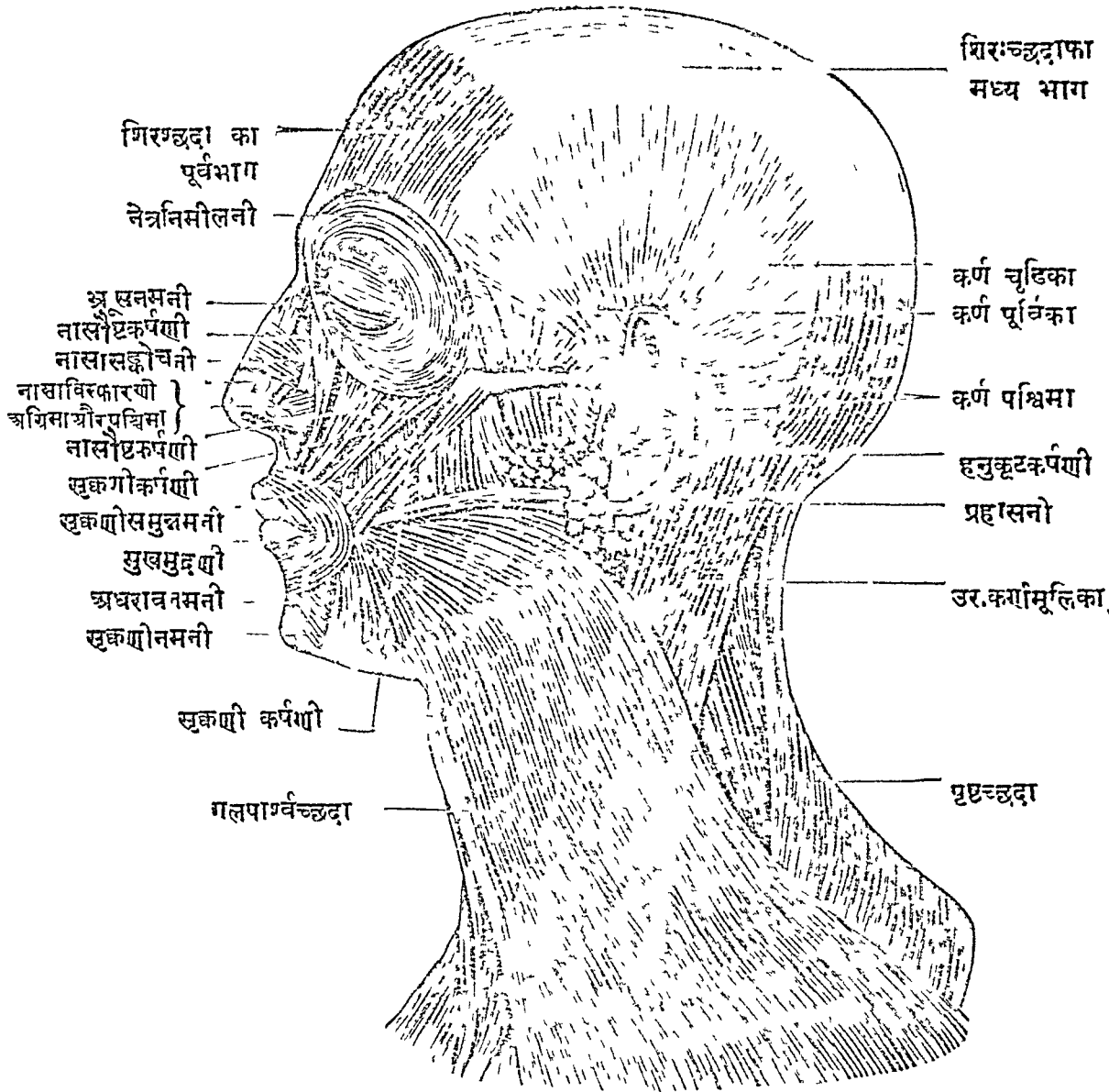
पार्श्व मे आठ। हनु के प्रत्येक पार्श्व मे चार। प्रत्येक कर्ण के बाहर में तीन और अन्दर दो। जिह्वा के प्रत्येक आधे भाग मे चार और मध्य मे एक। गलतालु में एक-एक तरफ चार और मध्य में एक। इनमें से बाह्य पेशियां बहि प्रावरणी से जुटी है। शिरश्छदा पेशी गम्भीर प्रावरणी से मिली हुई है। इनका विस्तार से वर्णन आगे किया जाता है।

(१) करोटिपटल को ढांपने वाली **शिरश्छदा**[1] नाम की एक पेशी है। यह (३४ वा चित्र) पश्चात्कपाल की उत्तरतोरणिका के समीप से उत्पन्न होकर

---

१ शिरच्छदा पेशी = Epicranius (or Occipito-frontalis)

पुरःकपाल तक फैली हुई और भ्रूमध्य के दोनों ओर लगी है। इसके सम्मुख और पश्चिम भाग मांसमय है और मध्यभाग चौड़ी कला से मजबूत बना हुआ एवं गम्भीर प्रावरणी से मिला हुआ है। इसके सम्मुख भाग को वक्त्रनाडी की शङ्खानुगा शाखा और पश्चिम भाग को इसी नाडी की पश्चिमा शाखा क्रियाशील करती है। इसकी क्रिया ललाट को संकुचित करना और भ्रुवों को उन्नत करना है।

(२) प्रत्येक भ्रू मे दो-दो पेशियां है (६४ वां चित्र), एक— नेत्रगुहाद्वार के चारों ओर प्रायः वृत्ताकार **नेत्र निमीलनी**[१] नाम की, दूसरी भ्रूमध्य के पार्श्व मे छोटीसी—**भ्रूसङ्कोचनी**[२] नाम की। दोनो ही पुरःकपालस्थ भ्रूतोरणिका की अन्तःकोटि से उत्पन्न हुई हैं। इनमे पहिली पेशी नेत्रपुटो मे और नासामूल पार्श्वस्थ त्वचा मे लगती है। दूसरी पेशी भ्रूमध्य के पार्श्व की त्वचा मे, और पहिली पेशी मे तिरछे रूप से लगती है। इनमें से एक-एक तरफ की दोनों पेशियों को उस तरफ की वक्त्र नाड़ी की शङ्खानुगा और गण्डानुगा शाखाये चेष्टाशील बनाती हैं। इन चेष्टाओं का स्पष्टीकरण नाम से ही हो जाता है। प्रथमा का क्षुद्रभाग अश्रुवाहिका के चारो ओर लगा हुआ है—जिससे अश्रुविसर्जन कार्य होता है। किसी आचार्य के मत से यह पेशी 'अश्रुविसर्जनी' नाम की है।

(३) प्रत्येक नेत्र के अन्दर सात पेशियां है। इनमे छः अक्षिगोलक को नाना प्रकार से घुमाती है, और एक उत्तर नेत्रपुट का उन्मीलन करती है। इनके नाम **ऊर्ध्वदर्शिनी**[३], **अधोदर्शिनी**[४], **अन्तर्दर्शिनी**[५], **बहिर्दर्शिनी**,[६] **वक्रोर्ध्वदर्शिनी**,[७] **वक्राधोदर्शिनी**,[८] और **नेत्रोन्मीलनी**,[९] हैं। इन सब के प्रभव स्थान नेत्रगुहा के अन्तःप्राचीरों मे है। इनमे छः पेशियों का निवेश नेत्रगोलक के चारों ओर है, और सातवी का उत्तर नेत्रपुट मे। इनको चेष्टाशील बनाने वाली नाड़ियां तृतीया, चतुर्थी और षष्ठी नामकी है जो मस्तिष्क से निकली हैं। इनका विस्तार से वर्णन नेत्रवर्णनीय अध्याय मे आवेगा।

---

१ नेत्रनिमीलनी=Orbicularis Oculi २ भ्रूसङ्कोचनी—Corrugator Supercilii ३ ऊर्ध्वदर्शिनी—Superior Rectus ४ अधोदर्शिनी—Inferior Rectus ५ अन्तर्दर्शिनी—Internal Rectus ६ बहिर्दर्शिनी—External Rectus ७ वक्रोर्ध्वदर्शिनी—Superior oblique ८ वक्राधोदर्शिनी—Inferior oblique ९ नेत्रोन्मीलनी—Levator Palpabræ Superioris

[६५ वां चित्र]

शिर और ग्रीवा की वाह्य पेशियां (गम्भीर)।
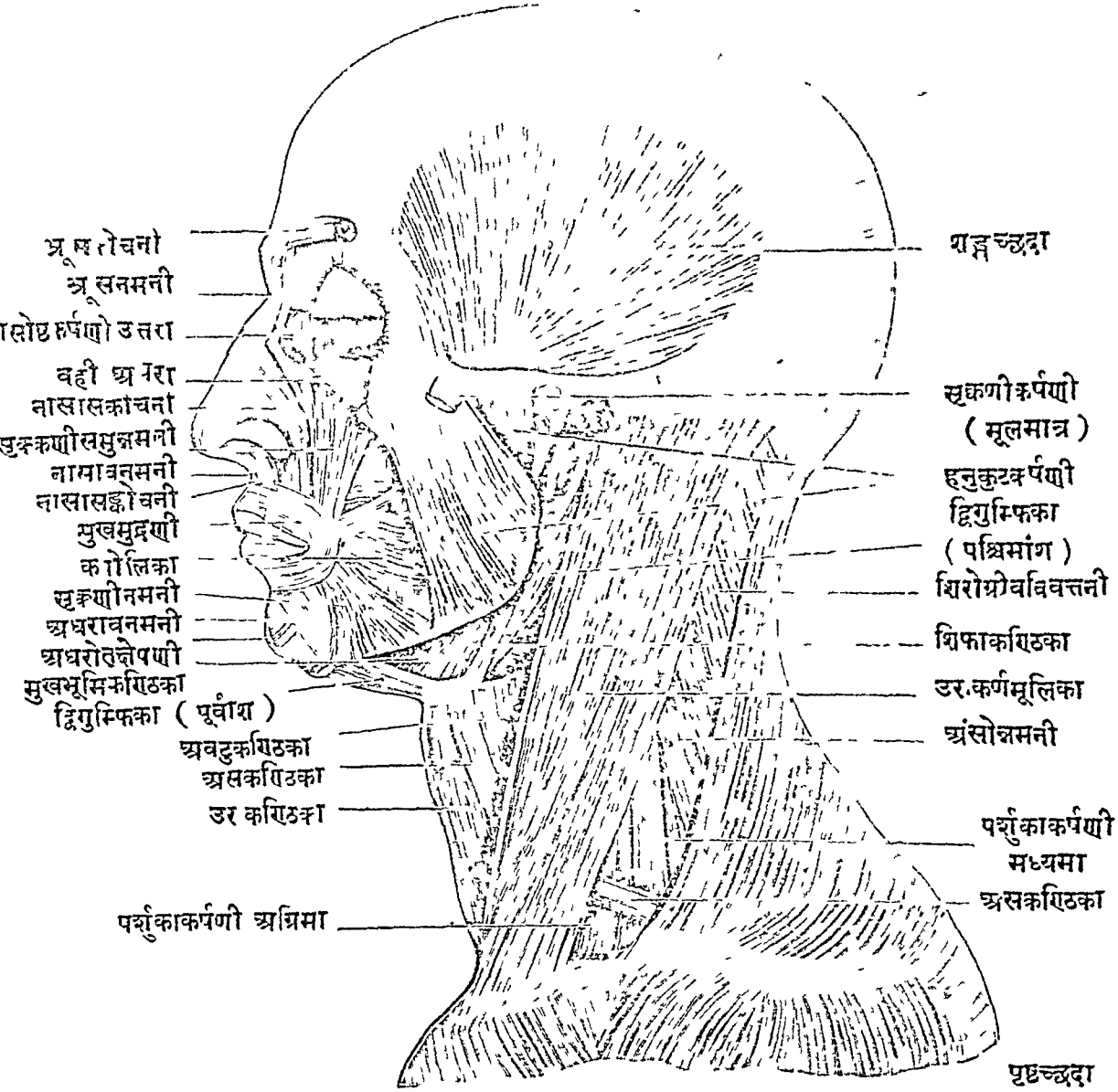
(४) प्रत्येक नासा पार्श्व में पतली और लम्बी पाच वाह्य पेशियां (६४।६५ वा चित्र) है । यथा—**भ्रूसंनमनी,**[1] **नासासङ्कोचनी,**[2] **नासावनमनी,**[3] **नासाविस्फारणी अग्रिमा**[4] और **नासाविस्फारणी पश्चिमा**[5] । इनमें से पहली नासास्थिमूल के पार्श्व से उत्पन्न होकर

---

१ भ्रूसंनमनी—Procerus (or Pyramidalis Nasi) २ नासासङ्कोचनी—Nasalis (or Compressor Nares) ३ नासावनमनी—Depressor Septi ४ नासाविस्फारणी अग्रिमा—Dilator Nares Anterior ५ नासाविस्फारणी पश्चिमा—Dilator Nares Posterior

शिरश्छदा पेशी मे वंधती है। अन्य पेशिया नासापुट के चारों ओर नासाप्राचीर की तरुणास्थियों मे और त्वचा मे वंधी है। इनकी क्रिया इनके नाम से स्पष्ट है। इनको क्रियाशील बनाने वाली नाड़ियां वक्त्रनाडी की शाखायें है।

(५) मुखविवर की पेशियां मध्य मे एक, और एक-एक पार्श्व मे आठ है। इनमे मध्यस्थ पेशी प्रायः गोल है और ओष्ठाधर को घेर कर रहती है। यही पेशी शेष आठों पेशियो की निवेश भूमि है– इसका नाम **मुखमुद्रणी** है। शेष आठ पेशियो के नाम नासापार्श्व मे वहिःक्रम से [एक एक ओर]— **नासोष्ठकर्षणी, सृक्कणीसमुन्नमनी, सृक्कणीकर्षणी कपोलिका, प्रहासनी, सृक्कणीनमनी, अधरावनमनी और अधरोत्क्षेपणी** है। इनमे—

मुखमुद्रणी[1]—ऊपर नासामध्य प्राचीर के मूल में और नीचे अधोहनुमण्डलमे अगले चार दातों के दोनों ओर वधी है। यह ओष्ठाधरको मुकुलाकार करके मुखको वन्द करती है (६४-६५ चित्र)।

नासोष्ठकर्षणी[2]—नामकी पेशी के तीन मूल है (६४ ६५ चित्र)। इसका एक मूल ऊर्ध्वहन्वस्थि के नासाकूट में, दूसरा मूल इसीके नेत्राधरीय विवर के नीचे और तीसरा मूल गण्डकूट मे बंधा हुआ है। इसका निवेश नासा के पार्श्वस्थ तरुणास्थियों मे सृक्कणी तक मुखमुद्रणी मे और ऊपर के ओष्ठ में होता है।

सृक्कणीसमुन्नमनी[3] — नाम की पेशी पूर्वोक्त पेशी के पीछे रहती है (६४-६५)। यह ऊर्ध्वहन्वस्थि के नेत्राधरीय विवर के नीचे से उत्पन्न होकर सृक्कणी में वधी हुई हैं। (मुखविवर के दोनो कोणों का नाम सृक्कणी या सृक्कणी है)।

सृक्कणीकर्षणी[4] —नामकी पेशी गण्डास्थि से उत्पन्न होकर सृक्कणी में लगती है (६४ ६५ चित्र)।

कपोलिका[5] नाम की पतली चौड़ी पेशी कपोल (गाल) वनाती है।

---

१ मुखमुद्रणी—Orbicularis Oris २ नासोष्ठकर्षणी—Quadratus Labii Superioris (or Lev Labii Sup et alequœ Nasi) ३ सृक्कणी समुन्नमनी—Caninus (or Lev Anguli Oris) ४ सृक्कणी-कर्षणी—Zygomaticus (Major & Minor) ५ कपोलिका—Buccinator

यह दोनो हनुमण्डलों के पार्श्वों से उत्पन्न होकर सामने सृक्कणी मूल में और मुखमुद्रणी पेशी में बंधी है (६५ चित्र)

प्रहासनी[1] —नाम की पतली पेशी हनुसन्धि को ढापने वाली मांसधरा कला से उत्पन्न होकर सृक्कणी में लगती है। (६४ चित्र)।

सृक्कणीनमनी[2] —नामकी त्रिकोणाकार पेशी अधोहनुमण्डलकी बाह्यतिरश्चीना रेखा से उत्पन्न होकर अधर मूल में और सृक्कणी में बंधी है (६३ चित्र)।

अधरावनमनी[3] —नामकी चतुरस्रा पेशी पूर्वोक्त प्रदेश से ही उत्पन्न होती है, और अधर (नीचे की ओठ) के मूल में बंधती है (६४ चित्र)।

अधरोत्क्षेपणी[4] —पेशी अधोहन्वस्थि के चिबुकपिण्ड से उत्पन्न होकर अधर के नीचे लगी हुई है (६५ चित्र)।

इनकी क्रियायें इनके नामो से ही स्पष्ट है। विशेषतः 'कपोलिका' पेशी चर्वण के समय कपोल को संकुचित करके चबाने के काम मे सहायता करती है। फूंकने के समय भी यही पेशी काम मे आती है। 'प्रहासनी' पेशी सृक्कणी को बाहर की ओर खींच कर हंसने मे सहायता करती है। 'अधरोत्क्षेपणी' पेशी अधर के साथ चिबुक को भी ऊपर उठाती है।

मुखमण्डल की सभी पेशियां को वक्त्रनाडी की 'मौखिकी' और 'अधोहानव्या' शाखाये क्रियाशील बनाती है। इनमें मुखमुद्रणी प्रत्येक आधे में उसी तरफ को दोनो शाखाओं से क्रियाशील होती है। शेष पेशियो मे ऊपर की पाच पेशिया 'मौखिकी' शाखा से, और निचली तीन पेशिया 'अधोहानव्या' शाखा से क्रियाशील होती हैं।

(६) हानव्या पेशी एक-एक तरफ चार हैं। उनमे—

शङ्खच्छदा[5] —नामकी मासला पेशी (६५ चित्र) करोटिपक्षमे स्थित शङ्खखात से उत्पन्न होती है। यह ताड़ के पखे के आकार की है। यह अधोहनु के कुन्त भाग के भीतर और बाहर के तलो में लगी हुई है। यह शङ्खतोरणिका रेखा में लगी है और "शङ्खप्रच्छदा प्रावरणी" से ढांपी जाती है। यह पेशी हनुकुन्त को ऊपर खींचती हुई ऊपर और नीचे स्थित अग्रिम दातों को परस्पर मिला कर काटने के कार्य में सहायता करती है।

---

१ प्रहासनी—Risorius २ सृक्कणीनमनी—Triangularis (or Depressor Anguli Oris) ३ अधरावनमनी—Quadratus Labii Inferioris ४ अधरोत्क्षेपणी—Mentalis (or Levator Menti) ५ शङ्खच्छदा—Temporalis

[६६ चित्र]

हनुमूल की गम्भीर पेशियां।

[गण्डचक्र और हनुकूट को अलग करके दिखायी गयी है]
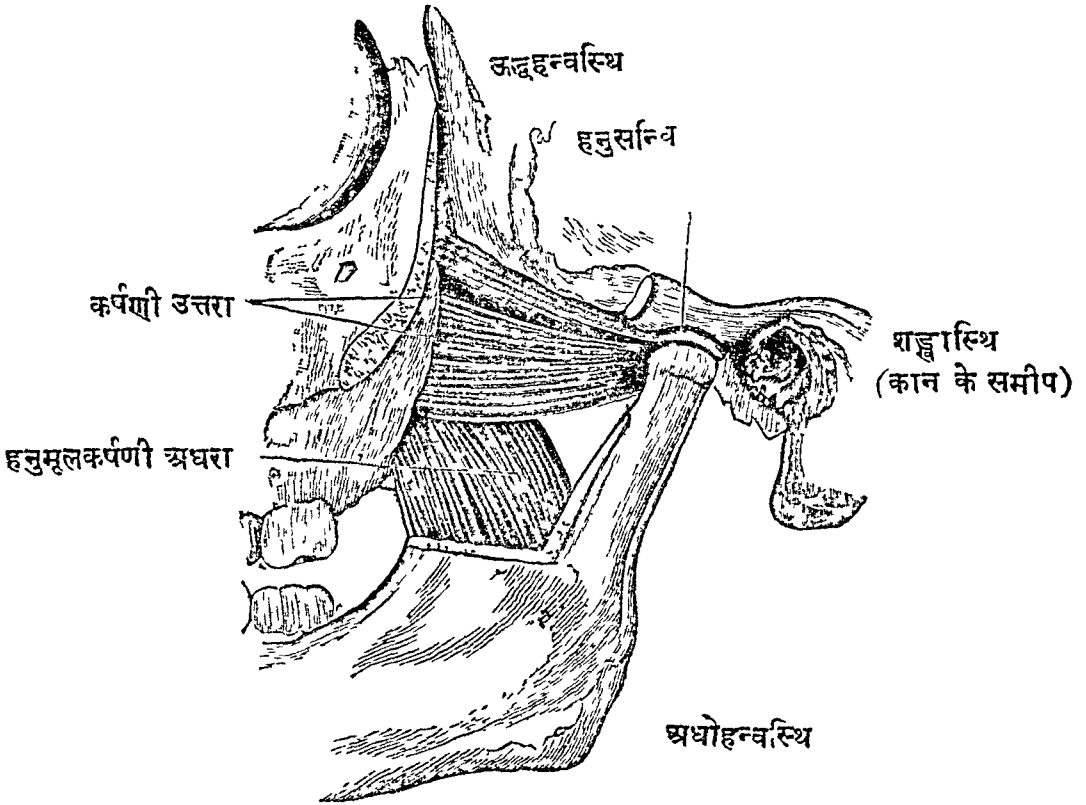
हनुकूटकर्षणी[1] नामकी पेशी (६५ चित्र) तीन अस्थियोंसे निर्मित गण्डचक्र के आभ्यन्तर प्रदेश से और अधोधारा से उत्पन्न हो कर अधोहनुकूटके बाहर लगती है। यह "कर्णमूलच्छदा" प्रावरणी से ढंपी जाती है। यह मांसल एवं बलिष्ठ पेशी विशेष रूप से चबाने के काम में सहायता करती है। इसके पश्चिम में "कर्णमूलिक" नामकी बड़ी लालाग्रन्थि[2] है।

हनुमूलकर्षणी[3] —नामकी दो पेशियां हैं—**उत्तरा**[3] और **अधरा**[4] (६६ चित्र)। इनमें से उत्तरा पेशी जतूकास्थि की "बृहत्पक्षति" और 'चरण' के बहिस्तल से दो मूलो द्वारा उत्पन्न होकर अधोहनुमुण्ड के मूल मे लगती है। अधरा पेशी जतूकास्थि के चरणान्तराल से, तालवस्थि से, और ऊर्ध्व हन्वस्थिपिण्ड के पश्चिमार्बुद से उत्पन्न होकर अधोहनुकोण के आन्तर तल मे लगी है। दोनो ही चर्वण कार्य मे सहायता करती हैं। ये दोनों पेशियां गण्डचक्र तथा हनुकुन्त से ढंपी और छिपी है।

---

१ हनुकूटकर्षणी—Masseter २ कर्णमूलिक ग्रन्थि—Parotid Gland ३ हनुमूलकर्षणी उत्तरा—External Pterygoid ४ वही अधरा—Internal Pterygoid

इन चारों पेशियों को चेष्टाशील वनाने वाली नाड़िया पञ्चम नाड़ी की "अधोहानव्या" नामकी शाखा प्रशाखाये हैं।

(७) प्रत्येक कर्णमे वाह्य पेशिया तीन हैं—जो कि कर्णपाली के चारो ओर वंधी हुई हैं। इनके नाम—**कर्णपूर्विका,**[1] **कर्णपश्चिमा**[2] और **कर्णचूड़िका**[3] हैं (६४ चित्र)। इनमे से अगली दो का प्रभवस्थान करोटिपार्श्वस्थ मांसधरा कला है—और तीसरी का उत्पत्तिस्थान शङ्खास्थि का गोस्तनप्रवर्धन है। मनुष्यो में इन तीनो पेशियों के कार्य प्रायः विलुप्त है (कचित रहते भी है), परन्तु पशुओ मे कर्णसंचालन आदि कार्य इन पेशियों से ही होता है। इनकी प्रचेष्टनी नाड़िया वक्त्रनाड़ी की प्रश खायें हैं।

इनके अलावे और भी पांच छः छोटी-छोटी पेशियां कर्णपाली मे दिखाई देती है। वे वहुत छोटी एवं निष्क्रिय हैं, अतः उनका वर्णन यहा नहीं किया गया।

श्रवणेन्द्रिय के अन्दर भी प्रत्येक ओर दो दो पेशियां **पटहोत्तंसनी**[4] और **पर्य्याणिका**[5] नामकी हैं। इनका विस्तृत वर्णन श्रवणेन्द्रिय के वर्णन मे आवेगा।

(८) जिह्वा मे नौ पेशियां हैं—मध्यमे एक—जिह्वा के निर्माण के लिये—**तन्तुगुच्छिका** नामकी, और जिह्वा पार्श्व मे प्रत्येक ओर चार-चार। इनके नाम **चिवुक-जिह्वा-कण्ठिका, शिफा-कण्ठिका, जिह्वा-कण्ठिका** और **अनुजिह्वा-कण्ठिका** हैं। इनका विस्तृत वर्णन रसनावर्णनमें आवेगा।

(९) गलतालु मे नौ पेशियां हैं। इनमें **तालूत्तोलनी, तालूत्तंसनी, तालुजिह्विका और गलतालुका**—ये चार पेशियां एक-एक पार्श्व मे हैं, और मध्य मे **काकलकिनी** नामकी एक पेशी है। इनका विस्तृत वर्णन गलतालु वर्णन मे कहेंगे।

इस प्रकार से शिर की व्यासी (८२) पेशिया कही गयी।

---

१ कर्णपूर्विका—Auricularis Anterior (or Attrahens aurem) २ कर्णपश्चिमा—Auricularis Posterior (or Retrahens aurem) ३ कर्णचूड़िका—Auricularis Superior (or Attolens aurem) ४ पटहोत्तसनी—Tensor Tympani. ५ पर्य्याणिका—Stapedius

ग्रीवा की पेशियां।

ग्रोवा मे इक्कयासी (८१) पेशियां है। इनमे गले के बाहर मे छप्पन (५६) हैं—इनको पांच प्रदेशोमे विभाग करके वर्णन करते है। यथा—गलपार्श्वोंमें चार। मलमूत्र मे सोलह। ग्रीवावंश के सम्मुख मे आठ और पार्श्वोमें आठ। शिरोग्रीव के पृष्ठ मे बीस। इनमें से दो "पृष्ठच्छदा" पेशियां पृष्ठपेशियों मे गिनी जाती हैं अतः यहां पर चौवन ही पेशियां कही जायेंगी। गले के अन्दर सत्ताईस (२७) पेशियां हैं। यथा—अन्नमार्ग के चारों ओर दश, और स्वरयंत्र के चारो ओर सतरह। इस प्रकार से कुल मिला कर ग्रीवामें इक्कयासी पेशियां है।

इनमे गलबाह्य पेशियां दो प्रावरणियो से ढंपी है। इनमे "बाह्य प्रावरणी" गलपार्श्वच्छदा पेशी से मिली है। आभ्यन्तर प्रावरणी का नाम 'ग्रीवाप्रच्छदा'[१] है। यह प्रावरणी ग्रीवा के सम्मुख और पश्चिम पेशियो को पूर्णरूप से ढांप रखती है और उन पेशियों को, अन्तराल में प्रविष्ट कलामय प्राचीरों के द्वारा, विभक्त करती है। और उन कलाप्राचीरों की दो शाखाओं से एक कञ्चुक भी वनाती हैं, जिसका नाम 'मातृकाकञ्चुक'[२] है। यह "महामातृका" नामकी धमनी को 'अनुमन्या' नामकी सिरा को और 'प्राणदा' नामकी नाड़ी को एक साथ धारण करने के लिये हैं। एक दूसरा महाकञ्चुक सम्मुख मध्यरेखा मे ग्रीवामध्यकञ्चुक[३] नामका है—यह श्वासनली अन्ननली और ग्रैवेय ग्रन्थि को एक साथ धारण करने के लिये है। इसका सम्मुखभाग ऊर्ध्वहनु के पश्चिम प्रदेश से कर्णमूल तक फैला हुआ है, इस अंश का नाम कर्णमूलच्छदा[४] प्रावरणी हैं। यही नीचे उरोगुहा मे घुस कर श्वासनलिका के सम्मुख मे फैलता हुआ क्रमशः 'हृदयधर कलाकोष' के बाह्यस्तर से मिल जाता है और हृदय का बन्धन भी हो जाता है। इसका पश्चिम भाग ग्रीवावंश के सम्मुख मे स्थित गम्भीर पेशियों को ढांपती है, यह 'वंशपुरस्त्या'[५] नामकी प्रावरणी है। यह प्रावरणी नीचे उरोगुहा के पश्चिमांश मे फैली है।

गलबाह्य पेशियां।

गल पार्श्व मे एक एक ओर दो पेशियां और गलमूल में एक एक ओर आठ पेशियां हैं। इनमे—

---

१ ग्रीवाप्रच्छदा—Fascia Colli (Deep Cervical Fascia) २ Carotid Sheath ३ Mid Cervical Sheath ४ Parotideo masseteric fascia ५ Pre-vertebral Fascia

[६७ चित्र]

गले की बाह्य पेशियां (गम्भीर)।

(प्रथम स्तर की पेशिया हटा कर दिखायी गयी है)
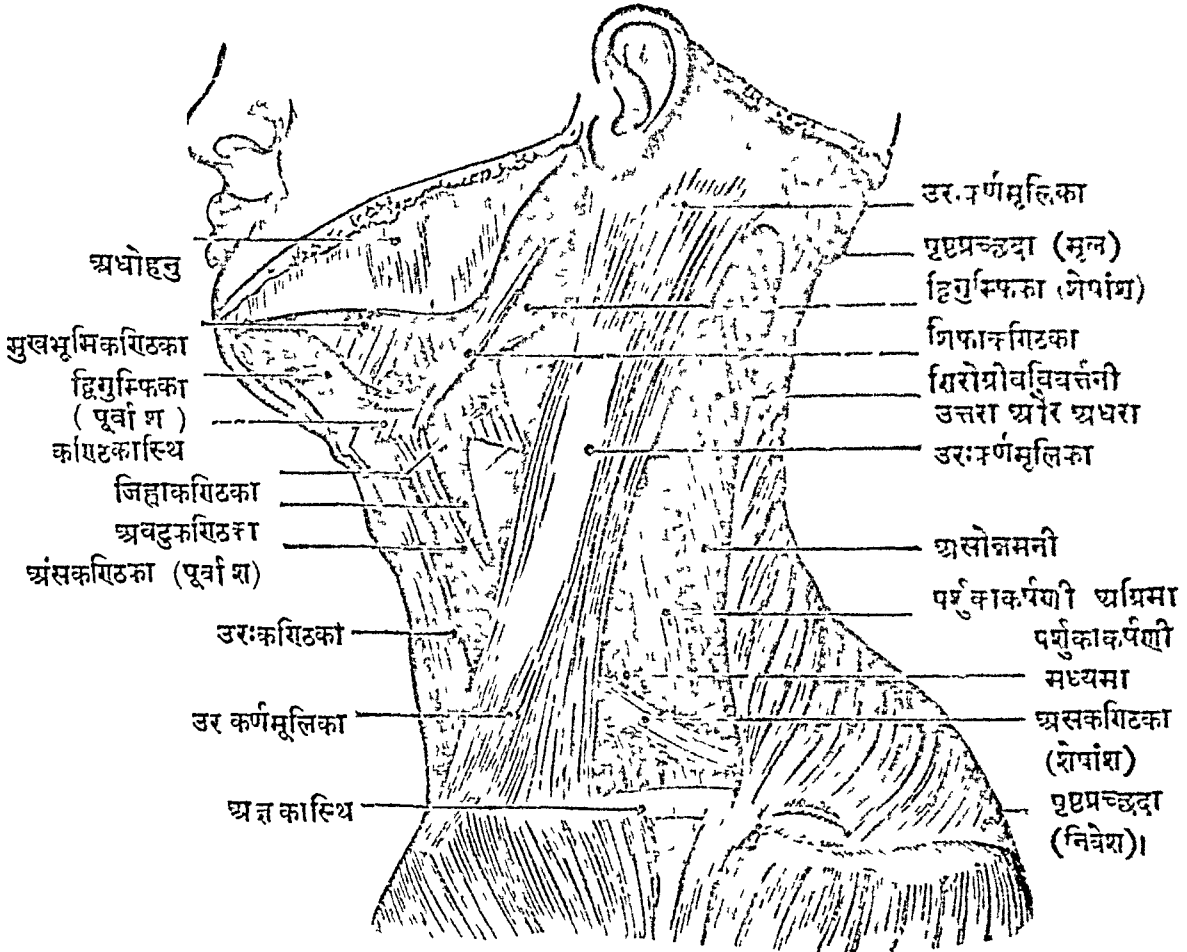
[यहा दिखाई गई पेशिया ६५।६८ संख्यक चित्रो मे भी देखनी चाहिये ।]

(क) गलपार्श्व की पेशिया—यथा—

गलपार्श्वच्छदा[1]—(६४ चित्र) नामकी पेशी पतली और चादर के समान फैली है। यह ग्रीवा के आधे भाग को ढांपती है, और "अंसोरश्छादिनी" प्रावरणी से उत्पन्न होकर अधोहनु की निम्नधारा मे एवं सृक्कणी की त्वचा में लगती है। यह पेशी ग्रीवा की त्वचा का सङ्कोचन करती हुई मुखविवर के खोलने में कुछ सहायता करती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी "वक्त्रनाड़ी" की शाखा है।

उरःकर्णमूलिका[2] (या मन्या)—नामकी पेशी (६४।६५ चित्र) दृढ़ नेवार की पट्टी सी चौड़ी और मोटी एवं तिरछी है। यह उर:फलक के शिखर से और अक्षकोरः सन्धि से उत्पन्न होकर शङ्खास्थि के गोस्तन प्रवर्धन में और पश्चात्कपालकी उत्तरतोरणिका के बाहर के आधे मे लगी हुई है। यह शिर को बाहर और नीचे की ओर घुमाने वाली बलवती पेशी है—जो कि दृढ़ता से संकुचित हो जानेपर "मन्यास्तम्भ" रोग को उत्पन्न करती है। इसको चेष्टाशील बनाने वाली नाड़ी "नागिनी" नामकी (एकादशी) है और ग्रीवावंश से निकली हुई कुछ नाड़ियां भी इनको मदद देती हैं।

(ख) गलमूल मे एक-एक ओर आठ पेशियां है, यथा—

द्विगुम्फिका[3]—नामकी पेशी (६५ चित्र) दोनों ओर दो गुम्फ (गुच्छ) वाली और बीच से पतली है। यह पश्चिम गुम्फ के द्वारा शङ्खास्थि के गोस्तन प्रवर्धन से और अग्रिम गुम्फ के अधोहन्वस्थि के चिबुक पिण्ड से उत्पन्न होकर मध्यभाग मे कलामय बन्धनो द्वारा कण्ठिकास्थि के पार्श्व मे बंधती है। यह एक-एक ओर ग्रीवा के पार्श्वमे लटकती हुई कभी चिबुक को नीचा करती है और कभी कण्ठिकास्थि को ऊपर खीचती है। इसके अग्रिम गुम्फकी प्रचेष्टनी नाड़ी "अधरदन्तिका" की शाखा है, और पश्चिम गुम्फ की प्रचेष्टनी "वक्त्रनाड़ी" की शाखा।

शिफा-कण्ठिका[4]—नामकी पतली पेशी (६७ ६८ चित्र) शङ्खास्थि के शिफाप्रवर्धन से उत्पन्न होकर कण्ठिकास्थि के मध्यपिण्ड के पार्श्व मे बंधी हुई है। यह इसी नाम की स्नायु से मिलती है। यह कण्ठिकास्थि को ऊपर और पीछे खींचती है। वक्त्रनाड़ी की शाखा इसको चेष्टाशील बनाती है।

---

१ गलपार्श्वच्छदा—Platysma २ उर:कर्णमूलिका—Sterno-mastoid ३ द्विगुम्फिका—Digastric ४ शिफाकण्ठिका—Stylo-hyoid

[६८ चित्र]

गलमूल के सामने की पेशियां (उत्तान)।

(यहा सिर को नहीं दिखाया है)
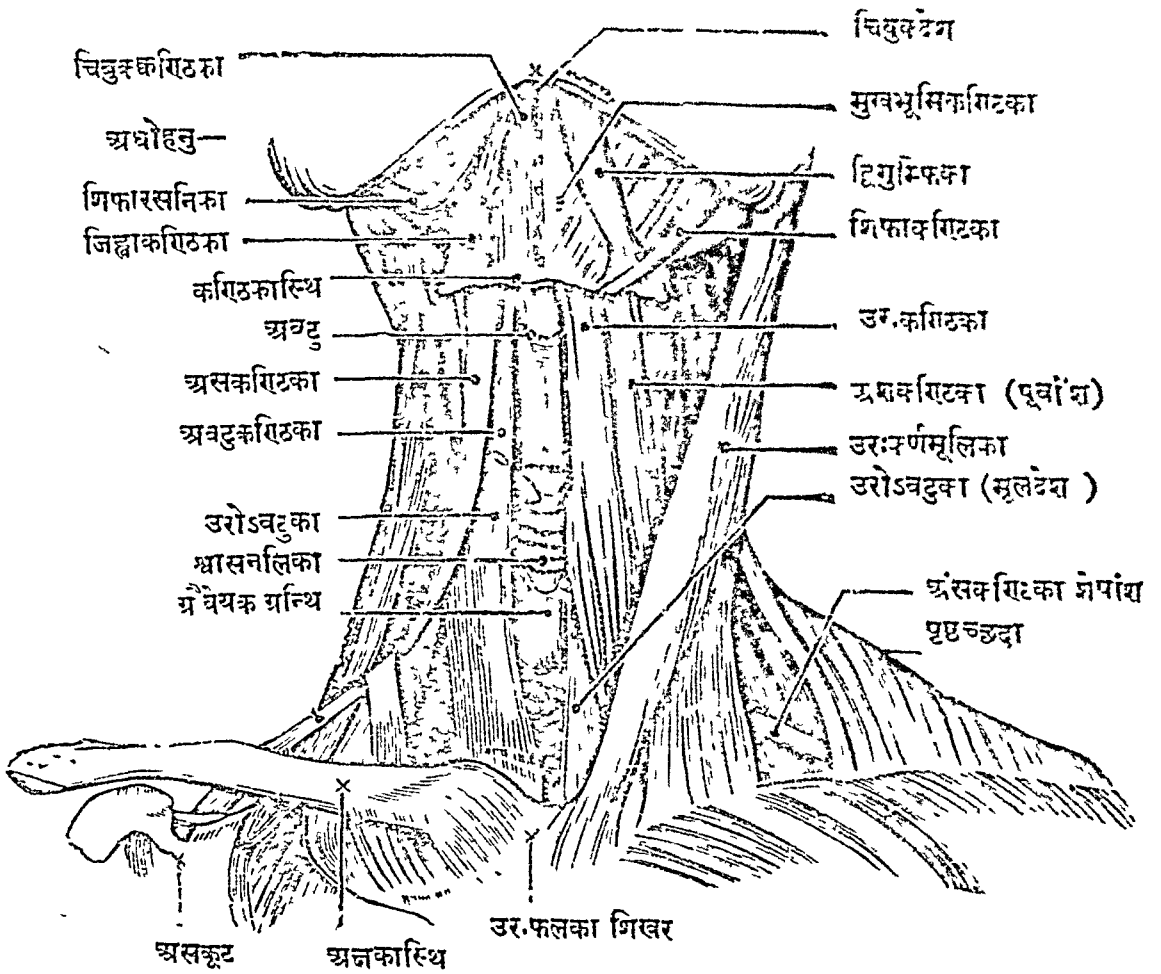
[यहां दक्षिणार्द्ध मे गम्भीर व्यवच्छेद किया गया है।]

मुखभूमिकण्ठिका[1]—नामकी पेशी (६'१ चित्र) एक एक तरफ त्रिकोण रूप से मुखभूमि में फैली है। यह अधोहनुमण्डल की 'आन्तर-तिरश्चीना' रेखा से उत्पन्न होकर कण्ठिकास्थि-पिण्ड मे बंधती है और दूसरे पार्श्व में स्थित इसी नामकी पेशी के साथ चिबुक के नीचे मिलती है—जिससे मुखभूमि के मध्य मे एक सेवनी (सीमन) बन जाती है। इस पेशी का कार्य चिबुक को झुकाना या कण्ठिकास्थि को ऊपर खींचना है। इसे चेष्टा देने वाली नाड़ी "अधरदन्तिका" की शाखा है।

चिबुककण्ठिका[2]— नामकी पतली पेशी (६८ चित्र) अधोहन्वस्थि के चिबुकपिण्ड में स्थित रसना कलायक से उत्पन्न होकर कण्ठिकास्थि के सम्मुख भाग मे लगती है; और दूसरे पार्श्व मे स्थित इसी नामकी पेशी के साथ मिलती है। इसका कार्य पूर्व की भांति है। इसे चेष्टा देने वाली नाड़ी "प्रथमा अनुग्रीविका" और "जिह्वामूलिनी" नाड़ी की शाखायें हैं।

उरःकण्ठिका[3]— नामकी पतली पेशी (६५।६७ चित्र) उरःफलक के पृष्ठ से उत्पन्न होकर कण्ठिकास्थि मे लगती है। यह कण्ठिकास्थि को नीचे खींचती है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ी "जिह्वामूलिनी" की एक प्रशाखा है।

उरोऽवटुका[4]— नामकी छोटी चौड़ी पेशी (६८ चित्र) उरःफलक के शिखर से और पहिली तथा दूसरी उपपर्शुका से उत्पन्न होकर ग्रीवाके मध्य मे स्थित अवटु नामकी तरुणास्थि के पार्श्व मे लगती है। और इसी :नामकी दूसरी पेशी से मिलती है। इसका कार्य स्वरयन्त्र को नीचे कर्षण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी "जिह्वामूलिनी" की एक प्रशाखा है।

अवटुकण्ठिका[5]— नामकी छोटी चौकोर पेशी अवटु नामकी तरुणास्थि से उत्पन्न होकर कण्ठिकास्थि के महाशृङ्ग के नीचे लगती है (६५-६७ चित्र)। इसका कार्य स्वरयन्त्र को ऊपर खींचना या कण्ठिकास्थिको नीचे खीचना है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'जिह्वामूलिनी' की प्रशाखा है।

अंसकण्ठिका[6] —नामकी लम्बी मासला पेशी (६५-६८ चित्र) अंस-कपाल के शिरःकोटर-पार्श्व से उत्पन्न होकर तिरछे रूप से ऊपर गई है, और

१ मुखभूमिकण्ठिका—Mylo-hyoid २ चिबुककण्ठिका—Genio-hyoid ३ उरः-कण्ठिका—Sterno-hyoid ४ उरोऽवटुका—Sterno-thyroid ५ अवटुकण्ठिका—Thyreo-hyoid ६ अंसकण्ठिका—Omo-hyoid

बीच मे एक स्नायुबन्धन के द्वारा अक्षकास्थि मे लगी है। यह आगे तिरछी ऊपर को जाती हुई कण्ठिकास्थि-पिण्ड की अधोधारा मे जुड़ी है। इसको चेष्टा-शील बनाने वाली नाड़ी 'जिह्वामूलिनी' की निम्नगा शाखा है।

यहां तक गलमूल में स्थित सोलह पेशियों की व्याख्या हो गयी।

(ग) ग्रीवावंश के सम्मुख मे एक एक ओर चार गहरी पेशिया हैं (६६ चित्र)— ये श्वासमार्ग और अन्नमार्ग के पीछे मे रहती हैं। इनमें—

दीर्घग्रीविका[1]—नामकी पेशी धनुष की भाति टेढ़ी तथा मासला है (६६ चित्र)। यह गीवावंश के पार्श्व में दीखती है। इसके तीन भाग है—ऊर्ध्वभाग, अधोभाग और मध्यभाग। इनमें ऊर्ध्वभाग तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम ग्रीवा-कशेरुओके बाहुप्रवर्धनों से उत्पन्न होकर 'चूड़ावलया' नामक ग्रीवाकशेरु के पिण्ड मे तिरछा लगा है। अधोभाग प्रथम दो तीन पृष्ठकशेरु के पिण्डों के सम्मुख से उत्पन्न होकर पञ्चम और षष्ठ ग्रीवाकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों में तिरछा लगा है। मध्यभाग स्पष्ट धनुष की भाति टेढ़ा है—यह अन्तिम तीन ग्रीवाकशेरु पिण्डों के और अग्रिम तीन पृष्ठकशेरु पिण्डो के सम्मुख भागों से उत्पन्न होकर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ग्रीवाकशेरुओं के पिण्डों मे लगा है। यह पेशी ग्रीवावंश को सम्मुखमे झुकाती और पार्श्व मे किञ्चित् घुमाती है। इसकी चेष्टा द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी "अनुग्रीविका" नामकी नाड़ियों की सम्मुख शाखाओं से होती है।

दीर्घशिरस्का[2] [अथवा शिरःपूर्वदण्डिका गुर्वी]—नामकी पेशी (६६ चित्र) ऊपर के अश मे मासला है और नीचे के प्रान्त मे चार पतली शाखाओ में विभक्त है। यह तीसरे से आरम्भ करके छठे तक—चार ग्रीवाकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों से उत्पन्न होकर पश्चिमकपाल के मूल भागमें लगी है।

शिरःपूर्वदण्डिका[3] [अथवा शिरपूर्वदण्डिका लघ्वी]—नामकी छोटी चौड़ी पेशी (६६ चित्र) 'चूड़ावलया' नामक ग्रीवाकशेरु के पार्श्वसे उत्पन्न होकर पूर्व की भाति पश्चिम कपाल में लगी हैं। यह पूर्वोक्त पेशीके पीछे रहती है इन दोनों पेशियोके कार्य शिर को सम्मुख में झुकाना और कुछ घुमाना है।

---

१ दीर्घग्रीविका—Longus colli २ दीर्घशिरस्का—Longus Capitis ३ शिरः-पूर्वदण्डिका—Rectus Capitis anterior

[६९]

ग्रीवावंश के सम्मुखस्थ गम्भीर पेशियां ।

[यहां ग्रीवा के सम्मुखस्थ श्वासनलिकादि और पेशियां तथा पशु काओं के सम्मुखप्रान्त हटा कर पीछेके सस्थान दिखाये गये हैं ।]
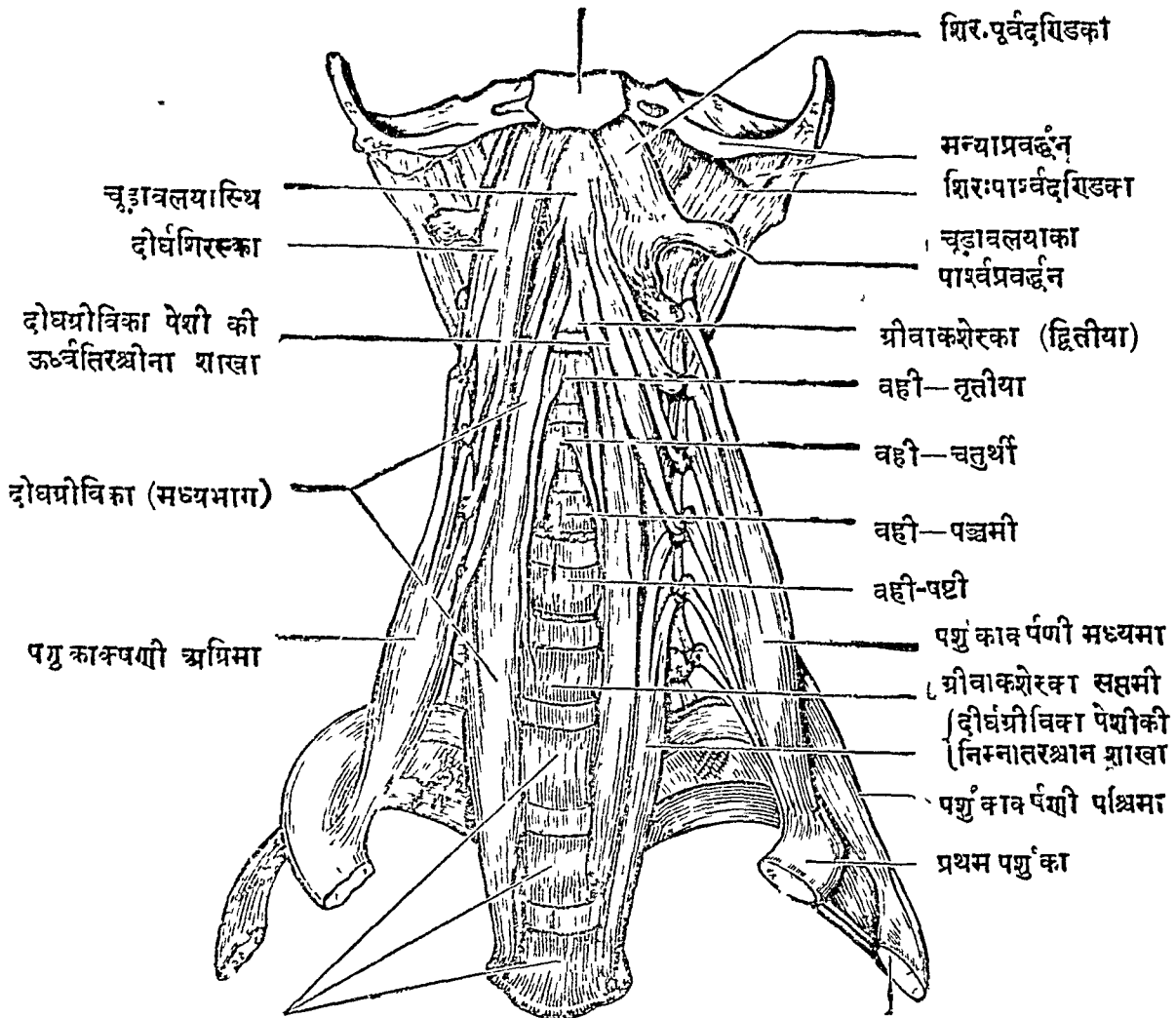
शिरःपार्श्वदण्डिका[1]—नाम की छोटी चौड़ी पेशी (६६ चित्र) 'चूडावलया' नामक ग्रीवाकशेरु के वाहुप्रवर्धन से उत्पन्न हो कर पश्चात्कपाल के 'मन्याप्रवर्धन' से लगी है। यह शिर को पार्श्व में घुमाती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी पहली, दूसरी और तीसरी "अनुग्रीविका" नाड़ियों की सम्मुखस्थ शाखायें हैं।

(घ) ग्रीवावंश के पार्श्व से भी एक एक तरफ चार चार पेशियां हैं—तीन पर्शुकाकर्षणी और एक अंसोन्नमनी (६५।६७।७४ चित्र । इनमें—

पर्शुकाकर्षणी[2]—नामकी पेशियां—अग्रिमा मध्यमा और पश्चिमा (या पृष्ठगा)—ये तीन हैं (६६ चित्र)। ये प्रायः तीसरे से लेकर छठे तक—चार ग्रीवाकशेरुओं के वाहुप्रवर्धनों से उत्पन्न होती है। इनमे प्रथम दो पेशियां प्रथम पर्शुका में लगती हैं—और अन्तिम पेशी दूसरी पर्शुका में। इनका कार्य इनके नाम से ही स्पष्ट है। इनको चेष्टा देने वाली नाड़िया अनुग्रीविका नाड़ियों की पुरोगा शाखाये हैं।

अंसोन्नमनी[3]—नाम की पेशी ऊपर के चार ग्रीवाकशेरुओं के वाहुप्रवर्धनो से उत्पन्न हो कर अंसफलक की वंशानुगा धारा में बंधी है। यह कन्धे को ऊपर खींचती हैं। इसे चेष्टा देने वाली नाड़ी पूर्व की भांति है (६७ चित्र)।

इस प्रकार से ग्रीवावश के सम्मुख और पार्श्व मे स्थित सोलह पेशिया कही गयीं।

(ङ) 'शिरोग्रीव' के पृष्ठमे एक एक ओर दस पेशियां है, यथा—

पृष्ठच्छदा[4]—(या पृष्ठप्रच्छदा) नामकी बड़ी चौड़ी मांसला पेशी (७१)चित्र आधे पीठ को ढापती है। यह इसी नामकी दूसरी पेशी से मिल कर शिर, ग्रीवा और अंस पृष्ठ के पीछे एक चौकोर मासवितान वनाती है। यह पेशी मुख्यरूप से पृष्ठ मे है—इस लिये पृष्ठ पेशियों मे गिनी जाती है। इसका विस्तार से वर्णन पृष्ठपेशियों के साथ होगा।

शिरोग्रीवविवर्त्तनी—नाम की दो पेशिया है—**उत्तरा**[5] और **अधरा**[6] (६७ चित्र)। ये मोटी तथा मासल पेशिया परस्पर मिल कर 'शिरोग्रीव' के

---

१ शिरःपार्श्वदण्डिका—Rectus Capitis Lateralis (Posterior) २ पर्शुकाकर्षणी पुरोगा—Scalenus Anticus ३ अंसोन्नमनी—Levator Scapulæ ४ पृष्ठच्छदा—Trapezius ५ शिरोग्रीवविवर्त्तनी उत्तरा—Splenius Capitis ६ शिरोग्रीवविवर्त्तनी अधरा—Splenius Cervicis

[७० चित्र]

पृष्ठदेश की गम्भीर पेशियां।

पीछे धनुष के आकार को बन जाती है। इनमें 'उत्तरा' पेशी सातवीं ग्रीवा-कशेरुका के और ऊपर को तीन चार पृष्ठकशेरुकाओं के कण्टकों से उत्पन्न होती है, और ऊपर में पश्चिमकपाल की 'उत्तर तोरणिका' रेखा में और शङ्खास्थि के 'गोस्तन प्रवर्धन' मे लगती है। 'अधरा' पेशी तीसरे से लेकर छठे तक पृष्ठकशेरुओं के कण्टकों से उत्पन्न होकर ऊपर की दो तीन ग्रीवाकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों में लगती है। ये दो पेशियां इसी नाम वाली अन्य पार्श्व की दोनों पेशियों से मिली है।

उत्तरा और अधरा—दोनों पेशिया जब मिलकर कार्य करती हैं तब 'शिरोग्रीव' को घुमाती हैं। इनका कार्य इसी नाम वाली अन्य पार्श्व की पेशियों के साथ मिल कर 'शिरोग्रीव' को पीछे खींचना है। दोनों को चेष्टा देने वाली नाड़ियां मध्यमा और पश्चिमा 'अनुग्रीविका' नाड़ियों की पार्श्वगा शाखायें हैं।

पृष्ठदण्डिका शिरोयुजा[1]—नामकी पेशी (७० चित्र) ग्रीवाकशेरुओं के और प्रथम चार पृष्ठकशेरुओ के बाहुप्रवर्धनों से एव अन्तिम ग्रीवाकशेरुओं के सन्धिप्रवर्धनो से उत्पन्न हो कर शंखास्थि के 'गोस्तनप्रवर्धन' के पृष्ठ मे बंधी है। यह शिरोग्रीव को पीछे खींचती एवं खडे रूप से धारण करती है। इसको प्रचेष्टनी नाड़ी 'अनुग्रीविक' नाड़ी मण्डल की पश्चिमगा शाखा है।

शिरोग्रीवपृष्ठिका[2]—नामकी पेशी (७० चित्र) ऊपर की तरफ मोटी और नीचे की तरफ पतली है। यह सातवीं ग्रीवाकशेरुका के और ऊपर को छ पृष्ठकशेरुकाओ के बाहुप्रवर्धनों से तथा चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ ग्रीवाकशेरुओं के सन्धिप्रवर्धनो से उत्पन्न हो कर पश्चात्कपाल की दोनो 'तोरणिका' रेखाओं के अन्तराल में बधी है। यह 'शिरोग्रीव' को पीछे खींचती और घुमाती है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़िया 'अनुग्रीविका' एवं 'अनुपृष्ठिका' नाड़ियों की प्रशाखाये हैं।

शिरःपृष्ठदण्डिका[3]—नामकी दो पेशी है— **गुर्वी** और **लघ्वी** (७० चित्र)। ये क्रम से 'दन्तचूड़ा' और 'चूड़ावलया' नामकी ग्रीवाकशेरुकाओं के पृष्ठकण्टको से उत्पन्न हो कर क्रमशः मोटी होती हुई पश्चिम कपाल की 'अधर तोरणिका' रेखा के समीप में बंधी है। इनका कार्य शिर को पीछे खींचना और कुछ घुमाना है। इन दोनों को चेष्टा देने वाली नाड़ी 'कपालमूलिका' नामकी है।

---

१ पृष्ठदण्डिका शिरोयुजा—Longissimus Capitis (Trachelo mastoid)
२ शिरोग्रीवपृष्ठिका—Semi-spinalis Capitis (Complexus) ३ शिरःपृष्ठदण्डिका—गुर्वी और लघ्वी—Rectus Capitis Posticus—major & minor

उत्तरतिरश्चीना[1]—नामकी पेशी ऊपर में चौड़ी और नीचे मूल में पतली होती है (७० चित्र)। यह 'चूडावलया' नाम की ग्रीवाकशेरुका के बाहुप्रवर्द्धन से उत्पन्न हो कर पश्चात्कपाल की तोरणिकाओं के अन्तराल में लगी है। इसको प्रचेष्टनी नाड़ी 'कपालमूलिका' है।

अधरतिरश्चीना[2]—पेशी दन्तचूड़ा के पृष्ठकण्टक से उत्पन्न हो कर चूड़ावलया के बाहुप्रवर्धन मे बंधी है (७० चित्र)। यह पेशी सिर को ग्रीवावंश के ऊपर केवल पार्श्व मे कुछ घुमाती है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ी 'कपालमूलिका' नामकी है।

ग्रीवार्द्धपृष्ठिका[3]—नाम की पेशी (७० चित्र) केंचुओं के गुच्छे के आकार की चार मूल एवं पाच मुख वाली है। यह ग्रीवावंश के और पृष्ठ के पार्श्व में बहुत गहरी रहती है। यह ऊपर के पाच पृष्ठकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों से उत्पन्न हो कर दूसरे से लेकर पाचवें ग्रीवाकशेरू के कण्टको मे बंधी है। यह ग्रीवावंश को पीछे खींचती और कुछ घुमाती है। इसकी चेष्टा 'अनुग्रीविका' नाड़ियों की पश्चिम शाखाओं से होती है।

इसी प्रसङ्ग में "कपालमूलिक"[4] नामक त्रिकोण का भी स्मरण रखना चाहिये। इसका उत्तर बाहु—शिरःपृष्ठदण्डिका गुर्वी से बनाहै। पार्श्व सीमा उत्तरतिरश्चीना पेशी से। अधोबाहु अधरतिरश्चीना पेशी से।

इस त्रिकोण की भूमि प्रथम और द्वितीय ग्रीवाकशेरुओं के अन्तराल में स्थित स्नायुपट्टिका से तथा दन्तचूड़ा के पश्चिमार्द्ध से बनती है। इस त्रिकोण मे 'मस्तिष्कमातृका' नामकी धमनी और प्रथमा 'अनुग्रीविका' नाड़ी दिखाई देती हैं। और यह त्रिकोण मेदःपुञ्ज से तथा शिरोग्रीवापृष्ठिका पेशी से ढांपा जाता है।

यहा तक शिरोग्रीवपृष्ठ मे स्थित दोनों पार्श्वों की बीस पेशियो की व्याख्या हो गयी।

गले के भीतर की पेशिया।

गले के अन्दर की पेशिया—अन्नमार्ग के चारो ओर दश और स्वरयन्त्र मे सतह—कुल मिला कर सत्ताइस (२७) है।

---

१ उत्तरतिरश्चीना—Obliqus Capitis Superior २ अधरतिरश्चीना— Obliqus Capitis Inferior ३ ग्रीवार्द्धपृष्ठिका—Semispinalis Cervicis ४ कपालमूलिक त्रिकोण—Sub-occipital triangle

इनमे अन्नमार्ग चारो और एक एक पार्श्व मे पांच पांच पेशियां है, यथा कण्ठसकोचनी अधरा, उत्तरा और मध्यमा, शिफागलान्तरीया और श्रुतिसुरङ्गाद्वारिका ।

स्वरयन्त्र के चारो ओर सत्रह पेशियां इस प्रकार से रहती हैं। श्वासमार्ग-द्वार मे नौ यथा मध्य में 'घाटान्तरीया' नामकी, और एक एक पार्श्व में चार चार, अर्थात्—'कृकाटघाटिका' नामकी, दो (पश्चिमा और पार्श्वगा) "स्वस्तिकघाटिका" एक, और 'गोजिह्वाघाटिका' एक। स्वरतन्त्रियो की पेशियां आठ हैं यथा—प्रत्येक पार्श्व मे 'अवटुघाटिका', 'अवटुकृकाटिका', 'अवटुगोजिह्विका' और 'अनुतन्त्रिका' नामकी चार चार पेशियां।

इनका विस्तार से वर्णन अन्नमार्ग और स्वरयन्त के वर्णन में आवेगा।

इति द्वितीय अध्याय।

तृतीय अध्याय।

=मध्यकाय पेशी-वर्णनीय=

मध्यशरीर में कुल एकसौ ग्यारह (१११) पेशियां है। इनका विभाग सात स्थानों मे किया जाता है। यथा—पीठ मे दोनों तरफ़ वीस—इनमे बारह उत्तान, आठ गम्भीर है। कटि के दोनो पार्श्वों मे छ.। छाती पर चौवन। उदर मे बारह। श्रोणिचक्र के अन्दर दस। उपस्थ मूल मे सात। गुदा के चारों ओर दो—कुल मिला कर एक सौ ग्यारह (१११) हैं।

यहां पर पृष्ठपेशिया --शिरोग्रीव के पश्चिमस्थ पूर्वोक्त पेशियों को छोड़ कर कही जावेगी। वहिःश्रोणि मे उत्पन्न होने वाली पेशियां भी यहां पर नही गिनी जायेंगी क्यों कि इनका कार्य और सम्बन्ध विशेषतः अधःशाखाओ से है। अतः अधः शाखा गत पेशियों के साथ इनका वर्णन होगा।

पृष्ठपेशियां।

इनका स्तर विभाग इस प्रकार है। प्रथम स्तरमे एक एक तरफ़ आधे पीठ को ढांपनेवाली पेशिया दो दो है। यथा—'पृष्ठच्छदा' और 'कटिपार्श्वच्छदा'।

दूसरे स्तर में भी एक एक तरफ़ दो दो पेशियां—हैं—'अंसापकर्षणी लघ्वी' और 'गुर्वो'। तृतीय स्तर मे भी दो दो पेशियां हैं—'पश्चिमारित्रा उत्तरा' और 'अधरा'।

चतुर्थ स्तर में एक एक तरफ़ एक बहुशाखा पेशी है—जिसका नाम 'त्रिकपृष्ठिका'। पञ्चम स्तर मे एक एक तरफ़ दो दो पेशिया है—'अर्द्धपृष्ठिका' और 'मेरुधारिणी'। षष्ठ स्तरमें फिर एक एक बहुमूला पेशी है, जिसका नाम 'मेरुविवर्त्तनिका'।

इनमें प्रथम तीन स्तरो मे स्थित पेशियो को उत्तान पृष्ठपेशी कहते है और अन्तिम तीन स्तरो मे स्थित पेशियों को गम्भीर पृष्ठपेशी।

इनमें उत्तान पृष्ठपेशियां यथा—(७१ चित्र)।

(प्रथमस्तर मे)-**पृष्ठच्छदा**[1] (या पृष्ठप्रच्छदा) नाम की त्रिकोण पेशी बड़ी, चौड़ी और मांसल है। यह पृष्ठदेश के उत्तरार्द्ध को ढांपती है और इसी नाम वाली दूसरी पेशी से मिल कर कन्धे के तथा पीठ के पीछे चौकोर दिखायी देती है। यह पेशी पश्चिमकपाल की उत्तर तोरणिका से, 'ग्रीवाधरा' नामकी स्नायुरज्जु से तथा सम्पूर्ण ग्रीवा और पृष्ठ की कशेरुओ के पृष्ठकण्टकों से उत्पन्न होती है; और चारों ओर फैलती हुई अक्षकास्थि के पश्चिमधारा मे तथा अंसफलक के कूट, प्राचीर एवं पश्चिम धारा मे लगती है। यह पेशी श्लेष्मधर कलापुटक के व्यवधान से अंसप्राचीर के मूल पर पिछलती रहती है। इसका कार्य (अकेली काम करने पर) शिर और अंसफलक को पृष्ठवंश के प्रति खींचना है। अपने नाम वाली पेशी से संयुक्त होने पर इसका कार्य स्कन्ध एवं शिर को पीछे खीचना है। इसकी चेष्टा 'नागिनी' नामकी नाड़ी से और तृतीया तथा चतुर्थी अनुग्रीविका नाड़ियो की शाखा प्रशाखा से होती है।

कटिपार्श्वच्छदा[2] (या 'कटिपृष्ठच्छदा')—नामकी पेशी (७२ चित्र) विशाल, आयत और मांसल है। यह पृष्ठ के अधरार्द्ध को और कटिपार्श्व को ढांप रखती है। यह निचले छः पृष्ठकशेरुओं के, पांच कटिकशेरुओ के और त्रिकास्थि के पृष्ठकण्टकों से, तथा श्रोणिफलक के जघनचूड़ा से कलामय मूलो के द्वारा उत्पन्न हो कर आगे तिरछी ऊपर जा कर अंसफलक की अधःकोटि मे एवं तीन चार निम्न पर्शुकाओ के पार्श्वों में बंधती है। और प्रगण्डास्थि की

१। पृष्ठच्छदा—Trapezius. २। कटिपार्श्वच्छदा—Latissimus Dorsi

[७१ चित्र]
पृष्ठदेशकी उत्तान
पेशियां।
उरःकर्णमूलिका
असच्छदा
त्रिशिरस्का
पृष्ठच्छदा
वामा और दक्षिणा
१
२
३
४
५
अरित्रा अग्रिमा
कटिपार्श्वच्छदा
= चित्र व्याख्या =
१ असाधरिका लघ्वी
२ असपृष्ठिका अधरा
३ असाधरिका गुर्वी
४ असापकर्षणी गुर्वी
५ उरःच्छदा गुर्वी
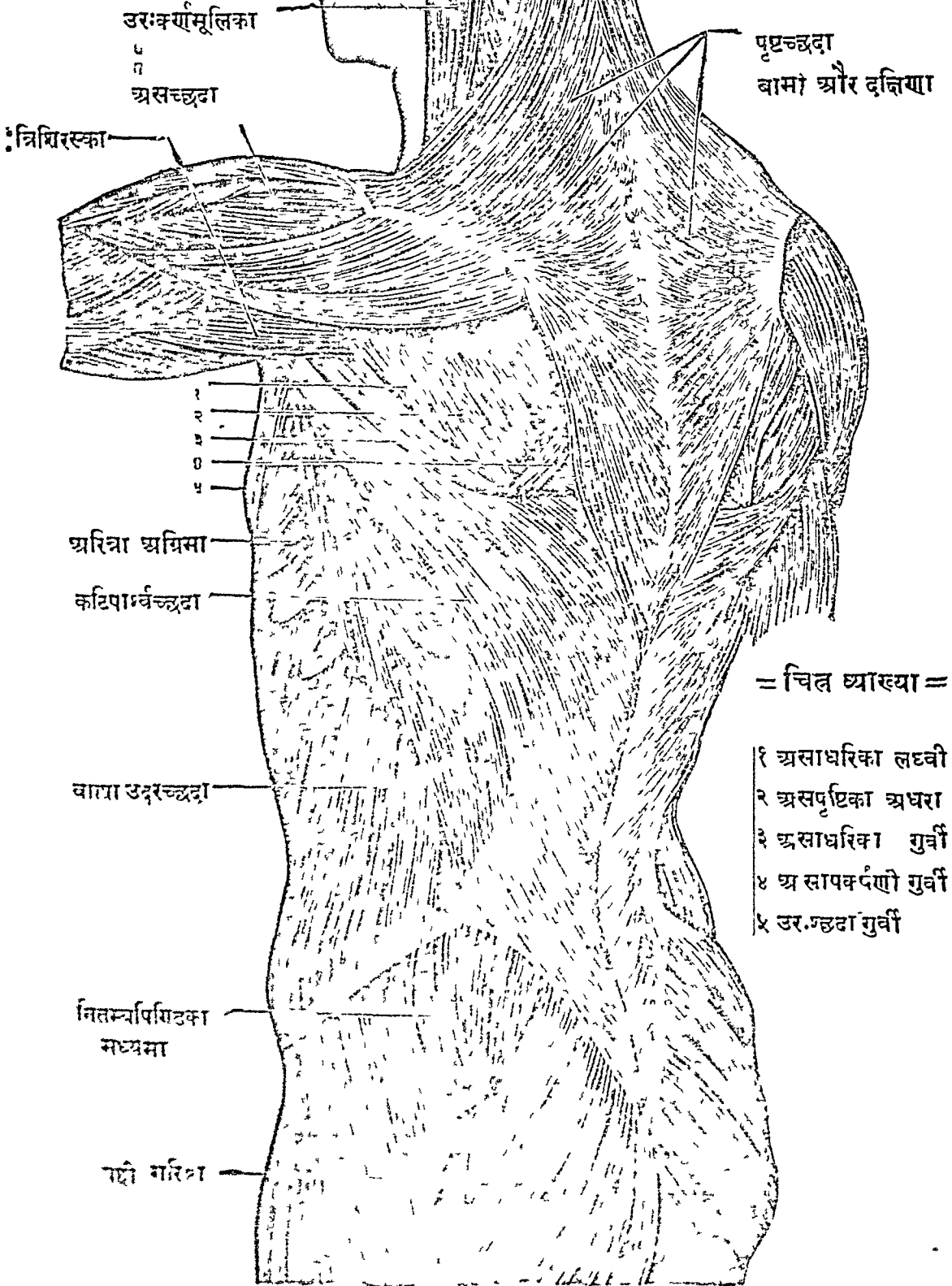
पिण्डान्तरीय परिखा के अन्तःस्तर में स्थूल और चौड़े कण्डराग्र द्वारा लगती है। यह पेशी अकेली काम करने पर अपने पार्श्व के बाहु को पीछे और नीचे खींचती है, परन्तु अपने नाम वाली पेशी से मिलकर काम करने पर दोनो बाहुओं को पीछे कर्षण करती हैं और छाती को भी फैलाती है। ये पेशियां वृक्ष आदि पर चढ़ने के समय बाहुओं को स्थिर रखते हुए पुरुष के निचले आधे शरीर को ऊपर खींचती और उठाती है। इनकी प्रचेष्टनी नाड़ी द्वितीया अन्वंसिका' नामकी है।

(द्वितीय स्तर में) **अंसापकर्षणी लघ्वी और गुर्वी**[1] नाम की चौकोर पेशिया पृष्ठ मे एक एक ओर दो दो है (७१ चित्र)। ये पृष्ठवंश और अंसफलक के अन्तराल मे रहती है। इनमे लघ्वी पेशी 'ग्रीवाधरा' नामकी स्नायुरज्जु से, और अन्तिम ग्रीवाकशेरुका एवं प्रथम पृष्ठकशेरुका के पृष्ठकण्टकों से उत्पन्न हो कर अंसफलक की 'वंशानुगा धारा' के मध्यभाग मे बंधती है। अंसापकर्षणी गुर्वी पेशी दूसरे से लेकर पाचवे तक पृष्ठकशेरूओ के कण्टकों से उत्पन्न होकर अंसफलक की 'वंशानुगा धारा' के निम्नार्द्ध में बंधती है। इनका कार्य अंसफलक को ऊपर और पीछे कर्षण करना है। इनको चेष्टा देने वाली नाड़ी पांचवी अनुग्रीविका की 'अंसपृष्ठगा' शाखा है।

[यहां पर **अंसोन्नमनी**[2] नामकी एक और पेशी दिखायी देती है। यह ग्रीवापेशियो मे कही और गिनी गयी है, अतः यहा पर फिर नहीं गिनी जाती।]

(तृतीय स्तर में) **पश्चिमारित्रा**[3] **उत्तरा और अधरा** नामकी दो दो पेशियां एक एक पृष्ठ पार्श्व मे दीखती हैं। इनमें उत्तरा पेशी 'ग्रीवाधरा' नाम की स्नायुरज्जु से, सातवी ग्रीवाकशेरुका से और प्रथम दो तीन पृष्ठकशेरुओं के पृष्ठ-कण्टकों से उत्पन्न होकर दूसरीसे लेकर पाचवी तक चार पर्शुकाओ के पश्चिमार्द्ध में चार मुखों से बंधी है। उत्तरा पेशी अन्तिम दो पृष्ठकशेरुओं के और आदि के तीन कटिकशेरुओं के पृष्ठकण्टकों से उत्पन्न हो कर अन्तिम चार पर्शुकाओं के पश्चिमार्द्ध मे चार मुखो से बंधी है। उत्तरा पेशी का कार्य उच्छ्वासकाल मे अपने से सम्बद्ध पर्शुकाओं का ऊर्ध्वकर्षण करना है। अधरा पेशी का कार्य निःश्वास काल मे अपने से सम्बद्ध पर्शुकाओं का अवनमन करना है। प्रचेष्टनी नाड़ियां उत्तरा पेशी की 'उत्तरा अनुपृष्ठिका' और अधरा पेशी की 'अधरा अनुपृष्ठिका' हैं।

---

१ अंसापकर्षणी लघ्वी और गुर्वी—Rhomboideus Minor and Major.
२ अंसोन्नमनी—Levator Scapulæ (वर्णन २० पृष्ठ में देखो) ३ पश्चिमारित्रा उत्तरा और अधरा—Serratus Posticus—Superior and Inferior

यहां तक एक एक तरफ छः छः [अर्थात् कुल वारह] उत्तान पृष्ठपेशियों की व्याख्या हो गयी।

इन पेशियों का विभाग और धारण करने वाली एक दृढ़ शुभ्र गम्भीर प्रावरणी है—जिसका नाम 'कटिपृष्ठप्रच्छदा'। इसकी व्याख्या कटिपेशियों की व्याख्या मे आवेगी।

(चतुर्थ स्तर में) गम्भीर पृष्ठ पेशियों में एक एक प्रधान और स्थूल मांसला पेशी पृष्ठवंश के एक एक तरफ है—जिसका नाम **त्रिकपृष्ठिका**'[1] (७० चित्र)। यह कटिपृष्ठ को धारण करती है। यह त्रिकास्थि के पांचों कटिकशेरुओ के, तथा अन्तिम दो पृष्ठकशेरुओ के—पृष्ठकण्टकों से, त्रिकास्थि के पक्ष से, जघनचूड़ा के पश्चिमार्द्ध से स्थूल आयत कलामय मूलो के द्वारा उत्पन्न हो कर तीन भागों मे विभक्त हो कर ग्रीवा की ओर फैलती है। इसका प्रथम भाग पृष्ठवंश के पार्श्व में धनुष की भांति टेढ़ी है—यह सम्पूर्ण पृष्ठकशेरुओं के और दो कटिकशेरुओ के पृष्ठकण्टको मे बंधती है। इसका नाम **अनुवंश भाग**[2] है। मध्यभाग क्रमशः आगे से पतला होता हुआ सभी कटि और पृष्ठकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों मे और दश पर्शुकाओं के मूलो मे बंधा है। इनका नाम **मध्यपृष्ठिक भाग**[3] है। इसके दो भाग है—पृष्ठगत और ग्रीवागत। अन्तिम भाग सब से बाहर है और सभी पर्शुकाओ के कोणों में बंधा हुआ है। इसका नाम **अनुपार्श्विक भाग**[4] हैं। इसके तीन अंश हैं—कटिगतः, पृष्ठगत और ग्रीवागत।

त्रिकपृष्ठिका पेशी का कार्य पृष्ठवंश को धारण करना और सब भागों द्वारा उनको पीछे कर्षण करना है। विशेषतः मध्यभाग द्वारा पर्शुकाओं का कर्षण और उससे उच्छ्वास कार्य मे सहायता होती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़िया अनुपृष्ठिका और अनुकटिका नाड़ियों की शाखायें हैं।

(पञ्चम स्तर में) एक एक और दो दो पेशियां हैं। उत्तरार्द्ध मे पृष्ठार्द्धपृष्ठिका और अधरार्द्ध में मेरुधारिणी। इनमे—

---

१ त्रिकपृष्ठिका—Sacro-spinalis २ उसका अनुवंशभाग—Spinalis Dorsi
३ मध्यपृष्ठिक भाग (ग्रीवागत और पृष्ठगत)—Longissimus Dorsi & Cervicis
४ अनुपार्श्विक भाग—(ग्रीवागत, पृष्ठगत और कटिगत)—Ileo costalis Lumborum, Dorsalis & Cervicis.

पृष्ठार्द्धपृष्ठिका[1]—नाम की पतली पेशी (७० चित्र) पांचवे से लेकर बारहवें तक आठ पृष्ठकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों से उत्पन्न होकर अन्तिम दो ग्रीवाकशेरुओं के और आदि के चार पृष्ठकशेरुओं के पृष्ठकण्टकों मे लगती है। इसका कार्य भी पूर्व की भांति है। इसको क्रियाशील बनाने वाली नाड़ी अनुपृष्ठिका की शाखायें है।

मेरुधारिणी[2] नाम की अनेक शाखा वाली मांसला पेशी (७० चित्र) त्रिक सहित पृष्ठवंश की पृष्ठकण्टक श्रेणी के एक एक तरफ़ रहती है और उस जगह की लम्बी परिखा को पूर्ण करती है। यह कशेरुओं के पृष्ठकण्टकों मे, बाहुप्रवर्धनों में, उनके अन्तरालों में, और श्रोणिफलक के पश्चिमोर्द्धकूट मे बंधी है। इसकी शाखायें नीचे नीचे स्थित दो तीन कशेरुओं के पार्श्वों से उत्पन्न होकर ऊपर ऊपर के तीन चार कशेरुओं के पृष्ठकण्टकों में लगती हैं। इसकी उत्पत्ति एवं निवेश की शृंखला मे यही विचित्रता है। इसका कार्य पृष्ठवंश को धारण करना और कुछ घुमाना है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ियां अनुपृष्ठिका नामकी हैं।

(षष्ठ स्तर में) एक एक आधे मे एक एक पेशी है, जिसकी शाखाये अनेक हैं। इस पेशी का नाम **मेरुविवर्त्तनिका**[3] है। इसकी मुख्य शाखायें नीचे नीचे के कशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों से उत्पन्न हो कर उत्तरोत्तर कशेरुपत्रों पर मछली के छिलकों की भांति सजी हैं और सभी पृष्ठकशेरुओं में बंधती हैं। अन्य शाखायें पृष्ठकण्टकों के और बाहुप्रवर्धनों के अन्तरालों मे बंधती हैं। इसमें बहुत सी शाखायें दीखने के कारण कई लोग शाखाओं की संख्या द्वारा अनेक पेशियां गिनते हैं। यहां पर लाघव की दृष्टि से एक ही पेशी गिनी है। इसका कार्य पृष्ठवंश को घुमाना है, और प्रचेष्टनी नाड़ी भी पूर्व की भांति हैं।

कटि पेशियां।

कटि पेशियां एक एक और तीन तीन है। यथा - कटिपार्श्व मे कटिचतुरस्रा, और कटिवंश के सम्मुख में कटिलम्बिनी दीर्घा और ह्रस्वा। कटिपार्श्वच्छदा पेशी भी कटि, पृष्ठ और पार्श्व को ढापती है, परन्तु उसकी यहां गणना नहीं कीजायगी क्यों कि उसे पृष्ठ पेशियों में गिन चुके हैं।

---

१ पृष्ठार्द्धपृष्ठिका—Semi-spinalis Dorsi, २ मेरुधारिणी—Multifidus Spinæ ३ मेरुविवर्त्तनिका—Rotatores—Inter-spinalis and Inter-transversalis

[७२ चित्र]

कटि और जघनोदर की पेशियां।

(उदर के यन्त्र तन्त्र को हटा कर दिखायी गयी हैं)

चित्रव्याख्या—१ शुण्डिका। २ श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था। ३ कटिलम्बिनी दीर्घा (नर्तितांश)।
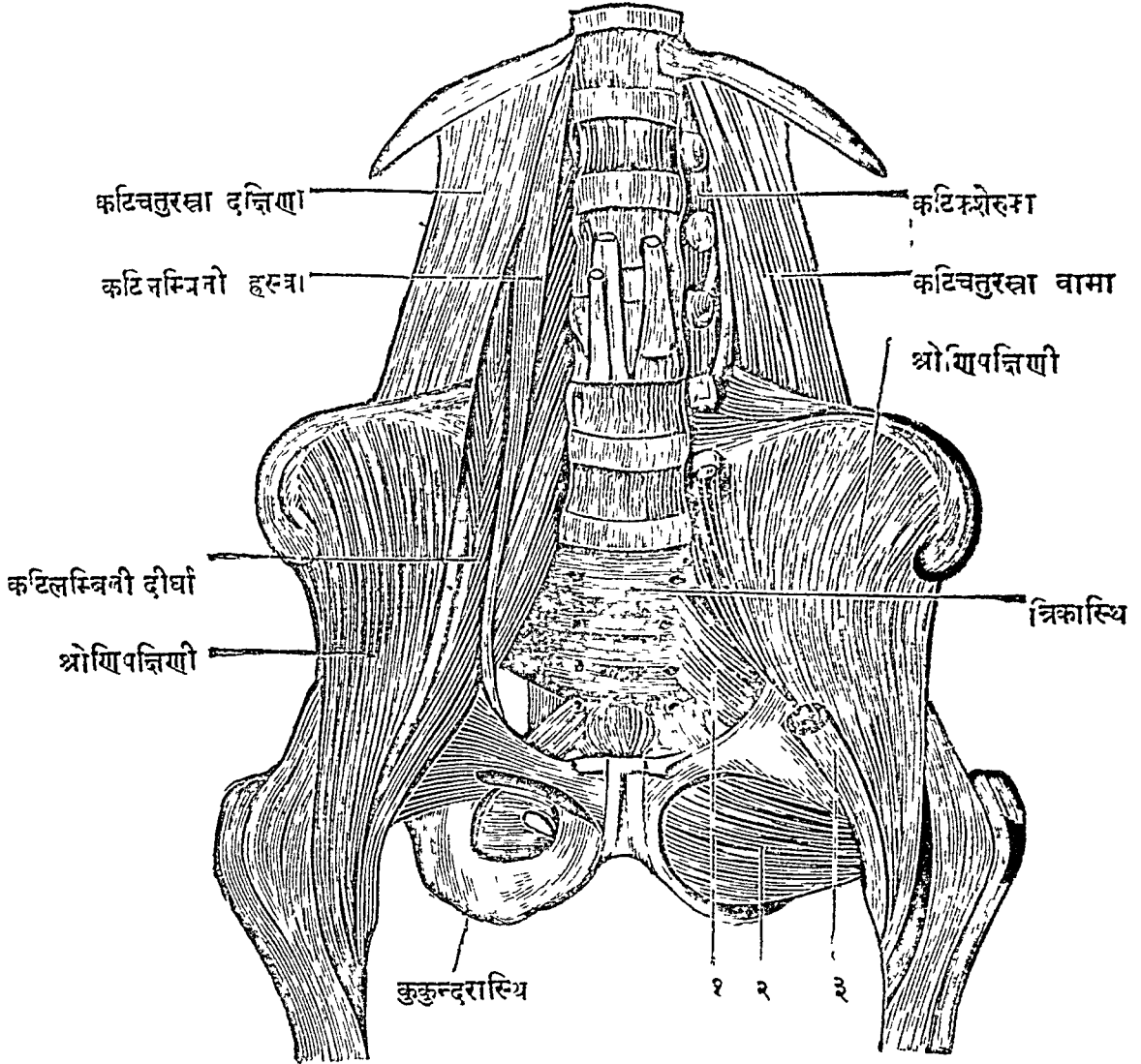
यहां पर कटिपृष्ठार्द्ध को ढांपने वाली दृढ़ स्नायु से बनी हुई 'कटिपृष्ठप्रच्छदा' नाम की एक गम्भीर प्रावरणी भी देखनी चाहिये। इसके तीन भाग हैं—सम्मुखभाग, मध्यभाग और पश्चिमभाग इनमे से सम्मुखभाग कटिकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनो के मूलो में बंधा है और मध्यभाग इनके अग्रभागो में। इनके द्वारा कटिचतुरस्रा पेशी का कञ्चुक बनता है। पश्चिमभाग और भी गम्भीर है, यह पृष्ठपेशियो को धारण करता है और कटिकशेरुओं के पृष्ठकण्टकों मे बंधा है। यह प्रावरणी मध्यमा और चरमा उदरच्छदा पेशियों के पश्चिम मूलो से मिली हुई है—यह विशेषरूप से स्मरण रखना चाहिये।

कटिचतुरस्रा[२]—नामकी प्रायः चौकोर और मांसला पेशी (७२ चित्र) कटिपार्श्व मे एक एक ओर दीखती है। यह पूर्वोक्त कटि-जघनिका नामकी स्नायुरज्जु से और श्रोणिफलक की जघनचूड़ा से उत्पन्न हो कर बारहवीं पर्शुका मे एवं प्रथम चार कटिकशेरुओं के बाहुप्रवर्द्धनों मे लगती है। यह वृहदंत्र और वृक्क के पश्चिम मे रहती है, तथा महाप्राचीरा नाम की पेशी के बहिस्तोरण में और कटिलम्बिनी नामकी पेशी की बहिसीमा मे दीखती है। यह अन्तिम पर्शुकाओं के आकर्षण और महाप्राचीरा के मूल को धारण करती हुई उच्छ्वास कार्य मे सहायता करती है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ियां बारहवीं औरसी नाड़ी की और प्रथम दो अनुकटिका नाड़ियो की शाखाये है।

कटिलम्बिनी दीर्घा और ह्रस्वा[३]—नाम की दो पेशिया (७२ चित्र) गजशुण्ड आकार की हैं। ये कटिवंश के पार्श्व मे एवं उदरगुहा की पश्चिम सीमा में रहती है। इनमे दीर्घा पेशी अन्तिम पृष्ठकशेरु के और पाच कटिकशेरुओं के पिण्डो के सम्मुख भाग से एव बाहुप्रवर्धनो से उत्पन्न होती है और तिरछी नीचे जा कर, श्रोणिपक्षिणी पेशी की कण्डरा से अपने मूल के द्वारा मिल कर ऊर्वस्थि के लघुशिखरक मे लगती है। ह्रस्वा कटिलम्बिनी पेशी उस की गोद मे रहती है, और उसीके प्रभवस्थान के एक अंश से उत्पन्न होती है। यह श्रोणिफलक के जघनकपाल मूल मे स्थित 'वस्तिकण्ठिका' रेखा मे लगी है। इन दोनों पेशियों का कार्य मध्यशरीर को नीचे झुकाना या ऊपर खींचना है। इन को चेष्टा देने वाली नाड़ियां द्वितीया और तृतीया अनुकटिका नाम की है।

---

१ कटिपृष्ठप्रच्छदा प्रावरणी—Lumbo-dorsal Fascia २ कटिचतुरस्रा—Quadratus Lumborum ३ कटिलम्बिनी दीर्घा और ह्रस्वा—Psoas major and minor,

इन तीनो पेशियों का उदरगुहा के साथ सम्बन्ध इस प्रकार का है और ये पेशिया कोष्ठधरकला से ढपी रह कर उदर गुहा की बाह्य एवं पश्चिम सीमा को बनाती है। उदर के अन्दर सम्मुख से देखने पर कटिलम्बिनी पेशियों के सामने एक एक तरफ ये विशेपताये दीखती है, यथा—वृक्क, अधिवृक्क और इनसे मिली सिराधमनिया, गवीनी[1] ऊरुत्वपणिका नाड़ी और अन्यसिरा, धमनी आदि हैं। दक्षिण मे भी ये ही है और अधरा महासिरा अधिक है।

उरः की पेशियां।

उरः (सीने) की पेशिया चौवन (५४) हैं—यह कह चुके। इनमें उरः के सम्मुख मे एक एक और तीन तीन पेशिया है—अक्षकाधरा, उरःप्रच्छदा गुर्वी, और वही लघ्वी। उरःपार्श्व मे एक एक ओर—अग्रिमारिता नामकी एक एक पेशी हैं। बारहो पर्शुकाओं के अन्तरालों में एक एक ओर ग्यारह बहिःस्था और ग्यारह अन्तःस्था—इस प्रकार बाईस पर्शुकाकर्पणी पेशिया है। इस प्रकार से दोनों पार्श्वों को सम्पूर्ण पेशियों की मिलित संख्या बावन (५२) होती हैं। और भी दो पेशियां हैं—जिनसे एक उरःफलक के पृष्ठ भाग के अन्दर छिपी हैं—उरस्त्रिकोणिका नाम की; और दूसरी उदर एवं उरः के बीच मे हैं—महाप्राचीरा नाम की। इस प्रकार से उर की चौवन पेशियो की सख्या कही गयी। इनमे—

अक्षकाधरा[2]—नाम की पतली पेशी प्रथम पर्शुका और उपपर्शुका के सन्धिस्थान से उत्पन्न हो कर, तिरछी ऊपर को जा कर अक्षकास्थि के अधस्तल मे बधती है।

यह अंसफलक के साथ संलग्न अक्षकास्थि को नीचे खींच कर अंस के झुकाने मे सहायता करती है। इसकी चेष्टा—पचमी और षष्ठी अनुग्रीविका नाड़ी की शाखाओं से होती है।

उरश्छदा (या उरःप्रच्छदा) **गुर्वी**[3]—नाम की स्थूल और मांसला पेशी ताल के पखे की समान दीखती है और उरः के आधे सम्मुख भाग को ढापती है (७३ चित्र)। यह अक्षकास्थि के आन्तरार्द्ध से, उरःफलक के पार्श्व से, एवं पांच छः उपपर्शुकाओं से उत्पन्न होकर क्रमशः मोटी होती हुई प्रगण्डास्थि के दोनों

---

१ 'गवीनी' मूत्रवह स्रोत का वैदिक नाम है, यह एक एक वृक्क से निकल कर वस्ति में बधी है (Ureter) २ अक्षकाधरा—*Subclavius* ३ उरश्छदा गुर्वी—*Pectoralis major*

पिण्डकों के मध्यस्थ परिखा के वहिस्तट मे लगती है। इसका कार्य आलिंगन आदि मे बाहुओं को एकत्रित करना है, और वृक्ष आदि पर चढ़ने में भुजाओं को स्थिर रखने पर मध्यशरीर को ऊपर की ओर खींचना है, व्यायाम से सुदृढ़ शरीर वाले पुरुष के सीने के प्रत्येक पार्श्व में यही पेशी स्थूल और उन्नत दिखाई देती है। इसकी चेष्टा 'औरसी' नामकी अग्रिमा और मध्यमा नाड़ियों से होती है।

[७३ चित्र]

उर की पेशियां (उत्तान)
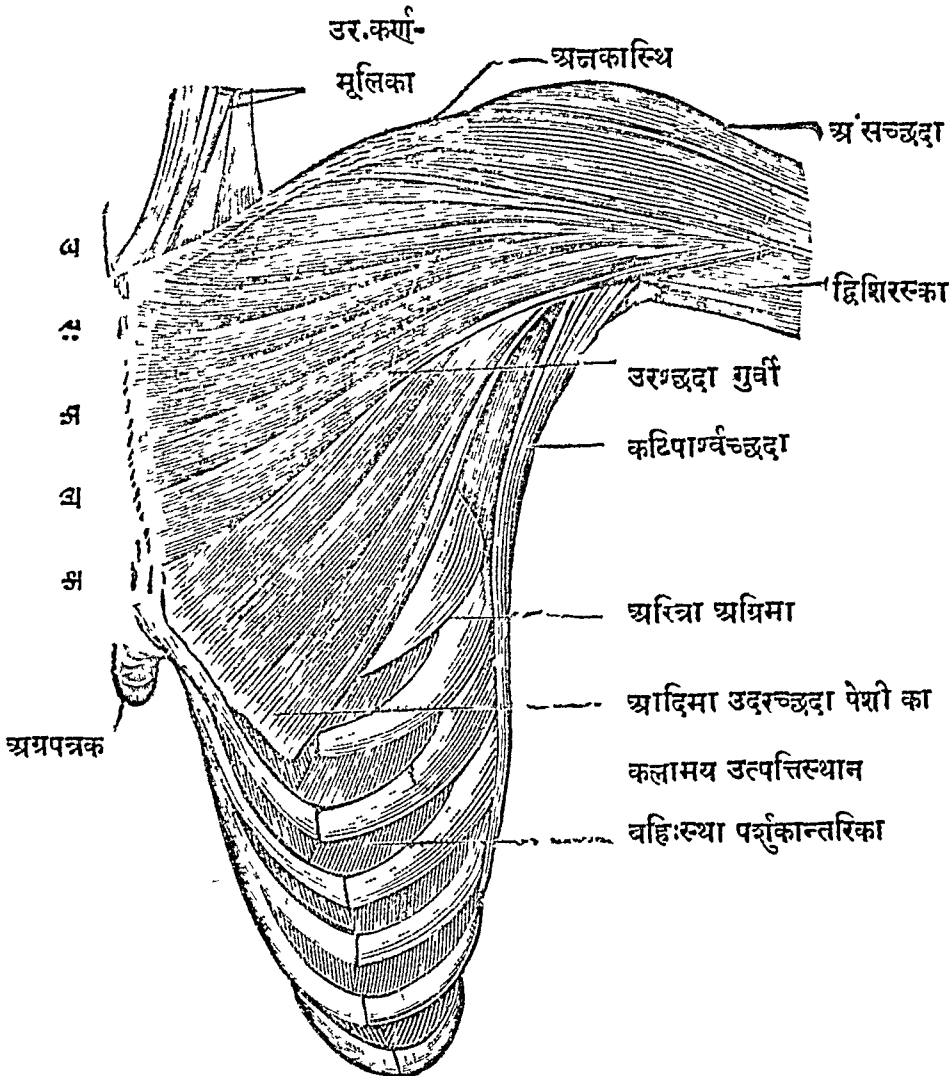
उरश्छदा लघ्वी[१]—नामकी त्रिकोणाकार, स्थूल, मांसला पेशी (७४ चित्र) पूर्वोक्त पेशी के पीछे छिपी रहती है। यह तीसरी, चौथी और पांचवीं पर्शुकाओं के सम्मुखभाग से उत्पन्न हो कर तिरछी जाती हुई अंसफलक के अंसतुण्ड की सम्मुख धारा में लगती है। इसका कार्य अंस को झुकाना अथवा अंस को स्थिर किये हुए पुरुष के मध्यशरीर को ऊपर खींचना है। श्वासकष्ट होने पर यदि बाहुओं को किसी स्थान पर टेक कर श्वास लिया जाय तो उरश्छदा पेशियों द्वारा सीने को फैलाने से श्वास खीचने मे बड़ी सहायता मिलती है।

अग्रिमारित्रा[२] (या महारित्रा) (७३।७४ चित्र) नाम की पेशी आरे के दांतो जैसे मुख वाली और आगे चद्दर के समान फैली हुई है। यह अंसफलक और उरःपञ्जर के अन्तराल मे रहती हैं। यह पार्श्वदेश मे आठ अग्रिम पर्शुकाओं से, आरे के दांत जैसे मूलो के द्वारा उत्पन्न हो कर तिरछे रूप से पीछे फैलती है और अंसफलक की वंशानुगा धारा की सम्मुख सीमा मे बंधती है। इसका कार्य अंसफलक को पीछे और ऊपर को खींचना है। यह पेशी अंस को स्थिर किये हुए पुरुष की पर्शुकाओं को भी ऊपर को तरफ़ खीच सकती है। दोनों तरफ़ की दो अग्रिमारित्रा पेशियां पशुओ के मध्यशरीर को अगले पांव के अन्तराल मे लटकाती है। इसकी चेष्टा देने वाली नाड़ी 'दीर्घा औरसी' नाम की है।

पर्शुकान्तरिका—नाम की पतली और चौड़ी पेशियां बारह पर्शुकाओं के अन्तरालों मे रहती है (७३।७८ चित्र)। ये उरःपञ्जर के प्रत्येक आधे भाग मे ग्यारह बहिःस्था और ग्यारह अन्तःस्था—इस प्रकार से बाईस हैं। उनमे—

बहिःस्था पर्शुकान्तरिका[३] ऊपर ऊपर की पर्शुकाओं की निम्नधाराओं से उत्पन्न हो कर नीचे नीचे की पर्शुकाओ की ऊर्ध्वधारा में लगती हैं। उनके तन्तु सम्मुख के तरफ तिरछे है।

अन्तःस्था पर्शुकान्तरिका[४] पर्शुकाओं की निम्नधारा मे स्थित परिखाओं के अन्तस्तटो से और उपपर्शुकाओं से उत्पन्न हो कर नीचे नीचे की पर्शुका एवं उपपर्शुकाओ की ऊर्ध्वधाराओं में बंधी है। उनके तन्तु पीछे के तरफ तिरछे हैं।

---

१ उरश्छदा लघ्वी—Pectoralis Minor २ अग्रिमारित्रा—Serratus Anterior (Serratus Magnus) ३ पर्शुकान्तरिका बहिःस्था—Intercostal External ४ पर्शुकान्तरिका अन्तःस्था—Intercostal Internal

[७४ चित्र]

मध्यकाय के सम्मुखस्थ पेशियां (गम्भीर)
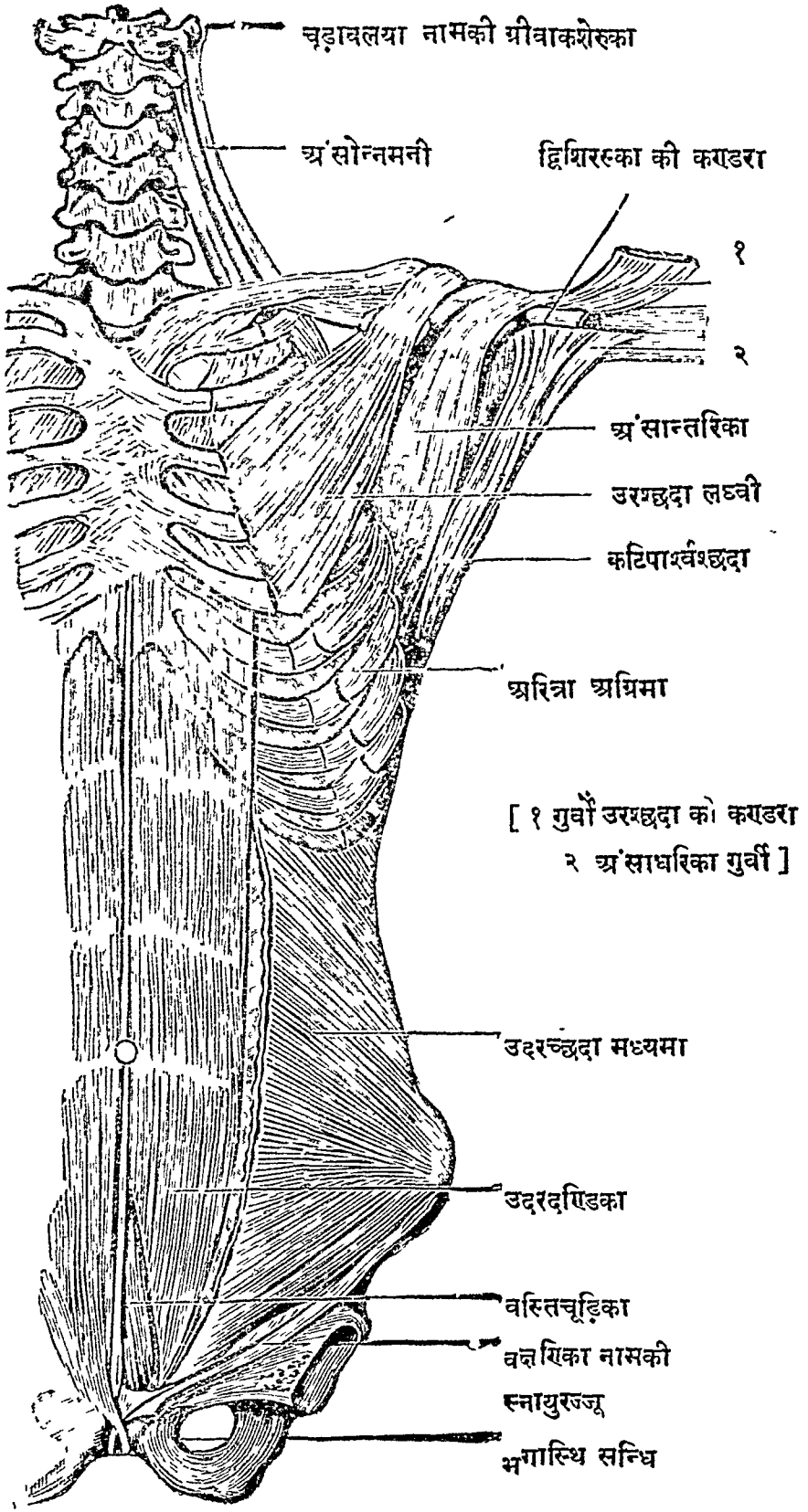
पूर्वोक्त दोनों प्रकार की पेशियो के अन्तरालो मे स्थित 'पर्शुकानुगा' नाम की परिखाओं में इसी नाम की सिरा धमनी और नाड़िया दिखाई देती है। इनके द्वारा पर्शुकान्तरिका पेशियों का पोषण एवं चेष्टा होती है। इनका कार्य उरःपञ्जर का धारण करना और उच्छ्वास एवं निःश्वास के समय हिलती हुई पर्शुका एवं उपपर्शुकाओं का थोड़ा संयमन (रोकना) करना हैं। किसी किसी विद्वान् का विचार हैं कि उच्छ्वास काले मे वहिःस्था पेशियों से पर्शुकाओं का उत्कर्षण होता है और निःश्वास काल मे अन्तःस्था पेशियो से अवनमन होता है।

उरस्त्रिकोणिका[1]—नाम की अकेली पेशी उरःफलक के पीछे मे दोनों तरफ फैल कर रहती है। यह देखने मे त्रिकोणाकार है और उरःफलक के निचले आधे भाग से उत्पन्न होती है। यह पेशी मध्यरेखा के दोनों ओर तिरछी ऊपर के विस्तृत है और दूसरी से लेकर छठी उपपर्शुकाओं की पीठ मे पाच या छः अग्रभागों से लगती हैं। यह उपपर्शुकाओ के सहित उरःफलक को निःश्वास काल में अन्दर की ओर कर्षण करती है। इनकी चेष्टा पर्शुकानुगा नाड़ियों से होती है।

महाप्राचीरा[2]—नाम की (७५ चित्र) विशाल सर्पफण की भांती फैली हुई पेशी कोष्ठ के मध्य मे रहती है। इसी से उरोगुहा की भूमि अथवा उदरगुहा का छत वनता है। यह ऊपर से कछुवे की पीठ की भांति और नीचे से नतोदर है परन्तु यह मध्यभाग मे प्रायः समतल है। यह चारो ओर परिधि में एवं मूलभाग मे मांसमयी है, परन्तु इसका मध्यभाग अर्द्धचन्द्राकार लिपन्नाकार दृढ़ कला से वना हुआ हैं। इसका परिधि भाग और दोनो मूल इसके प्रभव स्थान है और कलामय मध्यभाग निवेशस्थान है—यही इस में विचित्रता है और इसी लिये परिधि एवं मूलों मे संकुचित होती हुई यह पेशी मध्यभाग और परिधि को वलपूर्वक नीचे खींचती है। इसकी क्रिया मे यही अपूर्व विशेपता हैं।

इसकी परिधि सम्मुख में उर फलक के निम्नस्थ 'अग्रपत्र' नाम के तरुणास्थि मे एवं इसकी एक एक ओर की छः या सात निम्नपर्शुकाओं में उनकी उपपर्शुकाओं में वंधी है। इसके दोनों मूल पश्चिम मे दूसरी और तीसरी अग्रिम कटिकशेरुका के पिण्डों में मांस तथा स्नायुओं से वंधे है। इनमे वाम मूल

---

१ उरस्त्रिकोणा—Transversus Thoracis (Triangularis Sterni) २ महाप्राचीरा—Diaphragm

पतला और छोटा है और आदि के दो कटिकशेरुओं मे लगा है। दक्षिण मूल स्थूल दीर्घ और तीन कटिकशेरुओ में लगी है। दोनो मूलों के प्रत्येक ओर दृढ़स्नायु सूत्र से बने दो दो तोरण हैं, वे भी महाप्राचीरा के उत्पत्ति स्थान है। इनमे पृष्ठवंश से संलग्न अन्तःसीमा मे 'अन्तस्तोरण' और वाह्यसीमा में वहिस्तोरण' है। इनमें अन्तस्तोरण प्रथम कटिकशेरु के पिण्ड से आरम्भ करके वाहुप्रवर्धन के अन्त तक पहूंचो है। इनमे से दीर्घा कटिलम्बिनी पेशी निकलती है। वहिस्तोरण पूर्वोक्त वाहुप्रवर्धन से वारहवी पर्शुका के अन्त तक फैला हुआ है। इसमें से कटिचतुरस्रा पेशी और इड़ा एवं पिंगला मे से एक महा नाड़ी (वाम से इड़ा और दक्षिण से पिंगला) निकलती है।

[७५ चित्र]

महाप्राचीरा पेशी ।

महाप्राचीरा का मध्यपत्र
अग्रपत्र नामका तरुणास्थि
पर्शुका धारा
ऊर्ध्वगा महासिरा के निर्गम विवर
द
अन्ननाल विवर
व
महाधमनी विवर
द्वादशी पर्शुका
महाप्राचीरा का अन्तस्तोरण
शीर्ष कटिचतुरस्रा
दीर्घा कटिलम्बिनी पेशी
महाप्राचीरा के दो मूलों से ढांपी हुई तीन कटिकशेरुका
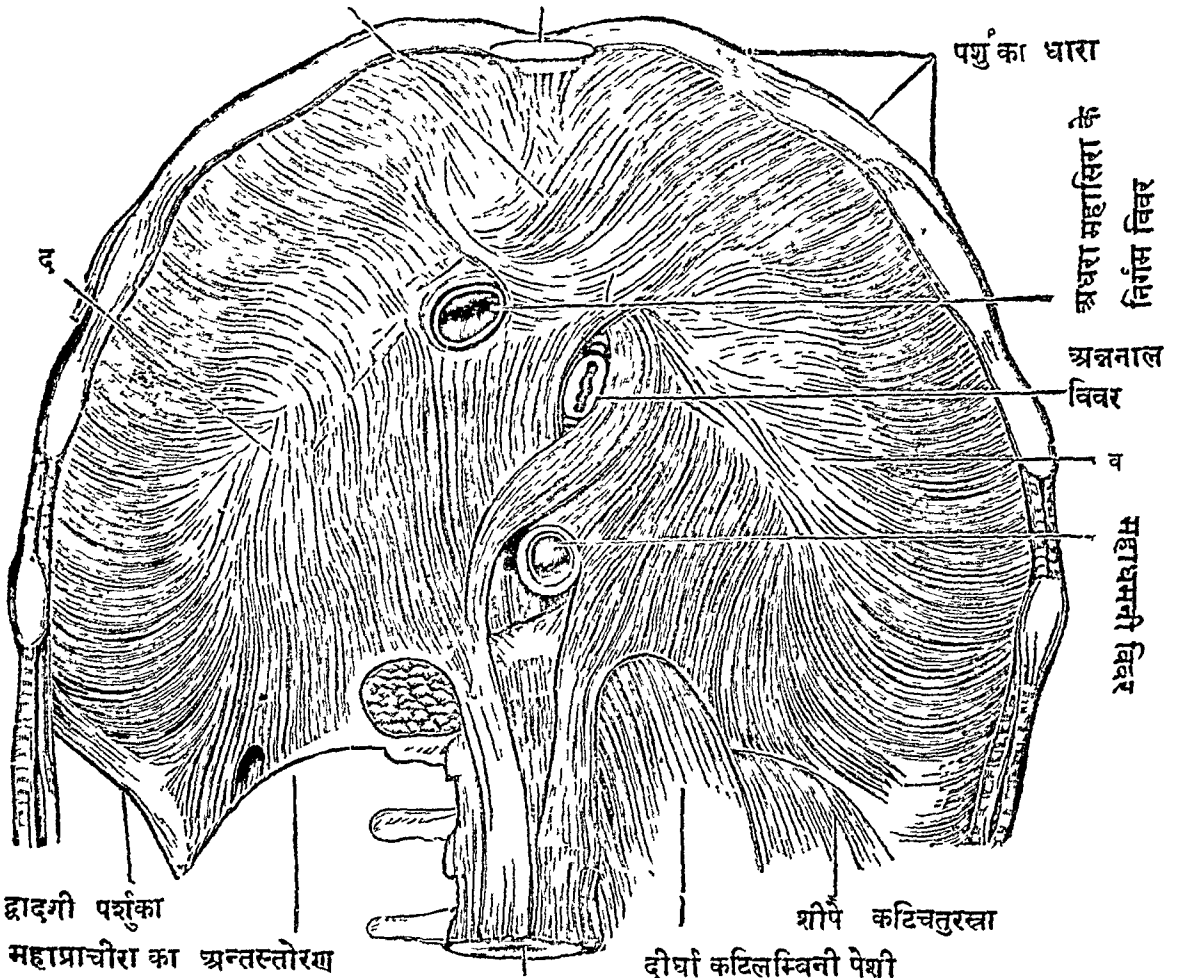
[द—महाप्राचीरा का दक्षिण भाग। व—उसीका वाम भाग।]

इस पेशी में पश्चिम की ओर तीन ही महाछिद्र हैं। यथा—कुछ दक्षिण में महासिराच्छिद्र, इसके द्वारा अधरा महासिरा उरोगुहा मे प्रविष्ट होती है। मध्यरेखा में ऊपर अन्ननाल विवर—इसके द्वारा अन्ननाल आमाशय में प्रविष्ट होता है। अधोभाग में दो मूलों से अन्तराल में स्थित महाधमनीच्छिद्र, इससे महाधमनी उदरगुहा मे प्रविष्ट होती है। प्रथम छिद्र से अधरा महासिरा के साथ 'अनुकोष्ठिका' नाडी की शाखा भी जाती है। और अन्तिम छिद्र में से महाधमनी के साथ दक्षिणा पुरोवंशिका' नाम की सिरा एवं 'रसकुल्या' नाम की प्रणालिका जाती हैं। दोनों मूलों को भेद करके 'मणिपूरिका' नामकी चार नाड़ियां और वामा 'पुरोवंशिका' नामकी सिरा गयी है। महाछिद्रों के चारों ओर संदंश के आकार वाली मांस तन्तु दीखते हैं, ये महाप्राचीरा पेशी के मूलभाग को दृढ़ बनाने के लिये है।

व्यतिकर[1]—महाप्राचीरा पेशी का सम्बन्ध इस प्रकार से है। इसके ऊर्ध्वतल मे दोनों ओर 'फुफ्फुसधर' नामक कलाकोषों के दोनों परिसरीय भाग लगते है। मध्य मे पेशीकेन्द्र में स्थित कलामय पत्रक पर 'हृदयधर' नामक कलाकोप का मूल लगता है। इसके अधस्तल का अधिकांश उदर्या महाकला से ढंपा हुआ है। अधस्तल की गोद मे दक्षिण तरफ यकृत् का दक्षिण पिण्ड और अधिवृक्क के सहित दक्षिण वृक्क का शिखर है। वाम पार्श्व मे यकृत् का वामपिण्ड, आमाशयस्कन्ध, प्लीहा और अधिवृक्क के सहित वामवृक्क का शिखर है।

महाप्राचीरा पेशी का मुख्य कार्य श्वास वायु का आकर्षण करना है। वह इस प्रकार से होता है—परिधि मूल के संकोचन से नीचे झुकती हुई यह पेशी उरोगुहा के आयतन को बढ़ाती है। जिससे अवकाश मिलने के कारण स्वतः प्रविष्ट वायु के द्वारा दोनो फुफ्फुस फैलती है। दीर्घश्वास लेने के समय अन्य औरसी पेशियां भी इसकी सहायता करती है। इसके और कार्य छींक, कास, हास्य, रोदन, जृम्भाण, वमनादि में, मल-मूत्र गर्भ के उत्सर्ग के लिये प्रवाहण (कुन्थन) मे स्पष्ट है। ये सब काय उच्छ्वास पूर्वक होते है, और शेष मे उदर की पेशियों की सहायता से महाप्राचीरा के सकोच होने पर

---

१ व्यतिकर—परस्पर सम्पर्क (Relation)

सम्पादित होते हैं। महाप्राचीरा की प्रचेष्टनी नाड़ियां दक्षिणा और वामा अनुकोष्टिका नाड़ी एवं पांच, छः पर्शुकानुगा नाड़ियों की शाखाये हैं।

इस प्रकार से उरःस्थल की चौवन पेशियों की व्याख्या हो गयी।

उदर की पेशियां।

ये मध्यरेखा के एक एक ओर पाच पांच है। यथा —उदरच्छदा तीन—आदिमा, मध्यमा और अन्तिमा। मध्यरेखा मे दो—उदरदण्डिका और वस्तिचूड़िका। मध्यरेखा दृढ़श्वेतपतली कण्डराओं से बनी है, जिसको उदरसीवनी[1] कहते हैं। इनमे—

उदरच्छदा आदिमा[2]—नाम की सब से बाहर रहने वाली मांसला पेशी चद्दर के समान फैली है (७४ चित्र)। यह आठ पर्शुकाओ से आठ मूलों के द्वारा उत्पन्न होती हैं, जो मूल अग्रिमारित्रा और उरश्छदा नाम की पेशियों के मूलो के अन्तरालो मे बंधे हैं। यह पेशी इस प्रकार से उत्पन्न हो कर तिरछे और नीचे मध्यरेखा की तरफ मुख किये हुए मांसतन्तुओं द्वारा सम्मुख और पार्श्वों में फैली है, और अपने मासल भाग द्वारा श्रोणिफलक की जघनधरा के बाहर के आधे तट मे, अग्रपत्र नाम के तरुणास्थि मे सेवनी कण्डरा मे, भगास्थि के मुण्ड मे, और वस्तिकण्ठिका मे कला कण्डरा भाग द्वारा लगती हैं। यह कलाकण्डरा गुर्वी उरश्छदा की कलाकण्डरा से एकत्र हो कर ऊपर सम्मुख मे पर्शुकामूलों मे बंधी है। नीचे भगास्थिमुण्ड के समीप मे प्रायः त्रिकोणाकार छिद्र से उपलक्षित है। इस छिद्र का नाम वहिर्वंक्षणीय[3] है। यह छिद्र केवल त्वक् और कला से ढंपा है—इसमें से पुरुषो की वृषणवंधनी निकलती है। स्त्रियो में गर्भाशयबन्धनी का धारण इसी छिद्र में होता है। इसकी कलाकण्डरा की अधोधारा जघनकपाल के पुरःकूट से लेकर भगास्थि कण्टक तक वंधी हुई है और नीचे से खाली है। इस नीचे के अंश को वंक्षणिका[4] स्नायुरज्जु कहते हैं। इसके नीच स्थित त्रिकोण कुहर की संज्ञा वंक्षणदरी है। इसके बाह्यार्द्ध से श्रोणिपक्षिणी और दीर्घा कटिलम्बिनी पेशी निकली है, और अन्तरार्द्ध से 'पुरःसक्थिका' नाम की नाड़ी और और्वी धमनी एवं सिरा निकलती हैं।

---

१ उदरसीवनी—Linea Alba २ उदरच्छदा आदिमा—Obliqus Externus
३ Ext abdominal Ring ४ Inguinal ligament (of Poupart).

[७८ चित्र]

उदर की पेशियां (गम्भीर)
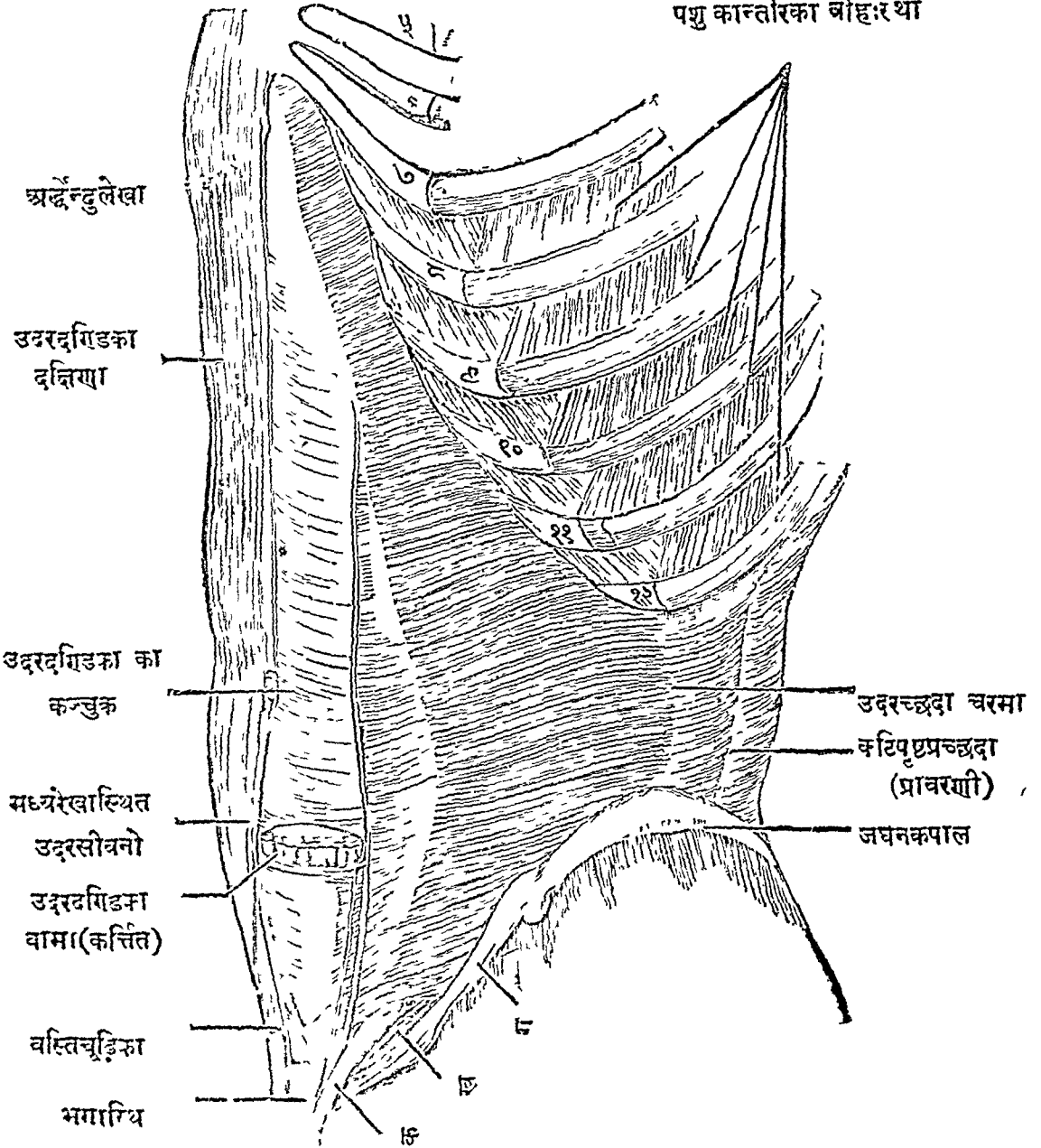
[५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ ये सब अंक पर्शुका तथा उपपर्शुकाओं के सन्धान सूचक हैं। इसके अन्दर में अन्तःस्था पर्शुकान्तरिका नाम की पेशियां देखी जाती।]

(क—वङ्क्षणिका नामकी स्नायु । ख—बहिर्वङ्क्षणीय छिद्र । ग—वृषणावन्धनी ।)

उदरच्छदा आदिमा की पश्चिमधारा आगे से खुली है— एवं कटित्रिकोण के सम्मुखस्थ बाहु रूप है।

उदरच्छदा मध्यमा[1] (वा अन्तस्तिरश्चीना)—नाम की पतली चौड़ी पेशी पूर्वोक्त पेशी से घिरी है (७४ चित्र)। यह नीचे मे श्रोणिफलक की जघनधारा के वहिस्तट से एवं वंक्षणिका स्नायुरज्जु के पश्चिमार्द्ध से उत्पन्न हो कर पीछे में कटिप्रच्छदा नामकी गम्भीर प्रावरणी से मिल जाती है। यह पेशी ऊपर नीचे और मध्यमें तिरछे तन्तुओ के द्वारा मध्यरेखा के प्रति फैली है, 'अन्तस्तिरश्चीना' नामका यही हेतु है। यह चरमा उदरच्छदा पेशी के निचले मूलों से मिलित वक्र स्नायुसूत्रों द्वारा भगास्थिमुण्ड मे और वस्तिकण्ठिका मे लगती है। इनके द्वारा वक्षण सुरंगा का छदि भाग और पश्चिम भाग वनता है। यह पेशी मध्यरेखा मे; दो स्तरो मे विभक्त कलाकण्डरा द्वारा 'उदरसेवनी' नामकी कण्डरामें लगती है। इन स्तरो से उदरदण्डिका नामकी पेशी का कञ्चुक वनता है। यह पेशी ऊपर मे निचली चार उपपर्शुकाओं मे मांसला मूलों द्वारा लगती है।

उदरच्छदा चरमा[2] (या सरला)—नामकी पेशी (७६ चित्र) सव से अन्दर रहनेवाली ओर उदरवेष्टनी है। यह नीचे मे 'वंक्षणिका' नाम की स्नायुरज्जु के पश्चिमार्द्ध से और श्रोणिफलक की जघनधारा के अन्तःस्तर से उत्पन्न हो कर पीछे 'कटिपृष्ठप्रच्छदा' नामकी गम्भीर प्रावरणी से मिली है' और प्रायः अनुप्रस्थ तन्तुओ द्वारा मध्य रेखा की ओर फैली है। यह पेशी महाप्राचीरा की परिधि मे प्रविष्ट मासल मूलो के द्वारा छ. निचली उपपर्शुकाओ से उत्पन्न होती है; और पूर्व की भांति मध्य रेखा की ओर 'उदरसेवनी' नामकी कण्डरा मे लगती है। इसके मूल नीचे मध्यमा उदरच्छदा पेशी के मूलों से मिले हुए है। इसमें भगमुण्ड के पार्श्व में अन्तर्वंक्षणीय[3] नाम का एक छिद्र अधिक है। इसको आश्रय करके पुरुषो को वृषण वन्धनी और स्त्रियो की गर्भाशय वन्धनी वंक्षणसुरंगा मे घुसती हुई दिखायी देती है।

यह वंक्षणसुरङ्गा[4] ऊपर एवं वाह्य सीमा मे वहिर्वक्षणाय छिद्र से आरम्भ हो कर तिरछी रूप से नीचे मध्यरेखा की ओर वंक्षणिका नामकी स्नायुरज्जु के साथ साथ अन्तर्वंक्षणीय छिद्र तक फैली है। इसका पश्चिम भाग आदिमा

---

१ उदरच्छदा मध्यमा—Internal Oblique २ उदरच्छदा चरमा—Transversalis
३ अन्तर्वंक्षणीय छिद्र—Internal Abdominal Ring, ४ वंक्षणसुरङ्गा—Inguinal Canal

उदरच्छदा से, सम्मुख भाग चरमा उदरच्छदा से, छदिभाग मध्यमा उदरच्छदा की अधोधारा से और भूमि भाग वंक्षणिका नामकी स्नायुरज्जु से बनता है— इस प्रकार संक्षेप से इसकी चारों सीमा की व्याख्या हो गयी। अंतवृद्धि रोग में इसी सुरङ्गापथ से दुहरी हुई अंत्र अण्डकोष मे उतरती है।

फलकोषकर्षणी[1]—नामकी पतली सूत्रमयी पेशी उदरच्छदा आदिमा के कुछ मांसतन्तुओं को लेकर बनी है। यह (गर्भस्थ शिशु मे) एक एक ओर वृषणवंधनी के साथ साथ पाशाकार सूत्रों द्वारा फलकोष मे उतरती है। इसका कार्य फलकोष का ऊर्ध्वकर्षण है। इसकी चेष्टनी नाड़ी 'ऊरुवृषणिका' नामकी है।

इसी स्थान पर चरमा उदरच्छदा के आभ्यन्तर प्रदेश को ढांपने वाली उदरान्तश्छदा[2] नामकी कला देखनी चाहिये। यह सम्मुख और पार्श्वों में उदर्या महाकला से मेदःस्तर द्वारा पृथक् की गयी है, परन्तु पीछे कटिवंश के दोनों ओर मेदःस्तर मे मिल गयी है। यह ऊपर महाप्राचीरा के तलदेश मे फैली है और नीचे श्रोणिगुहान्तरीय कला से मिली हैं।

उदरच्छदा पेशियों का व्यतिकर (सम्बन्ध) ७७ चित्र मे देखना चाहिये।

उदरच्छदा पेशियों का कार्य सामान्यतः उदरस्थ आशयो को धारण करना और अपने मांस के संकोचन द्वारा उनका प्रपीड़न अर्थात् दबाना है। महाप्राचीरा पेशी को ऊपर धकल कर श्वासवायु का निकालना एवं इच्छानुसार निरुद्धश्वास को जोर से बाहर करके कूंथन भी इनका मुख्य कार्य हैं। निश्वास कर्म मे सहायक होने से क्षुत्, कास हास्य, जृम्भण आदि कर्मों मे भी इनकी सहकारिता स्पष्ट हैं।

इन तीनों पेशियो की चेष्टायें 'अधरौरसो' नाड़ियों की शाखाओं द्वारा होती है, शेष दो की इन्ही से और 'प्रथमा अनुकटिका' नाड़ियों की शाखाओं से होती है।

उदरदण्डिका[3]—नाम की बड़ी, मांसला पेशी मध्यरेखा के पार्श्व मे एक एक ओर दीखती है (७८ चित्र)। यह संकुचित होने के समय मे उदरसेवनी के दोनों पार्श्वों मे दण्ड की भांती खड़ी होती है—इससे इसकी यह संज्ञा की गयी है। यह नीचे भगास्थि सन्धान स्थल से दो कण्डराओ द्वारा उत्पन्न होकर ऊपर जाती हुई मध्यरेखा में 'उदर सेवनीं' कण्डरा के दोनों ओर एवं ऊपर पर्शुका तोरणार्द्ध मे

---

१ फलकोषकर्षणी—Cermaster muscle २ Tranversalis Fascia ३ उदरदण्डिका—Rectus Abdominis

लगती हैं। इसकी मध्यमा उदरच्छदा पेशी की कलाकण्डरा ढांपती है, जो अपने को दो भागों में विभक्त करके सम्मुख एवं पीछे फैल कर इसका कञ्चुक रूप हो गयी हैं। इसमे प्रायः अर्द्धचन्द्राकार तीन स्नायुसूत्रमयी रेखाये आड़े रूप से दीखती हैं, इनका नाम 'अर्द्धेन्दुलेखा' है। इस उदरदण्डिका के कञ्चुक के मध्य मे, निचले आधे सम्मुख भाग में एक दूसरी मन्दिर-शिखर के आकार की छोटी पेशी दीखती है, जिसका नाम **वस्तिचूड़िका**[१] है (७६ चित्र)। यह भगास्थियो के सन्धिस्थान से उत्पन्न हो कर उदरसेवनी में वंधी है।

(७७ चित्र)

औदर्य्य पेशियों का व्यतिकर।

(अनुप्रस्थच्छेद से दिखाया गया)

१ वस्तिचूड़िका—Pyramidalis
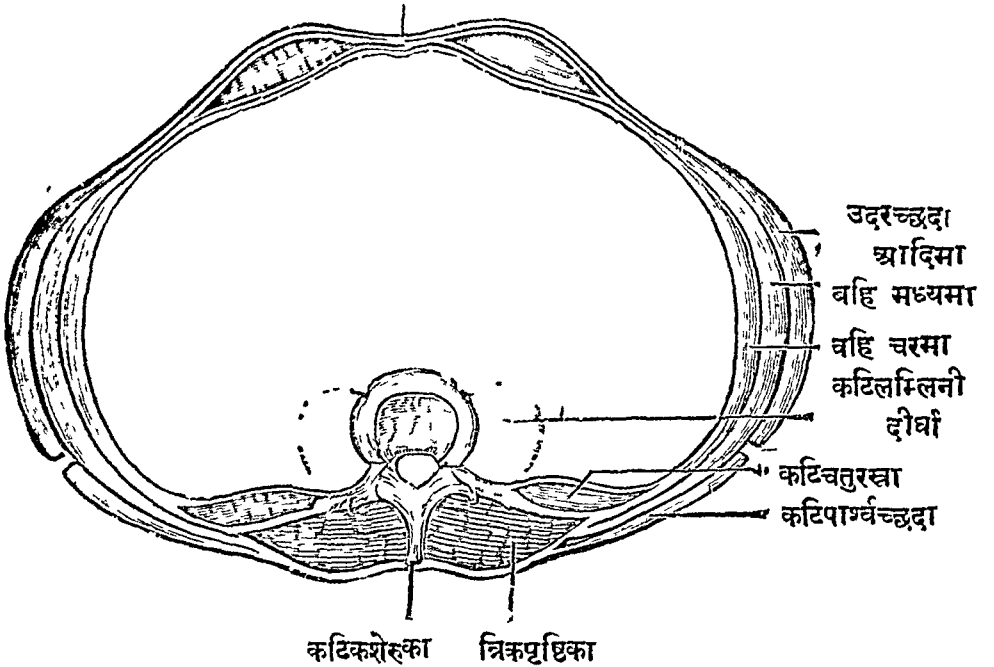
उदरदण्डिका का कार्य और प्रचेष्टनी नाड़ी उदरच्छदा की भाति है। यह पेशी अधिक सकुचित होने पर मध्यशरीर को सम्मुख मे धनुप की भांति झुकाती है। वस्तिचूड़िका का कार्य उदरसेवनी नामकी कण्डरा को तानना है। प्रचेष्टनी नाड़ी वारहवीं औरसी नाड़ी की शाखा है।

यहां तक एक एक ओर पाच पांच अर्थात् दश उदर पेशियो की व्याख्या हो गयी।

यहां पर याद रखना चाहिये कि पृष्ठ और उदर की पेशियों के मध्य मे कटिपार्श्ववर्त्ती एक त्रिकोणाकार अवकाश (रिक्तस्थान) है, उसका नाम कटित्रिकोण[1]। उसकी सम्मुख सीमा आदिमा उदरच्छदा पेशी की पश्चिमा धारा है, और पश्चिम सीमा कटिपार्श्वच्छदा की पार्श्विकी धारा है। इसकी अधःसीमा श्रोणिफलक की जघनचूड़ा है। ऊपर की दोनों धारायें नीचे की सीमा से मिल कर त्रिकोण को वनाती है। इसकी भूमि अन्दर मे मध्यमा उदरच्छदा हैं। वाह्यावरण त्वचा से मिली हुई प्रावरणी है। इस त्रिकोण के दर्जे इसके सम्मुख रहने वाले वृक्क और वृहदंत्र की स्पर्श से परीक्षा की जाती हैं।

=श्रोणिचक्र की आभ्यन्तर पेशियां=

श्रोणिफलक को अन्दर से ढापने वाली पेशियां एक एक ओर पांच पांच है। ये मांसधराकला से ढंपी है—इस कला का नाम श्रोणिगुहान्तरीया[2] कला हैं। यह ऊपर मे उदरान्तश्छदा कला से एवं नीचे मे वस्तिगुहान्तश्छदा कला से मिली है; और ऊर्ध्वसीमा मे दोनो जघनधाराओ मे एवं कटिवंश के सम्मुखभाग मे और नीचे वस्तिकण्ठिका में एवं त्रिकोष्ठ में वंधती है। इस प्रकार फैली हुई यह कला जघनोदर के अन्दर दोनों 'श्रोणिपक्षिणी' पेशियो को एवं पृष्ठवंश के सम्मुख में 'कटिलम्बिनी' पेशी को तथा कटिवंश के सम्मुखभाग को ढापती है। यह वस्तिकण्ठिका के दोनो ओर श्रोणिगुहा में प्रविष्ट 'वाह्या अधिश्रोणिका' नामकी दो स्थूल धमनी एवं उसी नामकी दो सिरा को धारण करती हैं। वंक्षण देश मे यही कला वंक्षणदरी की भूमि वन कर ऊरुकञ्चुका से मिल गयी है।

श्रोणिपक्षिणी[3]—नाम की पेशी श्रोणिगुहा के पक्ष को भरने वाली' चौड़ी और मांसला है (७२ चित्र)। यह श्रोणिफलक के जघनोदर से, जघनचूड़ा से,

---

१ कटित्रिकोण—Lumbar Triangle (of Petit) २ श्रोणिगुहान्तरीया कला—Pelvic fascia ३ श्रोणिपक्षिणी—Iliacus.

त्रिकास्थिपक्ष के एकदेश से और कटिजघनिका एवं त्रिकजघनिका नाम की स्नायुवों से उत्पन्न होती हैं और दीर्घा कटिलम्बिनी पेशी की कण्डरा के साथ अपने मूल को मिलाती हुई, वंक्षणिका स्नायुरज्जु के अधः स्थित वंक्षणदरी से निकल कर ऊर्वस्थि के लघुशिखरक मे लगती हैं। इसका कार्य मध्यशरीर को सामने झुकाना अथवा मध्यशरीर को स्थिर रखने पर ऊरु को ऊपर खींचना हैं। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ी औवीं नाम की हैं।

श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था[1]—नाम की मांसला पेशी श्रोणिगवाक्ष विवर की अन्तःपरिधि से और इसको ढांपने वाली कला से उत्पन्न होती है। इसका एक भाग कुकुन्दरकूट के अन्तःप्रदेश में लगी है। यह पेशी कुकुन्दर द्वार से नीचे निकल कर ऊर्वस्थि के महाशिखर मे लगती हैं। यह पेशी इस प्रकार से वस्तिगुहा को सम्मुख दिवार को वनाती है। इसका कार्य ऊर्वस्थि का वहिर्विवर्त्तन है। इसकी चेष्टा पांचवों अनुकटिका नाड़ी से और प्रथमा; द्वियीया अनुत्रिका नाड़ियो से होती हैं।

शुण्डिका[2]—नाम की गजशुण्डाकार पेशी (७२ चित्र) त्रिकास्थि के सम्मुख भाग से तीन मूलों के द्वारा उत्पन्न हो कर श्रोणिफलक के 'गृध्रसी द्वार' की परिधि मे, गुर्वी कुकुन्दरसंयोजनी स्नायु से वंधी है और गृध्रसी द्वार से निकल कर शेष में ऊर्वस्थि के महाशिखरक में लगी है। इसका कार्य ऊर्वस्थि का वहिर्विवर्त्तन हैं। यह पायुधारिणी और अनुत्रिकिणी नाम की पेशियों के साथ वस्तिगुहा को धारण करती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ियां प्रथमा और द्वितीया अनुत्रिका नाड़ियों की शाखायें हैं।

पायुधारिणी[3]—नाम की पेशी गुदा के एक एक ओर फैली हुई दीखती हैं (७८ चित्र)। यह पेशी इसी नाम की दूसरी पेशी से मध्यरेखा में मिल कर अञ्जलि के समान वन जाती हैं और पायु, वस्ति तथा उपस्थमूल को धारण करती हैं।

यह पेशी भगास्थि के पश्चिम प्रदेश से, कुकुन्दरकण्टक से और वस्तिगुहान्तरीया कला से उत्पन्न हो कर पायु के चारो ओर (स्त्रियो में योनि के चारों ओर भी)

---

१ श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था—Obturator Internus २ शुण्डिका—Pyriformis.
३ पायुधारिणी—Levator Ani

(७८ चित्र)

शिश्न, गुद और मूलाधारपीठ में स्थित पेशियां।
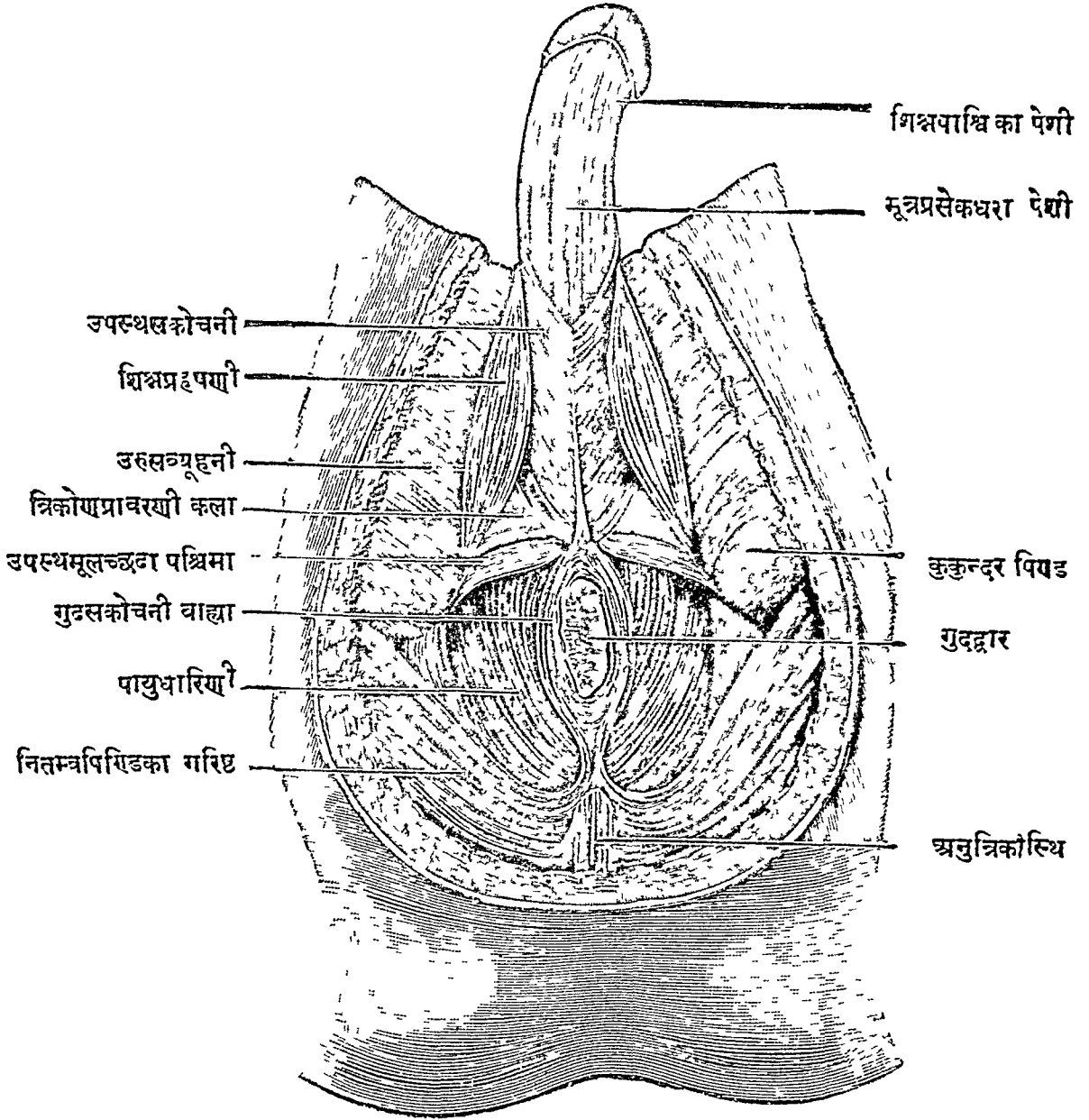
फैली है और सीवनी में तथा अनुत्रिकास्थि के अग्रभाग में बंधी है। इसका कार्य गुदा, उपस्थ और वस्ति का धारण करना एवं पायुकर्षण मे पायु संकोचनी पेशी की सहायता करना है।

इस की चेष्टा चतुर्थी अनुत्रिका नामकी नाड़ी से और गुदोपस्थिका नाड़ी की शाखाओं से होती है।

अनुत्रिकिणी[1]—नाम की पेशी इसकी सहकारिणी एवं पीछे रहने वाली है। यह श्रोणिफलक के कुकुन्दर कण्टक से, त्रिक और अनुत्रिक की पुरःसन्धान से और लम्बी त्रिककुकुन्दरिका स्नायु से उत्पन्न हो कर अनुत्रिकास्थि के सन्मुख भाग मे और त्रिकास्थि मूल के एक एक ओर बंधी है। यह अनुत्रिकास्थि को धारण करने वाली और पीछे मे वस्तिगुहा द्वार को ढांपने वाली है। इसकी चेष्टा चतुर्थी और पञ्चमि अनुत्रिका नाड़ियों की शाखाओं से होती है।

इस प्रकार से श्रोणिचक्र के अन्दर एक एक ओर पांच पांच पेशियां कही गयी। इनमे पहली तीन पेशिया ऊरु मे बंधने के लिये बाहर निकली है। अन्तिम तीन पेशिया बाह्य गुदसंकोचनी पेशी के साथ वस्तिगुहा द्वार का निचला ढक्कन बनती है।

इस स्थान पर वस्तिगुहा को अन्दर से ढांपने वाली वस्तिगुहान्तरीया[2] कला भी देखनी चाहिये। यह ऊपर वस्तिकण्ठिका रेखा मे और नीचे वस्तिगुहा द्वार के चारों ओर लगी है। इसके तीन भाग है--बाह्य, मध्य और आभ्यन्तर। इनमे बाह्य भाग श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था पेशी को एक एक ओर ढाप कर, नीचे फैलता हुआ कुकून्दर पिण्ड मे और कुकुन्दर कुट में लगता है और 'अनुकुकुन्दरिका' नामकी छोटी सुरङ्गा बनाता है। यह सुरङ्गा गुदोपस्थिका नामकी नाड़ी और सिरा-धमनी के धारण करने के लिये है। और कला-भाग त्रिकोण-प्रावरणी नामकी वस्तिगुहाद्वार को ढांपने वाली कला के उत्तर स्तर से मिलता है। वस्तिगुहान्तरीया कला का मध्यभाग दो स्तरो द्वारा पायुधारिणी नामकी दोनो पेशियों को ढापता और धारण करता है। अभ्यन्तर भाग पायु वस्ति, पौरुषग्रन्थि और दो शुक्राधारिकायों को वेष्टन करके धारण करता है।

---

१ अनुत्रिकिणी—Coccygeus. २ वस्तिगुहान्तरीया कला—Endo-pelvic part of Pelvic fascia

इस प्रकार ढपे हुए वस्तिगुदा-द्वार के चौकोर तलदेश का नाम मूलाधारपीठ[१] या मूलाधारचतुरस्र है। इसकी सीमाये अस्थि और स्नायु से बनी हैं। सम्मुख सीमा कोण के आकार की है— जिसका नाम भगतोरण। यह भगास्थि सन्धि के नीचे प्रायः त्रिकोणाकार दिखाई देता है। इसके एक एक ओर की पार्श्व सीमा भगास्थि और कुकुन्दरास्थि के परस्पर मिले हुए दोनों अधरश्रृङ्ग, कुकुन्दरपिण्ड और गुर्वी त्रिक कुकुन्दरिका नामकी स्नायुरज्जु है। पश्चिमसीमा अनुत्रिक का अग्रभाग है। वाह्यदृष्टि से मूलाधार पीठ की त्वचा और मांस मात्र से वनी हुई सीमायें ऐसी है— सम्मुख मे पुरुष के अण्डकोष (स्त्रियों की योनि) दोनो ओर दो वंक्षण, पश्चिम मे दोनों नितम्ब।

वर्णन की सुगमता के लिये यह मूलाधारचतुरस्र कुकुन्दर पिण्डों को जोड़ने वाली कल्पित रेखा द्वारा, दो त्रिकोणो मे बाटा जाता है। इनमे सम्मुखवर्त्ती त्रिकोण का नाम औपस्थिक त्रिकोण[२] है, यह स्त्री पुरुषों के उपस्थ को धारण करता है। पश्चिमत्रिकोण का नाम पायव्यत्रिकोण[३] है, यह पायु को धारण करता हैं। पायु और उपस्थ के वीच मे स्वभाविक स्नायुमयी संयोग-रेखा सेवनी[४] नामकी है—यह त्वचा में स्पष्ट दीखती है। इसके ऊपर स्थित पतली कण्डरा का नाम 'सेवन सूत्रिका' है।

इस स्थान मे गुदकौकुन्दर[५] नामक खात को स्मरण रखना चाहिये—जो भगन्दर रोग का स्थान है। यह गुदा के एक एक ओर त्रिकोण खात है जो कि चारों ओर मेद से पूर्ण और कला से ढपा है। इसकी मध्यरेखा की ओर वाह्य गुदसंकोचनी पेशी और गुदवेष्टनी कला है। पार्श्व सीमा मे कुकुन्दर पिण्ड और वस्तिगुहान्तरीया कला है। पश्चिम सीमा मे गुर्वी त्रिककुकुन्दरिका नाम की स्नायुरज्जु और गुर्वी नितम्बपिण्डिका नाम की पेशी है। इस खात में गुदोपस्थिका नाम की नाड़ी और गुदान्तिका नाम की धमनी और सिरायें रहती हैं। और वहीं कुकुन्दरपिण्ड की गोद मे गुदोपस्थिका नाम की नाड़ी एव स्नायुमय मार्ग मे स्थित धमनी-सिराये हैं।

---

१ मूलाधारपीठ (या चतुरस्र) Perineum or Perineal Quadrangle २ औपस्थिक त्रिकोण—Urogenital Triangle ३ पायव्य त्रिकोण—Anal Triangle ४ Perineal Raphe ५ गुदकौकुन्दर खात—Ischio-rectal fossa

मूलाधारपीठस्थ पेशियां ।

इनमें औपस्थिक त्रिकोण मे सात और पायव्य त्रिकोण में दो पेशियां हैं।

औपस्थिक त्रिकोण की सात पेशियां यथा—

उपस्थसंकोचनी[1] नाम की दो उपस्थापार्श्वस्थ पेशिया (६८ चित्र) दोनों ओर शिश्नमूल को घरती हुई सेवनी सूत्रिका मे परस्पर मिलती हैं। इनका कार्य मूत्रत्यागकर्म के अन्त मे मूत्र प्रसेक का सङ्कोचन है। ये ही पेशियां योनी सङ्कोचन कार्य के लिये स्त्रियो की योनि द्वार के पार्श्वों मे स्थित है। इनकी चेष्टा गुदोपस्थिका नामकी नाड़ियोकी शाखाओ से होती है।

शिश्नप्रहर्षणी[2] —नाम की दो पेशिया (७८) कुकुन्दरास्थि के पिण्ड और अधरशृङ्ग से उत्पन्न हो कर पुरुषों के शिश्नमूल के दोनो ओर बन्धी हैं। ये ही स्त्रियों के भगशीर्षक मे भगशिश्निका के दोनों ओर अधिक पतले आकार मे लगी है,

इन दोनों पेशियों के कार्य अपने नामों से ही स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भाति है।

उपस्थमूलच्छदा अग्रिमा और पश्चिमा[3]- नाम की दो पेशियां हैं (७८ चित्र)। इनमे अग्रिमा पेशी उत्तान अर्थात् अगभीर है। यह कुकुन्दरपिण्ड से उत्पन्न हो कर गुदा के सम्मुख सेवनी मे बन्धी है। पश्चिमा पेशी गम्भीर है—यह कुकुन्दरास्थि के अधरशृङ्ग से उत्पन्न हो कर कुछ आगे उपस्थ मूल मे और मध्यरेखागत सेवनी कण्डरा में बन्धी है। इन दोनों के मध्य में दो स्तर वाली त्रिकोणप्रावरणी नाम की दृढ़ कला है, जो गुदोपस्थिका नाम की नाड़ी और सिरा धमनियों को धारण करती है। इनका कार्य सेवनीको तान कर दृढ़ करना जिससे सेवनी मे बन्धा दूसरी पेशियो की क्रिया सौकर्य्य होता है। इनका प्रचेष्टन गुदोपस्थिका नाड़ियों की शाखाओ से होता है।

---

१ उपस्थसङ्कोचनी—Bulbo cavernosus (Ejaculator Urinae) २ शिश्नप्रहर्षणी—Ischio-cavernosusus (Erector Penis). ३ उपस्थमूलच्छदा अग्रिमा और पश्चिमा Transversus Perinei Superficialis and Profundus.

मूत्रद्वारसंकोचनी[१] — नाम की पेशी मूत्रस्रोत के कलामय भाग के चारों ओर बन्धी है। इसका बाह्यमूल दोनो ओर कुकुन्दरास्थि के अधरशृङ्ग मे लगा है। इसकी क्रिया इसके नाम से ही स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

इस प्रसङ्ग मे यह स्मरण रखना चाहिये कि औपस्थिक त्रिकोण को ढांपने वाली त्रिकोण प्रावरणी नामकी एक कला है (७८ चित्र)। यह साधारणी गम्भीर प्रावरणी का अश है। यह उस प्रदेश मे दो स्तरों मे विभक्त हो कर पश्चिमा उपस्थ मूलच्छदा पेशी को मध्य मे धारण करती है। इन दोनो स्तरो के अन्तराल मे 'गम्भीरा' उपस्थपृष्ठिका' नामकी सिरा और नाड़ी, मूत्रस्रोत का कलामय भाग, मूत्रद्वार सङ्कोचनी पेशी, मूत्रस्रोत मे जाने वाली गुदोपस्थिका नामकी सूक्ष्म सिरा-धमनिया और ग्रन्थिया दिखाई देती हैं, इस कला का उत्तर स्तर वस्तिगुदान्तरीया कला के बाह्यभाग से दोनों पार्श्वों मे मिला हुआ है।

पायव्य त्रिकोण मे स्थित पेशियां दो है। यथा—

गुदसंकोचनी—बाह्या और आभ्यन्तरी[२] (७८ चित्र)। इसमे बाह्या पेशी गुदोष्ठ के चारों ओर अञ्जलि की भाति स्थित है। यह पश्चिम मे अनुत्रिकाग्र से उत्पन्न हो कर गुदा के दोनो ओर फैल कर सेवनी सूत्रिका मे बन्धी है। इसी के त्वाच भाग को कोई कोई आचार्य 'गुदत्वक् सङ्कोचनी' नामकी पृथक् पेशी गिनते हैं।

आभ्यन्तरीय गुदसङ्कोचनी इसी के दो अंगुल ऊपर अधर गुदा को वेष्टन कर के चक्राकार रहती है। यह अधिक मांसतन्तु वाली स्वतन्त्र पेशी है यह विशेषतः गुदाका संवरण करने वाली है।

इनका कार्य इनके नामों से स्पष्ट है। यह सदा संकुचितवस्था मे रहती है—यही इनकी विशेषता है। बाह्या पेशी की प्रचेष्टनी नाड़िया गुदोपस्थिका की दो शाखायें हैं। आभ्यन्तरा पेशी की प्रचेष्टनी गुदा की भाति है। प्राचीनो के सम्मत गुदवलित्रय को गुद वर्णन मे कहेंगे।

यहां तक मध्यशरीर की एक सौ ग्यारह (१११) पेशियों की व्याख्या हो गयी।

तृतीय अध्याय समाप्त।

---

१ मूत्रद्वारसङ्कोचनी—Sphincter Urethræ membranaceæ २ गुदसङ्कोचनी बाह्या और आभ्यन्तरी—Sphincter Ani Externus and Internus

चतुर्थ अध्याय।

=उर्ध्वशाखीय पेशी वर्णनीय=

अक्षकास्थि से सम्बद्ध अंसफलक का नाम **अंसचक्र** हैं। यह परस्पर दृढ़ स्नायुओं से और प्रगण्डास्थि से बन्धा हुआ है—यह कह चुके हैं। पेशी वर्णन प्रकरण मे समग्र बाहु के सहित अंसचक्र की 'ऊर्ध्वशाखा'' संज्ञा की गयी है, क्योंकि अंसचक्र से बाहु का सम्बन्ध घनिष्ठ है और अंश पेशिया प्रायः बाहु पेशियां मे प्रविष्ट हैं एव प्रगण्डास्थि मे लगती है। ग्रीवा, उर, तथा पृष्ठस्थ दश पेशियों का भी यहां पर ग्रहण किया गया है, क्यों कि उनका भी संयोग अंसचक्र से होता है। परन्तु गिनती के समय उनको नहीं गिना जायगा, क्यों कि वे कही जा चुकी है—और प्रधानतः मध्यशारीर मे स्थित है। मुख्य अंस पेशिया ही गिनी जायेंगी वे अबतक नहीं कहो गईं एवं उनका सम्बन्ध बाहु से विशेषतः है। इस प्रकार प्रत्येक ऊर्ध्वशाखा मे सम्पूर्णरूपसे उनसठ (५९) पेशिया हैं। परन्तु गिनती के समय दश पेशियों को छोड़ने से उनचास ((४९) होती हैं—अर्थात् दोनो शाखाओ मे कुल अठ्ठानवे (९८) पेशियां है।

इन उनसठ पेशियों का विभाग सात स्थानों पर है। यथा—

ऊर्ध्वशाखा को पृष्ठ से जोड़ने वाली चार, और उर से जोड़ने वाली चार। अंस को ग्रीवा के साथ संयोजन करने वाली दो। अंस और बाहु के संयोजन करने वाली सात। प्रगण्डीया तीन। प्रकोष्ठीया बीस। पाणि मे उन्नीस।

(१) इनमे ऊर्ध्वशाखा को पृष्ठ से जोड़ने वाली चार पेशियां हैं यथा—पृष्ठच्छदा, कटिपार्श्वच्छदा, अंसापकर्षणी गुर्वी और लघ्वी। इनमे प्रथम दो बाहुपृष्ठ सयोजना और अन्तिम दो अंसपृष्ठ संयोजनी है। इन सब का वर्णन पृष्ठपेशी मे वर्णन हो चुका।

(२) ऊर्ध्वशाखा को उर से जोड़ने वाली चार पेशियां हैं यथा—उरश्छदा गुर्वी और लघ्वी, अक्षकाधरा और अग्रिमारिता। इनमे प्रथम दो उर के साथ बाहु की संयोजनी, तीसरी अक्षकास्थि के साथ उर की संयोजनी, चतुर्थी अंसफलक के साथ उर का संयोजनी। इन सब पेशियो का वर्णन भी उरःपेशी वर्णनमें हो चुका।

[७९ चित्र]

अंस-प्रगण्डीय पेशियां।
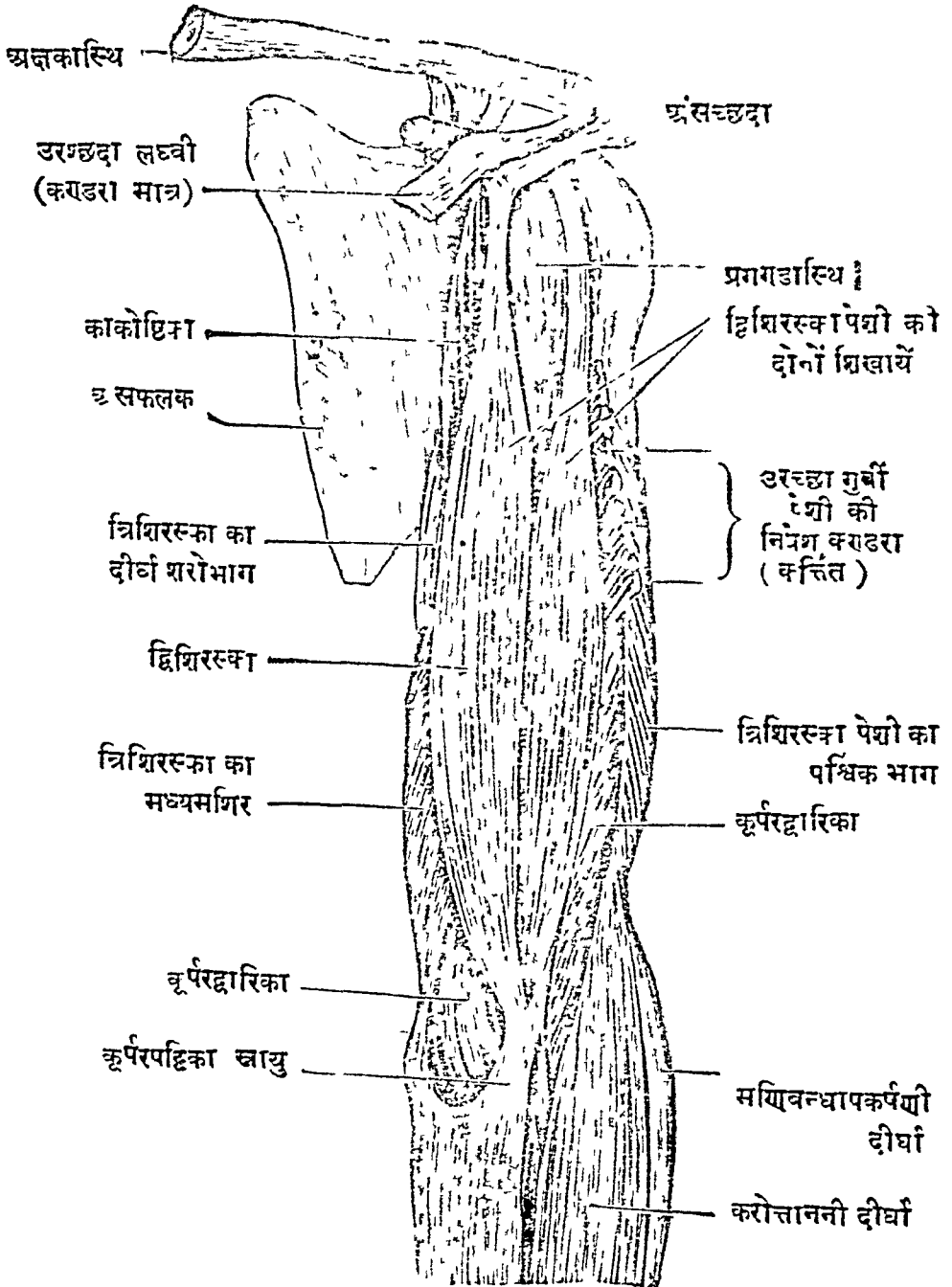
(३) ग्रीवा और अंस को जोड़ने वाली दो पेशियां हैं–अंसोन्नमनी और अंसकण्ठिका। ये यथाक्रम अंसफलक को सम्मुख और पीछे से ऊपर खींच कर धारण करती हैं। इनका वर्णन ग्रीवापेशियों की व्याख्या में आ चुका है।

(इनकी गणना पहले हो जाने के कारण ये दश पेशियां समष्टि संख्यामे से छोड़ दी जाति है।)

…विका न…

=प्रधान अंसपे…

अंस और वाहु को जोड़ने वाली सात · सप्त पेशियां एक - एक तरफ हैं। यथा—

अंसच्छदा[1] (अथवा अंसपिण्डिका)–नामकी वाहुमूल को ढापने वाली स्थूल और मांसला पेशी, वाहु और अंस की सन्धि को घेर कर रहती है (७६ चित्र)। यह 'वाहुकुञ्चुका' नाम की दृढ़ प्रवारणी द्वारा रक्षित है। यह अक्षकास्थि के पार्श्विकाण्ड से और असफलक के कूट और प्राचीर से उत्पन्न हो कर तिरछी फैलती हुई, प्रगण्डास्थि के मध्यनलक पार्श्व मे स्थूल कण्डरा-मूल द्वारा लगती है। इसका कार्य सव्यशरीर के समकोण मे वाहुओं का उन्नमन करना और थोड़ा सा अपकर्षण करना है। इसकी चेष्टा पञ्चमी, षष्ठी अनुग्रीविका नाड़ियों से और अनुकक्षा नामकी नाड़ीप्रवेणी के शाखाओं द्वारा होती है।

अंसान्तरिका[2]—नाम की पेशी (७४ चित्र) अंसफलक के अंसकपालिकोदर से उत्पन्न हो कर प्रगण्डास्थि के लघुपिण्डक मे लगती है। इसका कार्य प्रगण्डास्थि मुण्ड को मध्यरेखा की ओर तथा पीछे की ओर विवर्त्तन करना है। इसको प्रचेष्टनी नाड़ी 'अंसिका' नामकी है।

अंसपृष्ठिका उत्तरा और अधरा[3]– नामकी दो पेशियां (८० चित्र) अंसफलक प्राचीर के उत्तर और अधर प्रदेश में स्थित हैं। यह अंसकपालिका के पृष्ठ से उत्पन्न हो कर प्रगण्डास्थि के महापिण्डक में लगती हैं। इनमे पहली पेशी वाहु को उठाने वाली और अन्तिम पेशी वाहु को वाहर घुमाने वाली है। दोनो को चेष्टा देने वाली नाड़ी 'अध्यसिका' नामकी है।

---

१ अंसच्छदा—Deltoid, २ अंसान्तरिका—Subscapularis ३ अंसपृष्ठिका उत्तरा और अधरा—Supraspinatus and Infraspinatus

[८० चित्र]

अंस, बाहु और पृष्ठ की गभीर पेशियां ।

(पीछेसे दीखती हैं)
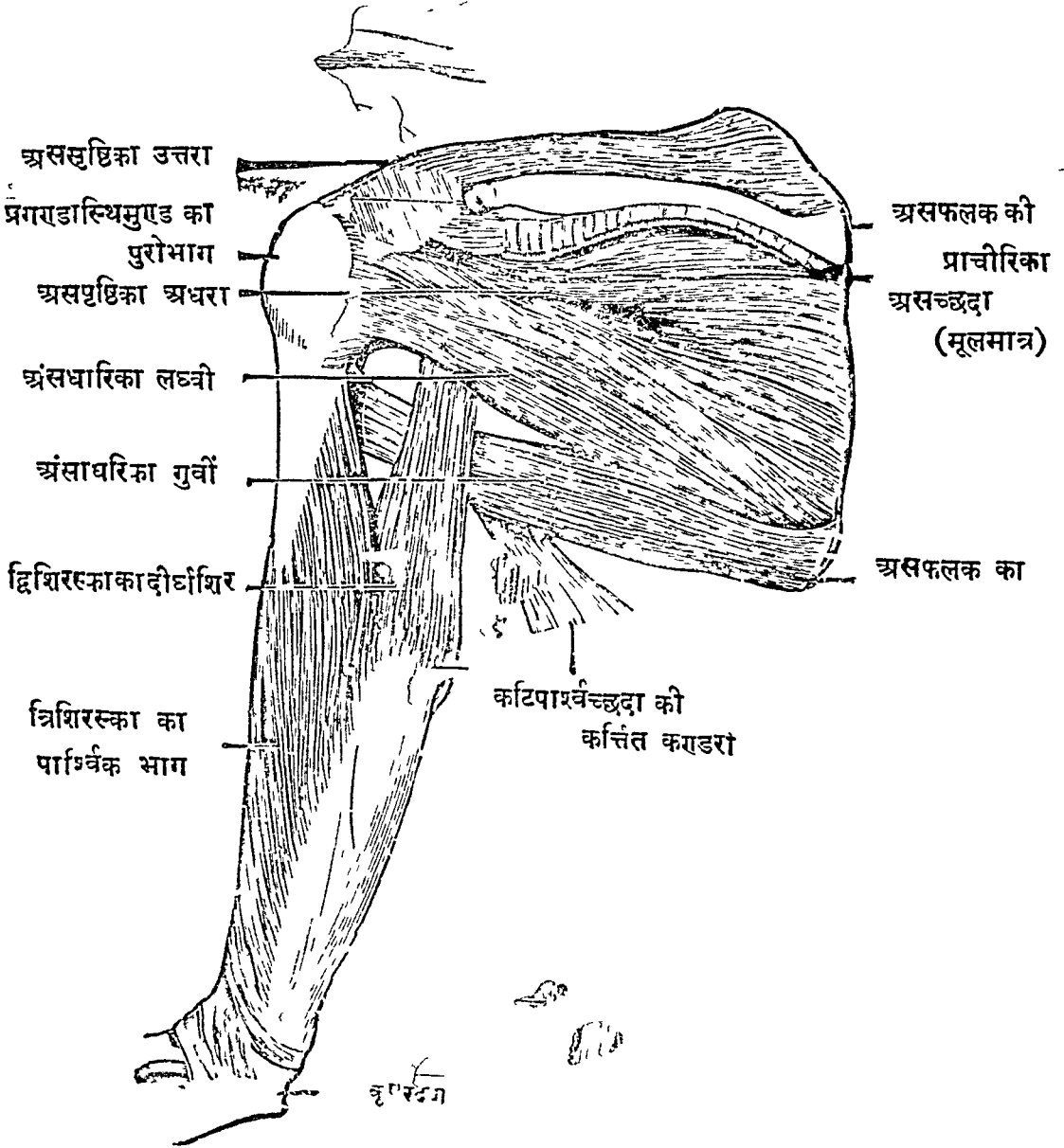
अंसाधरिका गुर्वी और लघ्वी[1] —नाम करना है ... (७० चित्र) यथाक्रम अंसफलक की कक्षानुगा धारा के उत्तरार्द्ध एवं अधरार्द्ध से उत्पन्न हो कर प्रगण्डास्थि के महापिण्डक मे लगती है। इनका कार्य प्रगण्डास्थि का बहिर्विवर्त्तन और पश्चात् कर्षण करना है। इनकी प्रचेष्ठनी नाड़ी—प्रथमा पेशी की अन्वंसिका और द्वितीया पेशी की पश्चमी अनुग्रीविका नाड़ी है।

काकोष्ठिका[2] —नाम की पेशी (७८ चित्र) अंसफलकके तुण्डसे उत्पन्न हो कर गण्डास्थि के मध्यनलक की अन्तःसीमा में वन्धी है। यह वाहु को सम्मुख मे घुमाने वाली और उर की ओर आकर्षण करने वाली है। इसकी प्रचेष्ठनी नाड़ी 'पेशीत्वगन्तिका वाहवी' नामकी है।"

=कक्षादरी=

इस स्थान पर यह स्मरण रखना चाहिए कि कक्षा के अन्दर मन्दिर शिखर के आकार का एक कुहर है—जिसका नाम कक्षादरी या कक्षाकुहर[3] है। इसका शिखर भाग अक्षकास्थि, अंसफलक और प्रथम पर्शुका के अन्तराल में स्थित और ग्रीवामूल का अभिमुख है। इसको आश्रय करके कक्षाधरा नामकी धमनी और सिरा एवं कक्षानुग नामकी नाड़ीप्रवेणा रहती है। इसका तलदेश त्रिकोणाकार है। यह उरः पार्श्व की ओर फैला हुआ है। यह कुहर बाहुपार्श्व मे संकुचित और कोणाकार है। यह कक्षाप्रच्छदा नाम की गम्भीर प्रावरणी से ढंपा है। इसकी सम्मुख दिवार उरश्छदा पेशियों से वनती है, और पश्चिम दिवार अंसान्तरिका, असाधरिका और कटिपार्श्वच्छदा इन तीन पेशियों से वनती है। इसकी अन्तःसीमा में प्रथम चार पर्शुकायें और उनके अन्तराल मे स्थित पेशियां तथा अग्रिमारित्रा नाम की पेशी दिखाई देती है। वाह्यसीमा में द्विशिरस्का और काकोष्ठिका पेशी के साथ प्रगण्डास्थि का ऊर्ध्वभाग है।

इस कक्षादरी मे इन विशेषताओं को देखना चाहिए—कक्षाधरा नामकी सिरा एवं धमनी, शाखाओंके साथ कक्षानुगा नाम की नाड़ीप्रवेणी, बहुतसी लसीकाग्रन्थियां, और इनके अन्तराल को भरने वाला मेदःपुञ्ज।

---

१ असाधरिका लघ्वी और गुर्वी—Teres major and minor, २ काकोष्ठिका—Coraco brachialis ३ Axillary fossa

= प्रगण्डीय पेशियां =

प्रगण्डीय पेशियां तीन हैं। यथा—

द्विशिरस्का वाहवी[1]—नामकी पेशी प्रगण्डास्थि के सम्मुखमें रहती है (७)। प्राचीनों के मत से यही वाहुपिण्डिका नाम की पेशी है। इसके दो प्रभवस्थान हैं। इसकी दृढ़ कण्डरामयी दीर्घशिखा अंसफलक के अंसकूट शिखर से उत्पन्न हो कर "अंसोदूखलिक" नाम के स्नायुकोप का भेदन करके नीचे फैली है। ह्रस्व शिखा भी कण्डरारूप है, यह काकोष्ठिका के साथ अंस-तुण्ड से उत्पन्न हो कर वाहुमध्य मे दीर्घ शिखा के साथ साथ जाती है। दोनों शिखाय क्रमशः मासल वन कर शेष मे कूर्पर तक जा कर मिल जाती हैं और बहिःप्रकोष्ठास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त के सम्मुखस्थल अर्बुद नामक उत्सेध मे लगती है। यहा पर तिरश्चोन प्रावरणी का दो अंगुल चौड़ा एक स्नायुमय अंश इनको बांधता है—जिस का नाम कूर्परपट्टिका है। इसके द्वारा "वाहवी" नामकी धमनी और उस की अग्रशाखा ढापी जाती है। द्विशिरस्का पेशी का कार्य वाहु को कूर्पर सन्धि मे सामने की ओर सङ्कोचन करना है। इसकी चेष्टा पञ्चमी और षष्ठी अनुग्रीविका नाड़ियों से, 'पेशीत्वगन्तिका वाहवी" नाम की नाड़ी को आश्रय करके होती है।

कूर्परद्वारिका[2]—नामकी मांसला पेशी (७९ चित्र) द्विशिरस्का पेशी की पीछे अन्तःसीमा मे स्थित है। यह प्रगण्डास्थि के निम्नार्द्ध के सम्मुख भाग से उत्पन्न हो कर कूर्परसन्धि को ढापती हुई अन्तःप्रकोष्ठास्थि के चञ्चु प्रवर्धन मे लगती है। इसका कार्य पूर्व की भांति है। इसकी चेष्टा 'पेशीत्वगन्तिका' और वहिर्वाहुका नाड़ी द्वारा होती है।

त्रिशिरस्का[3]—नामकी लम्वी मांसला पेशी प्रगण्डके पीछे है (८० चित्र)। इसके तीनो सिर या शिखा प्रायः मांसल है। इनमे बाह्य और अन्तःसीमामे स्थित दोनो सिर प्रगण्डास्थि के मध्यनलक को पश्चिमस्था सीमा के दोनों किनारो से उत्पन्न होती है। इनके मध्यमे स्थित सिर सव से लम्बी है, यह अंसफलक के असपीठ के नीचे से उठती है। ये सव सिर वाहु पृष्ठ मे मिल कर एक हो जाती हैं। इस पेशीका निवेश कलाकण्डराके द्वारा अन्तःप्रकोष्ठास्थि के कूर्परकूटके पृष्ठमे

१ द्विशिरस्का वाहवी—Biceps Brachialis, कूर्परद्वारिका—Brachialis ३ TricepsBrachli

होता है। इसका कार्य सकुचित वाहु का प्रसारण करना है। चेष्टा देने वाली नाड़ी "वहिर्बाहु" नामकी है।

=प्रकोष्ट की पेशिया=

सम्मुख मे आठ, और पीछे मे वारह, इस प्रकार से प्रत्येक प्रकोष्ठ मे वीस पेशियां हैं। सम्मुख पेशियों मे भी पांच उत्तान और तीन गम्भीर है। पश्चिम पेशियों मे सात उत्तान और पांच गम्भीर हैं। यथा—

प्रकोष्ठ के सम्मुख मे स्थित उत्तान पेशियां -

करविवर्त्तनो दीर्घा[१]—नाम की पेशी (८१ चित्र) प्रगण्डास्थि के अधःप्रान्तीय अन्तर अर्वुद से और अन्तःप्रकोष्ठास्थि के चञ्चुप्रवर्धन की अन्तः सीमा से दो मूलो द्वारा उत्पन्न हो कर, तिरछी जा कर, वहिःप्रकोष्ठास्थि के मध्य-भाग मे पीछे से लगती है। इसका कार्य करतल को पोछे की ओर घुमाना है। इसे चेष्टा देने वाली नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका नाम की है जो कि इस पेशी के दोनों मूलो के वीच मे घुसी है।

मणिबन्ध सङ्कोचनी वहिःस्था[२]—नाम की पेशी (८१ चित्र) इसकी ही अन्तःसीमा मे रहती है। यह प्रगण्डास्थि के अध प्रान्तीय आन्तर अर्वुद से पांच पेशियो के साधारण कण्डरामूल द्वारा उत्पन्न हो कर तर्जनी मूलशलाका के मूल के सम्मुखभाग में लगती है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका नामकी है।

करतल प्रसारणी[३]—नाम की पतली दीर्घा पेशी (८१ चित्र) इसी को अन्तःसीमा मे दीखती है। इसका प्रभवस्थान पूर्व की भांति है। और निवेश कङ्कणिका नामकी स्नायु मे और करतलिका नामकी स्नायु मे होता है। इसका कार्य नाम से स्पष्ठ है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

मणिबन्ध सङ्कोचनी अन्तःस्था[४]—नामकी लम्बो मांसला पेशी (८१ चित्र) प्रकोष्ठ की अन्तःसीमा मे स्थित है। इसका प्रभव एक मूल द्वारा पूर्व की भांति है, दूसरे मूल द्वारा यह अन्तःप्रकोष्ठास्थि के कूर्परकूट के अन्त.प्रदेश

१ Pronator Teres २ Flexor Carpı Radıalıs. ३ Palmarıs Longus
४ Flexor Carplı Ulnarts.

[८१ चित्र]

वामप्रकोष्ठकी सम्मुखस्थ पेशियां (उत्तान)
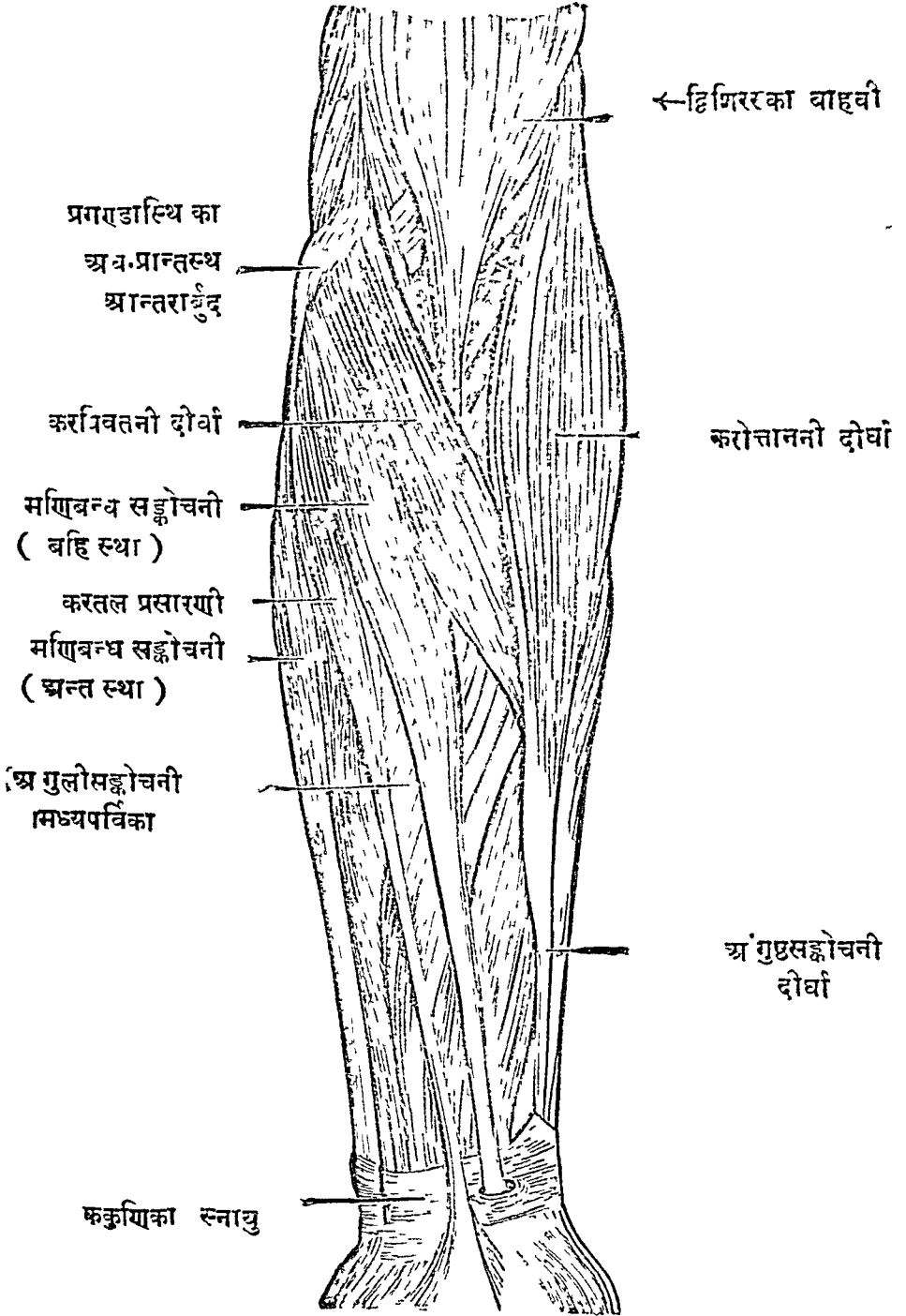
से और ऊर्ध्वप्रान्त की पश्चिम धारार्द्ध से उत्पन्न होती है। इसका निवेश अंकुशक और वर्त्तुलक नाम की कूर्चास्थियों मे, पञ्चम मूलशलाका में और कङ्कणिका नामकी स्नायु में होता है। इसका कार्य नाम से ही स्पष्ट है। चेष्टा देने वाली नाड़ी अन्तःप्रकोष्ठिका नाम की है।

अंगुली सङ्कोचनी मध्यपर्विका[1] नामकी मोटी पेशी (८१ चित्र) पूर्वोक्त चार पेशियो द्वारा घिरी है। इसका प्रभव तीन मूलों से दीखता हैं। इनमे एक मूल पूर्वोक्त चार पेशियो के मूलों के साथ एक है, यह प्रगण्डास्थिके अधःप्रान्त मे वन्धा है। शेप दोनो मूल अन्तः और वहिप्रकोष्ठास्थियों के ऊर्ध्वप्रान्त के पार्श्वों मे लगती है। यह पेशी चार कण्डराओ द्वारा चार अंगुलियोके मध्यपर्वों के पार्श्वो मे लगती है। और इन कण्डराओं को भेदन करके अंगुली सङ्कोचनी अग्रपर्विका नाम की पेशी की कण्डरायें आगे फैली हैं। इसका कार्य चार अंगुलियों का मध्यपर्व के आकर्पण द्वारा संकुचित करना है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका नामकी है।

=प्रकोष्ठ के सम्मुखस्थ गम्भीर पेशियां=

अंगुलीसङ्कोचनी अग्रपर्विका[2]—नाम की मोटी मूल वाली पेशी (८२ चित्र) पूर्वोक्त पांच पेशियों से घिरी है, यह प्रकोष्ठकी अन्तःसीमा मे दीखती है। यह पेशी अन्तःप्रकोष्ठास्थि के चञ्चुप्रवर्धन मूल से, मध्यनलक के प्रायः समग्र सम्मुख भाग से, और प्रकोष्ठान्तराला कला से उत्पन्न हो कर नीचे फैलती हुई चार कण्डराओं मे विभक्त हो जाती है। यह पेशी "अंगुलीसङ्कोचनी मध्यपर्विका" की चार कण्डराओ को अपनी चार कण्डराओं द्वारा भेदन करके अंगुलियों के अग्रपर्वों में लगती है। इसका कार्य अंगुलियो के अग्रपर्वोंको खींच कर अंगुलिसङ्कोचन करना है। इसकी चेष्टा "अन्तःप्रकोष्ठिका" नाड़ीसे और अग्रिम प्रकोष्ठिकान्तराला की "मध्यप्रकोष्ठिका" शाखा द्वारा होती है।

अंगुष्टसङ्कोचनी दीर्घा[3]—नामकी पेशी (८२ चित्र) पूर्वोक्त पेशीकी सहकारिणी है, यह प्रकोष्ठ की वहि सीमामे दीखती है। यह बहिःप्रकोष्ठास्थिके उत्तरार्द्ध के सम्मुख भाग से और प्रकोष्ठान्तराला कला से उत्पन्न हो कर

---

१ Flexor Sublimis Digitor m २ Flexor Profundus Digitorum
३ Flexor Pollicis Longus.

वामप्रकोष्ठ की सम्मुखस्थ पेशियां (गम्भीर)
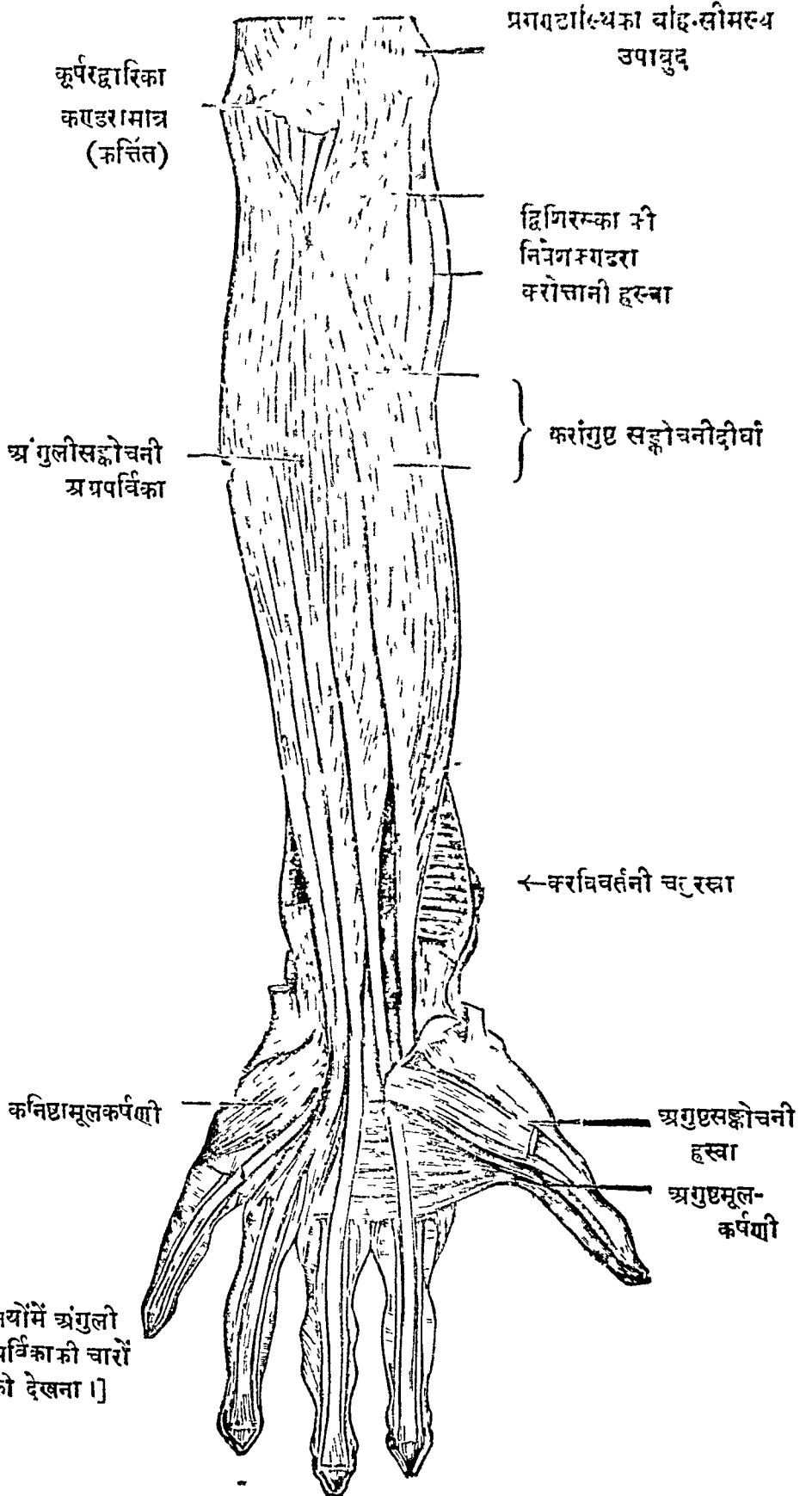
[चारों अंगुलियोंमें अंगुली सङ्कोचनी अग्रपर्विकाकी चारों कण्डराओंको देखना।]

अंगुष्ठ के अग्रपर्व के मूल में दीर्घ कण्डरा द्वारा बन्धी है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका की अग्रिम प्रकोष्ठान्तराला नाम की शाखा है।

करविवर्त्तनी चतुरस्रा[१] – नाम की पेशी (८२ चित्र) प्रकोष्ठ के अधोभाग के सम्मुख मे आयत, ह्रस्व और सब से गम्भीर है। यह दोनो प्रकोष्ठास्थियोके अन्त.प्रान्तों में तिरछी बन्धी है। इसका कार्य करतल को पीछे घुमाना है। प्रचेष्ठनी नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका की 'अग्रिमा प्रकोष्ठान्तराला' शाखा है।

प्रकोष्ठ के सम्मुखमे स्थित ये आठ पेशियां कही गयीं।

= प्रकोष्ठपश्चिमा उत्ताना पेशी =

करोत्तानना दीर्घा[२]—नाम की स्थूल, बीच से मोटी, तकवे के समान आकार की पेशी (८३ चित्र) है। यह प्रकोष्ठ के पीछे से उत्पन्न होने पर भी इसकी वाह्य सीमा मे अधिक स्पष्ट दिखाई देती है। यह प्रगण्डास्थि के वाह्य अर्बुद से उत्पन्न होकर वहिःप्रकोष्ठास्थि के वहिर्मणिक के मूल मे दीर्घ कण्डरा द्वारा वन्धी है। इसका कार्य करतल को चित्त करना है। परन्तु कूर्परद्वारिका के साथ चेष्टा करती हुई यह पेशी वाहु को भी संकुचित करती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी वहिःप्रकोष्ठिका नामकी है।

मणिबन्धापकर्षणी दीर्घा[३] **और ह्रस्वा**[४]—नाम की दो पेशियां (८३ चित्र) प्रगण्डास्थि के अधःप्रान्तीय वाह्य अर्बुद से, वहिस्था कूर्परसन्धिवन्धनी स्नायु के साथ मिले हुए कण्डरामूल से उत्पन्न होती हैं। इनमें दीर्घा पेशी तर्जनीमूलशलाका में, और ह्रस्वा मध्यमा मूलशलाका मे लगती है। इन दोनों का कार्य मणिवन्ध को पीछे कर्षण करना है। इनमे दीर्घा पेशी को चेष्टा देने वाली नाड़ी वहिःप्रकोष्ठिका नामकी, और ह्रस्वा को चेष्टा देने वाली नाड़ी प्रकोष्ठान्तराला पश्चिमा नामकी है।

अंगुलीप्रसारणी साधारणी[५] नाम की पेशी प्रकोष्ठ की पश्चिम पेशियोंमें मध्यवर्त्तिनी पेशी है। यह प्रगण्डास्थि के अध.प्रान्तीय वाह्य अर्बुद के वाहर जुड़ने वाली कूर्परसन्धिवन्धनी स्नायु के कण्डरामूल से उत्पन्न हो कर

---

१ Pronator quadratus २ Brachio radialis ३ Extensor Carpi Radialis Longus ४ Extensor Carpi Radialis Brevis ५ Extensor Digitorum Communis.
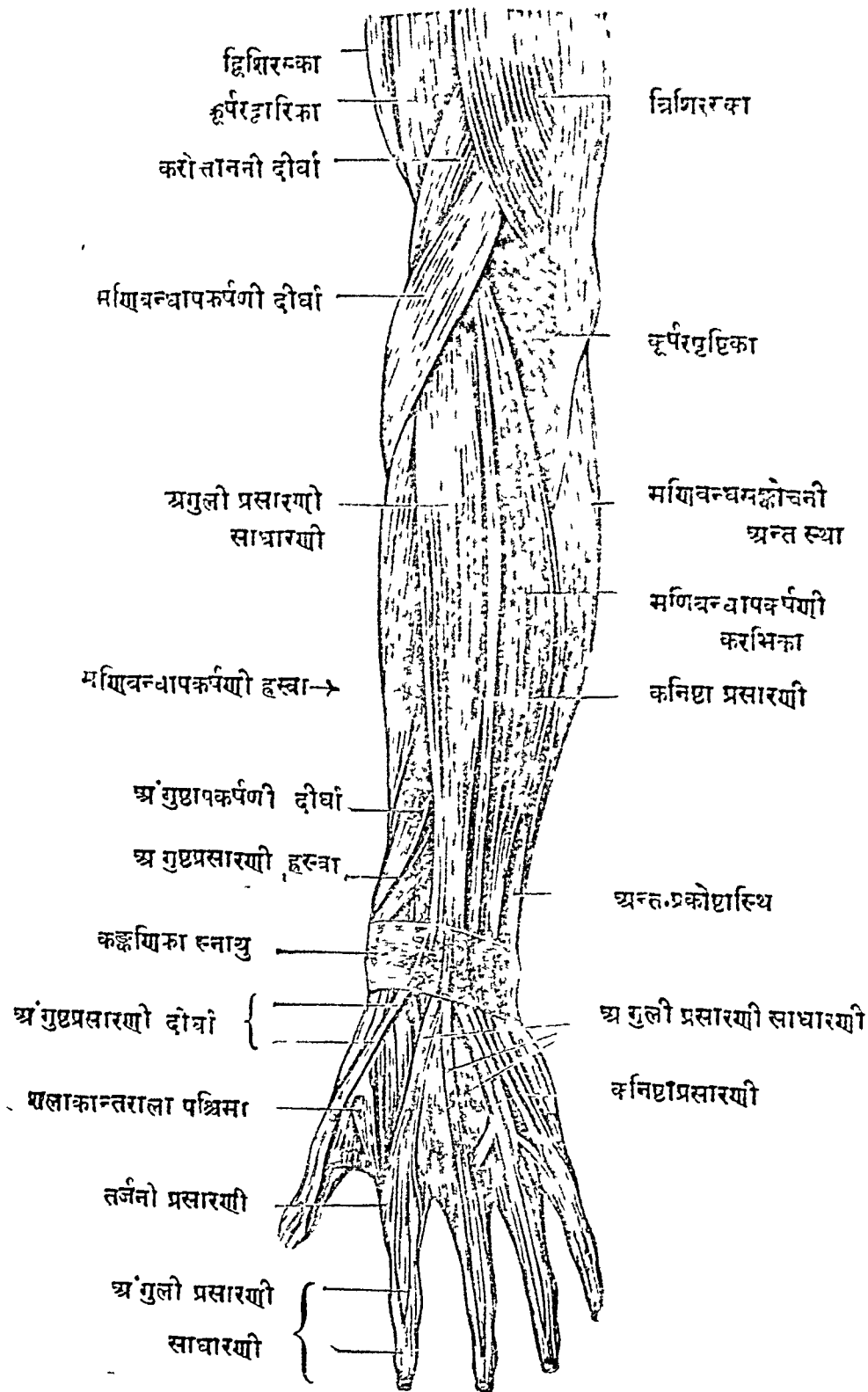
[८३ चित्र]

प्रकोष्ठ की पश्चिमा पेशियां।

मणिवन्ध के ऊपर, चार कण्डराओं में विभक्त होती है. और चार अंगुलियों के अग्र एवं मध्यपर्वों के पीछे बन्धती है। और ये कण्डरायें अंगुली सन्धियों के पीछे जाने वाली स्नायुओं का कार्य साधन करती हैं--यही इनमें विशेषता है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। चेष्टा देने वाली नाड़ी प्रकोष्ठान्तराला पश्चिमा है।

कनिष्ठाप्रसारणी[1]—नाम की पतली पेशी (८३ चित्र) पूर्वोक्त पेशी की सहचरी है और उसीकी भांति उत्पन्न होकर कनिष्ठांगुली के मध्य एवं अग्रपर्वके पीछे पूर्व की भांति बन्धो है और पूर्वोक्त पेशी की कनिष्ठान्तिका कण्डरा से मिली है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी प्रकोष्ठान्तराला पश्चिमा है।

मणिवन्धापकर्षणी करभिका[2]--नाम की स्थूल मांसला पेशी (८३ चित्र) प्रगण्डास्थि के अन्तर अर्बुद के समीप से और अन्तःप्रकोष्ठास्थि की मध्यनलक की पश्चिम धाराद्ध से उत्पन्न होकर, अन्तर्मणिक के पश्चिम सीता-मार्ग से मणिवन्ध के नोचे फैलती है और कनिष्ठामूलशलाका के मूल में (अर्थात करभ देश में) वन्धी है। इसका एक कार्य इसके नाम से स्पष्ट है, और दूसरा कार्य मणिवन्ध को मध्यरेखा की ओर कर्पण करना है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ी प्रकोष्ठान्तराला पश्चिमा है।

कूर्परपृष्ठिका[3]-नामकी पेशी ह्रस्व और त्रिकोण पेशी (८३ चित्र) प्रगंडास्थि के वाह्य अर्बुद से उत्पन्न होकर अन्त प्रकोष्ठास्थि के कूर्परकूट पृष्ठ मे और कुछ मध्यनलक पृष्ठ में तिरछी वन्धी है। यह त्रिशिरस्का पेशी की सहायता करती हुई कूर्परसन्धि का प्रसारण करती है। इसको प्रचेष्ठनी नाड़ी बहिर्वाहुका नाड़ी की शाखा है।

=प्रकोष्ठ पश्चिमा गम्भीर पेशियां=

करोत्तानिनी ह्रस्वा[4]—नाम की पेशी (८२ चित्र) प्रगण्डास्थि के वाह्य अर्बुद से, तथा कूर्परसन्धिवन्धनी स्नायु से और मुण्डवेष्टनिका बहिःपार्श्विका नामकी स्नायु से, एवं कूर्परकूटकी वहिर्धारासे उत्पन्न होती है और आगे तिरछी

१ Extensor Digiti Quinti Proprius २ Extensor Carpi Ulnaris.
३ Anconeus. ४ Supinator.

फैलती हुई वहिःप्रकोष्ठास्थि की ग्रीवा मे वन्धती है। इसका कार्य प्रकोष्ठास्थि को वाहरकी ओर घुमा कर करतलको थोड़ा-सा चित्त करना है। इसको चेष्टा देने वाली नाडी प्रकोष्ठान्तराला पश्चिमा है, जो कि पेशी को भेद करके फैली है।

अंगुष्ठापकर्षणी दीर्घा[१]—नाम की मांसला पेशी (८३ चित्र) पूर्वोक्त पेशी से ढंपी है। यह प्रकोष्ठास्थियो के मध्यनलक के पश्चिम प्रदेश से और प्रकोष्ठान्तराला कला से उत्पन्न हुई है। यह मणिवन्ध से ऊपर कण्डरा वन कर अंगुष्ठमूल शलाका के मूल मे लगती है। इसका कार्य अंगुष्ठ का वहिर्मुख कर्षण है। प्रचेष्टनी नाड़ी प्रकोष्ठान्तराला पश्चिमा नामकी है।

अंगुष्ठप्रसारणी ह्रस्वा[२]—नाम की पेशी (८३ चित्र) पूर्वोक्त पेशी की गोद मे स्थित है। यह वहिःप्रकोष्ठास्थि के मध्यनलक के पश्चिम प्रदेश से और प्रकोष्ठान्तराला कला से उत्पन्न होकर अंगुष्ठ के पश्चिम पर्वको मूलमें वन्धती है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। चेष्टा देने वाली नाडी पूर्वको भांति है।

अंगुष्ठप्रसारणी दीर्घा[३]—नाम की पेशी (८३ चित्र) पूर्वोक्त पेशी की अन्तःसीमा मे रहती है। यह अन्तःप्रकोष्ठास्थि के मध्यनलक के पश्चिम भागसे उत्पन्न होकर अंगुष्ठ के अग्रिम पर्व को मूल में लगती है। इसका कार्य अपने नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

तर्जनी प्रसारणी[४]—नाम की पतली, दीर्घा पेशी (८३ चित्र) पूर्व की भांति उत्पन्न होकर तर्जनी के मध्यम और पश्चिम पर्वों में लगती है। यह अंगुली प्रसारणी पेशी की तर्जनी सलग्न कण्डरा की सहचरी है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

इसी प्रसङ्ग मे मणिवन्ध सम्बन्धिनी स्नायुपट्टिकाये कही जाती हैं। यथा—

मणिबन्ध के चारो ओर फैलती हुई कण्डरा, सिरा, धमनी और नाड़ियों को, तथा कण्डराओं के साथ जाने वाली श्लेष्मधरा कलाओं को धारण करने वाली तीन स्नायुपट्टिकाये यहा देखनी चाहिये। यह गम्भीरा प्रकोष्ठप्रावरणी कला के ही स्थूल वना हुआ विभाग हैं ऐसा कहना ठीक होगा। इनके नाम प्रकोष्ठाधरीया अग्रिमा, प्रकोष्ठाधरीया पश्चिमा और कङ्कणिका है।

---

१ Abductor Pollicis Longus २ Extensor Pollicis Brevis ३ Extensor Pollicis Longus. ४ Extensor Indicis Proprius

प्रकोष्ठाधरीया अग्रिमा[१]—नाम की स्नायुपट्टिका (८१ चित्र) प्रकोष्ठास्थियों के अधःप्रान्तो के सम्मुख आड़े रूप से, मणिबन्ध के ऊपर, बन्धी है। यह अंगुलीसङ्कोचनी आदि पेशियोकी कण्डराओंको धारण करती हैं।

प्रकोष्ठाधरीया पश्चिमा[२] – नामकी स्नायुपट्टिका (८३ चित्र) पश्चिममें प्रकोष्ठास्थियोंके अधःप्रान्तों मे आड़े रूप से बन्धी है। इसकी प्रशाखायें वर्त्तुलक और उपलक कूर्चास्थियो के पीछे बन्धी है। यह स्वयं प्रसारणी नामकी पेशियों की कण्डराओ को धारण करती है।

ये दोनो स्नायुपट्टिकाये उत्ताना है।

कङ्कणिका[३]—नाम की गम्भीरा स्नायुपट्टिका (८४ चित्र) कूर्चास्थियों के सम्मुख मे मणिबन्ध के ऊपर आड़े रूप से फैली है। यह अन्तःसीमा मे फणधर और वर्त्तुलक कूर्चास्थियों से एवं बहिःसीमा में नौनिभ एवं पर्याणक नाम की कूर्चास्थियो से बन्धी हैं। और स्वयं कूर्चास्थिसङ्ग से बने कोरोदर स्थान को ढापती हुई कण्डरासुरङ्गा को बनाती है। इसी सुरङ्गा को आश्रय करके अंगुलीसङ्कोचनी नाम की दो पेशियों की आठ कण्डराये तथा दीर्घा अंगुष्ठसङ्कोचनी पेशी की कण्डरा और मध्यप्रकोष्ठिका नाम की नाड़ी करतल में जाती है। मणिबन्धसङ्कोचनी बहिःस्था पेशी की कण्डरा कङ्कणिका के भेद करके पर्य्याणक की गोद में स्थित सीता में घूमती है। कङ्कणिका के पुरस्तल को आश्रय करके अन्तःप्रकोष्ठिका नाम की सिरा, धमनी और नाड़ी एवं अन्तःप्रकोष्ठिका और मध्यप्रकोष्ठिका नाड़ियोंको त्वाच शाखायें फैली है। इसीपर करतल प्रसारणी दीर्घा पेशीकी एवं मणिबन्धसङ्कोचनी अन्तःस्था पेशी की कण्डराये बन्धती है। यह कङ्कणिका नाम की स्नायु अंगुष्ठ और कनिष्ठिका की क्षुद्र पेशियों का प्रभव स्थान है, और करतलिका नाम की प्रावरणी से मिली है। कण्डराओं के सम्यक् प्रकार से चलाचलके लिये इन सब कण्डराओंके साथमें कण्डरानुगा नामकी श्लेष्मधरा कला की लम्बी थैलिया रहती है।

=करपेशियां=

कर की पेशिया उनइस हैं। यथा—करतल मे अंगुष्ठमूल के चारों ओर चार, कनिष्ठिका मूल के चारो ओर चार—ये मिलकर आठ। अंगुलीमूलशलाकाओ के अन्तरालों में सात अग्रिमा और चार पश्चिमा—इस प्रकारसे ग्यारह।

---

१ Volar Corpal Ligament २ Dorsal Carpal Ligament. ३ Transverse Carpal Ligament.

[८४ चित्र]

दक्षिण करतलिका स्नायु और कण्डरायें ।
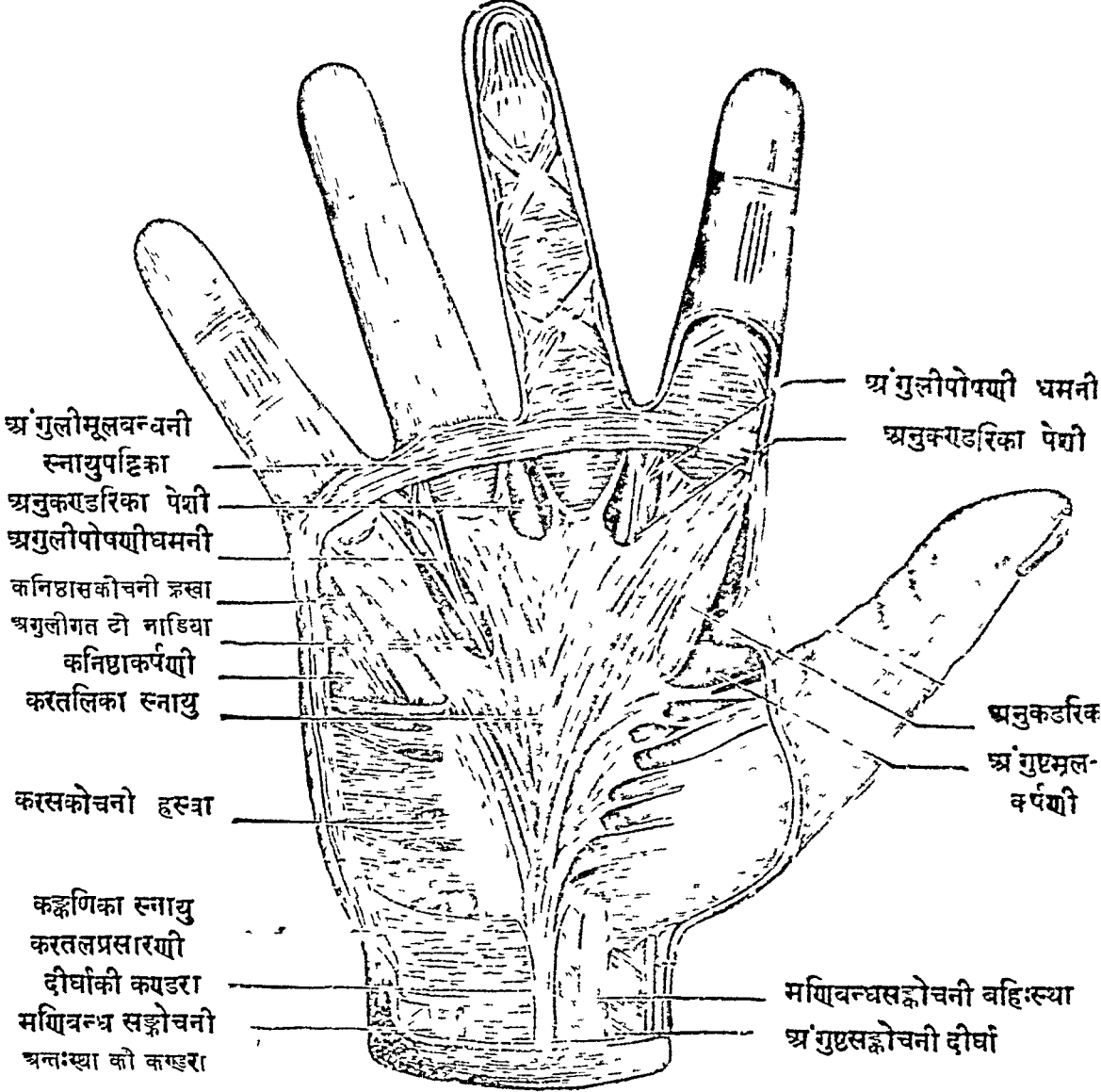
करपृष्ठ में फैलती हुई 'प्रसारणी' नामकी पेशियों के कण्डरायें स्वस्तिक (X) आकार से लगी है, ये अंगुली सन्धियोको दृढ़ बनाती हैं। यहां पर मांसला पेशी कोई भी नहीं है।

यहां पर सब करपेशियों को और करतलीय सिराधमनी आदि को ढांपने वाली **करतलिका**[1] नाम की सुदृढ़ (स्नायुमय) प्रावरणी दीखती है (८४ चित्र)। इसका मूलभाग कङ्कणिका नाम की स्नायु मे और करतलप्रसारणी दीर्घा पेशी की कण्डरा के अन्तमें बन्धा है। यह प्रायः समग्र करतलको ढांपती और मध्यमें दृढ़तर त्रिकोणांश से और पार्श्वों में दो दृढ़ शाखाओं से उपलक्षित है। अन्त मे यह पांचों अंगुलियों मे जाती हुई पांच प्रशाखाओंमे विभक्त हो जाती है। इनमें अंगुष्ठमूलगा प्रशाखा सब से पतली है और अन्य प्रशाखायें दृढ़ एव अंगुलीमूलों मे जाने वाले स्नायुप्रतानों द्वारा परस्पर मिली है। इनके द्वारा अंगुलीसङ्कोचनी पेशी के कण्डरान्त ढांपे जाते है।

=अंगुष्ठमूलगा पेशियां=

अंगुष्ठापकर्षणी ह्रस्वा[2]—नामकी छोटी मांसला पेशी (८५ चित्र) नौनिभ और पर्य्याणक के मूल से तथा कङ्कणिका नाम की स्नायु से उत्पन्न होकर अंगुष्ठ के पश्चिम पर्वमूलमे बन्धी है। यह अंगुष्ठ का बहिःकर्षण करती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका नाम की है।

अंगुष्ठजापिनी[3]—नामकी पेशी (८५ चित्र) अंगुष्ठ मूलकी बाह्यसीमामें रहती है। यह पर्य्याणक नामकी कूर्चास्थि के सम्मुखभाग से और कङ्कणिका नामकी स्नायु से उत्पन्न होकर अंगुष्ठमूलशलाका की बाह्यसीमा मे बन्धी है। यह अंगुष्ठ के सङ्कोचन एवं कर्षण द्वारा जप कर्म कराती है इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी मध्यप्रकोष्ठिका नामकी है।

अंगुष्ठसङ्कोचनी ह्रस्वा[4]—नामकी पेशी (८५ चित्र) कङ्कणिका नामकी स्नायु से उत्पन्न होकर अंगुष्ठ के पश्चिमपर्व के पार्श्वों मे चणकास्थि युक्त दो कण्डराओं द्वारा बन्धी है। इस पेशीका कार्य इसके नामसे ही स्पष्ट है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ियां मध्यप्रकोष्ठिका और अन्तप्रकोष्ठिका नामकी हैं।

---

१ Palmer Opponeurosis २ Abductor Pollicis, Brevis ३ Opponens Pollicis. ४ Flexor Pollicis Brevis.

(८५ चित्र)

वाम हथेली की पेशियां ।
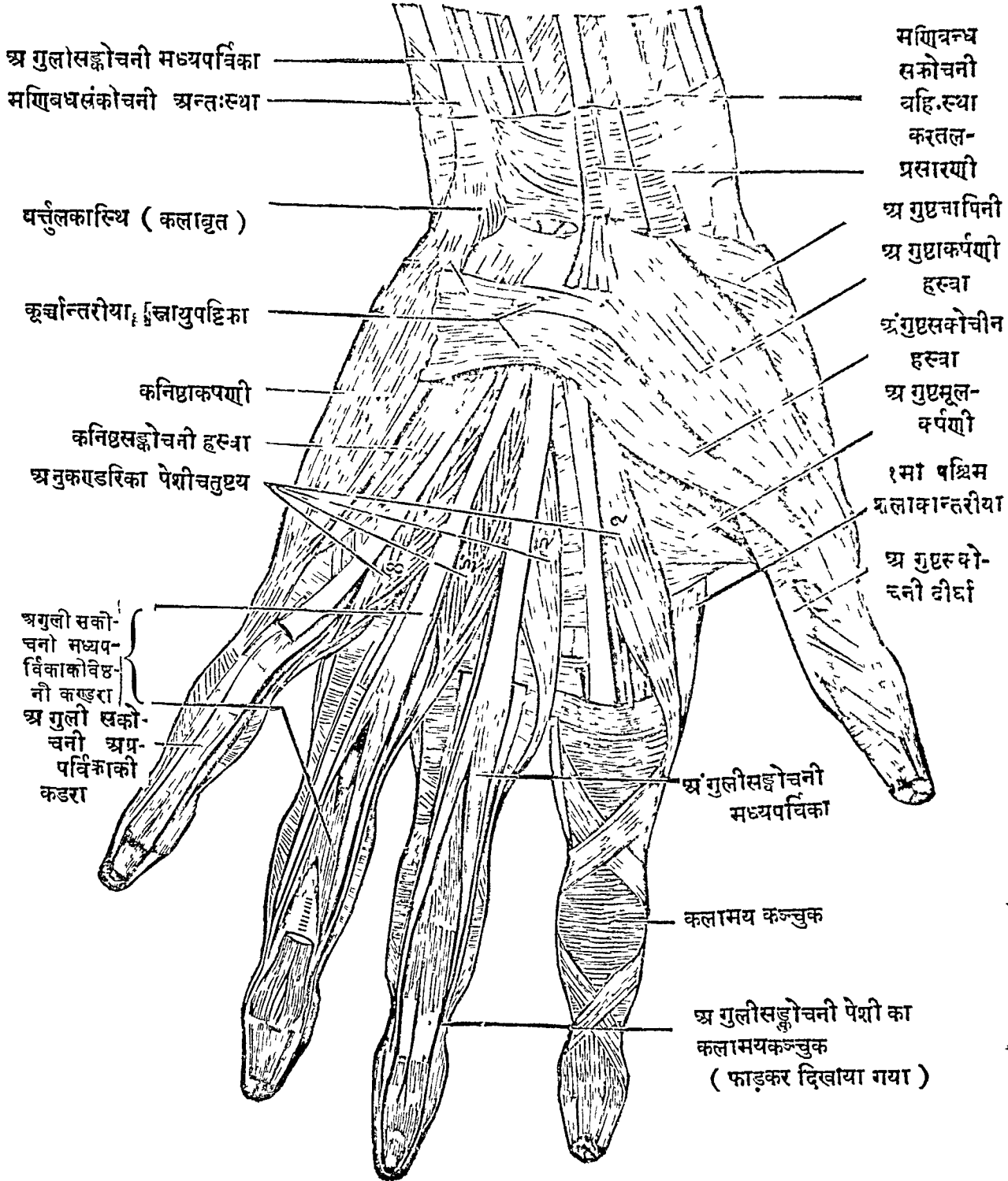
अंगुष्ठमूलकर्षणी[१] नामकी पेशी दो भागोंमें विभक्त (८५ चित्र) है। यह मध्यकूट नामकी कूर्चास्थि से, तर्जनी और मध्यमा की मूलशलाका मूल के पार्श्वों से, और कङ्कणिका नामकी स्नायु से उत्पन्न होकर अंगुष्ठ के पश्चिम पर्व की अन्तःसीमामें चणकास्थि युक्त कण्डरासे तिरछी बन्धी है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी अन्तःप्रकोष्ठिका नामकी है।

ये चार पेशियां अंगुष्ठ मूलके चारो ओर स्पष्ट दीखने वाली मांसपिण्डिका को बनाती है, जिसका नाम अंगुष्ठपिण्डिका है।

=कनिष्ठामूलगा पेशियां=

करभसङ्कोचनी[२]—नाम की टेढ़ी पेशी (८५ चित्र) कङ्कणिका और करतलिका नाम की स्नायुवो से उत्पन्न होकर करभदेश मे (मणिबन्ध से कनिष्ठिका तक हथेलीके अंशका नाम "करभ" है) मणिबन्धके निम्नस्थ त्वचाके साथ वन्धी है। इसका कार्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी अन्तःप्रको-ष्ठिका नामकी है।

कनिष्ठापकर्षणी[३]—नाम की पेशी (८५ चित्र) वर्त्तुलक नाम की कूर्चास्थिसे और मणिबन्धसङ्कोचनी अन्तःस्था पेशी की कण्डरासे उत्पन्न होकर कनिष्ठाके पश्चिम पर्वमूलमे वन्धी है। इसका कार्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी अन्तःप्रकोष्ठिका नाम की है।

कनिष्ठासङ्कोचनी[४]—नाम की पेशी (८५ चित्र) फणधर कूर्चास्थि के फणाग्र से और कङ्कणिका नाम की स्नायु से उत्पन्न होकर कनिष्ठा के पश्चिम पर्व मूल मे पूर्व पेशी के साथ वन्धी है। इसका कार्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

कनिष्ठामूलकर्षणी[५]—नामकी पेशी (८५ चित्र) पूर्वोक्त पेशीकी भांति उत्पन्न होती है। यह कनिष्ठा मूलशलाका को अन्तःसीमा मे वन्धी है। इसका कार्य इसके नामसे स्पष्ट है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

ये चार पेशियां कनिष्ठामूलमें करभपिंडिका नामके पेशी सङ्घात को बनाती है।

---

१ Abductor Pollicis. २ Plantaris Brevis ३ Abductor Digiti Quinti. ४ Flexor Digiti Quinti Brevis. ५ Opponens Digiti Quinti.

=अंगुलीमूलशलाकाओ के अन्तरालस्थ पेशियाँ=

ये ग्यारह हैं। यथा—चार अनुकण्डरिका। तीन शलाकान्तरीया अग्रिमा और चार शलाकान्तरीया पश्चिमा। इनमे—

अनुकण्डरिका[1]— नाम की लम्बी जलौका के आकार वाली पेशियां (८५ चित्र) करतलमें अंगुलीसङ्कोचनी अग्रपर्विका पेशीकी चार कण्डराओं से, उत्पन्न होकर, अंगुलीमूलोंको घेर के अपनी करपृष्ठगत कण्डराओं से, साधारणी अंगुलीप्रसारणी पेशीकी कण्डराओं मे बन्धी है। इनका कार्य अंगुली के पश्चिम नलकोंका आकर्षण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ियां अन्तःप्रकोष्ठिका और मध्यप्रकोष्ठिकाकी शाखायें है।

अग्रिमा शलाकान्तरीया[2]—नामकी तीन पेशियां अंगुष्ट को छोड़ कर शेष अंगुलियोंकी मूलशलाकाओंकी अन्तरालोंमे है। ये मध्यमांगुलीको छोड़कर शेष अंगुलियोंकी मूलशलाकाओंके पार्श्वों से उत्पन्न होकर, उन्हीं अंगुलियोंके पश्चिम नलकोंके मूलोंमे बन्धी हैं। इनका कार्य अंगुलियोका संव्यूहन (इकट्ठा करना) है। प्रचेष्टनी नाड़ी अन्तःप्रकोष्ठिका नामकी है।

पश्चिमा शलाकान्तरीया[3]—नाम की शरपुङ्ख के आकार वाली चार पेशिया अंगुलीमूलशलाकाओंके पार्श्वों से उत्पन्न हुई है। इनमे प्रत्येक के दोनो मूल अपने दोनों ओर स्थित मूलशलाकाओ के पार्श्वों से उत्पन्न होते हैं। उनकी कण्डरायें इस प्रकारसे लगती हैं—मध्यमांगुली के पश्चिम नलक के दोनों ओर दो, तर्जनी एवं अनामिका की बाह्य और अन्तःसीमामे दो। इनका कार्य अंगुलियोंका विस्फारण करना अर्थात् इकट्ठी की हुई अंगुलियोंको खोलना है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

इस प्रकार से हाथ की कुल पेशियों का व्याख्या हो गयी और ऊर्ध्वशाखा की पेशियां भी समाप्त हो गयीं।

इति चतुर्थ अध्याय।

---

१ Lumbricales. २ Planter Inter-ossei ३ Dorsal Inter-ossei.

पञ्चम अध्याय।

(अधःशाखीय पेशी वर्णनीय)

प्रत्येक अधःशाखामे अट्ठावन पेशियो लगती है। ये स्थान की प्रधानता से पांच प्रकारसे विभक्त की जाती हैं। यथा -दो जघनोदरीया। नौ नितम्बीया। पन्द्रह और्वी। तेरह जङ्घागत। उनइस पादगत। इनमें दो जघनोदरीया और दो नितम्बमूलगा पेशिया वस्तिगुहा की अन्तःसीमासे उत्पन्न होकर प्राधान्यतः श्रोणिचक्र के अन्दर रहती हैं। ये मध्यशरीरमे गिनी जा चुकी है। इसलिये सम्पूर्ण गिननेमें अधःशाखाओको चौवन पेशियां ही यहां गिनी जायेगी।

ये सब पेशिया वाह्य और आन्तर प्रावरणियों से सुदृढ़ रूपसे घिरी है। इनमें आन्तर प्रावरणी के जघन, ऊरू और नितम्ब को ढापने वाले दृढ़कञ्चुकाकार भाग का नाम **ऊरुकञ्चुका**[1] (८६ चित्र) है। यह ऊर्ध्व सीमा में—त्रिक और अनुत्रिक में, वहि.पार्श्व मे—जघन धारा में, सम्मुख में—वंक्षणिका नामकी स्नायु रज्जु मे और भगास्थि के उत्तर शृङ्ग में, अन्तःपार्श्व में श्रोणिगवाक्ष की सम्मुख परिधि में, कुकुन्दरपिण्ड मे, और 'त्रिककुकुन्दरिका" नामकी स्नायुरज्जु मे वन्धी है। यह ऊरु और नितम्ब की पेशियोंको ढापती हुई अधःसीमामे जानु-सन्धि के चारो ओर लगी है। और नीचे मे यह जङ्घाच्छादनी प्रावरणीसे मिली है। इस ऊरूकञ्चुका के नितम्ब को ढापने वाली भाग कहीं पर "नितम्ब प्रावरणी" के नामसे कहा जाता है। इसी का कुछ भाग लम्बो स्नायुपट्टिका रूप से, जघनपार्श्व से लगा कर जङ्घास्थि के वाह्यार्बुद तक, तनी है, उसका नाम जघनजङ्घिका[2] है। ऊरुकञ्चुकाकर्पणी नाम की पेशी ऊरुकञ्चुका को वाह्य-सीमा मे खींचती है। इस कञ्चुका के सम्मुख मे "ठ" अक्षर के आकार का एक वड़ा तिरछा छिद्र है, जिसका नाम **अनुवंक्षणछिद्र**[3] है। इसके द्वारा "अनुवंक्षणिका" नाम की मोटी उत्ताना सिरा ऊरु के अन्दर प्रविष्ट होती है। ऊरुकञ्चुका के पीछे पेशियों की अन्तरालो में घुसी हुई दो स्थूल-कलायें भी यहां देखनी चाहिए। ये ऊर्वस्थि के पृष्ठमे स्थित "प्राकारिका" नाम की चतुर्भुज रेखा मे लगी।

---

१ Gluteus Maximus. २ Ileo-tibial band: ३ Fossa Ovales or Saphenous opening:

(८६ चित्र)

उरूदरपार्श्व की पेशियां (उत्तान)।
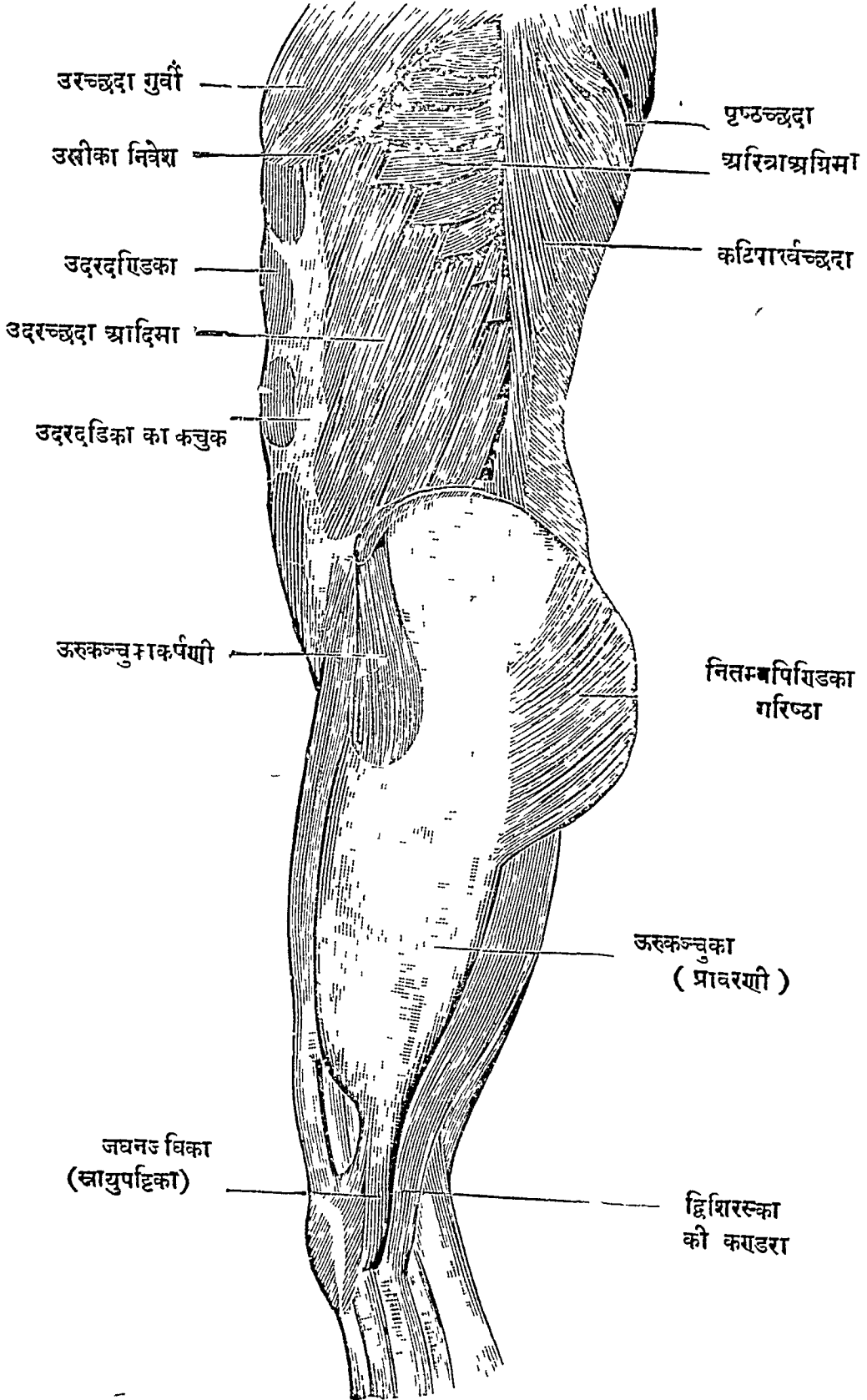
=नितम्ब की पेशियां=

नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा[1]—नाम की स्थूल मांसला और ताल के पंखे के समान चौड़ी पेशी नितम्ब को बनाती है (८६।८७ चित्र मे देखो)। यह श्रोणिफलक की जघनपृष्ठधारा से, त्रिक और अनुत्रिक के पार्श्वों से, गुर्वी त्रिकुकुन्दरिका नामकी स्नायु से, और समीपस्थ मांसधरा कला से विशाल आयत और मासल मूलो के द्वारा उत्पन्न हो कर क्रमशः दृढ़ स्थूल आयत कण्डरा मे परिणत होती है और शेष मे ऊर्ध्वस्थिपृष्ठस्थ प्राकारिका रेखा की पश्चिमोर्ध्वधारा मे लगती है। और इसका थोड़ा सा अंश ऊरुकञ्चुका नाम की प्रावरणी मे भी बन्धता है। इसकी कण्डरा ऊर्वस्थि के महाशिखरक के पार्श्व में श्लेष्मधरकलापुटक के व्यवधान से घूमती है। इसका कार्य तीन प्रकार का है। ऊर्वस्थि का प्रसारण और बहिर्विवर्त्तन—यह प्रथम कार्य। पुरुष जब सीधा दण्डाकार खड़ा होता है तब यह सक्थि (टांग) को मध्य-शरीर के साथ धारण करती है—यह दूसरा कार्य। सम्मुखमे मध्यशरीर के झुकने पर श्रोणिकर्षण द्वारा शरीरको फिर सीधा करना—इसका तीसरा कार्य है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी 'अधरा जाघनी' नामकी है।

नितम्बपिण्डिका मध्यमा[2]—नाम की इसी प्रकार की पेशी (८७ चित्र) पूर्वोक्त पेशी से बहुधा ढपी रहती है। यह जघनपृष्ठ की धाराओ से और समीपस्थ मांसधरा कला से आयत मासल मूलो द्वारा उत्पन्न होकर क्रमशः कण्डरारूप मे परिणत होती हुई ऊर्वस्थि के महाशिखरक के पीछे लगती है। यह कण्डरा श्लेष्मधर कलापुटक के व्यवधान से निवेश स्थानके समीप में ही घूमती है। इसका कार्य ऊर्वस्थि का विवर्त्तन करना, और सरलभाव से शरीरका धारण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ो 'उत्तरा जाघनी' नामकी है।

नितम्बपिण्डिका लघिष्टा[3]—नामकी उसी प्रकारकी (८८ चित्र) छोटी मासला पेशी पूर्वोक्त पेशियों से ढंपी है। यह जघन पृष्ठ से उत्पन्न होकर ऊर्वस्थि के महाशिखरक के सम्मुखभाग मे लगती है। इसका कार्य और प्रचे-ष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

---

१ Gluteus Maximus २ Gluteus Medius ३ Gluteus Minimus

[८७ चित्र]

सक्थि-पश्चिमा पेशियां [उत्तान]।
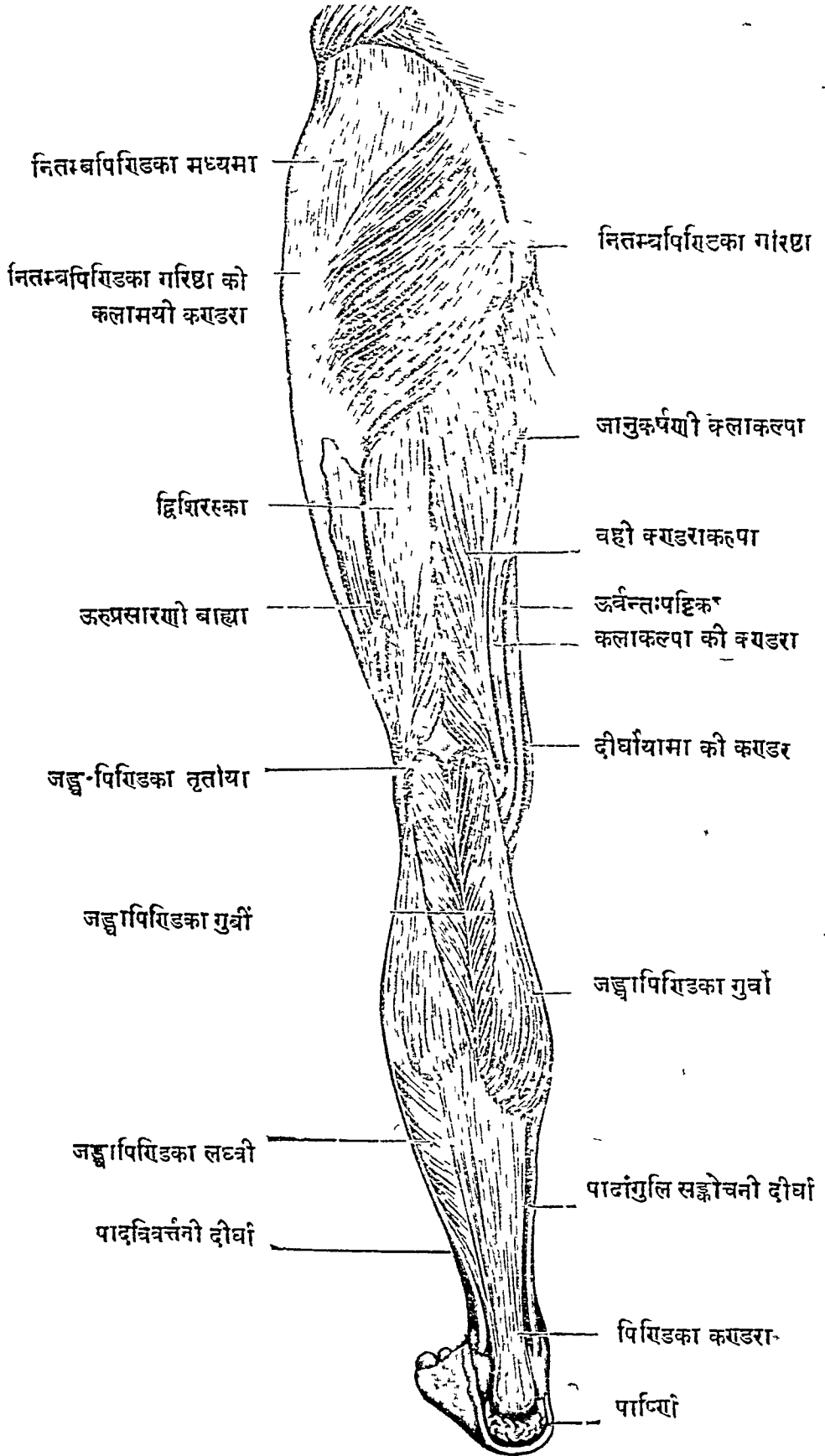
शुण्डिका[१]—नाम की (८८ चित्र) गरिष्ठा नितम्बपिण्डिका पेशी से आच्छादित है। इसका वर्णन मध्यकाय में आ चुका है एवं यह पेशी पहले गिनी जा चुकी है।

श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था[२]- नामकी पेशी (८८ चित्र) मध्य मे दो यमला नाम की पेशियों से धारण की गयी है। इसका वर्णन और गणना पहले हो चुकी है।

यमला नाम की दो पेशी—**उत्तरा** और **अधरा** नामकी है। ये क्रमशः (८८ चित्र) श्रोणिफलक के कुकुन्दरास्थि के कण्टक और पिण्ड से उत्पन्न होकर अन्तःस्था श्रोणिगवाक्षिणी पेशी के ऊर्ध्व एवं अधःप्रदेशों मे प्रायः सम्मिलित हो जाती हैं। और शेष मे ऊर्वस्थिके महाशिखरकमे लगती है। इनका कार्य ऊर्वस्थि का वहिर्विवर्त्तन करना है। प्रचेष्टन पाचवीं अनुकटिका एवं पहिला दो अनुत्रिका नाड़ियों से होता है।

उरुचतुरस्रा[३]—नाम की प्राय. चौकोर, ह्रस्व-मांसला पेशी (८८ चित्र) श्रोणिफलक के कुकुन्दरपिण्ड से उत्पन्न होकर उर्वस्थि के महाशिखर के मूलपृष्ठ में आड़ी वन्धी है। इसका कार्य ऊर्वस्थि का वहिर्विवर्त्तन है। चेष्टा देने वाली नाड़ियां पांचवीं अनुकटिका और प्रथमा अनुत्रिका है।

श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था[४]—नाम की प्रायः त्रिकोण पेशी श्रोणिफलक के सम्मुखभाग को ढांपती है। यह श्रोणिगवाक्ष की परिधि के वाह्यप्रदेश से, और गवाक्ष प्रावरणी कला से उत्पन्न होकर ऊर्वस्थि के महाशिखर के पृष्ठ मे स्थित कोटर मे वन्धी है। इसका काय प्रथमा की भांति है। प्रचेष्टनी नाड़ी वंक्षणिका नाम की है।

=ऊरु की पेशियां=

ये पन्द्रह हैं और तीन प्रकार से विभक्त है। और्वी अग्रिमा सात, अन्तःसीमा मे स्थित पाच, और पश्चिमा तीन।

इनमे अग्रिमा ऊरुपेशियां यथा—

उरुकञ्चुकाकर्षणी[५]—नाम की पतली मासला पेशी (८६ चित्र) श्रोणिफलक की जघनधारा से और अग्रिम ऊर्ध्वजघनकूट से उत्पन्न हो कर

१ Pyriformis, २ Obturator Internus, ३ Quadratus Femoris, ४ Obturator Externus, ५ Tensor Vaginæ Femoris,

[८८ चित्र]

नितम्ब और उरु की पश्चिम पेशियां (गम्भीर) ।
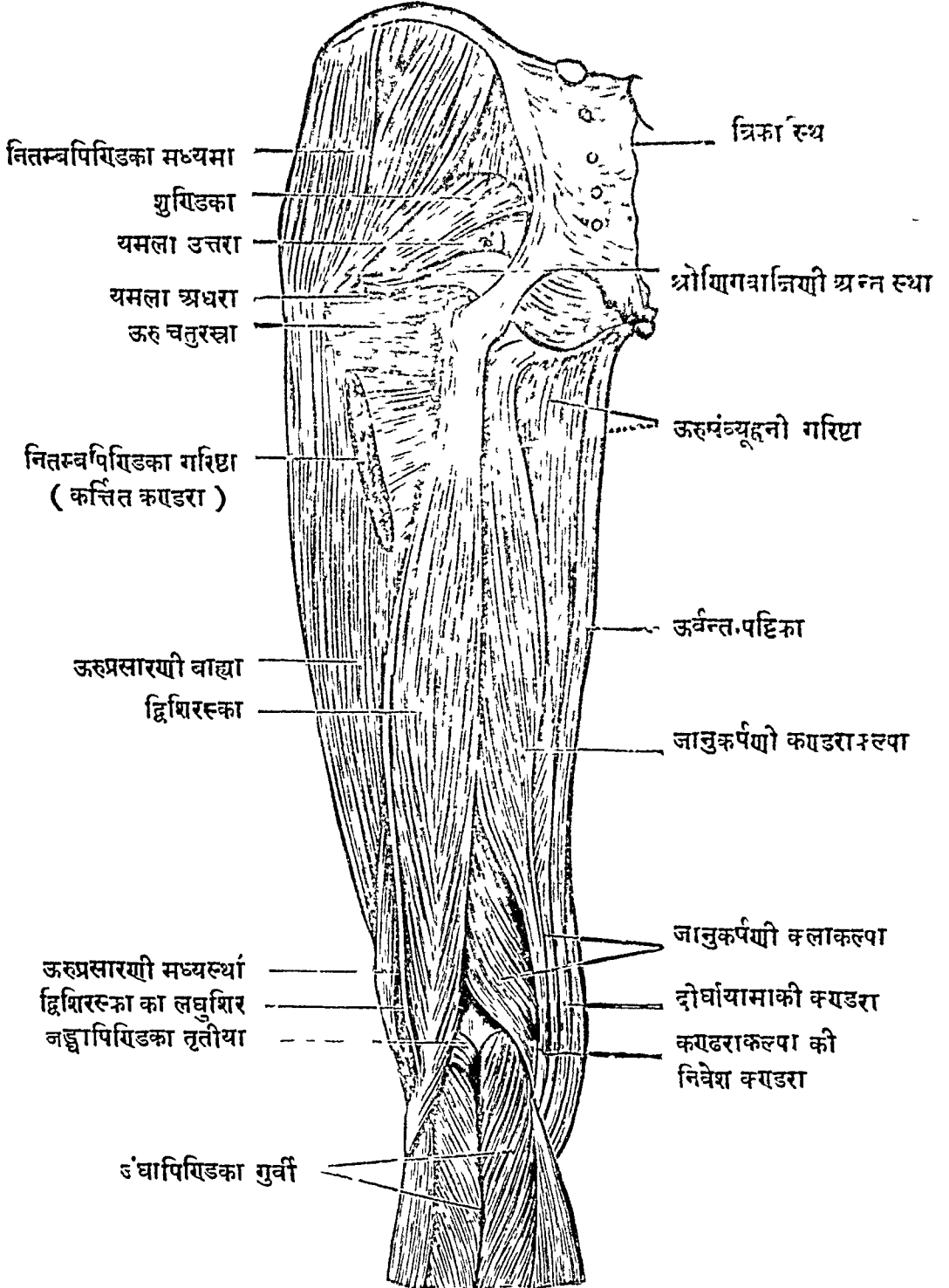
ऊरुकञ्चुका नाम की प्रावरणी मे तिरछी वन्धी है। इसका कार्य ऊरुप्रसारण के अन्त में ऊरुकञ्चुका जब शिथिल हो जाती है, तब उसे आकर्षण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी - उत्तरा जाघनी नाम की है।

दीर्घायामा[१]—नाम को पतली पेशी (८६ चित्र) शरीर मे सब से लम्बी है। यह श्रोणिफलक की अग्रिम और ऊपर की जघनकूट से तथा इसके नीचे स्थित खातार्द्ध से उत्पन्न होकर तिरछी जाती हुई जङ्घास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त की अन्तःसीमा मे लगती है। इसका कार्य ऊरुका बहिर्विवर्त्तन और जङ्घास्थिका तिर्यक् आकर्षण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी अग्रिमा और्वी नामकी है।

उरुदण्डिका[२]—नाम की मासला पेशी बीच से मोटी है (८६ चित्र) यह ऊरु के मध्य मे सम्मुख की ओर रहती है। यह श्रोणिफलक के अग्रिम निचले जघनकूटसे और वंक्षणोदूखलकी परिधिके ऊर्ध्वप्रदेशसे कण्डरामूलों द्वारा उत्पन्त होकर जानुकपालिका की बहिर्धारा मे ऊरुपिण्डिका की साधारणी कण्डरा द्वारा लगती है। इसका कार्य जङ्घा का प्रसारण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी अग्रिमा और्वी नाम की है।

उरुप्रसारणी बाह्या[३]—नाम की पेशी (८८ चित्र) उरुप्रसारणी पेशियों मे सव से छोटो है। यह ऊरु के सम्मुख एवं बाह्यसीमा मे दीखती है। यह ऊर्वस्थि के महाशिखरक की अग्रिम धारा से और प्राकारिका नाम की रेखा से उत्पन्न होकर जानुकपालिका की बहिर्धारा मे ऊरुपिण्डिका की साधारणी कण्डरा द्वारा बन्धती है। इसका कार्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी अग्रिमो और्वी नाम की है।

उरुप्रसारणी अन्तःस्था[४]—नाम की पेशी (८६ चित्र) ऊर्वस्थि की अग्रिम शिखरान्तराला रेखा से और प्राकारिका नाम की चतुर्भुज रेखा की अन्तः-सीमा में स्थित दो भुजाओं से उत्पन्न होकर गरिष्ठा ऊरुसंव्यूहनी नाम की पेशी की कलाकण्डरा से कुछ अंश को लेकर ऊरुपिण्डिका की साधारणी कण्डरा द्वारा जानुकपालिका की बहिर्धारा मे लगती है। इसका कार्य एवं प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

---

१ Sartorius २ Rectus Femoris, ३ Vastus Externus, ४ Vastus Inte

[८९ चित्र]

जघन और उरुकी सम्मुखस्थित पेशियां।
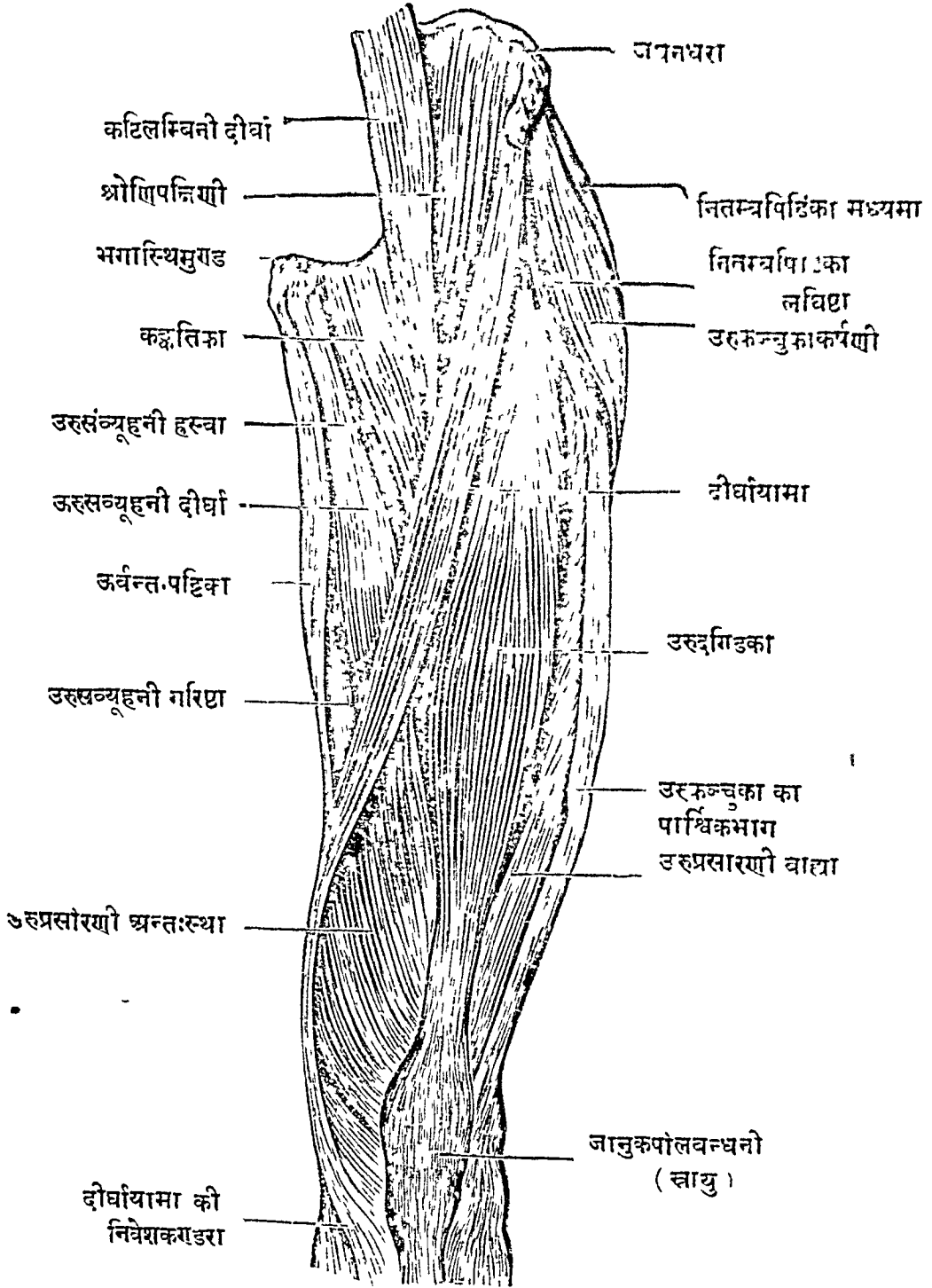
ऊरुप्रसारणी मध्यस्था[1]—नाम की पेशी (८८ चित्र) दोनों पेशियो के मध्य मे सम्मुख की ओर रहती है और ऊरुदण्डिका पेशीसे ढांपी जाती है। यह ऊर्वस्थिनलक के अग्रिम ऊत्तरार्द्ध से उत्पन्न होकर पूर्वकी भाति ऊरुपिण्डिका साधारणी कण्डरा द्वारा पूर्ववत् जानुकपालिका धारामे लगती है। इसका कार्य आदि पूर्वकी भाति है।

इस प्रकार ऊरुप्रसारणी नामक चार पेशियो की निवेश कण्डरा साधारण है, अर्थात् चारों पेशियोंकी कण्डरायें मिल कर शेषमे एक कण्डरा हो जाती हैं। कोई मानते है कि जङ्घास्थिके सम्मुखभागमे लगी हुई जानुकपालवन्धनी स्नायुरज्जु ही ऊरुप्रसारणी साधारणी कण्डरा है। और जानुकपालिका इसी कण्डरासे उत्पन्न एक बहुत वडी चणकास्थि है। (देखिये जानुसन्धि चित्र)।

जानुकोषकर्षणी[2]—नाम को पतली - गम्भीर पेशी ऊर्वस्थिनलक के अग्रिम अधःप्रदेश से उत्पन्न होकर जानुसन्धिकोष के शिरमे बन्धी है। इसका कार्य जानुप्रसारण से शिथिल हुए जानुसन्धिकोष को ऊर्ध्वकर्षण से तानना है। प्रचेष्टनी नाड़ी अग्रिमा औंर्वी नामकी है।

अन्तःसीमामे स्थित ऊरुपेशियां यथा –

उर्वन्तःपट्टिका[3]– नाम की किञ्चित् मासला लम्बी पेशी (८८ चित्र) ऊरुकी अन्तःसीमामे सवसे वडी उत्तान रहती है। यह भगास्थि सन्धिके पार्श्व से उत्पन्न होकर जानुसन्धिको लांघती हुई जङ्घास्थिके ऊर्ध्वप्रान्तकी अन्तःसीमामें लगती है – और दीर्घायामाकी कण्डरासे मिल जाती है। इसका कार्य जङ्घास्थि का अन्तर्विवर्त्तन और सङ्कोचन है। प्रचेष्टनी नाड़ी वंक्षणिका नामकी है।

कङ्कतिका[4] - नामकी आयत चौकोर छोटी पेशी (८६चित्र, श्रोणिफलककी "वस्तिकण्ठिका" नामकी रेखासे उत्पन्न होकर तिरछो गतिसे ऊर्वस्थि पृष्ठमे लघुशिखरकके नीचे लगती है। इसका कार्य ऊर्वस्थिका सव्यूहन मध्यरेखा को ओर खीचना और बहिर्विवर्त्तन है। इसको चेष्टा देने वाली नाड़ी 'अनुवंक्षणिका' और 'अग्रिमा औंर्वी' है।

---

१ Vastus Medius २ Articulares Genu (Subcrureus) ३ Gracilis ४ Pectineus.

ऊरुसंव्यूहनी दीर्घा[१]—नाम की त्रिकोण आयत मासला पेशी (८६ चित्र) भगास्थि के सम्मुखभाग से कण्डरामूल द्वारा उत्पन्न होकर क्रमशः चौड़ी होती हुई ऊर्वस्थि पृष्ठ मे प्राकारिका नामकी रेखाके मध्यभागमे वन्धी है। इसका कार्य ऊर्वस्थिका संव्यूहन (मध्यरेखाकी ओर आकर्षण), वंक्षणसन्धिका सङ्कोचन और वहिर्विवर्त्तन करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी वंक्षणिका नामकी है।

ऊरुसंव्यूहनी ह्रस्वा[२]—नाम की उसी प्रकार की पेशी (८६ चित्र) पूर्वोक्त पेशीके ऊपर रहती है। यह भगास्थि के मुण्डसे और अधर शृङ्गसे कण्डरा मूल द्वारा उत्पन्न होकर क्रमशः मासल वनती हुई ऊर्वस्थिकी प्राकारिका रेखाके ऊर्ध्वभागमे वन्धती है। इसका कार्य आदि पूर्वकी भांति है। इसको भेदन करके गम्भीरोरुका नामकी धमनीकी एक या दो शाखायें गई है।

ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा[३]—नामकी विशाल चौड़ी मासला तथा त्रिकोण पेशी (८६ चित्र) पूर्वोक्त पेशियोंके पीछे और नीचेमे रहती है। यह श्रोणि-गवाक्षकी सम्मुख परिधिसे और कुकुन्दरपिण्डसे कण्डरामूल द्वारा उत्पन्न होकर क्रमशः मासल और आयातकार होती हुई ऊर्ध्वस्थि पृष्ठमे प्रायः सम्पूर्ण प्राकारिका नामकी रेखामे और इसके अधःप्रान्तमे स्थित आन्तर उपार्वुदमे वन्धी है। इस पेशीमे चार छिद्रोको देखना चाहिये। इनमे ऊपरके तीन छिद्र गम्भीरोरुका धमनीकी तीन शाखाओ के पीछे जाने के लिये हैं। निचला छिद्र सव से वड़ा है यह और्वी धमनी और सिराके निकलनेके लिये है। इसका कार्य ऊरुका संव्यूहन करना है। इसको चेष्टा देने वाली दो नाड़िया हैं महागृध्रसी और वक्षणिका।

= पश्चिम ऊरुपेशिया =

द्विशिरस्का और्वी[४]—नाम की स्थूल मासला पेशी (८७।८८ चित्रों मे) ऊरुके पश्चिममें पिण्डकाकार है। उसके दो शिर वा दो शिखायें है—जो कण्डरासे वनी हैं। इनमे वड़ी शिखा श्रोणिफलकके कुकुन्दरपिण्डसे उत्पन्न हुई है एवं जानुकर्पणी की कण्डरा कला के मूल से प्रायः मिल जाती है। छोटी शिखा प्राकारिका नामकी रेखाके वहिस्तट से और पेशी के वीच की

---

१ Adductur Longus २ Adductor Brevis ३ Adductor Magnus
४ Biceps Femoris

कलासे उत्पन्न हुई है। दोनों शिखायें ऊरुके मध्यपृष्ठमे एक होकर अनुजंघास्थि की वहिःसीमामें लगती हैं। इसका कार्य जंघाका संकोचन और बहिर्विवर्त्तन है। प्रचेष्टनो नाड़ी 'महागृध्रसी' नामकी है।

जानुकर्षणी कण्डराकल्पा[१]—नाम की अल्पमांसला लम्बी पेशी (८७ चित्र) श्रोणिफलक के कुकुन्दरपिण्डसे उत्पन्न होकर जंघास्थि के ऊर्ध्व-प्रान्तकी अन्तःसीमामे बन्धी है। इसकी निवेशकण्डरा अपनी स्नायुमयी शाखाओ द्वारा जानुसन्धिको बांधने वाली स्नायुओंको मजबूत करती है। इसका कार्य जंघाका सङ्कोचन और अन्तर्विवर्त्तन है।

जानुकर्षणी कलाकल्पा[२]—नाम की पेशी (८७ चित्र) की उत्पत्ति एवं निवेश पूर्वकी भाति है। यह ऊरुपृष्ठमे और उसकी अन्तःसीमामें रहती है। यह दृढ़ कलामय प्रभवसे उत्पन्न होती है, अतः इसकी 'कलाकल्पा' संज्ञा है। पूर्वोक्त पेशी की भांति इसकी निवेशकण्डरा से भी जानु सन्धिको दृढ़ करने वाली स्नायुमयी शाखायें फैलती हैं। इनमे से एक शाखा जानु सन्धिके पीछे तिरछी बन्धी रहकर 'जंघा पश्चिमा' सिरा और धमनीको ढांपती है। इसका कार्य्य पूर्व की भाति है।

जंघा की पेशियां।

जङ्घाकी पेशिया तेरह हैं। ये दोनों जङ्घास्थियों से एवं उनके अन्तरालास्थ कला द्वारा इस प्रकार विभक्त हैं—अग्रिमा चार, पश्चिमा सात और बहिः पार्श्वगा दो। जङ्घास्थिकी सम्मुखधारा और अन्तःपार्श्विकी धारा त्वचाके नीचे अनुभूत होती हैं, वहां पेशियोंका सर्वथा अभाव है।

इनमे अग्रिमा चार पेशियां यथा—

जङ्घापुरोगा[३]—नाम की मासला पेशी (९० चित्र) जङ्घाके सम्मुख में और बहिः पार्श्व मे रहती है। यह जङ्घास्थि के बहि.कन्द से और मध्यनलक के बहिः पार्श्व से, तथा जङ्घान्तराला कला से उत्पन्न होकर मध्य मे मोटी और मांसला होती है और अन्त मे कण्डरा बनकर पादतल मे अन्तःकोणक नामकी कूर्चास्थि मे और पादाङ्गुष्ठ की मूलशलाका के मूलमे तिरछी लगती है। वहां लगने से पूर्व यह कण्डरा वक्ष्यमाण ऊर्ध्वगुल्फिका और गुल्फस्वस्तिका नाम की स्नायुपट्टिकाओं के नीचे स्थित अन्तःसुरङ्गापथ से पादतल की ओर फैली है। इस

---

१ 'Semi-tendinosus २ Semi-membranosus ३ Tibialis Anterior.

[९० चित्र]

जङ्घा के सम्मुख स्थित पेशियां।
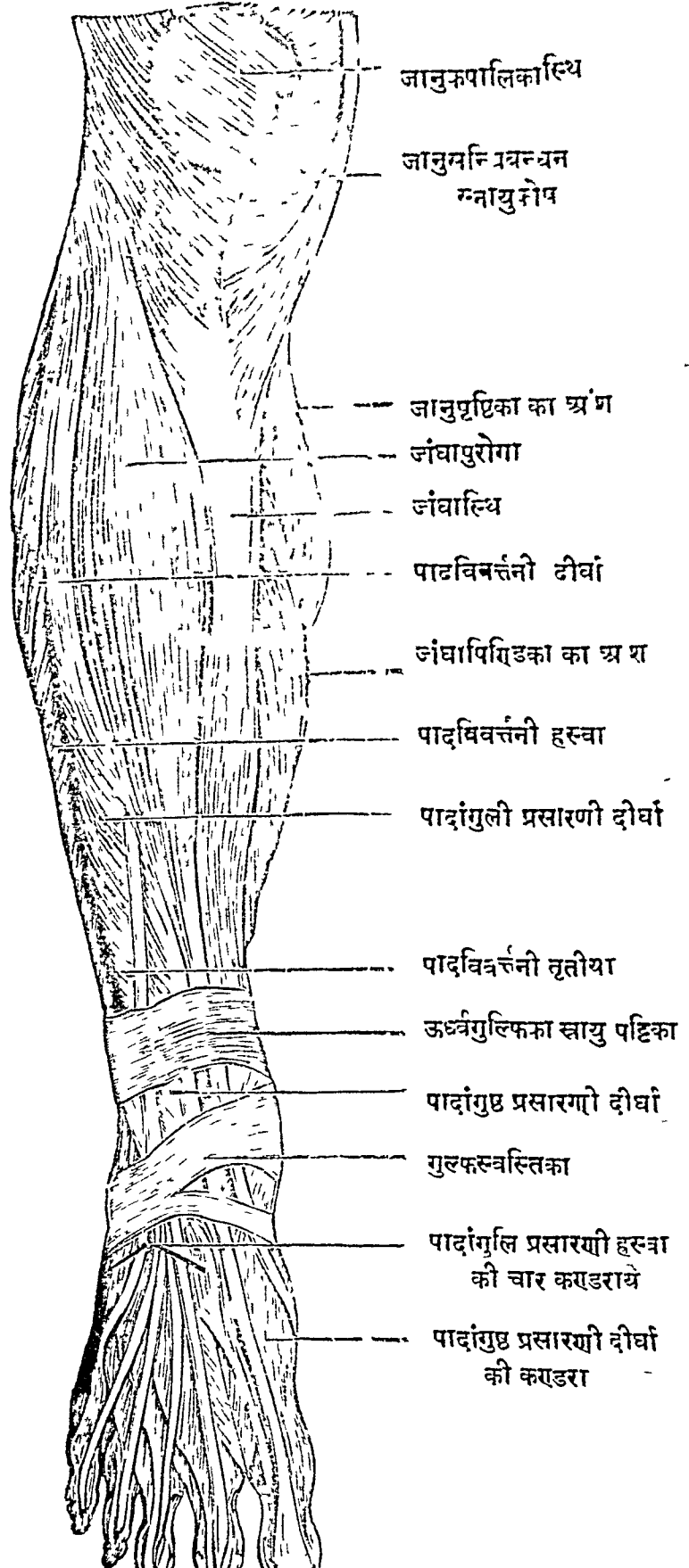
पेशीका कार्य्य—पादका अन्तर्विवर्त्तन और गुल्फ सन्धि का सङ्कोचन करना है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी 'पुरोजङ्घिका गम्भीरा' नाम की है।

पादांगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा[1]—नामकी पतली पेशी (९० चित्र) पूर्वोक्त पेशीसे ढपी है। यह अनुजङ्घास्थि के मध्यार्द्ध से और जङ्घान्तराला नाम की कलासे उत्पन्न होकर शेषार्द्ध में कण्डरा रूप होती है। और पूर्वोक्त दोनो स्नायुपट्टिकाओं के अधः स्थित मध्य सुरङ्गा पथ से निकल कर पदांगुष्ठ के अग्रिम पर्व पृष्ठ मे लगती है। इसका कार्य्य अपने नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

पादांगुलि प्रसारणी दीर्घा[2]—नामकी पेशी (९० चित्र) जङ्घास्थिके वहिःकन्द से, अनुजङ्घास्थिके मध्यनलकसे और जङ्घान्तराला कलासे उत्पन्न होकर पूर्व की भांति दोनों स्नायुपट्टिकाओं के अधःस्थित वहिःसुरङ्गापथसे निकलती है। और पादपृष्ठ मे चार कण्डराओंमें विभक्त होकर चारों पादांगुलियों की अग्रिम और मध्यम पर्व के पीछे लगती है। इसका कार्य्य इसके नामसे स्पष्ट है, प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

पादविवर्त्तनी तृतीया[3]—नाम की पेशी (९० चित्र) जङ्घाके वहिः-पार्श्व मे रहती है। और अपने मूलके द्वारा पूर्वोक्त पेशीके मूलके साथ मिल जाती है। यह अनुजङ्घास्थिके निम्न पादांशके वहिस्तल से और जङ्घान्तराला कलासे उत्पन्न होकर पूर्वोक्त पेशीकी सहचरी बनकर और उसी प्रकार निकल कर पादकनिष्ठा की मूलशलाका के मूलमें कण्डरान्त द्वारा लगती है। इसका कार्य्य पांव का वहिर्विवर्त्तन और गुल्फ सन्धिका सङ्कोचन करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्व की भांति है।

जङ्घापश्चिमा पेशियां सात हैं, तीन उत्तान और चार गम्भीर। ये पेशियां जङ्घान्तराला कलाके पीछे रहती है। यथा—

उत्तान जङ्घापश्चिमा पेशियां।

जङ्घापिण्डिका गुर्वी[4]—नामकी स्थूल मांसला पेशी (८७।८८ चित्रोंमे) मुख्यरूपसे जंघापिण्डिका को बनाती है। यह दो मूलों द्वारा ऊर्वस्थि के दोनों महार्बुदोंके पीछेसे उत्पन्न होकर 'साधारणी पिण्डिका-कण्डरा' द्वारा पार्ष्णि-

---

१ Extensor Hallucis Longus. २ Extensor Digitorum Longus. ३ Peroneus Tertius, ४ Gastrocnemius.

मूलपृष्ठमे लगती है। इसका कार्य्य पार्ष्णिमूलका कर्षण करना है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'अधिजंघिका' नामकी है।

जङ्घापिण्डिका लघ्वी[1]—नाम की स्वल्पमांसला पेशी (८७ चित्र) पूर्वोक्त पेशी से ढंपी है। यह अनुजंघास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त से, मध्यनलक के ऊर्ध्वांशसे, और जंघास्थिकण्डराके पीछे स्थित तिरछी रेखासे उत्पन्न होकर पूर्वकी भांति 'साधारणी पिण्डिका' कण्डरा' द्वारा पार्ष्णिमूलके पृष्ठमें लगती है। इसका कार्य्य पूर्वकी भांति है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'अधिजंघिका' और अनुजंघिका नामकी है।

जङ्घापिण्डिका तृतीया[2]—नामकी दीर्घ कण्डराकार पेशी (८७ चित्र) पूर्व पेशीकी सहकारिणी है। यह ऊर्वस्थिके बाह्य महार्बुदके समीपसे उत्पन्न होकर पूर्वकी भांति साधारणी कण्डरासे मिली है। इसका कार्य पूर्वकी भांति है। प्रचेष्टनी नाड़ी अधिजंघिका ही है।

ये तीन पेशियां मिलित रूपसे 'जंघापिण्डिका' अथवा 'पिण्डिका' नामसे कही जाती हैं।

गम्भीर जघापश्चिमा पेशियां।

जानुपृष्ठिका[3]—नामकी पेशी किञ्चित् मांसला और प्रायः त्रिकोणाकार है (६० चित्र)। यह जानुसन्धिके पीछे तिरछे रूपमें रहती है। यह ऊर्वस्थि के वाह्य महार्बुदके पार्श्वसे और इसी नाम वाली स्नायुसे उत्पन्न होकर जंघास्थिके मध्यनलकके पृष्ठमे तिरछी रेखाके ऊपर लगती है। इसका कार्य्य जंघास्थिको किञ्चिद् अन्तर्विवर्त्तनके साथ जानुसन्धिको सकुचित करना है।

पादांगुष्ठसंकोचनी दीर्घा[4]—नामकी पेशी (६२ चित्र) जङ्घापृष्ठ की अन्तःसीमामे हैं। यह अनुजंघिकाके मध्यनलकके पीछेसे और जंघान्तराला कलासे उत्पन्न होकर, क्रमशः कण्डरा वनती हुई जंघास्थिके अन्तर्गुल्फके पीछे स्थित सीता मे से गुजरती है और वक्ष्यमाण 'अन्तर्गुल्फिका' नामक स्नायुपट्टिकासे ढांपी जाती है। यह पार्ष्णि और कूर्च्चशिरकी सीताओंमे से निकल कर पादतलको तिरछे लांघ कर पदागुष्ठके अग्रिम पर्वमूलमें लगती है। इसका कार्य्य इसके नामसे ही स्पष्ट हैं। प्रचेष्टनी नाड़ी 'अनुजंघिका' नामकी है।

---

१ Soleus। २ Plantaris। ३ Popliteus। ४ Flexor Hallucis Longus।

पादांगुलिसंकोचनी दीर्घा[१]—नाम की पेशी (८७।९३ चित्रो में) जंघास्थिके पीछे है और जंघास्थिके मध्यनलकके पृष्ठसे उत्पन्न हुई है। इसकी कण्डरा अन्तर्गुल्फकी पश्चिम सीतामे जवानुगा पेशोकी कण्डराकी सहचरी बनकर पूर्वकी भांति स्नायु पट्टिकासे ढंपी है। यह पादतलमे पूर्वोक्त पेशीको तिरछे रूप में उल्लंघन करके चार कण्डराओंमे विभक्त हो जाती है। ये चार कण्डरायें पादांगुलि सङ्कोचनी ह्रस्वाकी चार कण्डराओंका भेदन करके चार पादांगुलियोके अग्रिम पर्वमूलोंमे लगती है। इसका कार्य्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'अनुजंघिका' नामकी है।

जङ्घानुगा[२]—नाम की पेशी (९३ चित्र) पूर्वोक्त पेशियो के बीच में गम्भीर भावसे रहती है और देखनेमे शरपुङ्खाकार और मांसला है। यह जंघास्थि के काण्डपृष्ठसे और अनुजंघास्थिके काण्डान्तराल से दो मूलों द्वारा उत्पन्न होती है। इसके दोनो मूलोके बीचमे सम्मुखकी ओर 'अग्रजंघिका' नामकी धमनी और सिरा निकली है। शेषमे इन दोनो मूलोंके मिल जाने पर नीचे जंघान्तराला कलामें भी एक दूसरा प्रभव स्थान दीखता है। इसकी कण्डरा अन्तर्गुल्फकी पश्चिमस्थ सीतामे फैली हुई पूर्वकी भांति स्नायुपट्टिका से ढापी जाती है और नौनिभ तथा अन्त.कोणकमे लगती है। इसकी कण्डराके और भी शाखा निवेश हैं, जो दो कोणकास्थियों मे, पार्ष्णिमें और घनमे एवं द्वितीया-तृतीया तथा चतुर्थ मूलशलाकाओंके मूलोंमें बन्धती है। इसका कार्य्य पदतलका आकर्षण और पावका अन्तर्निवर्त्तन है। शरीरभारको ग्रहण करने के लिए पादान्तरीय सीमाको धनुषके समान वक्र रूपमे धारण करती है। इसकी प्रचेष्टनी नाड़ी 'अनुजङ्घिका नामकी है।

जंघाकी बहिःसीमास्थित पेशियां

यहां दो पेशियां हैं। यथा—

पादविवर्त्तनी दीर्घा[३]—नाम की पेशी (९० चित्र) अनुजङ्घास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त से और मध्यनलक के पार्श्व से उत्पन्न हुई है। इसका मूल जंघान्तराला कला मे भी बन्धा है। यह बहिर्गुल्फ की पश्चिमस्थ सीतामें और घन नाम की कूर्चास्थि में स्थित सीतामें फैलकर, पादतलको तिरछा लांघकर

---

१ Flexor Digitorum Longus, २ Tibialis Posterior, ३ Peroneus Longus.

अन्त.कोणक में और अंगुष्ठमूलशलाका की मूल मे लगती है। इसका कार्य्य पादतल का सङ्कोचन और पांव का वहिर्विवर्त्तन है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'पुरोजांघिका उत्ताना" नामकी है।

पादविवर्त्तनी ह्रस्वा[1]—नामकी पतली पेशी (६० चित्र) अनुजंघास्थि काण्डके वहिस्तलसे उत्पन्न होकर पूर्वकी भांति सीता द्वारा गुजरके कनिष्ठा-मूलशलाकाके मूलपृष्टमें वन्धी हैं। इसका कार्य्य पादतल का संकोचन करना और थोडा-सा वाहरको मोड़ना है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

इस प्रसङ्गमें तीन स्नायुपट्टिकाये भी देखनी चाहिये। ये गम्भीर प्रावरणी के ठोस अंशसे वनी है और जंघाके सम्मुखमें एवं अन्तः ओर वहि सीमा में स्थित कण्डराओंको धारण करती है। इनके नाम—ऊर्ध्वगुल्फिका, गुल्फ स्वस्तिका और अन्तर्गुल्फिका हैं। इनमे प्रथम पट्टिका गुल्फोंके ऊपर रहती हुई जंघास्थि एवं अनुजंघास्थिमे आड़े रूपसे वन्धी है। यह पृथक्-पृथक सुरङ्गा-ओंमे घुसी हुई पूर्वोक्त जघापुरोगा कण्डराओंको ढांपती और वाधती है। दूसरी गुल्फस्वस्तिका नामको स्नायुपट्टिका स्वस्तिकके आकार की अथवा सन्दंश के आकार की है। यह गुल्फ सन्धि के सम्मुख और वाहरमे वन्धी है। यह पूर्वोक्त पेशियोंको और सिरा-धमनी-नाडियों को सम्मुख से धारण करती है। तीसरी अन्तर्गुल्फिका नामकी स्नायु पट्टिका पार्ष्णि और गुल्फके अन्तरालमे वन्धी हैं। यह उससे निचली अस्थि भूमिको सुरङ्गाओंमे विभक्त करती है। इन सुरङ्गाओं द्वारा दीर्घा पादाङ्गुष्ठसङ्कोचनी, पादांगुलिसङ्कोचनी और जंघानुगा—इन तीन पेशियोंको कण्डराओंके अन्तिम छोर और पश्चिमजाघिका नामकी सिरा-धमनी और नाड़ियां आगे पहुंचती है।

पाद पेशिया।

पैरकी पेशियां उन्नीस हैं। यथा—पादपृष्ठ मे एक, पादतलमे—चार स्तरों मे विभक्त अट्ठारह।

इनमे पादपृष्ठ की एक पेशी—

पादांगुलि प्रसारणी ह्रस्वा[2]—नाम की है (६० चित्र), दीर्घा पादांगुलिप्रसारणी की कण्डराओं से आच्छादित है। यह पार्ष्णि नाम की

---

१ Peroneus Brevis २ Extensor Digitorum Brevis.

कूर्चास्थि के सम्मुख एवं पार्श्व भागसे तथा पार्ष्णि और कूर्चास्थिको जोडने वाली वाह्य स्नायुसे उत्पन्न होकर कण्डरान्त द्वारा पादपृष्ठमे तिरछी फैलकर चार कण्ड-रामुखोंमे विभक्त है। उन कण्डरामुखोंमेसे प्रथम अंगुष्ठके पश्चिम पर्व पृष्ठमे बंधा है, और शेष तीन पादागुलि प्रसारणी दीर्घाकी तीनो कण्डराओंमें बन्धे है। इसका कार्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'पुरोजंघिका' नामकी है।

पादतलमे रहने वाली सब पेशिया 'पादतलिका' नामकी; गम्भीर प्रावरणीसे ढांपी एवं धारण की जाती हैं। जिसकी मूल पार्ष्णिके अन्तरार्बुदमे बन्धी है और जो तीन शाखा वाली है। इनमे मध्यमा शाखा सबसे दृढ़ मूलमे रज्जुके आकारकी और आगे से पत्तेके आकार की है। यह पाच शाखाओ द्वारा पाचों अंगुली मूलो में बन्धी है। पार्श्वोंमे रहने वाली दो शाखायें पार्श्विक पादपेशियोकी रक्षा करने वाली ओर पाद पृष्ठिका नामकी गम्भीर प्रावरणीसे मिली हैं।

पादतलके प्रथम स्तरमे तीन पेशियो है। यथा--

पादांगुष्ठापकर्षणी[१]—नाम की पेशी (६१ चित्र) पादकी अन्तः-सीमामे शरपुङ्खके आकारकी है। यह पार्ष्णिके अन्तरार्बुद से 'आन्तरवलयिका' नामकी स्नायुसे और 'पादतलिका' नामकी प्रावरणीसे उत्पन्न होकर पादागुष्ठके पश्चिम पर्वकी आन्तर सीमामे बन्धी है। इसका कार्य्य इसके नामसे स्पष्ठ है। प्रचेष्टनो नाड़ी आन्तरा पादतलीया' नामकी है।

पादांगुलिसंकोचनो ह्रस्वा[२]—नामकी मोटी और बीचमे मांसला पेशी (६१ चित्र) पादतलके मध्यमे पादतलिका नामकी प्रावरणीसे लगी हुई है। यह कण्डरासूत्र द्वारा पार्ष्णितलके सम्मुख भागसे उत्पन्न होकर आगे चार कण्डराओं द्वारा चारों पादागुलियोंके मध्यपर्वोंमे बन्धती है। और इन कण्डराओका भेदन करके पादागुली सङ्कोचनो दीर्घा की कण्डरायें फैली है। इसका कार्य्य इसके नाम से स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भाँति है।

पादकनिष्ठापकर्षणी[३]—नामकी पतली मांसला पेशी (६१ चित्र) पादतलकी वाह्य सीमामे रहती है। यह पार्ष्णि के पार्श्व से, और पादतलिका

१ Abductor Hallucis २ Flexor Digitorum Brevis ३ Abductor Minimi Digiti

नामकी प्रावरणोसे उत्पन्न होकर पादकनिष्ठाके पश्चिम पर्वमे वन्धी है। इसका कार्य्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी बाह्य पादतलीया नामकी है।

[८० चित्र]

पादतल के प्रथम स्तर की पेशियां।
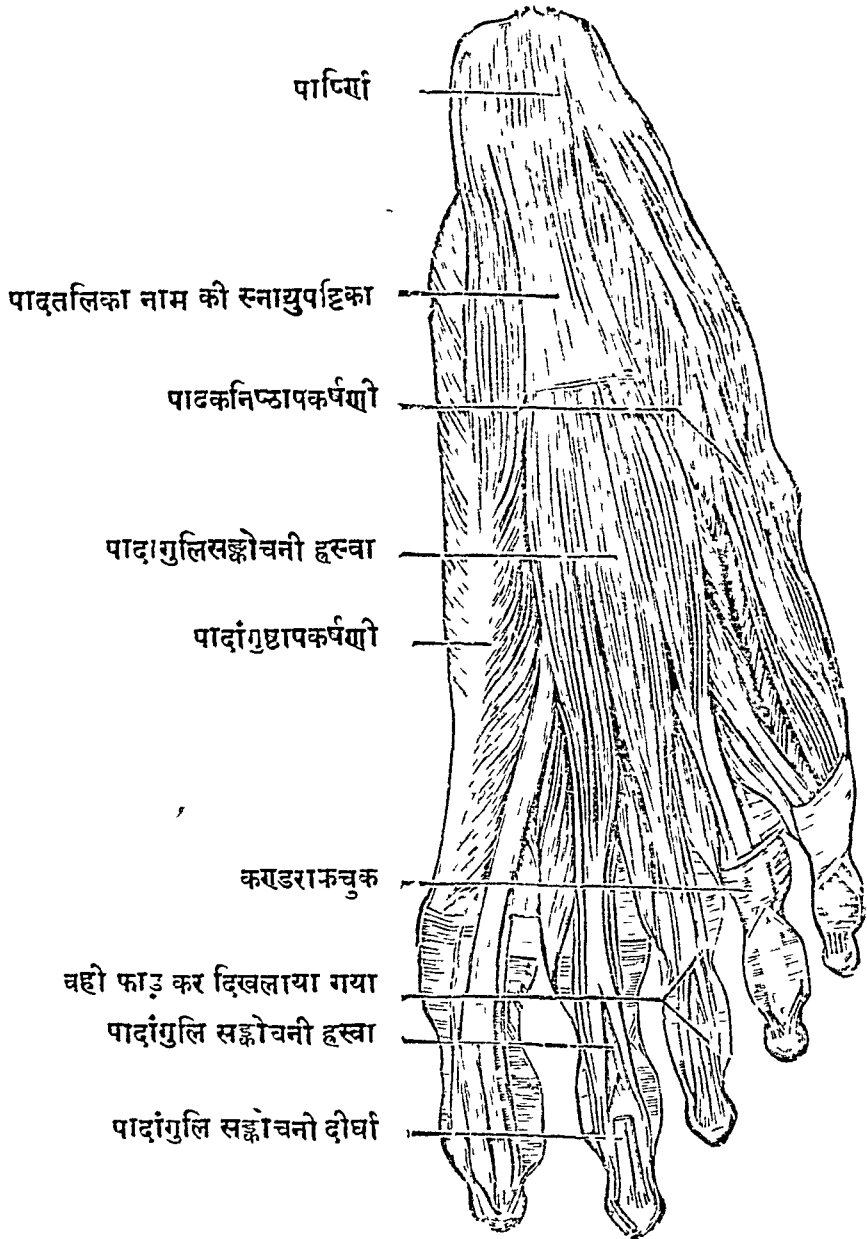
पादतलके द्वितीय स्तरमें पांच पेशियां हैं। यथा—

पादतलचतुरस्रा[1]—नामकी प्रायः चौकोर मांसला पेशी (६२ चित्र) पार्ष्णितलसे दो मूलों द्वारा और दीर्घा पादतलिका नामकी स्नायु से उत्पन्न हो कर दीर्घा पादांगुलिसङ्कोचनी पेशीकी कण्डरामें बन्धी है। इसका कार्य्य दीर्घा पादांगुलि सङ्कोचनीके तिरछे आकर्षणको सीधा बनाना है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'बाह्या पादतलीया नामकी है।

(६२ चित्र)

पादतल के दूसरे स्तर की पेशियां।

1 Quadratus Plantae,
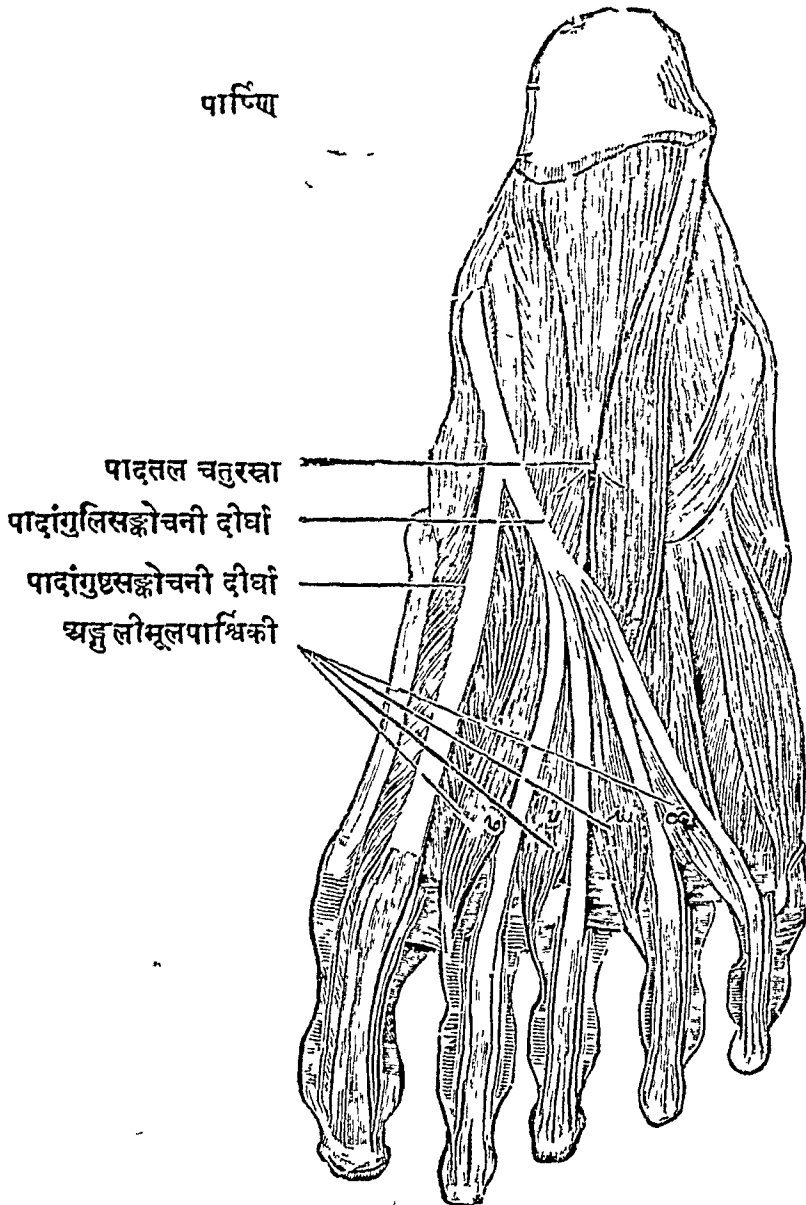
अनुकण्डरिका[२]—नामकी चार जलौकाके आकारकी पेशियां (९२ चित्र) है। ये दीर्घा पादांगुलिसङ्कोचनी के चार कण्डराओंके प्रान्तो से उत्पन्न होकर पादांगुलि मूलोंको तिरछा लांघ कर कण्डराओं द्वारा अंगुलियों के पश्चिम पर्व पृष्ठोंमें लगी तथा पादांगुलि प्रसारणी दीर्घाके कण्डरान्तोंके साथ बन्धी हैं। इनका कार्य्य पादांगुलियोंके पश्चिम पर्वोंका आकर्षण करना और अंगुलियों के संकोच कालमे प्रसारणी कण्डराओंको शिथिल करना है। इनकी चेष्टा आन्तर पादतलीय नाड़ीकी शाखाओंसे होती है।

पादतलके तृतीय स्तरमे तीन पेशियां है। यथा—

पादांगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा[२]—नामकी पेशी (९३ चित्र) शरपुङ्ख के आकारकी है और पादांगुष्ठके साथ साथ रहती है। यह घन और बाह्य कोणक कूर्च्चास्थियोसे और जंघानुगा पेशीकी कण्डरासे उत्पन्न होकर पादांगुष्ठके पश्चिम पर्वके मूलमे दोनो तरफ दो कण्डराओं द्वारा बन्धी है। और उन कण्डराओमे से एक पादांगुष्ठ प्रकर्षणी की कण्डरासे मिली है, और दूसरी पादांगुष्ठाऽपकर्षणी की कण्डरासे मिली है। इसका कार्य अपने नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी 'आन्तरा पादतलिका नामक की है।

पादांगुष्टप्रकर्षणी[३]—नामकी ह्रस्वाकार पेशी (९३ चित्र) दो भागो से उपलक्षित है। इनमें से एक भाग लम्बा और तिरछा है यह तीन मध्यस्थमूल-शलाकाओंके मूलोसे और पादविवर्त्तनी दीर्घाके कण्डराकञ्चुक से उत्पन्न होकर पादांगुष्ठके पश्चिमपर्व मूलके बहिःपार्श्वमे लगता है। दूसरा भाग पतला है और अंगुलीमूलोमें आड़े रूपसे लगता है। यह मूलशलाकाओंको जोड़ने वाली स्नायु से उत्पन्न होकर पूर्व की भांति लगता है। इसका कार्य्य पादांगुष्ठको मध्यरेखाकी ओर आकर्षण करना है। प्रचेष्ठनी नाड़ी "बाह्या पादतलीया" नामकी है।

कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा[४]—नामकी पेशी (९३ चित्र) कनिष्ठामूल शलाकाके मूलसे उत्पन्न होकर पादकनिष्ठाके पश्चिम पर्व मूलमें बन्धी है। इसका कार्य्य इसके नामसे स्पष्ट है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

---

१ Inter-ossei २ Flexor Hallucis Brevis. ३ Adductor Hallucis
४ Flexor Minimi Degiti Brevis

[६३ चित्र]
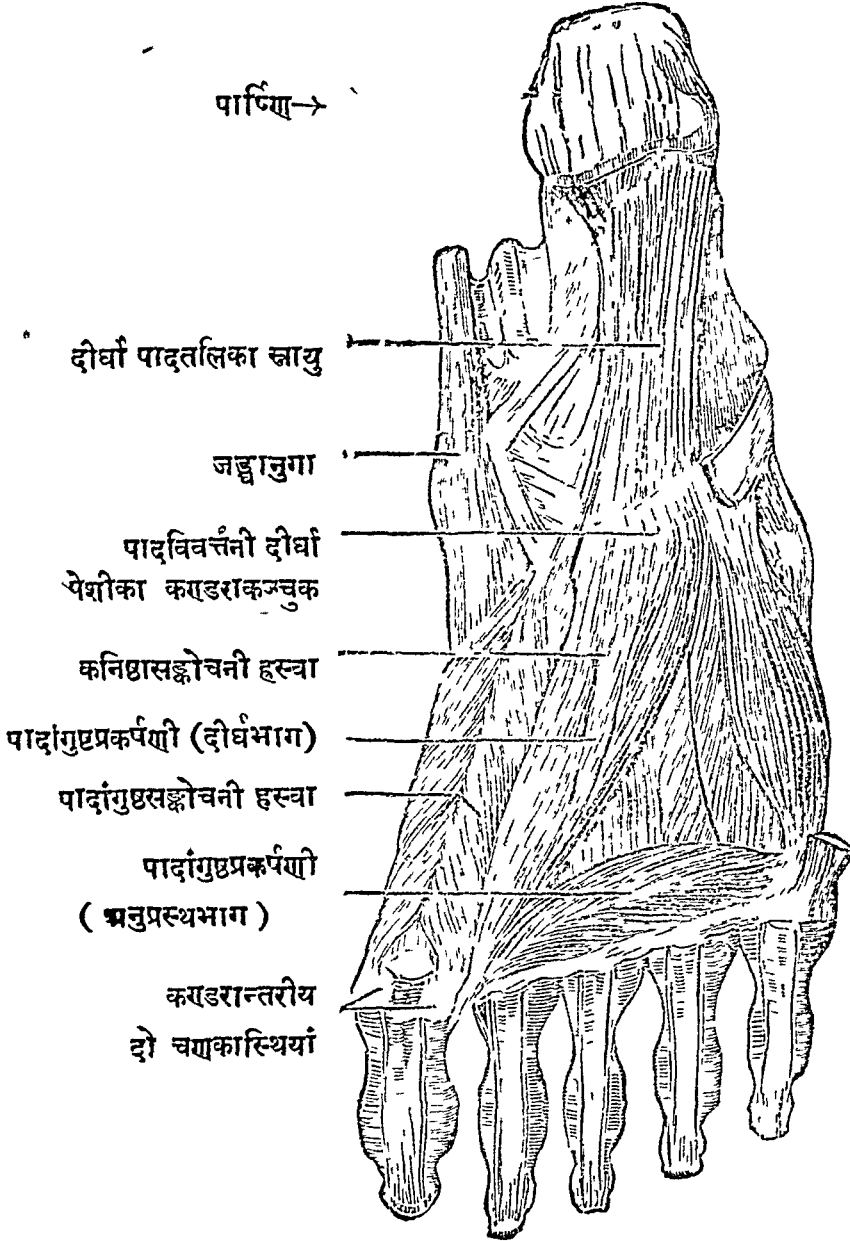
पाद्तल के तृतीय स्तर की पेशियां।

पादतलके चतुर्थ स्तरमें "शलाकान्तरीया" नामकी सात पेशियां है। इनमें तीन अधरा और चार उत्तरा हैं।

अधरा शलाकान्तरीया[१]—नामकी तीन पतली पेशिया पादतलकी ओर मुख किये हुई हैं। ये कनिष्ठादि तीन मूलशलाकाओंके आन्तर पार्श्वों से उत्पन्न होकर उन्हीं अगुलियोंके पश्चिम नलकोके पार्श्वों मे वन्धती हैं। इनका कार्य्य कनिष्ठादि तीन अंगुलियोंको मध्यरेखाकी तरफ खींचना है। प्रचेष्टनी नाड़ी "वाह्या पादतलीया" नामकी है।

उत्तरा शलाकान्तरीया[२]—नाम की चार पतली पेशियां पादपृष्ठकी ओर मुख किये हुई है। ये पेशियां मूलशलाकाओंके अन्तरालमे स्थित हैं। इन चार पेशियोंके प्रत्येक के दो दो मूल है जो कि अपने दोनों पार्श्वों मे रहने वाली मूल-शलाकाओंके पार्श्वों मे लगते हैं। ये शरपुङ्खाकारसे फैली मांसतन्तुओंसे वनी है और सम्मुखमें कण्डरा वनकर इस प्रकारसे लगी है—तर्जनीके पश्चिम पर्वके पार्श्वों मे दो, मध्यमा और अनामिकाके पश्चिम पर्वों के आन्तर पार्श्वोंमें एक-एक। इनका कार्य्य चारो पादांगुलियोंका अपकर्षण है। प्रचेष्टनी नाड़ी पूर्वकी भांति है।

इस प्रकारसे अधः शाखाकी सव पेशियोंका वर्णन हो गया।

"कर्कशं कीकसं येन
मांसलीभूय शोभते।
वलमूलं क्रियामूलं
पेशीजालं तदोरितम्॥"

अर्थात्—मनुष्यका कर्कश अस्थिकंकाल जिनके द्वारा मांसल होकर शोभित रहता है, शरीरके वल और क्रियाओंकी मूल उन पेशियोका वर्णन समाप्त हुआ।

---

१ Dorsal Interossei २ Planter Interossei

प्रत्यक्षशारीर ।
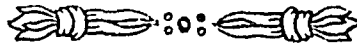
धमनीखण्ड ।

प्रथम अध्याय ।

="रस रक्त संवहक सामान्य विज्ञानीय"=

रक्त[1]—सम्पूर्ण धातुओं का पोषण करने वाला शरीरका सार भाग है। रस ही रञ्जक पित्त द्वारा परिवर्त्तित होकर रक्त होता है, यह पहिले कह चुके है। परीक्षक लोग इसका वजन शरीरके वजनका बारहवां या तेरहवा भाग मानते हैं।

रक्त पांचभौतिक पदार्थ है परन्तु प्रधान रूपसे इसके उपादान दो प्रकारके है—एक आप्य (जलीय) और दूसरा पार्थिव। इनमे आप्य भाग—जलकी भांति स्वच्छ एवं तरल है, जिसका नाम 'लसीका'[2] है। जमे हुए रक्तसे पृथक होने पर इसीके कुछ परिवर्त्तित रूपको 'रक्तमस्तु'[3] कहते है। पार्थिव भागमे तीन प्रकार की विशेषताये अणुवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे दिखलायी पड़ती है। यथा—'रक्तकणिका',[4] 'श्वेतकणिका'[5] और 'अणुचक्रिका'[6]। इनमें रक्तकणिकायें सूक्ष्म गुलिकाके आकारकी एवं संख्यामे श्वेतकणिकाओंकी प्रायः पांच सौ गुणा होती हैं। ये रक्तके लाल रङ्गका आधार हैं। श्वेतकणिकायें प्रायः बड़ी हैं और सदा ही आकृति बदलती रहती है। ये रूईके टुकड़ेके समान दीखतो है। ये रक्तकणिकाओं की रक्षा करने वाली एवं अनिष्ट वस्तुको ग्रास करने वाली हैं। अणुचक्रिकाये संख्यामें थोड़ी, अतिसूक्ष्माकृति तथा चपटी चक्रिकाके आकारकी हैं।

रक्त हृदय को केन्द्र रखकर धमनियों, जालको और सिराओंमे क्रमश. वहता है। रक्त पहिले हृदय द्वारा धमनियोंमे और धमनियोंसे जालकोंमे फेंका जाता

---

१ Blood २ Lymph ३ Serum. ४ Red Corpuscles. ५ White Corpuscles. ६ Blood Platelets.

हैं। फिर हृदय ही जालकों से उस रक्तको सर्व शरीर गत सिराओं के द्वारा अपनी ओर खींचकर संग्रह करता है। रक्तका "लसीका" संज्ञक कुछ थोड़ा-सा-पतला स्वच्छ भाग, सम्पूर्ण शरीरके अन्दर धातुओं के पोषणके लिये, जालकों से हर वक्त चूता रहता है।

धमनी[१]—रक्तको हृदयसे वहिर्मुख ले जाने वाली प्रणालियां है। ये जीवित शरीरमें लाल रङ्गकी और रक्त पूर्ण दीखती हैं किन्तु मृत शरीरमे श्वेत रङ्ग की और थोथी होती है। इनकी दीवार मोटी और किञ्चित कठिन पर्शवाली होती है। सभी धमनियोंमे उज्ज्वल लाल रक्त बहता है परन्तु "फुस्फुसाभिगा" धमनी और उसकी शाखाओं मे सिराओं से लाया हुआ अशुद्ध रक्त बहता है। यह धमनी उस रक्तको प्राणवायुसे शोधित करानेके लिये अपनी शाखा प्रशाखाओ द्वारा दोनों फुस्फुसोंमे ले जाती है।

सिरा[२]—हृदयकी ओर रक्तको ले जाने वाली प्रणालियां हैं। ये नीले रङ्गकी पतली दीवार वाली एवं कोमल होती है। इनमे सर्वत्र किञ्चित श्याम झाँई वाला रक्त वहता है परन्तु 'फुस्फुसोत्था' सिरायें फुस्फुस द्वारा शोधित उज्ज्वल लाल रक्तको हृदयकी ओर ले जाती है—यही विशेषता है।

धमनियोंका नाम करण कहीं पर उनकी परिस्थितिके कारण है यथा—'अक्षकाधरा"। कहीं पर पोषणीय अवयवके नामसे—यथा "अनुमस्तिष्का"। कहीं यदृच्छा से—यथा "महामातृका"। सिराओं का नाम करण भी इसी प्रकार किया गया है।

धमनियों और सिराओं का निर्माण तीन तीन प्राचीरिकाओं से होता है। इनमें वाह्याप्राचीरिका[३] स्नायुसूत्रों से बनी हुई, नलिकाकृति और अन्य प्राचीरिकाओंको धारण करने वाली है। "मध्यप्राचीरिका"[४] स्वतन्त्र पेशीतन्तुओं से वनी, नलिकाकृति और आकुञ्चन प्रसरणशील है। 'आभ्यन्तरी प्राचीरिका'[५] पतली कला या झिल्लीसे वनी है। यही प्राचीनोंकी 'रक्तधरा' नामकी कला है। यह स्थितिस्थापक गुण वाले सूक्ष्म स्नायुसूत्रोंसे घिरी है। इनमे से वाह्या और मध्यमा प्राचीरिकायें सिराओंमे पतली, और धमनियोंमे मोटी होती हैं, विशेषतः मध्यम आकार वाली धमनियों मे। मध्यमा प्राचीरिकामे भी स्थितिस्थापक गुण वाले वहुतसे स्नायु सूत्र हैं। सबसे वाहर सिरा-धमनियोको घेरने वाले एक प्रकारके

१—Arteries २—Veins ३ External Cout or *Tunica Adventitia* ४ Middle. Coat or *Tunica Media* ५ Internal coat of *Tunica Intima*

कञ्चुक है, जो कि शिथिल स्नायु सूत्रोंसे बने दिखायी देते है। ये प्रायः स्थूल सिरा धमनियोंको धारण करते है। इनके नाम यथा स्थान सिराकञ्चुक[1] और धमनीकञ्चुक[1] कहे गये है।

विशेषतः सिराओंके अन्दर थोड़ी-थोड़ी दूर पर स्वयं गिरने वाली कपाटिकायें[2] भी दिखायी देती है। ये हृदयकी ओर जाने वाले रक्तकी पश्चात् गतिको बनावटके कौशलसे रोकती है। इनका नाम 'सिराकपाटिका' है।

जालक[3]--सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिरा-धमनियोंके जालोंसे बने हुए स्रोत हैं। ये सम्पूर्ण शरीरमे वृक्षके पत्रकी प्रतानोंकी भांति फैले हुए हैं। क्रमशः विभक्त होती हुई धमनियोंकी सूक्ष्मतम शाखाओंके और सूक्ष्मतम सिराजालोंके मिलनेसे जालक बनते हैं। ये प्रायः रक्तधर कलासे निर्मित है। इनसे रक्तका पतला स्वच्छ 'लसीका' भाग बूंद बूंद चूता हुआ सम्पूर्ण शरीरका पोषण करता हैं। जालकोंमे बचा हुआ मलिन रक्त, हृदयकी ओर जानेके लिए सूक्ष्म सिरामार्गों द्वारा स्थूल स्थूलतर सिराओंमें प्रविष्ट हो जाता है। धातुओंके पोषण करनेसे बची हुई लसीका अन्तमे रसायनी मार्गों द्वारा सिरा मार्गमे ही प्रविष्ट हो जाती है-यह आगे कहेंगे।

कहा भी है—"ध्मानाद् धमन्यः, स्रवणात स्रोतांसि, सरणात् सिराः" इति (चरक० सूत्र ३० अ०)। अर्थात "ध्मान करती है—इसलिये धमनी नाम है।" (यहांपर ध्मान शब्दका अर्थ रक्तका बलपूर्वक विक्षेपण है) "स्रवण अर्थात् चूना इनमेंसे होता है इसलिये "स्रोतः" नाम है।" (स्रोतः शब्द यहांपर जालकका पर्याय वाचक है।) "सरण (अर्थात् इनमें रक्तका मृदुगतिसे चलना) होता है—इसलिये सिरा नाम है।"

रसायनियोंका वर्णन आगे पृथक अध्यायमे किया जायगा।

√**हृदय**[4]—रक्तका संग्रहण और प्रेरण यन्त्र है, जो कि उरोगुहामे रहता है। यह पेशी-कोषमय एवं चार प्रकोष्ट वाली थैली सी है। यह आगे कहेंगे कि हृदय ही सङ्कोच और विस्फारकी नियमित क्रियासे रक्तको पृथक्-पृथक् प्रकोष्ठों द्वारा खींचता और फेंकता है। इसका दक्षिणार्द्ध ऊपरके भागसे सम्पूर्ण शरीरके सिरारक्तको उत्तरा और अधरा महासिराओ द्वारा खीचता है, और खींचे हुए रक्त को अधर प्रकोष्ठ फुस्फुसाभिगा धमनी द्वारा फुस्फुसोंमे (वायुके संयोगसे विशोधित होनेके लिये) प्रेरित करना है। इसका वामार्द्ध ऊपरके भागसे फुस्फुस से

१—Sheaths २—Valves, ३—Capilaries, ४—Heart.

फुस्फुससे उत्पन्न होनेवाली चार सिराओं द्वारा शोधित रक्तको उत्तर प्रकोष्ठमें खींचता है, और खींचे हुए रक्तको अधर प्रकोष्टसे सम्पूर्ण शरीर में महाधमनी द्वारा प्रेरित करता हैं। महाधमनी सम्पूर्ण शरीरके पोपणके लिये क्रमशः शाखा प्रशाखाओंमे विभक्त होती हुई जालकोंमें समाप्त होती है और जालकोंमें बचा हुआ रक्त सूक्ष्म सिरामार्गोंमे घुसता है। उनमेंसे संगृहीत होता हुआ रक्त उत्तरोत्तर स्थूल सिराओं द्वारा दो महासिराओं में पहुचता है और अन्तमें वहांसे हृदयमे पहुंच जाता है। इस प्रकार रक्तके निरन्तर आने जाने का नाम **रक्त संवहन**[1] है।

इस रक्त संवहन को शरीर शास्त्रके पण्डित दो प्रकारसे विभक्त करते हैं—एक सामान्यकायिक, और दूसरा फौस्फुस। इनमे सामान्यकायिक रक्त हृदयमें जाता है और फिर वहांसे सम्पूर्ण शरीरमे पहुंचा करता है—इसको सामान्यकायिक[2] रक्तसंवहन कहते हैं। परन्तु रक्त हृदयके दक्षिणार्द्धसे फुस्फुसमें जाता है, वहां वायुकोषोंके चारों ओर स्थित जालकोंमे फैलता हुआ वायुके संयोगसे शुद्ध होता है, और फिर हृदयके वामार्द्धमें आ जाता हैं—यह फौस्फुस रक्तसवहन कहाता है। सूक्ष्म दृष्टिसे इन दोनोंको अलग नहीं किया जाता, कारण—ये दोनों प्रकारके रक्त संवहन परस्परकी अपेक्षा रखते है।

कुछ विद्वान यकृत[3] रक्तसंवहनको भी पृथक् मानते हैं क्यों कि यह मिश्रित रस और रक्तका संवहन है। यह सम्पूर्ण शरीरके रक्त संवहनका पोषण द्वार है—यह आगे कहेंगे।

रस संवहन।

रस संवहन दो प्रकार का है—भुक्त - रस संवहन और लसीका - संवहन। इनमें—भुक्त रस के सौम्य और आग्नेय भेद से दो प्रकार के होने के कारण **भुक्तरस संवहन**—दो प्रकारका है। भुक्त द्रव्य दो प्रकारके होते हैं—सौम्य और आग्नेय। ये अपने गुणकी प्रधानता से दो प्रकारके रसको उत्पन्न करते हैं। इनमे दुग्धादि सौम्य वस्तुओंका रस सौम्य, पतला और मण्डके आकारका होता है, यह अन्त्रोंमेंसे सूक्ष्म रस स्रोतों द्वारा खींचा जा कर पृष्ठवंश के सम्मुखमें स्थित "रसप्रपा" मे प्रविष्ट होता है और वहांसे वामा "रसवाहिनी कुल्या" द्वारा गलमूलिका सिरामें पहुंचता है, वहांसे उत्तरा महासिरामे और उसके द्वारा

---

१ Circulation of Blood. २ General circulation. ३ Pulmonary circulation.

हृदयमें जाता है—इसका नाम सौम्य रससवहन है। दूसरा रस रोटी, मांस आदि आहारसे उत्पन्न होता है, यह आग्नेय रस है। यह आमाशय और पक्वाशय के चारों ओर फैले सूक्ष्म स्रोतोंके द्वारा खीचा जाकर और प्लीहा आदि से आये हुए रक्तसे मिलकर 'प्रतीहारिणी' नामकी महासिरा द्वारा यकृत्में पहुंचता है और यकृत् मे प्रविष्ठ होने पर यकृत्के निर्माण कौशल और प्रभावसे वहाके सूक्ष्म सिराजालको के द्वारा पचता है और विष रहित हो जाता है। फिर वहांसे अन्य सूक्ष्म सिराओं के द्वारा सगृहीत होकर याकृती सिराओंमे और उनमें से अधरा महासिरा में, और फिर वहांसे हृदयमें प्रविष्ट होता है—यह आग्नेय या याकृत रससंवहन[1] है। इस प्रकार रस और रक्तके मिलने से एवं रसके रक्तमें परिवर्तित होनेसे याकृत रस-संवहन को सामान्य रक्त संवहनसे पृथक् ही मानना चाहिये।

लसीका संवहन[2]—जालकों से चूते हुए रक्तका पतला स्वच्छ भाग धातुओंका पोषण करता है। परन्तु इसका जो भाग बच जाता है वह 'रसायनी'-संज्ञक लसीका स्रोतों द्वारा फिर रक्त स्रोतोमे वापस आ जाता है। इसका नाम लसीका संवहन है। यह इस प्रकारसे होता है—शिरोग्रीव दक्षिणार्द्ध की और दक्षिण बाहुको लसीका दक्षिण रसकुल्यामे प्रविष्ट होती है। वह रसकुल्या दक्षिण जत्रुमूलस्थ सिरा सन्धिमे घुसती है और आगे रक्त के साथ मिलकर सिराओं के द्वारा हृदयमे प्रविष्ट होती है। शिरोग्रीव वामार्द्धकी और वाम बाहुकी लसीका वाम रसकुल्या द्वारा वाम जत्रुमूलस्थ सिरा सन्धिमे और फिर सिराओके द्वारा हृदयमें प्रविष्ट होती है। जत्रुसे नीचे शरीरके सम्पूर्ण भागकी लसीका पूर्वोक्त रसप्रपामे ही प्रविष्ट होती है। अन्त्रोंसे आई हुई 'पयस्विनी'[3] नामकी सूक्ष्म प्रणा-लिकायें भी रसप्रपामें ही प्रविष्ट होती है। इसका विशेष वर्णन 'रसायनी' वर्णन मे स्पष्ट होगा।

इस प्रकार सञ्चरण करती हुई लसीका रसायनियोमे फैलती है। इनके मार्गोंमे गुञ्जा, मटर या निम्ब फलोके आकारकी मार्ग-रक्षक ग्रन्थिया दिखायी देती हैं। ये प्रायः, ग्रीवा, कक्षा, वक्षण आदि प्रदेशो मे, उदर एव उरसके अन्दर और पृष्ठ वंशके सम्मुख विशेष रूपसे दिखायी पड़ती है। इनका नाम 'रसग्रन्थि'[4] या 'लसीका ग्रन्थि' है।

१—Portal Circulation २—Lymph-circulation, ३—Lacteals
४ Lymphatic glands,

ये दोनों प्रकारके रससंवहन रक्तसंवहनसे घनिष्ट सम्बन्ध रखते है एवं परिणाममे उसीके अन्तर्भूत हो जाते है। इसीलिए प्राचीन आचार्योने हृदयको कहीं पर रसवह स्रोतोका और कही पर रक्तवह स्रोतोका मूल कहा है क्योंकि प्राचीनोके वचनोंमे रस शब्द बहुधा रक्तका वाचक है।

गर्भस्थ शिशुके रक्तसंवहनका वर्णन आगेके अध्यायमे आवेगा। रस रक्त संवहनका सामान्य विज्ञान यहा पर बीज रूपसे कहा गया, विस्तारसे आगे कहेंगे।

द्वितीय अध्याय ।

उरो हृदय वर्णनीय ।

उरःपञ्जर उरोगुहाका आधारभूत है, इसका वर्णन पहले हो चुका है। इसका आभ्यन्तर आयतन पूर्णरूपसे बाह्य आयतनका अनुसरन नहीं करता, क्योंकि इसका तलदेश कूर्मपृष्ठ महाप्राचीराके द्वारा बना है और फुस्फुसके शिखर दोनो गलमूल तक फैले हैं। इसीलिये इसका अधोभाग संकुचित है और ऊर्ध्वभाग बढ़ा हुआ है। इसका आयतन उच्छ्वास एवं नि.श्वासके समय सदा बदलता रहता है, क्योंकि महा-प्राचीराके साथ पर्शुकायें और उपपर्शुकायें सदा ही ऊपर नीचे गतिशील रहती है।

उरोगुहामें चार अवयव प्रधान हैं— मध्यमें महाधमनी और सिराओंके साथ हृदय। दोनो पार्श्वोंमे श्वासनलिकासे मिले दो फुस्फुस। पीछे अन्ननलिका।

फुस्फुसान्तराल[१]—नामका अवकाश उरःफलकके पृष्ठसे पृष्ठवंश के सम्मुख भाग तक है। वर्णनकी सुगमताके लिए शारीर शास्त्रके पण्डित इसको (कल्पना से ही) चार अवकाशोमे विभक्त करते है। उनमें उत्तर और अधर अवकाशके भेदसे प्रथमत. दो प्रकारका विभाग है। इनमें अधर फुस्फुसान्तराल फिर अग्रिम, मध्यम और पश्चिम नामक तीन प्रदेशोमे विभक्त हैं। अतः उत्तर, अधराग्रिम, अधरमध्यम और अधरपश्चिम—ये चार फुस्फुसान्तराल माने जाते हैं।

इनमे उत्तर फुस्फुसान्तरालमे दर्शनीय वस्तु ये है—तीन प्रधान शाखाओं सहित तोरणी महाधमनी, उत्तर महासिराका उत्तरार्द्ध, गलमूलिका नामकी दो सिरायें, प्राणदा नामकी दो नाड़िया, अनुकोष्ठिका नामकी दो नाड़ियां, श्वासनलिका,

१ Mediastinum

अन्ननलिका, रसकुल्या[1] वालग्रैवेयक[2] नामकी ग्रन्थिका (जवानी मे) अवशिष्ट भाग, लसीका ग्रन्थियां और अन्य पेशी, नाड़ी सिराये' आदि है।

अधराग्रिम फुस्फुसान्तराल का स्थान उरःफलकके पृष्ठसे हृत्कोपके सम्मुख भाग तक है। इसमे दर्शनीय 'अन्तस्तलिका' नामकी दो धमनिया, उरःस्था लसीका ग्रन्थिया और 'उरस्त्रिकोणिका' नामकी पेशी हैं।

अधरमध्यम फुस्फुसान्तराल मे- हृत्कोषसे घिरा हुआ हृदय, आरोहिणी महाधमनी, उत्तर महासिराका अधरार्द्ध, श्वासनालके विभक्त होते हुए दो काण्ड, फुस्फुसाभिगा धमनी (दो शाखाओमें बटी हुई), फुस्फुसीया सिराये', अनुकोष्ठिका नामकी दो नाड़ियां, और उरोमध्यमे स्थित लसीका ग्रन्थिया है।

अधरपश्चिम फुस्फुसान्तरालमें दर्शनीय—अवरोहिणी महाधमनी, अन्ननलिका रसकुल्या, पुरोवंशिका नामकी दो सिराये', प्राणदा नामकी दो नाडियांः इड़ा और पिङ्गला नामकी महानाड़ियोंके दो उरस्थ भाग, और उरोगुहाके पश्चिमस्थ लसीका ग्रन्थियां हैं।

इस उरोगुहाके ऊर्ध्वद्वारमें सम्मुखसे पीछे तक निम्नलिखित अवयव दिखायी देते हैं—मध्यरेखामें पेसियोंसे घिरा हुआ वालग्रैवेयक ग्रन्थिका अवशिष्ट भाग, श्वासनलिका और अन्ननलिका। इसके दोनों ओर महामातृका नामकी दो मोटी धमनिया, गलमूलिका नामकी दो सिराये, प्राणदा नामकी दो नाडियां, इड़ा और पिङ्गला नामकी महानाड़ियाँ, रसकुल्या, और ग्रीवावंशके सम्मुख स्थित कुछ पेशियां। इनके दोनो पार्श्वोंमे फुस्फुसधरा कलासे घिरे और फुस्फुसशीर्षण्या नामकी गम्भीर प्रावरणीसे ढके हुए फुस्फुसोके शिखर उठे हैं।

यह उरोगुहा फुस्फुसधरा कलाके परिसरीय भाग द्वारा अन्दरसे ढकी हुई है। इस कलाका वर्णन इसके स्थान पर होगा। उरोगुहाका तल महाप्राचीरा पेशीसे बना हुआ तीन छिद्रोंसे उपलक्षित और इसी कला द्वारा घिरा हुआ है। इसका वर्णन महाप्राचीराके वर्णनमे विस्तार रूपसे कर चुके है।

हृत्कोप।

हृदय—उरःफलकके पीछे और नीचे, एवं अधर और मध्यम फुस्फुसान्तरालोंके बीच मे स्थित है। यह स्थूल सिरा और धमनीमूलोंके सहित ही हृदयधर नामके कलाकोषसे ढका रहता है।

हृदयधर कलाकोष—या "हृत्कोष"—दो मोटे स्तरोंसे बना हुआ है। इसका बाह्यस्तर दृढ़ स्नायुसूत्रोंसे बना हुआ एवं शिथिल है। यह हृदयकी दीवारसे नहीं जुड़ता किन्तु उत्तरा महासिराको छोड़कर अन्य स्थूल-सिरा-धमनियोंके मूलोंमे जुड़ा हुआ है, और ऊपर ग्रीवा मध्यकञ्चुक सम्मुखभागसे बन्धा है। नीचे इसका लगभग महाप्राचीराके मध्यपत्रकसे बन्धा हुआ है। इस कलाकोषका आभ्यन्तर स्तर पतली एव चिकनी कलासे बना है। यह एक पार्श्वमें साक्षात् हृदयसे लगा हुआ है और सीमाओंमे बाह्यस्तरसे मिला है। दोनों स्तरों के बीचमे स्वभावसे ही थोड़ी-सी लसीका रहती है। इसके द्वारा चिकना रहनेसे सदा मुद्रण और विस्फारणकी क्रिया करते हुए भी हृदय अपने कोषके स्तरोंसे नहीं घिसता। यही लसीका बढ़ने और गाढ़ी और विकृत होनेपर रोगका कारण होती है, तब हृदयमें बहुत कष्ट होता है एवं क्रियामे बाधा पड़ जाती है। इस कलाकोषका पोषण "अन्तस्तलिका धमनी" और महाधमनोकी पतली शाखाओं से होता है। इसको संज्ञा देनेवाली नाड़िया दोनों प्राणदा, अनुकोष्ठिका, इडा, एवं पिङ्गलाकी सूक्ष्म शाखायें हैं।

हृदय।

हृदय—स्वतन्त्र पेशीसे बना हुआ शून्योदर यन्त्र है (६४ चित्र)। यह नीचेको मुख किये हुए बड़े कमलके मुकुलके समान दिखायी देता है। यह मध्यमाधर फुफ्फुसान्तरालमे बायीं ओर तिरछा स्थित है, और हृदयधर कलाकोष से ढका है। इसका मूलभाग दक्षिण तृतीय उपपर्शुका को उरःफलक सन्धिसे आरम्भ होकर वाम द्वितीय उपपर्शुका की उरःफलक सन्धिके समीप तक फैला है। इसका अग्रभाग बायीं तरफ पञ्चम और षष्ठ पर्शुकाओंके अन्तरालमें मध्य-रेखाके चार अंगुल बाहर की ओर दिखायी देता है, और स्पर्शके द्वारा सदा धड़कता हुआ अनुभूत होता है।

युवा व्यक्तिके हृदयका परिमाण पचीस तोलेसे तीस तोले तक होता है। स्त्रियोंका हृदय छोटा होता है और प्राय बीस तोले या इससे कुछ अधिक होता है। प्राय हृदयकी लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई क्रमशः छ अंगुल, चार अंगुल और तीन अंगुल होती है। हृदय लम्बाईके रूपमें स्थित मध्यवर्ती मांसमय अन्तःप्राचीरक द्वारा दक्षिणार्द्ध और वामार्द्धमे विभक्त है। इनमें दक्षिणार्द्धका अधिक भाग सम्मुखकी ओर एवं वामार्द्धका अधिकभाग पीछेकी ओर है। प्रत्येक आधा भाग मध्यमें आड़े रूपसे स्थित छिद्रवाली प्राचीरसे उत्तर और अधर प्रकोष्ठोमें विभक्त

[६४ चित्र]

हृदय

(महासिरा, महाधमनी आदि सहित)
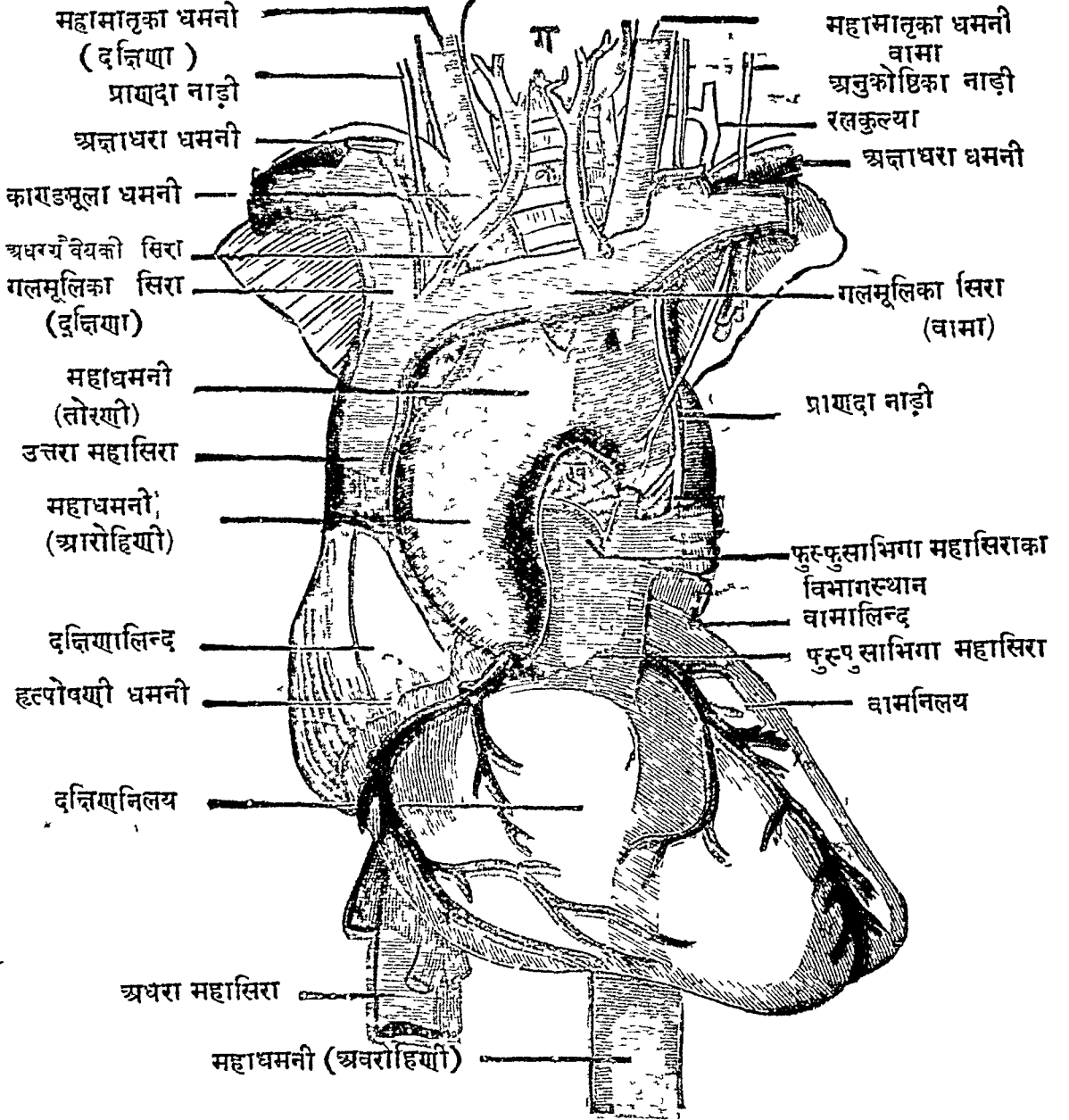
क—क्लोमनलिका (श्वासमार्ग)। ख—उसीका विभाग स्थान। ग—ग्रैवेयक ग्रन्थि।

हो जाता हैं। इनमे उत्तर प्रकोष्ठ को अलिन्द[1] और अधर प्रकोष्ठ को निलय[2] कहते हैं। इस प्रकारसे हृदयके चार भाग हैं यथा—दक्षिणालिन्द, दक्षिणनिलय, वामालिन्द, वामनिलय।

हृदयका वहिर्देश हृत्कोषकी पतली कलासे घिरा हुआ है। यहांपर लम्बाईके रुखमे बाहरसे दीखने वाली दो उथली सीतायें निलयोके वीचमें सामने और पीछे स्थित हैं। इनका नाम 'अधिनिलयिका' है। इनके द्वारा बाहरसे भी दोनों निलयों के वीचमें स्थित अन्तःप्राचीरको जान सकते हैं। सम्मुख और पश्चातमें अलिन्द एवं निलयके विभागको वतानेवाली और दो आड़ी सीतायें हैं। उनका नाम 'अलिन्दनिलयान्तरिका' है। इनमें अधिनिलयिका सीताओंका आश्रय लेकर दोनों वामा और दक्षिणा हार्दिकी नामकी दो धमनी और सिरायें फैलती हैं। अन्य सीताओंके अन्तरालोंमें इनकी शाखायें फैली हैं।

निम्नलिखित विशेषतायें आरम्भमें ही जाननी चाहियें (६४ चित्र)।

दक्षिणालिन्दमें—ऊपर लगी उत्तरा महासिरा, नीचे लगी अधरा महासिरा। दक्षिणनिलयसे ऊपर फैली हुई फुस्फुसाभिगा धमनी। वामालिन्द में प्रविष्ट हुई 'फुस्फुस प्रभवा' चार सिरायें। वामनिलय से ऊपर फैली हुई महाधमनी।

इन सिरा-धमनियोके मध्यमें हृदयके वहिर्देशमें सम्मुखसे दर्शनीय दक्षिण में महाधमनी एवं वाम पार्श्वमें फुस्फुसाभिगा धमनी। इनमें प्रथम दूसरीको अपने तोरण भाग द्वारा गोदमे रक्खे हुये दिखायी देती है। पश्चिममे दर्शनीय—उत्तरा और अधरा महासिरा और हृदयमे घुसती हुई चार फुस्फुस प्रभवा सिरायें।

हृदयके अन्दरकी सब विशेषताओंको भलि-भांति काटकर देखना चाहिये।

हृदयके अन्दरका सम्पूर्ण भाग हृदयान्तरीया नामकी अति सूक्ष्म रक्तधर कला से घिरा है। यह कला सिरा-धमनियोके अभ्यन्तर स्थित रक्तधर कला की हृदय मे अनुवृत्ति है।

अव विस्तारसे कहते है :—

दक्षिणालिन्द[3]—पतली मासल दीवार और वामालिन्दसे कुछ अधिक आयतन वाला है। इसके अन्दरकी गुहा प्राय. पांच तोला रक्तको धारण करती है। इसके दो भाग है— अलिन्दशीर्षक और अलिन्दोदर। इनमे प्रथम ऊपर स्थित

१ Auricle. २ Ventricle ३ Right Auricle

है, और कङ्कतिका नामकी क्षुद्र पेशीके गुच्छे से दृढ़ किया हुआ है । अलिन्दोदर हृदयमे प्रविष्ट होनेवाले सिरा रक्त का आयतन है। इसमें ऊपर और नीचेकी ओर उत्तरा महासिरा और अधरा महासिराके द्वार बने हुए दो विशाल छिद्र दिखायी देते है। इनका नाम उत्तर महासिरा-छिद्र और अधर-महासिरा छिद्र है। इनमे अधर-महासिरा-छिद्रके मुखमे स्वयं गिराने वाला सिरा कपाट दिखायी देता है, यह गर्भस्थ शिशुमे विशेष कार्य्यशील होता है। इन दोनो छिद्रोके मध्यमे अलिन्द की आन्तरीय प्राचीरमे छोटी सीपाके आकारका एक खात है, जिसका नाम शुक्ति-खात है। यह गर्भस्थ शिशुके दोनो अलिन्दोके बीच छिद्ररूपसे रहता है, और प्रसवके दस दिन बाद ही बन्द हो जाता है। किसी-किसी का यह छिद्र खुला रहता है, जिससे विशुद्ध और अविशुद्ध रक्तके मिलनेसे रोगका कारण बाल्यावस्था से ही हो जाता है।

इस शुक्तिखातके वामपार्श्वमें हार्दिक-सिराविवर दिखायी देता है, जो हार्दिकी सिराका द्वार है। (हार्दिकी सिरा हृदयके चारों ओर स्थित सिराओंसे भरी जा कर दक्षिणालिन्दमे ही घुसती है।) और वहां पर क्षुद्र सिराकपाटिका हृदयके सिरा रक्तको वापिस जानेसे रोकती है। यहां पर और एक महा द्वार है--जिसका नाम दक्षिणालिन्द-द्वार है। यह दक्षिणालिन्द और निलयके बीचमे स्थित प्रायः गोल, दो अगुल चौड़ा, पतले स्नायु चक्रसे रक्षित, और त्रिपत्र कपाटसे युक्त है।

दक्षिण निलय[1]—प्रायः त्रिकोण, पतली दीवारवाला, दक्षिणालिन्दद्वार से हृदयके अग्रभागके समीप तक फैला हुआ है। ईसकी सम्मुखप्राचीर कुछ दबी हुई है और हृदयके सम्मुख भागको बनाती है। तलदेश महाप्राचीरके ऊपर स्थिति है। इसकी गुहा लगभग साढ़े सात तोले रक्तको धारण कर सकती है। इसमे लक्षणीय चिन्ह ये है—

त्रिपत्र कपाट[2]— स्वयं गिरने वाले तीन पत्रकों से बना है, और ये तीनो पत्रक अलिन्दसे निलयकी ओर जाने वाले रक्तको नही रोकते किन्तु रक्तको उल्टी गतिको रोकते है—इसकी बनावट विचित्र है। ये पत्रक प्रायः त्रिकोण, ऊर्ध्वमुख, मूल भागों द्वारा अलिन्द द्वारके चारो ओर लगे हुए है। इनके अधोमुख अग्रभाग, मांसमयी स्तम्भिकाओं द्वारा धारण किये जाते है। ये स्तम्भिकायें पतली स्नायु के

---

१ Right Ventricle २ Tricuspid Valve.

डोरोंसे निलय प्राचीरमे लगी रहती हैं। यही कपाटस्तम्भिका[१] नामकी छोटी पेशी हैं, जो बहुत ही पतले स्नायुओंसे कपाट पत्रकोंमे बन्धी हैं। इन स्नायु तन्तुओंका नाम सूत्रकण्डरिका[२] है।

फुस्फुसधमनी द्वार[३]—दक्षिण निलयके ऊपरके अन्तःकोणमे स्थित, प्रायः गोलाकार और स्नायुचक्रसे रक्षित है। इसको रोकनेके लिए स्वयं गिरने वाली अर्द्धचन्द्राकार तीन कपाटियां है, जो परस्पर मिली हुई और ऊपरमे कोरोदर हैं। ये दक्षिण निलयसे ऊपर फुस्फुसाभिगा धमनोंमें जाने वाले रक्तको नहीं रोकतीं, वरन् रक्तकी उल्टी गतिको रोकती है, इनकी बनावट विलक्षण ही है। इनका नाम अर्द्धेन्दु-कपाटिका[४] है।

✓वामालिन्द[५] - दक्षिणालिन्दसे कम आयतनवाला किन्तु विशेषरूपसे मोटी प्राचीर का है। इसकी गुहा लगभग पांच तोले रक्तको धारण कर सकती है। इसके भी दो भाग है—अलिन्दशीर्षक और अलिन्दोदर। अलिन्दोदरमे चार छिद्र दिखायी देते - दो दक्षिणमे और दो वाम मे। ये फुस्फुससे उत्पन्न होने वाली चार सिराओं[६] के प्रवेश द्वार हैं। इसका निचला द्वार वामालिन्द और निलय के बीचमें स्थित, दो अंगुल चौड़ा, स्नायुचक्रसे घिरा और द्विपत्र कपाटसे युक्त है। इसका नाम वामालिन्द-द्वार है।

✓वामनिलय[७]—त्रिकोणाकार, दक्षिणालिन्दसे तिगुनी मोटी प्राचीर युक्त, और वामालिन्द-द्वारसे हृदयाग्र तक फैला है। इसकी गुहा भी साढ़े सात तोले रक्त को धारण कर सकती है। इसकी पश्चिम प्राचीर नीचेसे हृदयाग्र को बनाने वाली है। इनमे ये विशेषतायें दिखायी देती है।

द्विपत्र कपाट[८]—नामका स्वयं गिरनेवाला, दो पत्रकोंसे बना हुआ कपाट अलिन्दद्वारको बन्द करता है। इसका कार्य त्रिपत्र कपाटकी भांति है।

महाधमनी द्वार[९]—वामनिलयके ऊपर अन्तःकोणमें स्थित, फुस्फुसाभिगा-धमनी द्वारके तुल्य आयतन वाला तथा तीन अर्द्धेन्दुकपाटिकाओं से बन्द है।

---

१ Musculæ Papillares २ Chordæ Tendinæ ३ Opening of Pulmonary Artery. ४ Semilunar Valves. ५ Left Auricle. ६ Pulmonary Veins. ७ Left Vantricle ८ Bicuspid or Mitral Valve. ९ Aroti Opening.

सम्मुखमे महाधमनी तिरछी टेढ़ी है, इसलिये इसका द्वार भी फुस्फुसाभिगा धमनी के पृष्ठको लांघ कर तिरछे भावसे सम्मुखकी ओर मुख किये हुए है। यह हृदयकी बनावटकी व्याख्या हुयी।

हृत्कार्य्यचक्र।

हृत्कार्य्यके सम्बन्धसे रक्तसवहनकी व्याख्या हो चुकी है। यहां पर शिष्यबुद्धि की विशदताके लिए हृत्कार्य्य की स्पष्टरूपमे व्याख्या करते हैं। हृत्पेशियोंका सकोच सिराओंके द्वारोंसे आरम्भ होकर क्रमशः सम्पूर्ण अलिन्दमे और फिर निलयोमे प्रवृत्त होता है। प्रथमतः अलिन्दोंके सङ्कोचके ,साथ दक्षिणालिन्दमे स्थित कायिक सिरारक्त दक्षिण निलय में, और वामालिन्दमे स्थित फौस्फुस सिरारक्त वाम निलयमे एक साथ फेंका जाता है। उस समय सिरा द्वार कपाटो से रहित होनेपर भी केवल दृढ़ आकुञ्चन से बन्द हो जाते है और दोनो अलिन्दों के द्वार पूर्णरूपसे खुल जाते हैं। इस प्रकार दोनो निलय रक्तसे भर जाते हैं। प्रथम कार्य्य क्रम है। अब क्रमशः दोनो निलयोंमे सङ्कोचके होने पर दक्षिण निलयमे स्थित रक्त फुस्फुसाभिगा धमनीके मार्गसे और वाम निलयमे स्थित रक्त महाधमनीके मार्गसे ऊपरकी ओर फेंका जाता है। इधर रक्त वर्गसे गिरनेवाले कपाट पत्रकों के बन्द हो जानेके कारण अलिन्द द्वार-बन्द हो जाते हैं, इसलिए रक्त अलिन्द द्वारोंसे वापस नही लौटता। यह दूसरा कार्य्यक्रम है। अनन्तर क्रमशः सङ्कोचके समाप्त हो जाने पर दोनो अलिन्दोमे हृत्पेशियोंका विस्फारण प्रारम्भ होता है। उस समय दोनो अलिन्दो मे, और वहांसे दोनो निलयो में भी विस्फार हो जाने पर सिरा-रक्त खींचा जाता है। यह रक्त दोनों निलयोंसे महाधमनी मे या फुस्फुसाभिगा धमनीमे वापस नहीं लौटता, क्योकि धमनियोंमे स्थित रक्त के प्रतिघातसे नीचे गिरनेवाली अर्द्धेन्दुकपाटिकायें अपनी क्रियासे धमनियो के द्वार बन्द कर देती है। यह तीसरा कार्य्य क्रम है, इसको हृत्पेशीयों की विश्रामावस्था कह सकते हैं। प्रथम दोनों कार्य्य क्रमो में हृदयकी संकुचितावस्था और तीसरे मे विस्फारितावस्था है, यह स्मरण रखना चाहिये। इनमें सङ्कोचकाल केवल एक विपल (अढ़ाई सैकण्ड) मात्र है और इतना ही विस्फारकाल है। अतः परीक्षकों का सिद्धान्त है कि हृदयका प्रत्येक कार्य्य चक्र स्वभावसे दो विपलमे (अर्थात् पाच सैकण्ड मे) प्रवृत्त होता है। और यह कार्य्य का समय बालक, वृद्ध-श्रान्ता-अवस्था और ज्वरादिमे शीघ्र या विलम्बसे होता है। इस हृत्कार्य्य चक्रको सुगमतासे याद करनेके लिये ये श्लोक है—

"आदावलिन्द संकोचो निलयद्वय पूरणः ।
ततो निलय सङ्कोचो धमनीद्वय पूरण ॥
शेषे तु स्फारता, तेन सिराभिः पूर्य्यते हि हृत् ।
क्रियाचक्रस्य कालश्च प्रायः स्याद् विपलद्वयम् ॥[1]

हृत्कार्य्यचक्रके वाह्य चिन्ह ।

वहि शरीरमे हृत्कार्य्यके तीन प्रकारके चिन्ह होते है । हृच्छब्द, हृत्प्रतीघात, और धमनी प्रतीघात ।

हृच्छब्द[2]— सम्मुख मे हृत्प्रदेशपर कान लगाकर सुनने से 'धग्' 'टग्' यह दो ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है। इनमें प्रथम 'धग्' गम्भीर ध्वनि है, यह दोनो निलयोमें संकोचके प्रवृत होनेसे होती है और द्विपत्र एवं त्रिपत्र नामक दोनों कपाटों द्वारा दोनों आलिन्द द्वारोंके एक साथ अवरोधको बताती है । द्वितीय 'टग्' यह तीव्र ध्वनि दोनों निलयोमे विस्फारके प्रारम्भ होनेसे होती है और अर्द्धेन्दुकपाटिकाओं द्वारा धमनी-द्वारोंके एक साथ अवरोधको बताती है। विशेष बात यह है कि त्रिपत्र कपाट के बन्द होनेका शब्द उरःफलककी अग्रपत्र सन्धिमे सबसे अधिक स्पष्ट सुना जाता है। द्विपट कपाटके बन्द होनेका शब्द वाम चूचक के नीचे पञ्चमी और षष्ठी पर्शुकाके अन्तरालमे स्पष्ट होता है । अर्द्धेन्दुकपाटिकाओं द्वारा महाधमनी द्वारके बन्द होनेका शब्द उरःफलक के दक्षिणमे द्वितीय पर्शुका और उपपर्शुकाके सन्धिप्रदेशमे सब से अधिक स्पष्ट है। फुस्फसाभिगा धमनीके द्वार के बन्द होने का शब्द उसी प्रदेशमे वांई ओर स्पष्ट होता है ।

हृत्प्रतीघात[3] अथवा हृदयप्रतीघात—यह पतले पुरुषकी छातीमे पांचवी और छठी पर्शुकाके अन्तराल मे, वाम चूचककी सीधी रेखामे दो अंगुल या डेढ़ अंगुल अन्त.सीमामे देखा जाता है और स्पर्शके द्वारा अनुभूत होता है। यह हृत्प्रतीघातका स्वाभाविक स्थान है। इसकी स्थानच्युति रोगका लक्षण है। यह हृत्प्रतीघात पूर्ण संकोचकी अवस्थामे हृदयके महाधमनी मूलकी ओर किञ्चित हटनेसे और कुछ सम्मुख घूमनेसे उत्पन्न होता है—परीक्षकोका ऐसा सिद्धान्त है।

---

१ विपल—2½ seeond. २ Heart-Sound. ३ Heart-beat of Cardiac Impulse.

(६५ चित्र)

गर्भस्थ बालककी रक्तसंवहन क्रिया।
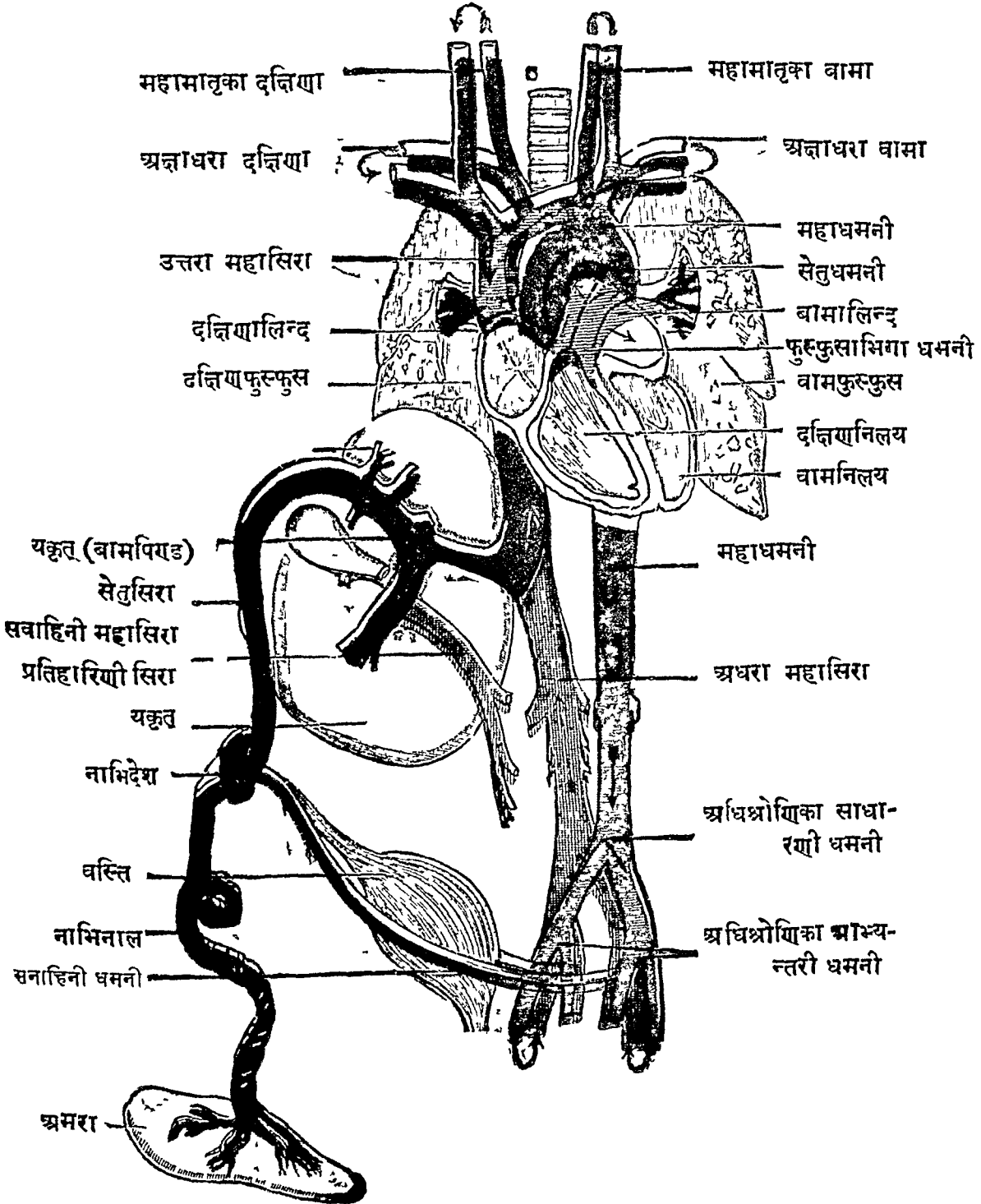
धमनीप्रतीघात[१] (या धमनी स्पन्दन) - स्पर्श से जाना जाता है, कहींपर देखा भी जाता है। यह सम्पूर्ण धमनियों है, और विशेप कर मणिवन्ध आदि स्थानो मे, विशेप रूपसे यह अनुभव योग्य है। इसीसे कहते हैं "धमनी जीव-साक्षिणी"। इसके प्रतिघातकी विचित्रताके विशेप अनुभवसे वैद्य लोग हृत्कार्य्य का और वातादि दोषोंका ज्ञान करते हैं।

महाधमनीके विज्ञानके साथ हृत्कार्य्यचक्र[२] की व्याख्या हो गयी।

गर्भस्थ बालकका रक्तसंवहन[३]।

गर्भस्थ बालकमे एक दूसरी प्रकारका विलक्षण रक्तसंवहन है (६५ चित्र)। इसका कारण बालकका जीवन माताके अधीन है और गर्भस्थ दशामे उसके हृदय आदिकी बनावट विलक्षण है। वह न तो स्वयं आहार करता है और न स्वयं श्वासवायु लेता है। माता का आहार रस ही नाभिनाल द्वारा उसके शरीरमे प्रविष्ट होकर इन कार्योंको पूर्ण करता है। प्राचीनोंने कहा भी है—'मातृजं चास्य हृदयं, मातृहृदयेनाभिसम्बद्धं रसवाहिनीभिः' "संवाहिनीभिः" इति (सुश्रुत)। "नाभ्यां ह्यस्य नाडी प्रसक्ता नाड्याञ्चामरा। अमरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये। मातृहृदयं ह्यस्यताममरामभिसंप्लवते सिराभिः स्यन्दमानाभि"—इति (चरक)।

अर्थात्—"इस (गर्भस्थ शिशु का) हृदय मातासे उत्पन्न होता है, यह रस-वाहिनी संवाहिनियोंके द्वारा मातृ हृदयसे बन्धा हुआ है।" तथा "नाभिमें इसकी नाड़ी लगी है और नाड़ीमें अमरा। और यह अमरा माताके हृदय सम्बन्ध से लगी है। मातृहृदय ही अमरामें चूती हुयी सिराओ द्वारा अमराका पोषण करता है।" (चरक)।

अतएव यह रक्त संवहन माताके अधीन है।

इस बनावटकी विलक्षणताके पांच कारण है। यथाः—

संवाहिनी (६५ चित्र) नामकी **महासिरा**[४] माताकी अमरासे रक्तको ले जाती हुयी बालकके नाभिमार्ग द्वारा यकृत्‌के तलदेशमे फैली है। यह दो शाखाओं के द्वारा दो यकृत पिण्डोका पोषण करती है। और आगे फैलकर दो अग्रशाखाओ में विभक्त हो जाती है।

---

१ Pulse beat २ Cardiac Cycle. ३ Foetal Circulation
४ Umbilical Vein:

इन अग्रशाखाओ मे एक का नाम **सेतुसिरा**[१] है यह सेतु (पुल) की भाति संवाहिनी महासिराको अधरा महासिरासे जोड़ती है। दूसरी धनुषके समान टेढ़ी "प्रतिहारिणी" नामकी यकृत्का स्थूल सिरासे मिल कर याकृत् रक्तसंवहनको वनाती है।

सेतुधमनी[२] नामकी धमनी फुस्फुसाभिगा धमनी को महाधमनीके साथ (दोनोके वीचमे रह कर) जोड़ती है। वालकके प्रसव होनेपर सेतुधमनी शीघ्र सूख जाती है, और तव उसका नाम 'सेतुवन्धनिका' कहा जाता है।

संवाहिनी[३] नाम की दो **धमनियां** भ्रूण की दोनों आभ्यन्तरी अधिश्रोणिका नामकी धमनियोंसे निकल कर वस्ति के दोनों पार्श्वों मे फैलती हुई नाभिमार्गसे वाहर निकलती हैं। ये भ्रूणके नाभिनालका आश्रय करके माताकी अमरामे रक्तको वहाती है। वालकके उत्पन्न होने पर वे शीघ्र ही शुष्क हो जाती हैं, तव उनकी 'वस्तिरज्जु' या 'वस्तिवन्धनी' संज्ञा होती है।

शुक्तिविवर[४] नामका विवर गर्भस्थ शिशुके हृदयमे दोनों अलिन्दोंके वीच की प्राचीरमे दिखायी देता है। इस मार्ग द्वारा अधर महासिरासे लाया हुआ रक्त दक्षिण अलिन्दसे वाम अलिन्दमे जाता है।

पूर्वोक्त सिरा और धमनियां वालकके उत्पन्न होने पर पाच दिनमे वन्द हो जाती हैं, पश्चात् ये सूत्रोंके आकारमे रहती हैं और पूर्वोक्त नाम धारण करती है। शुक्तिविवर भी दस दिनके अन्दर विलुप्त होता है उसका चिन्ह शुक्तिखात नामसे प्रसिद्ध है—यह हृदयके वर्णनमे आ चुका है।

कभी किसी वालकमे अविलुप्त शुक्तिविवर जन्मसे ही हृद्रोगका कारण बनता हैं—क्योंकि ऐसा होनेसे दोनों अलिन्दोंमे शुद्ध और अशुद्ध रक्त मिलता रहता है। गर्भस्थ वालकमें रक्त संवहन इस प्रकारसे होता है—उसकी माताकी अमरासे आया हुआ रक्त संवाहिनी महासिरा द्वारा नाभिनाल मार्गसे शरीरमे प्रविष्ठ होता है। यह महासिरा पूर्वोक्त प्रकारसे अपनी शाखाओं द्वारा यकृत्का पोषण करती हुयी सेतुसिरा द्वारा अधरा महासिरामे मिली है—जिस कारणसे यह रक्त सिरारक्तसे मिलकर अधरा महासिरा द्वारा हृदयकी ओर ऊपर जाता है। इसके पश्चात् हृदयके दक्षिण अलिन्दमे प्रविष्ट होकर (दक्षिण निलयमे न जा कर)

१ Ductus Venosus. २ Ductus Arteriosus. ३ Hypogastric Arteries. ४ Foramen Ovale.

शुक्तिविवर मार्गसे सीधा वामालिन्दमें जाता है। वहांसे वामनिलयमें और फिर वहांसे महाधमनीमें जाता है। यह प्रथम क्रम है। ऊर्ध्वशरीरसे उत्तरा महासिरा द्वारा आया हुआ रक्त दक्षिणालिन्दमें प्रविष्ट होता है, और फिर दक्षिण निलयमें ही, पूर्वोक्त रक्तस्रोतोंका उल्लंघन करके, जाता है। परमात्माका यह रचना कौशल विचित्र ही है। और फिर वह रक्त दक्षिण निलयसे फुस्फुसाभिगा धमनीमें प्रविष्ट होकर थोड़ेसे भाग द्वारा फुस्फुसोंका पोषण करता हैं (वहा पर शुद्ध नहीं होता—कारण गर्भस्थ वालकके फुस्फुस क्रियाशून्य होते हैं) और अधिक भागसे सेतूधमनी द्वारा महाधमनीमे ही प्रविष्ट होता है। फुस्फुसोंसे आया हुआ रक्त साधारण क्रमसे ही फुस्फुसोंसे उत्पन्न होने वाली सिराओं द्वारा वाम अलिन्दमे प्रविष्ट होता है, वहांसे वाम निलयमे और फिर महाधमनीमे जाता है। यह दूसरा क्रम है। इसके पश्चात् महाधमनीका रक्त अपनी शाखाओं द्वारा साधारण रीति से सम्पूर्ण शरीरमे फैलता है, और उत्तरा एवं अधरा महासिरा द्वारा वापिस आता है। परन्तु इसमें विशेषता यह है कि रक्तका अधिक भाग दो संवाहिनी धमनियोंके द्वारा नाभिनाल मार्गसे माताकी अमरामे ही प्रविष्ट होता है—यह तीसरा क्रम है। यह गर्भस्थ वालककी रक्तसंवहन शैली कही गयी।

तृतीय अध्याय।

(मूलधमनियों का वर्णन)

सव धमनियोंका मूल हृदय है, यह कह चुके है। इससे दो मुख्य धमनियो निकलती हैं। यथा—'फुस्फुसाभिगा धमनी' और 'महाधमनी'। इनमेसे पहली फौस्फुस रक्तसंवहनका मूल है, दूसरी सामान्यकायिक रक्तसंवहन का।

इनमें फुस्फुसाभिगा[1] नामकी एक ही धमनी शरीर में अविशुद्ध रक्तका प्रवहन करती है। यह हृदयके दक्षिण निलयसे उत्पन्न हुयी पांच अंगुल परिणाह वाली और तीन अंगुल लम्बी हैं। यह हृदयमूलमे महाधमनीके वाम भागमे दिखायी देती है, एवं हृदयधर नामके कलाकोषके कुछ अंशसे ढंपी रहती है। महाधमनीके तोरणकी गोदमें पहुंच कर यह दक्षिण फुस्फुसाभिगा और वाम फुस्फुसाभिगा नामकी दो महाशाखाओंमे विभक्त हो जाती हैं। और ये दोनों महाशाखायें दोनों फुस्फुसोके अन्दर नाना प्रकारकी शाखा-प्रशाखा अनुशाखाओमे विभक्त हो जाती हैं। इनकी अन्तिम सूक्ष्मशाखायें फुस्फुसीय वायुकोषोके चारों ओर जालकके आकारमे फैली हैं।

---

१ Pulmonary Artery.

महाधमनी[१]—नाम की विशुद्ध रक्त को प्रवहन करने वाली मूलधमनी में प्रधान है। यह हृदयके वामनिलयसे उत्पन्न हुयी मूलमें पांच अंगुल मोटी, शेषमे अढ़ाई अंगुल मोटी और प्रायः अपने हाथके वरावर लम्वी है। यह हृदय मूल के दक्षिणमे और फुस्फुसाभिगा धमनीके सम्मुखमे दिखायी देती है। एवं मूलभाग में सिराधमनी कञ्चुकोसे मिले हुए हृदयधर नामक कलाकोषसे ढंपी रहती है। यह अधोमुख हंसकी ग्रीवाकी भाति टेढ़ी हो के पृष्ठवंशकी ओर जा कर उसके सामनेसे वाम पार्श्वके साथ-साथ नीचे फैलती है और चतुर्थ कटिकशेरुके सम्मुख में दो महाशाखाओंमे विभक्त हो जाती है। वर्णनकी सुगमताके लिये इसके तीन भागोकी कल्पना की जाती है। यथा—आरोहिभाग, तोरणभाग, और अवरोहिभाग। लाघवके लिये इनकी आरोहिणी, तोरणी और अवरोहिणी महाधमनी संज्ञा की गयी है।

महाधमनीकी शाखाओका विभाग इस प्रकार है।

महाधमनीकी और इसकी अन्तिम दो महाशाखाओं कीः शाखोंका एवं काण्डमूला नामकी धमनीसे उत्पन्न हुई शाखोंका नाम काण्डशाखा है। इनकी शाखायें केवल शाखा शब्दसे कहीं जाती हैं। उनको शाखाओंकी संज्ञा प्रशाखा है, और प्रशाखाओंकी शाखायें अनुशाखा है। इसके आगे धमनीप्रतान और जालक है जो कि सव शरीरमे फैले हैं।

जव भी कोई काण्डशाखा अन्तमे दो भागोमे विभक्त होतो है तव दो विभागों को अग्रशाखा संज्ञा होतो है एवं शाखाओ को अन्तिम प्रशाखाओंका नाम अग्रप्रशाखा है। जब कहीं काण्डशाखा या कोई शाखा-धमनी तीन चार धमनियों की मूल वनी होती है तव उसको अक्षशाखा कहते है।

धमनीचक्र—धमनियोंकी शाखाप्रशाखाओंके परस्परमे प्रविष्ट होनेसे बने हुये चक्रोंका नाम 'धमनीचक्र' है। और ये सन्धियोंको, आशयोंको और इन्द्रियोके अधिष्ठानोंको विशेपरूपसे व्याप्त करके रहते है। इसी कारण किसी एक धमनीमे अवरोध होने पर भी उस प्रदेशमे रक्तसवहन शीघ्र नही रुकना और दूसरे धमनीप्रतानों द्वारा उस प्रदेश के पोपण होनेके कारण वह स्थान शीर्ण नही होता और न सड़ता है।

---

१ Aorta,

शरीरके कई भागों मे धमनियों को शाखा प्रशाखाओं का प्रभव और प्रसार बहुत ही विलक्षण दिखाई देता है। इसलिए जिन-जिन स्थानों पर जो कुछ वर्णन आयेगा उन सबको भूयोदर्शन मूलक और प्रायिक समझना चाहिए—क्योंकि किसी किसी शरीरमे भिन्न क्रम भी दिखाई देता है।

प्रायः सर्वत्र एक या दो सिरायें प्रत्येक धमनीका अनुसरण करती हैं। इनमें स्थूल धमनी का अनुकरण करने वाली प्रायः एक, और पतली धमनीका अनुसरण करने वाली प्रायः करके दो सिरायें होती हैं। इनका नाम 'सहचरी सिरा'[१] है।

आरोहिणी महाधमनी।

महाधमनी का आरोहोभाग दो अंगुल लम्बा है और परिणाह (घेरा) पांच अंगुल है। इसका नाम **आरोहिणी महाधमनी**[२] है। यह हृदय के वाम निलयसे उत्पन्न हो कर ऊपर की ओर तिरछे रूपसे फैल कर महाधमनी के तोरण भागमे मिली है।

इसका मूल जहा हृदयसे सम्बद्ध होता है, वहां उसकी परिधिमें तीन उभार हैं—जो कि अन्तःस्थित पूर्वोक्त अर्द्धेन्दुकपाटिकाओं के स्थान के सूचक हैं। इनके अन्दर तीन कोटर हैं। और इसके ऊपर मे दोनों ओर हृदय को पोषण करने वाली पतली मोटी दो काण्डशाखायें उत्पन्न हुई हैं। इनका नाम हार्दिकधमनी है। इनमे वामा धमनी हृदय के वहिर्भागमे सम्मुखस्थ निलयान्तरिका नामकी सीता मे और दक्षिणा धमनी इसी नामकी पश्चिमस्थ सीतामे फैली है। प्रत्येक हार्दिकधमनी की दो अग्रशाखायें—अनुलम्बा और अनुप्रस्था हैं। अनुलम्बा शाखा वही पर सीता में हृदयाग्र तक जाकर दूसरी अनुलम्बा शाखा से मिली है। अनुप्रस्था शाखा अलिन्द और निलयके बीचकी सीता मे फैल कर दूसरी अनुप्रस्था से मिली है। और इन शाखाओं की प्रशाखा-अनुशाखाओं से वना हुआ धमनीचक्र हृदयकी पेशियो का पोपण करता हुआ हृदयके चारों ओर दिखाई देता है।

आरोहिणी महाधमनी का सम्बन्ध इस प्रकार है। यह सम्मुखमे दक्षिण फुस्फुस के एक भाग से और हृत्कोपके कुछ अंश से प्रायः ढपी है। इसके पश्चिममें हृदय का वामालिन्द, फुस्फुसाभिगा धमनीकी दक्षिण महाशाखा और दक्षिण क्लोमकाण्डिका है। इसके दक्षिण में उत्तरा महाशिरा और हृदय का वामालिन्द हैं। वाममे फुस्फुसाभिगा धमनी है।

---

१ Aenæ Comites २ Ascending Aorta.

तोरणी महाधमनी ।

महाधमनी के तोरण भाग का नाम **तोरणी महाधमनी**[१] है। यह मोटे परिणाह की और चार अंगुल लम्बी है। यह महाधमनी के आरोही भाग को अवरोही भागसे जोड़ती है। यह उरःफलक के पीछे दक्षिण द्वितीय उपपर्शुका की सन्धिके समीप से चतुर्थ पृष्ठकशेरु के सम्मुख भाग तक सीधी शर गति* से फैली है। प्रथम यह क्लोमनलिका के सम्मुखमें दिखाई देती है और फिर इसके वाम ओर। और इसकी गोद मे दो महाशाखाओं मे विभक्त होती हुई फुस्फुसाभिगा नामकी धमनी और वामा क्लोमकाण्डिका हैं। मध्य में महाधमनी को फुस्फुसाभिगा धमनी से जोड़ने वाली शुष्क धमनी सेतुबन्धनिका' नाम की है, जो कि सेतुधमनी नामकी भ्रूणधमनी का शुष्क अंश है।

तोरणी महाधमनी के शिखरके दक्षिण भागसे **काण्डमूला**[२] नामकी स्थूल धमनी, वाम भाग से वामा महामातृका एवं अक्षाधरा—ये दो काण्डशाखायें उत्पन्न हुई है। इनमे काण्डमूला धमनी दक्षिण अक्षकोरःसन्धि के पीछे दो काण्डशाखाओं मे विभक्त हो जाती है, इनके नाम दक्षिण महामातृका और अक्षाधरा हैं। इस प्रकार से चार उत्तरा काण्डशाखाये महाधमनी तोरण से साक्षात् अथवा परम्परा से उत्पन्न हुई है।

इनमे दोनो महामातृकाये ऊपर को फैलकर 'मातृका' धमनियों में विभक्त हो के शाखा प्रशाखाओ द्वारा शिर एवं ग्रीवा को पोषण देती हैं। दोनों अक्षधरा धमनियां तिरछी बाहर को फैलकर मध्यमार्ग में कुछ शाखा-प्रशाखाओं द्वारा शिरोग्रीव, अंस, उरःस्थल आदिका पोपण करती हुई कक्षाओ मे 'कक्षाधरा' धमनी बन कर, बाहु मे 'बाहवी धमनी' हो जाती है। और प्रत्येक बाहुधमनी कूर्पर सन्धि के सम्मुख प्रकोष्ट की अन्त. एवं बहिःसीमा मे दो हो जाती है। इसकी प्रशाखा और अनुशाखा द्वारा बाहु में स्थित रचनाओं का पोषण होता है।

व्यतिकर—तोरणी महाधमनी सम्मुखमे फुस्फुसधर नाम के कलाकोषो के अंशों से और बालग्रैवेयक ग्रन्थि के अवशिष्ट भाग से ढंपी है। इसके वाम मे कलाकोप युक्त फुस्फुसका भाग, वामा अनुकोष्टिका नामकी नाड़ी, और वामा प्राणदा नामकी नाड़ी एवं उसकी शाखायें दिखाई देती है। इसके दक्षिण मे

---

१ Aortic Arch २ Innominate Artery.

* बाण जैसे सीधा जाता है ऐसे ही सामने से पीछे की ओर सीधी गति का नाम 'शरगति' है। इस शब्द का प्रयोग बहुत स्थानों पर आवेगा।

अनाहत चक्र अन्ननलिका और रसकुल्या है। क्लोमनलिका इसके दक्षिण एवं पश्चिम मे है। तोरणी महाधमनी के ऊपर में तीन धमनियां–काण्डमूला धमनी, वामा महामातृका और अक्षाधरा हैं। इनकी सम्मुखवर्त्तिनी वामा गलमूलिका नामकी सिरा तिरछी लांघती है। तोरण के नीचे तोरण की गोद मे रहने वाली पूर्वोक्त विशेषतायें है।

√अवरोहिणी महाधमनी।

महाधमनीके अवरोही भाग का नाम **अवरोहिणी महाधमनी**[१] है। यह चतुर्थ पृष्ठकशेरु के सम्मुख देश से आरम्भ करके चतुर्थ कटिकशेरु तक फैलती हुई पृष्ठवंश के पार्श्व में रहती है। वर्णन की सुगमता के लिये यह दो प्रकार से विभक्त की जाती है–औरस भाग और औदर भाग। इनमें महाप्राचीरोमे स्थित महाधमनी के छिद्र से ऊपर रहने वाले भाग का नाम **औरसी महाधमनी**[२] है। उस छिद्र के नीचे जा कर इसीका नाम **औदरी महाधमनी**[३] हो जाता है। इन विभागोंकी पतली काण्डशाखायें अपनी शाखा-प्रशाखाओके द्वारा औरस एवं औदर यन्त्रोंको व्याप्त करके तपर्ण करती है।

व्यतिकर–औरसी महाधमनीका सम्बन्ध इस प्रकार है। इसके सम्मुखमे–वाम फुस्फुस का मूलदेश, हृत्कोष, अन्ननलिका और महाप्राचीरा का अंश। पीछे पृष्ठवंश और वामा पुरोवंशिका नामकी सिरा। दक्षिण मे–रसकुल्या और दक्षिणा पूरोवंशिका सिरा। वाममे–वामा फुस्फुसधरा कला और वाम फुस्फुस। इस प्रकार सम्बन्धयुक्त हो कर महाधमनीं का यह भाग पश्चिमाधर फुस्फुसान्तरालमें दिखायी देता है।

औदरी महाधमनी का सम्बन्ध इस भाति है। इसके सम्मुखमे–आमाशय, अग्न्याशय, वामवृक्क से आयी हुयी सिरा, ग्रहणी नामका क्षुद्रांत्रका प्रथम भाग, और अन्त्रबन्धनी मूल हैं। पीछे मे चार कटिकशेरु। दक्षिण में रसप्रपा, रसकुल्या, दक्षिण पुरोवंशिका नामकी सिरा, महाप्राचीरा का दक्षिण मूल और अधरा महासिरा। वाममे–महाप्राचीर का वाम मूल, ग्रहणी का पूर्वभाग, क्षुद्रान्त्र, इडा नामकी स्वतन्त्र महानाड़ी शृङ्खला और वामा गवीनी।

अन्तिम विभाग–महाधमनी अन्त मे (चतुर्थ कटिकशेरु के सम्मुख) दो वड़ी अग्रशाखाओ मे विभक्त हो गयी है। ये महाशाखायें त्रिकास्थि शिखर

---

१ Descending Aorta २ Thoracic Aorta ३ Abdominal Aorta

(६६ चित्र)

दक्षिण गलपार्श्वदेश व्यवच्छेद द्वारा दर्शित।

[बहिर्मातृका और अक्षाधरा आदि धमनियों के दिखाने के लिये]
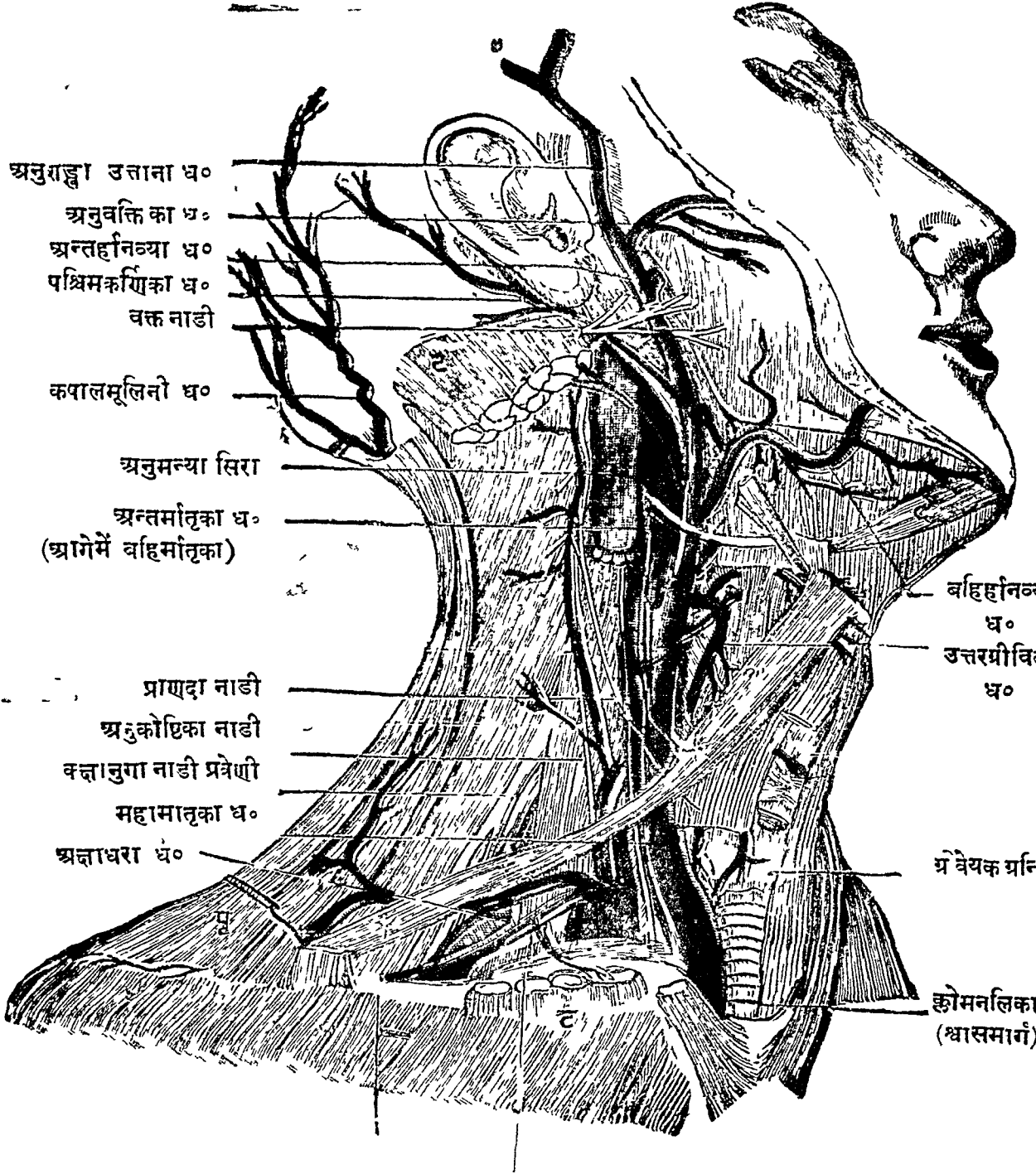
(द) द्विगुम्फिका पेशी। (ट ट) उरःकर्णमूलिका पेशी के दोनों प्रान्त [कटे हुए]।
[प] पृष्ठच्छदा पेशी। [अ] अंसकण्ठिका पेशी। [व] बहिर्मातृका।

पर पहुंच कर फिर चार अग्रशाखाओं में विभक्त हो जाती है। इन चारों को महाधमनी की काण्डशाखा कहते है। इनकी बाहर की दो काण्डशाखायें **अधिश्रोणिका बाह्या**[१] नामकी है। ये वंक्षणगुहामार्ग से बाहर निकल कर 'औवीं' नामकी धमनी हो जाती है। और प्रत्येक ओर्वी नामकी धमनी जानु सन्धि के पीछे दो शाखाओं मे विभक्त हो कर जंघा के सम्मुख और पीछे नाना प्रकार की प्रशाखा और अनुशाखाओं के रूप में फैली है। इन से और दूसरी प्रशाखा आदि से अधःशाखा की रचनायें पोषित होती हैं।

वस्तिगुहा के अन्दर गयी हुयी महाधमनी की अन्य दो काण्डशाखाओं का नाम **अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी**[२] है। ये अपनी शाखा-प्रशाखाओं के द्वारा वस्तिगुहा में स्थित आशयों का एवं उनके चारों ओर स्थित बाहर और अन्दर की रचनाओं का पोषण करती है। यह संक्षेप में महाधमनी का विभाग बीज रूप से कह दिया। विस्तृत वर्णन फिर किया जायगा।

चतुर्थ अध्याय।

(शिर और ग्रीवा की धमनियों का वर्णन)

महामातृका नामकी दो स्थूल धमनिया अपनी सैकड़ों शाखा-प्रशाखा-अनुशाखाओं के द्वारा शिर और ग्रीवा का पोषण करती हैं। प्रधानतः "अंक्षकाधरा" नामकी धमनियों की 'मस्तिष्क मातृका' नामकी दो शाखायें इनकी सहकारिणी है। अन्य शाखा प्रशाखायें भी इनको सहायता देती है। इनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रतानों से शिरोग्रीव की बाह्य एवं आभ्यन्तर स्थित रचनायें पोषित होती है।

महामातृका नामकी दो मूल धमनियां।

इनमे **वामा महामातृका**[३] और अक्षाधरा (६६ चित्र) साक्षात् महाधमनी से उत्पन्न होती है। **दक्षिण महामातृका**[४] (और अक्षाधरा) महाधमनी से उत्पन्न होने वाली काण्डमूला नामक धमनी के विभाग से उत्पन्न हुयी है। इसका विभाग दक्षिण अक्षकोर सन्धि के पीछे होता है, यह कह चुके है। इन दोनों महामातृकाओ की "काण्डशाखा"-संज्ञा पारिभाषिक है।

---

१ Ext Iliac Arteries २ Internal Iliac Arteries ३ Left Common Carotid. Right Common Carotid

ये **महामातृका** नामकी काण्डशाखायें कनिष्ठांगुलिके अग्रभाग के समान मोटी अक्षोकोरः सन्धि के पीछे से आरम्भ होकर ग्रीवा मे तिरछी ऊपर जा कर दोनो अवटुको की ऊर्ध्वधारा तक फैली हैं। इनमे प्रत्येक महामातृका दो अग्र-शाखाओं मे विभक्त हो जाती है। इनके नाम **वहिर्मातृका** और **अन्तर्मातृका** हैं। इनमें पहिली धमनी सम्मुख स्थित एवं अधिक उत्तान है। यह प्रायः ग्रीवा के बाहर की रचनाओं का पोषण करती है। दूसरी —पश्चिम मे रहने वाली और गम्भीर है। यह ग्रीवा के अन्दर प्रविष्ट होकर घ्राण, नेत्र, श्रवण और इन्द्रियों के अधिष्ठानों को शाखाप्रताने द्वारा पोषण देती हुई मस्तिष्ककी ओर फैली है।

(व्यतिकर)—दोनों महामातृकायें सम्मुख मे उरःकर्णमूलिका नामकी दोनों पेशियों से ढंपी हैं, एवं उन्हीं के अनुक्रम से फैली हैं। प्रत्येक महामातृका ग्रीवाप्रच्छदांश से बने मातृकाकञ्चुक द्वारा घिरी हुयी है, और अन्दरमें इसके साथ प्राणदा नामकी नाड़ी और अनुमन्या नामकी सिरा दिखायी देती है। इनमें कञ्चुक के अन्दर बहिःसीमामें सिरा, मध्य में नाड़ी और अन्तःसीमामें धमनी है, यह इनका स्थितिक्रम है। कञ्चुक के सम्मुखमें जिह्वामूलिनी नाड़ी की निम्नगा शाखा दीखती है। महामातृकाओं के अन्तराल में दीखने योग्य विशेष यह है। यथा--ग्रीवामूल में केवल क्लोमनलिका, ऊर्ध्वभागमें ग्रैवेयग्रन्थि, स्वरयन्त्र और अन्ननलिका का आदि भाग पूर्वापर क्रमसे हैं। इनके पीछे में ग्रीवावंशके सम्मुख स्थित दीर्घग्रीविका और दीर्घशिरस्का नामकी दो पेशियां है। पेशी और धमनीके अन्तरालमे वाम ओर इडा एवं दक्षिण ओर पिङ्गला नामकी दो महानाड़िया नाड़ीकन्दोंके द्वारा श्रृङ्खलित दीखती हैं।

वहिर्मातृका धमनी।

वहिर्मातृका[1]—नामकी धमनी (६६ चित्र) महामातृकाकी उत्तान अग्रशाखा है। यह अवटु संज्ञक तरुणास्थिकी ऊर्ध्वधारा से आरम्भ हो कर कर्णमूल तक प्रत्येक ओर ग्रीवा के पार्श्वमें तिरछी ऊपरको फैली है। इसकी आठ प्रशाखाये है—चार पुरोमुखी, तीन पश्चान्मुखी, एक ऊर्ध्वगा। यथा - पुरोमुखी-(मूलदेश से ऊपर की ओर)। उत्तरग्रीविका, अनुजिह्विका, बहिर्हानव्या (वक्त्रधमनी) और अन्तर्हानव्या--ये प्रसिद्ध है। पश्चान्मुखी अन्नद्वारिणी ऊर्ध्वगा कपालमूलिनी और पश्चिमअर्णिका। ऊर्ध्वगा—अनुशङ्खा उत्ताना नामकी।

---

१ External Carotid Artery.

वहिर्मातृका की पुरोमुखी प्रशाखायें:

इनमे उत्तरग्रीविका[1] नामकी धमनी (६६ चित्र) कण्ठिकास्थि के महाश्रृङ्ग के नीचे बहिर्मातृका के सम्मुखभागसे उत्पन्न हो कर ग्रैवेय ग्रन्थि में प्रविष्ट होती है। यह दूसरे पार्श्व की उत्तरग्रीविका धमनी के साथ मध्यरेखा में अनुशाखाओं द्वारा मिलती है। और सूक्ष्म प्रतानो के द्वारा समीपस्थ पेशी आदि का पोषण करती है। इसकी और भी चार मुख्य अनुशाखायें है। इनके नाम अनुकण्ठिका, अधिस्वरा उत्तरा, अनुकृकाटिका, और मन्याभिगा, हैं। इनमें प्रथम तीन क्रमशः कण्ठिकास्थि, स्वरयन्त्र और कृकाटिकामे प्रविष्ट हुई हैं। चौथी मन्या नामकी पेशीको (अर्थात् उरःकर्णमूलिका को) पोषण करती है।

अनुजिह्विका[2]—नामकी धमनी वहिर्मातृकाके सम्मुख प्रदेश से उत्पन्न होकर कण्ठिकास्थि के अधःश्रृङ्ग की ओर तिरछी जा कर जिह्वा के नीचे फैली है। इसकी चार अनुशाखायें हैं—अनुकण्ठिका, रसनोत्तरिका, रसनाधरिका और गम्भीररसनिका। इनकी व्याख्या इनके नामसे हो जाती है।

बहिर्हानव्या (वा वक्त्रधमनी) नाम को धमनी (६६ चित्र) बहिर्मातृका की उत्तान प्रशाखा है, जो कि अधोहनु पार्श्व मे स्थित वक्त्रधमनी-परिखा में फैल कर चिवुक, ओष्ठ और नासा के पार्श्वों में लगी है। इनकी आठ अनुशाखायें हैं—पांच गलानुगा और तीन वक्त्रानुगा। इनसें गलानुगा—आरोहिणी तालुगा, उपजिह्वानुगा, चिवुकाधरीया ग्रन्थिगा और चिवुकाधरिका। वक्त्रानुगा—अधरौष्ठिका, नासापार्श्विका और नासामूलिका। इनकी व्याख्या इनके नाम से स्पष्ट हैं।

अन्तर्हानव्या[4] (६६।६७ चित्र) नामकी धमनी बहिर्मातृका की स्थूल गम्भीर प्रशाखा है। जो कर्णमूल के नीचे उत्पन्न हो कर अधोहनुकूट के अन्तस्तल का आश्रय कर के हनुसन्धि के नीचे तिरछी अन्दर घुसी है। यह पन्द्रह अनुशाखाओ के द्वारा हनु कर्ण कपोल-तालु आदि को और वाह्या मस्तिष्कवृतिका कला को पोषण देती है। वर्णन को सुगमता के लिये इसके तीन भाग कल्पना किये जाते हैं। यथा—आदि भाग कर्णमूल से आरम्भ कर के उत्तरा हनुमूल कर्षणी पेशी की अधोधारा के अनुक्रम में स्थित है। मध्यभाग—धनुष के समान टेढ़ा है और इसी पेशी को तिरछे लांघ कर स्थित है, और शङ्खच्छदा पेशी से

१ Superior Thyroid Artery. २ Lingual Artery. ३ Ext. Maxillary of Facial Artery. Internal Maxillary Artery.

आच्छादित है। अन्तिम भाग—सब से गम्भीर है—यह इसी पेशी के दोनों मूलों के अन्तराल मे रहता है और करोटिपक्ष मे स्थित हनुजातूक खात में जाकर अनुशाखाओं में विभक्त होता है। इनमें—

आदि भाग की पाच अनुशाखाये हैं। इनमें दो कर्णगा—गम्भीरकर्णिका और पटहपुरस्का। दो मस्तिष्कवृतिगा मध्यमा और अनुचरी। और एक अधोहनुमण्डलगा—अधरदन्तिका नामकी।

मध्यभाग की चार अनुशाखायें हैं—अनुशङ्खा गम्भीरा, हनुमूलिका, हनुकूटिका और अनुकपोलिका। अन्तिमभाग की छः—पश्चिमदन्तिका, नेत्राधरीया, अवरोहिणी तालुगा, अनुप्रसनिका, जतूकापादिका और जतूकातालुका। इनमें नेत्रगुहा के साथ जाने वाली नेत्राधरीया धमनी दो पतली शाखाओं में विभक्त है, नेत्रगुहानुगा और उत्तरदन्तिका। अनुप्रसनिका और जतूकापादिका--ग्रासनी पेशी और श्र तिसुरङ्गाकी ओर फैली हैं। प्रायः सब के नामों से ही पोषणीय स्थानों का अनुमान किया जा सकता है, इसलिये विस्तार से नहीं कहा। यहा तक बहिर्मातृका की पुरोमुखी प्रशाखाये कही गयी।

बहिर्मातृका धमनी की पश्चान्मुखी प्रशाखायें।

अन्नद्वारिणी ऊर्ध्वगा[1]—नामकी धमनी बहिर्मातृका के पश्चिम प्रदेश से उत्पन्न होने वाली पतली लम्बी प्रशाखा है, यह अन्तर्मातृका के पार्श्व मे ऊपर को मुख किये हुए दिखायी देती है। इसकी तीन अनुशाखायें है—अनुप्रसनी, पटहाधरीया, और मस्तिष्कवृतिगा पश्चिमा। ये क्रमशः अन्नद्वार, कर्णपटह और मस्तिश्कवृति के छोरों मे फैली है।

कपालमूलिनी[2]—नाम की (६६ चित्र) प्रशाखा कपालमूलस्थ पेशी का भेदन करके फैली है। इसकी छः अनुखायें हैं—मन्यानुगा, गोस्तनिका, कर्णपालिगा, मासगा, मस्तिष्कवृतिगा, और पश्चिमकपालिका। इनमें प्रथम मन्या नामकी पेशी मे घुसी है, दूसरी शङ्खास्थि के गोस्तन प्रवर्द्धन को, तीसरी कर्णपाली को, चौथी ग्रीवा के पीछे स्थित दीर्घ पेशी को, पाचवी शिरोगुहा के अन्दर फैल कर मस्तिष्कवृति को और छठी शिरश्छदा नामकी पेशी को एवं शिर की त्वचा के पश्चार्द्ध को पोषण देती है।

---

१ Ascending Pharyngeal Artery २ Occipital Artery.

(६७ चित्र)

अन्तर्हानव्या धमनी का शाखा-विस्तार।
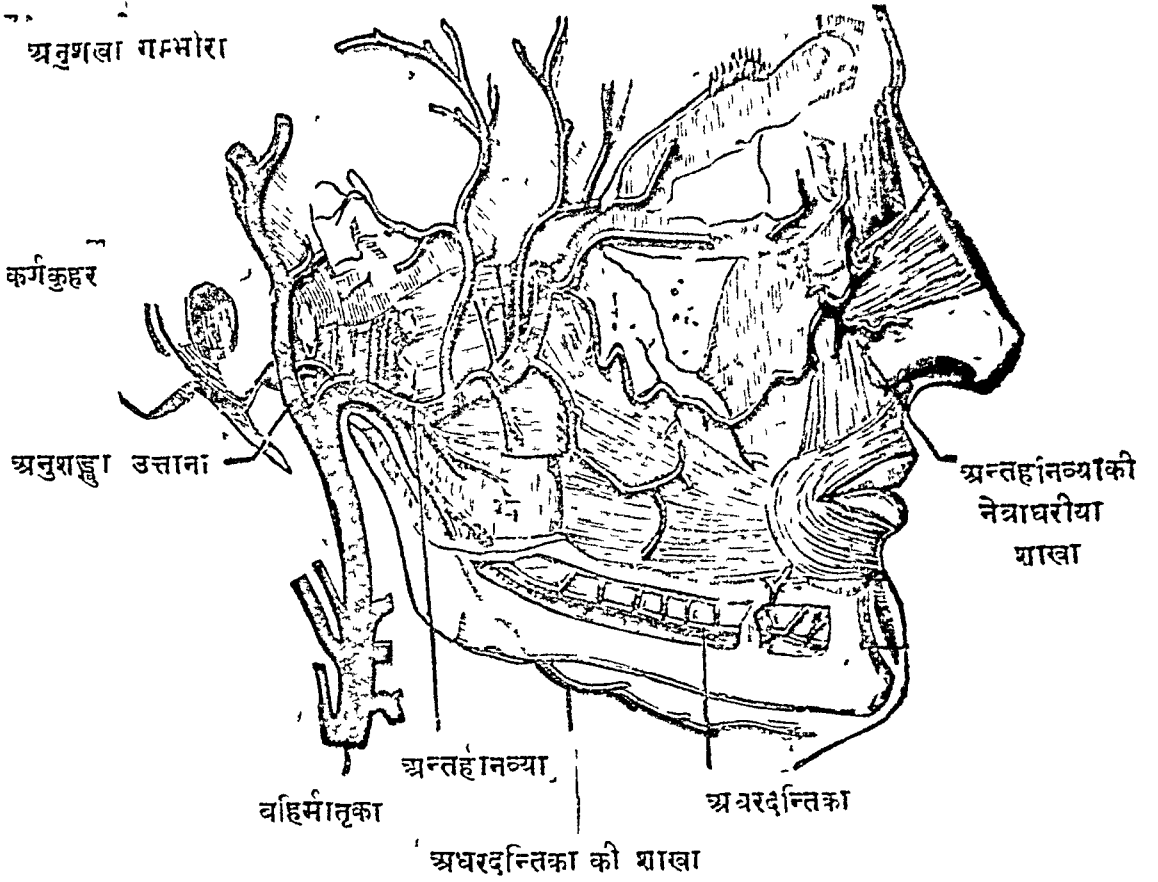
क—हनुमूलकर्षणी उत्तरा पेशी। ख—हनुमूलकर्षणी अधरा पेशी।

पश्चिम कर्णिका[1]—नामकी धमनी (६६ चित्र) कर्णमूल के पश्चिम देश में वहिर्मातृका से उत्पन्न होकर द्विगुम्फिका पेशी के मूल के ऊपर और कर्णमूलिक ग्रन्थि के पीछे फैली है। यह शंखास्थि के गोस्तन और कर्णविवर के अन्तराल मे घुसी कुछ अनुशाखाओं के द्वारा द्विगुम्फिका आदि पेशियों और कर्णमूलिक ग्रन्थि का पोपण करती है। इसकी तीन और अनुशाखाये है—कर्णान्तरीया, कर्णपृष्ठगा और पश्चिम कपालिका। यहा तक पश्चान्मुखी प्रशाखाओं की व्याख्या हो गयी।

---

१ Posterior Auricular Artery

अनुशङ्खा उत्ताना[1] नामकी उर्द्ध्वमुखी प्रशाखा (६६ चित्र) कर्णमूलिकग्रन्थिका भेदन करके कर्ण के सामने तिरछी फैल कर शङ्ख देशमें दो अनुशाखाओ मे विभक्त है। इनका नाम पुरकपालिका और पार्श्वकपालिका है। इसको दूसरी अनुशाखायें कर्णमूलिकग्रन्थि, हनुसन्धि, और हनुकूटकर्पणी पेशी का पोषण करती है। अन्य चार अनुशाखायें कर्णके सम्मुखमे दिखायी देती है— अनुवक्त्रिका, पुरःकर्णिका, गण्डनेत्रिका ओर मध्यम शङ्खिका। इनकी व्याख्या इनके नामोंसे ही हो जाती है।

अन्तर्मातृका[2] नामकी धमनी (६७ चित्र) ग्रीवापार्श्व मे एक एक ओर अपटुसंज्ञक तरुणास्थि की ऊर्ध्वधाराके समीपमे विभक्त होने वाली महामातृकाकी गम्भीरा शाखा है। यह मुख्यरूपसे मस्तिष्क और दोनों नेत्रों का पोषण करती हैं। वर्णनकी सुगमताके लिए इसके चार भाग कल्पना किये जाते है। इसका जो भाग प्रथम तीन ग्रीवाकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनों के सम्मुख से ऊपर जा कर गलबिल और उपजिह्विका के पार्श्व मे लगता हैं, वह इसका गलपार्श्वीय नामक प्रथम भाग है। इसके आगे जो भाग शङ्खास्थि के अश्मतटिकाश मे स्थित मातृका सुरङ्गा मे घुसकर करोटि के अन्दर पहुंचता हैं वह इसका 'अश्मतटिक' नामका दूसरा भाग है। करोटिके अन्दर पहुंचा हुआ जो भाग मस्तिष्कवृतिका कला का भेदन कर के जतूकास्थि के शरीर-पार्श्व में स्थित मातृका परिखा मे लुप्त आकार के (S) चिन्ह की भांति टेढ़ा हो कर रहता है। वह इसका 'जातूक पार्श्विक नामका तीसरा भाग हैं। इसके आगे यह धमनी दूसरे और तीसरे भागकी अनेक शाखाओ द्वारा मार्गके बीच मे स्थित रचनाओ का सन्तर्पण करती हुई क्रमशः मस्तिष्क के तलदेश मे पहुंच कर चार शाखाओमें विभक्त हो जाती है। यह इसका 'मस्तिष्कमूलिक' नाम का चौथा भाग है। यह धमनी विशेष कर तृतीय भाग में त्रिकोणिका नाम की सिरासरित् को भेदन करके जाती है। इसके चारों ओर तीसरी से लेकर छठी तक नाड़ियां दिखाई देती हैं।

इसकी प्रशाखाओ का विभाग इस प्रकार है।

(१) गलपार्श्वीय भागमे प्रशाखाओं का सर्वथा अभाव है।

(२) अश्मतटिक भागमे दो प्रशाखायें है—अनुपटहिका और जतूकापटिका। इनकी व्याख्या इनके नाम से हो जाती है।

---

१ Superficial Temporal Artery. २ Internal Carotid Artery

(३) जतूकपार्श्विक भाग मे पाच प्रकार की प्रशाखायें हैं । जतूकापार्श्विका, अनुपोषणिका, त्रिधारकन्दिका, अग्रिमा मस्तिष्कवृतिगा और चाक्षुषी । इनमे 'जतूकापार्श्विका' नामकी बहुत सी प्रशाखायें जतूकास्थि-शरीर की समीपस्थ रचनाओंका पोषण करती हैं । अनुपोषणिका नामकी प्रायः युग्म प्रशाखा पोषणक नामकी ग्रन्थिका तर्पण करती हैं । त्रिधारकन्दिका नाम की पतली प्रशाखायें पञ्चम नाड़ी के त्रिधारकन्द का पोषण करती हैं । अग्रिमा मस्तिष्कवृतिगा नामकी पतली प्रशाखा अपने नामसे स्पष्ट है । चाक्षुषी नामकी प्रशाखा दश अनुशाखाओंके द्वारा आंखकी रचनाओं को और दूसरी तीनके द्वारा मस्तिष्कवृति, ललाट और नासामूलको जीवन देती है । इसका विस्तार से वर्णन नेत्र अध्याय मे आयेगा ।

(४) मस्तिष्कमूलिक भाग मे मस्तिष्क को पोषण देने वाली अन्तर्मातृका की चार प्रशाखायें उसके नीचे दिखायी देती हैं । ये अभिमस्तिष्का अग्रिमा, वही मध्यमा, पश्चिमा मूलयोजनिका और अग्रिमा अनुशृङ्खलिका नामसे प्रसिद्ध हैं । ये दूसरे पार्श्वकी अन्तर्मातृकाकी इसी नाम वाली चार शाखाओं के साथ मिल कर मस्तिष्कमातृका नामकी धमनियों की अग्रमूलिका के साथ सयुक्त होती है । इस प्रकार से मस्तिष्कमूलीय धमनीचक्र बनता हैं (६६ चित्र मे देखिये) ।

इन चार शाखाओमे मध्यमा अभिमस्तिष्का ही मुख्य है, यही सब से मोटी अग्रप्रशाखा है, जो अपने पार्श्वस्थ मस्तिकार्द्धके मध्यभाग मे प्रविष्ट होती है ।

मस्तिष्कमातृका ।

मस्तिष्कमातृका[१] नामकी (६८ चित्र) दो धमनियां अक्षधरा नामकी धमनियो की शाखायें है जो ग्रीवा के दोनों ओर ऊपर को फैली है । ये मुख्य रूप से मस्तिष्क का पोषण करती है । ये ग्रीवाकशेरुओ के बाहुप्रवर्धनों के अन्दर स्थित मातृकाछिद्रमार्ग से पश्चिम कपालमूल तक पहुच कर महाविवर द्वारा शिर के अन्दर घुसती है । इसके आगे मस्तिष्क के नीचे दोनों के मिल जाने से एक ही धमनी हो जाती है, जिसका नाम 'अग्रमूलिका' अथवा 'मस्तिष्कमूलिका' है । यह मस्तिष्कमूलिक धमनीचक्र मे घुसी है ।

---

१ Verteberal Artery

[६८ चित्र]

अन्तर्मातृका धमनी की शाखा-प्रशाखायें।
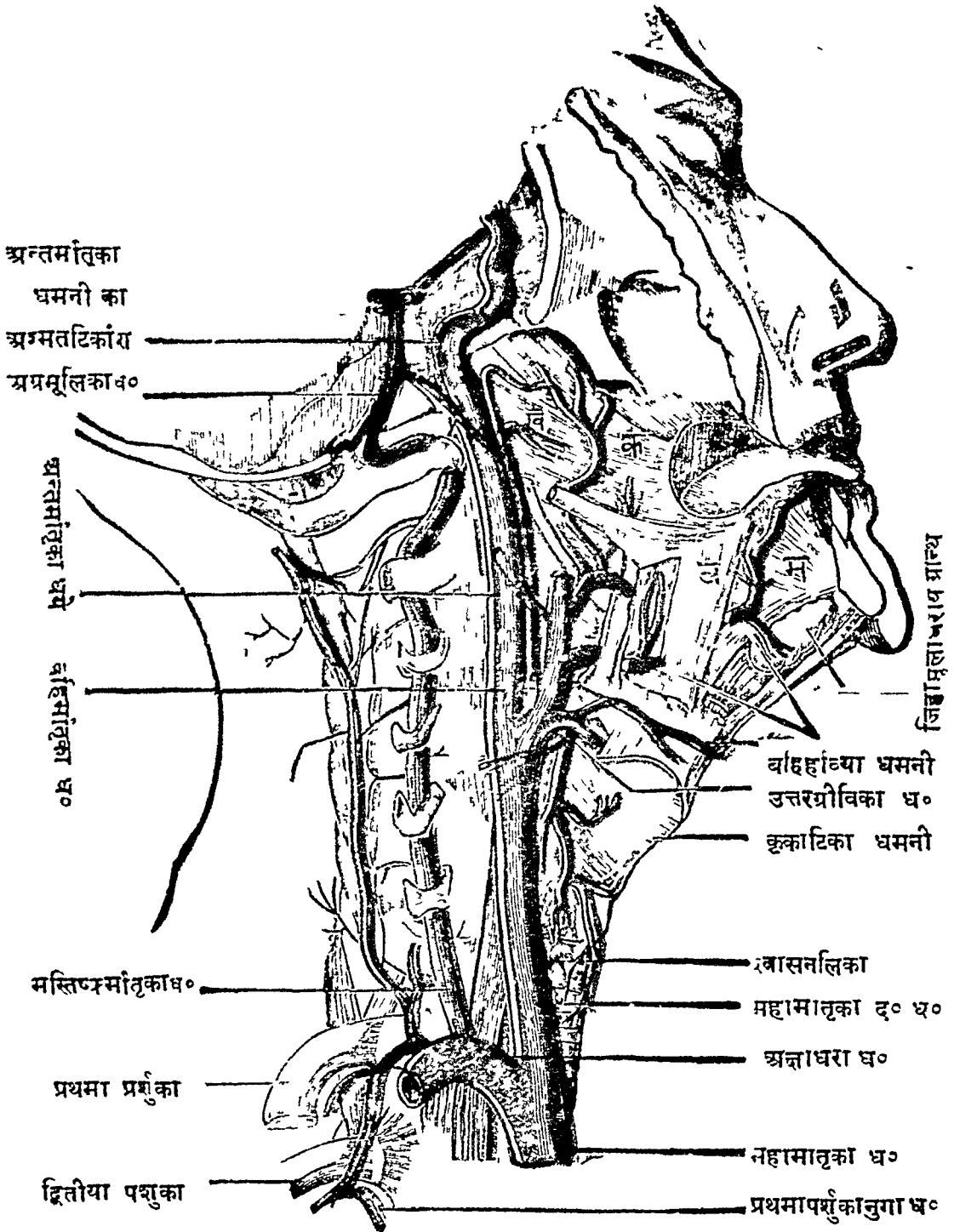
म—जिह्वाकण्ठिका पेशी। ज—चिबुकजिह्वाकण्ठिका पेशी। क—कपोलिका ख गलसंकोचनी उत्तरा। ध० धमनी। द० वाहिका।

प्रत्येक मस्तिष्कमातृका की दो प्रकार की शाखायें हैं—"ग्रीवागता" और "शिरोऽभ्यन्तरीया"। इनमें "ग्रीवागता" फिर दो प्रकारकी है—मांसगा और सुषुम्नाकाण्डीया। इनमें कपालमूल से निकली मांसगा शाखायें पश्चिम ग्रीवा की गम्भीर पेशियों का पोषण करती हैं। सुषुम्नाकाण्डीया शाखायें कशेरुचक्रों के अन्तरीय छिद्रों का आश्रय करके सुषुम्नाकाण्ड में घुसी हैं और उसका पोषण करती हैं। शिरोऽभ्यन्तरीयाशाखायें मस्तिष्कमूलिका-निर्माण से पूर्व चार प्रकार की हैं—मस्तिष्कावृतिगा, पृष्ठवंशान्तरीया, अनुमस्तिष्कीया और सुषुम्नाशीर्षगा। मस्तिष्कमूलिका की पाच प्रकार की शाखायें दोनो ओर से निकली हैं—अनुमस्तिष्कीया उत्तर अनुमस्तिष्कीया अग्रिमाधरा, अनुधम्मिल्लका, अन्तश्श्रुतिगा और मस्तिष्कानुगा पश्चिमा। इनके पार्श्वों से निकली शाखाओं के द्वारा अनुमस्तिष्क धम्मिल्लक, अन्तःश्रवण की रचनाओं और मस्तिष्क के पश्चिमभागका पोषण होता है। और अन्त में यही धमनी पश्चिम मस्तिष्क में जाने वाली दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है।

मस्तिष्कमूलिक नामका धमनीचक्र[1]।

मस्तिष्क का अधिक भाग दोनों मस्तिष्कमातृका और दोनों अन्तर्मातृका द्वारा सन्तर्पित होता है। ये मस्तिष्कमूल में अपनी शाखाओं के परस्पर सम्मेलन से दृष्टि-नाडीस्वस्तिक और पोषणक ग्रन्थि के चारों ओर धमनीचक्र बनाती हैं (६६ चित्र)। यह चक्र इस प्रकार बनता है—सम्मुखभाग में अन्तर्मातृका की दो अग्रिम प्रशाखायें (मस्तिष्कानुगा धमनी), जो कि अग्रयोजनिका नामकी छोटी धमनी द्वारा मूल मात्र में योजित रह कर आगे युग्मरूप से फैली हैं। मध्य में अन्तर्मातृका की दो स्थूल अग्रिम प्रशाखायें हैं, जिनका नाम "मध्यमामस्तिष्कानुगा" है। पश्चिम भागमें—मस्तिष्क-मातृकाओं के मिलने से एक बनी "अग्रमूलिका" अथवा "मस्तिष्कमूलिका" नामकी मोटी धमनी है, जो कि पार्श्व में "पश्चिम मस्तिष्कानुगा" नामकी दो शाखा धमनियों के साथ होकर वक्रभाव से फैली है। ये धमनिया अन्तर्मातृका की "पश्चिम योज-निका" नामकी दोनों शाखाओं के मूलों से मिली हैं। इन सब की शाखायें प्रतानों के द्वारा मस्तिश्क के अन्दर फैली हैं। मस्तिष्क के पोषण के लिये यह रचना विचित्र है।

इनके अतिरिक्त ग्रीवा के अक्षाधरा से उत्पन्न होने वाली और भी शाखाधमनियां हैं, जो ग्रीवा की रचनाओं का पोषण करती हैं। उनका मूल ग्रीवा के प्रत्येक

१। Circle of Willis

[६६ चित्र]

मस्तिष्कमूल का धमनीचक्र ।
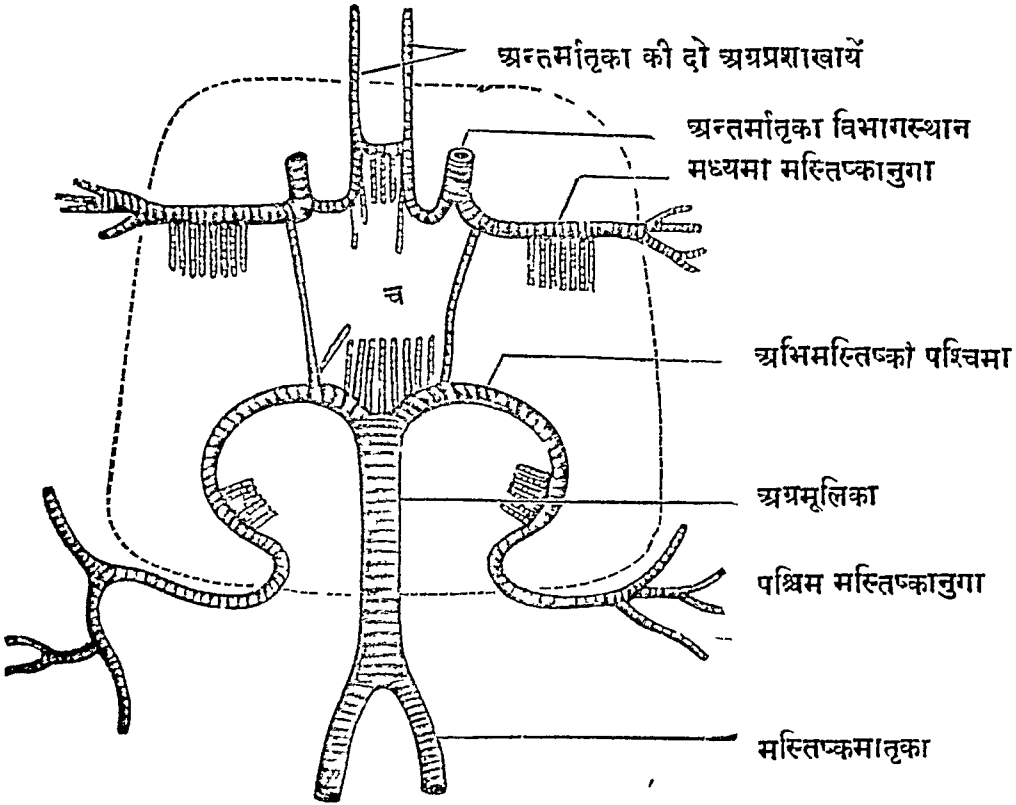
पार्श्व मे अक्षाधरा की दो शाखायें है। ये शाखायें—गलग्रैवेयकी और ग्रैव-पाशु की नामकी हैं, इनका वर्णन आगे आयेगा।

इन सब का संस्थान आदि नाम से ही कहा गया।

पञ्चम अध्याय।

मध्यकाय की धमनियों का वर्णन।

मध्यशरीर की धमनियों मे (अथवा सार्वकायिक रक्तसंवहन की धमनियों में) महाधमनी प्रधान है। इसकी, इसके विभागो तथा सम्बन्धों की एवं काण्डशाखाओं की व्याख्या पहिले आ चुकी। इसका अवरोही भाग उरमें औरसी धमनी और उदर मे औदरी महाधमनी कहा जाता है। इसकी शाखा-प्रशाखाओंके द्वारा ही मध्यशरीर की रचनायें मुख्यतः सन्तर्पित होती है।

इसके अतिरिक्त महाधमनी के तोरण से उत्पन्न होने वाली दोनों अक्षाधराओ की शाखा-प्रशाखा आदि शरीर मे फैली हैं। ये पूर्वोक्त धमनियो की सहकारिणी हैं। फुरफूसाभिगा धमनी सार्वकायिक सिरारक्त को फुस्फुस में पहुंचती है- इसकी व्याख्या प्रथम हो गयी।

औरसी धमनियां।

औरसी नामकी धमनिया दो प्रकार की हैं। एक औरसी महाधमनी की शाखायें और दूसरी दोनो अक्षधरा धमनियों की शाखायें। ये दोनों प्रकार की शाखायें तर्पणीय देश के भेद से फिर दो तरह की हैं—'आशयानुगा' और 'परिसरीया,। इनमें—

'आशयानुगा' तीन प्रकार से विभक्त होती है— हृत्कोपानुगा, क्लोमकाण्डानुगा और अन्ननलिकानुगा। 'परिसरीया' भी तीन प्रकार की है— फुस्फुसान्तरालीया, महाप्राचीरोत्तरा और पर्शुकानुगा। ये मुख्यतः महाधमनी के पार्श्वों से अथवा पृष्ठ से उत्पन्न हुई हैं। यथा—

हृत्कोपानुगा— नामकी तीन-चार पतली शाखायें हृत्कोप से पश्चिम मे फैली है। हार्दिक धमनियां आरोही महाधमनी से उत्पन्न होने वाली पृथक् ही हैं— उनका वर्णन आ चुका है।

क्लोमकाण्डानुगा नामकी दो तीन शाखायें क्लोमकाण्ड की शांखाओं के साथ जाती हैं, और क्लोमकाण्ड की शाखाओं के साथ में सैकड़ों बार विभक्त होती है। ये दोनों क्लोमशाखाओ के सहित दोनों फुस्फुसों का पोपण करती हैं।

अन्ननलिकानुगा—नामकी चार या पाच पतली धमनियां अन्ननलिका के चारों ओर फैली है।

फुस्फुसान्तरालीया—नामकी कुछ पतली शाखायें पश्चिम फुस्फुसान्तराल में स्थित लसीका ग्रन्थियों का पोषण करती है।

महाप्राचीरोत्तरा—नामकी पतली शाखायें महाप्रचीरा पेशी के ऊर्द्ध्वतल के पश्चिमार्द्ध में फैली हैं।

पर्शुकानुगा—नामकी एक एक ओर दश शाखायें दशपर्शुकाओं की निम्नधाराओं मे रहती हैं। ये पर्शुकान्तराला नामकी पेशियों का पोपण करती हैं। और इनकी कुछ प्रशाखायें पेशियों का भेदन करके सम्मुख मे बाहर आ कर उर (छाती) के सम्मुखस्थ पेशी त्वचा और दोनों स्तनों का पोषण करती हैं।

अक्षाधरा धमनियों की औरसी शाखाओं का वर्णन आगे कहा जायेगा।

अक्षाधरा।

अक्षाधरा[१] नामकी दो स्थूल धमनिया दक्षिणा में काण्डमूला नामकी धमनी से और वाम में साक्षात् महाधमनी-तोरण से उत्पन्न हो कर अक्षकास्थियों के नीचे प्रथम पर्शुकाओं के ऊर्ध्वतल का आश्रय करके धनुप के समान टेढ़ी दिखायी देती हैं। प्रथमपर्शुका की सीमा को लाघ कर कक्ष मे जाने से उनकी कक्षाधरा संज्ञा हो जाती है। प्रत्येक कक्षाधरा की चार शाखायें हैं—मस्तिष्कमातृका, "गलग्रैवेयकी", "ग्रैवपार्शुका" और "अन्तःस्तनिका"।

इनमें प्रथमशाखा का वर्णन पहिले हो चुका है।

गलग्रैवेयकी—नामकी अक्षशाखा ग्रीवामूलदेश मे उत्पन्न हुयी है। धुरे से निकलते हुए आरे की भाँति इससे से तीन प्रशाखायें फैली हैं। इनका नाम 'अधरग्रीविका' षण्मुखी, अधिग्रीविका और अध्यंसिका है। इनमे प्रथम छः अनुशाखाओं के द्वारा फैली है, जिनमे दो क्लोमनलिका और अन्ननलिका का एवं चार ग्रैवेय ग्रन्थि, स्वरयन्त्र और ग्रीवा पेशियों का पोषण करती हैं। दूसरी कुछ ग्रीवापृष्ठपेशियों का तथा तीसरी अंसफलक के ऊपर फैल कर कुछ अंसपेशियों और ग्रीवा पेशियों का पोषण करती है।

ग्रैवपार्शुकी नामकी अक्षाधरा की जो शाखा है, उसकी दो प्रशाखायें हैं—एक गम्भीरग्रीविका और दूसरी प्रथमा-पर्शुकानुगा। इनमे प्रथम प्रशाखा ग्रीवा धमनियों मे दिखायी देती है। यह गम्भीर ग्रीवापेशियों मे शाखा प्रतानों के द्वारा घुसी है।

---

१ Subclavian Artery

[१०० चित्र]

अवरोहिणी महाधमनी (शाखा सहित)।
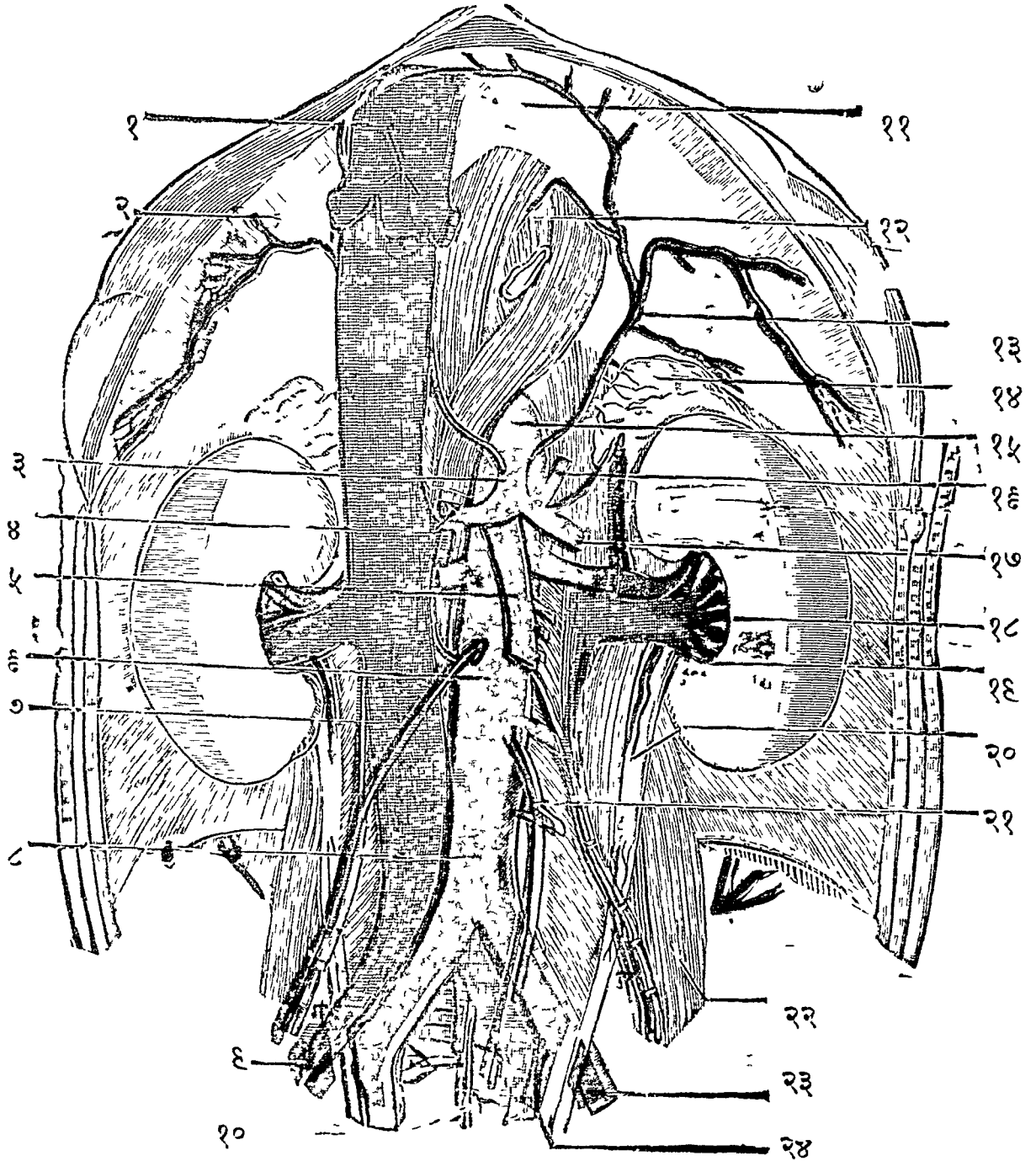
१ अधरा महासिरा (यकृत सिरा सहित)। २ महाप्राचीरा पेशी। ३ अर्द्धोदरिका धमनी। ४ उसीकी अभियाकृती शाखा। ५ उत्तरान्त्रिकी धमनी। ६ महाधमनी। ७ अधरा महासिरा। ८ महाधमनीका विभाग स्थान। ९ अधिश्रोणिका वाह्या सिरा। १० त्रिकमध्या सिरा और धमनी। ११ महाप्राचीरा पेशी। १२ अन्ननलिका (कटि हुयी)। १३ अधरा महाप्राचीरिका धमनी। १४ अधिवृक्क। १५ महाधमनी। १६ आमाशयक्रोडिका वामा। १७ अभिप्लीहिका धमनी। १८ वृक्कप्रभवा सिरायें। १९ गवीनीप्रभव। २० वामा गवीनी। २१ अधरान्त्रिकी धमनी। २२ कटिलम्बिनी दीर्घा पेशी। २३ अधिश्रोणिका वाह्या धमनी। २४ अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी सिरा और धमनी।

अन्तःस्तनिका[1]—नामकी शाखा उरःपञ्जर के अन्दर उरःफलक की पार्श्व सन्धि रेखा के साथ नीचे को मुख किये छठी उपपर्शुका की सन्धि तक फैली है। यहां पर यह दो अग्रप्रशाखाओं मे विभक्त होती है। इनमे एक मध्यरेखा पार्श्व में जाने वाली सरला और अधोमुखी है। इसका नाम उत्तरा औदरिकी है—यह औदर्य्य पेशियो का पोषण करती है। दूसरी तिरछी प्रशाखा अन्दर जा कर हृत्कोप, महाप्रचीरा और औदर्य्य पेशियो को अनुशाखा द्वारा पोषण करती है। इसका नाम तिरश्चीना औदरिकी है। इसके पार्श्व की प्रशाखाये उरःप्राचीर के अन्दर स्थित पेशियों और दोनों स्तनोका पोषण करती है।

विभाग होने के पूर्व इसकी छः प्रशाखायें उत्पन्न होती है। इनमे अग्रिम प्रशाखा फुस्फुसान्तराल, महाप्राचीरा, उर.फलक, फुस्फुसधरा कला तथा पर्शुकान्तरालों में अनुशाखाओं के द्वारा फैली है।

अन्त.स्तनिका के सब शाखाप्रतान औरसी धमनियो के पूर्वोक्त शाखाप्रतानों के साथ मिल कर उर के वाहर और भीतर वहुत से धमनीचक्रों की रचना करते है।

यह औरसी धमनियों की व्याख्या हो गयी।

औदरी धमनियां।

औदरी धमनियां—प्रधान्यतः औदरी महाधमनी की काण्डशाखा से उत्पन्न हुई हैं। और भी कुछ परिसरीया धमनियां हैं जो अन्तःस्तनिका, अक्षाधरा, बाह्या अधिश्रोणिका तथा औवी धमनियों से उत्पन्न होकर औदरी पेशिया एवं त्वचा आदि फैली है।

इनमे औदरी महाधमनी की काण्डशाखायें तीन प्रकार की है—आशयानुगा परिसरीया और चरमशाखा। इनमें आशयानुगा की तीन तो अकेली है, और तीन युग्म है—इस प्रकार कुल नौ हैं। परिसरीया धमनिया पाच युग्म है और एक अकेली है—इस प्रकार ग्यारह हैं। चरम शाखायें मुख्य चार हैं। ये महाधमनी के विभाग से उत्पन्न दो महाशाखाओं के फिर विभाग होने से उत्पन्न हुई है। इनकी शाखा-प्रशाखाओ के द्वारा दोनों सक्थि और वस्तिदेश की रचनाओं का पोषण होता है।

---

[1] Internal Mammary.

आशयानुगा।

(१) **अर्द्धोदरिका**[१] – आशयोनुगा धमनियें मे यह प्रथम अक्षशाखा है। (१००।१०१ चित्र में)। यह धुरे से निकलते हुए आरे की भांति तीन शाखाओंका मूल हो कर उदर के उत्तरार्द्ध में स्थित आशयो का पोषण करती है— इसीलिये इसकी यह संज्ञा है। और ये शाखायें दक्षिणमे अभियाकृती, वाम मे— अभिप्लीहिका और मध्यमे – आमाशयक्रोडिका वामा नामकी हैं। इनमें—

(क) अभियाकृति[२] नामकी शाखा यकृत् की ओर फैलती हुयी मध्यमार्ग में आमाशय की ऊर्ध्व एवं अधः परिधि को दो प्रशाखायें भेजती है।

इनमे प्रथमा प्रशाखा धनुष के समान वक्र आमाशय की गोद के साथ साथ जाती है, इसका नाम आमाशय क्रोडिका दक्षिणा है। दूसरी उसी की भांति आमाशय तल के साथ गयी है, इसका नाम आमाशयतलिका दक्षिणा है। यह आमाशय तल को घेर कर स्थित अपने नामकी वामा प्रशाखा से मिल कर वपा सहित आमाशय को तर्पित करती है। इसकी एक अनुशाखा ग्रहणी की ओर गई है, उसका नाम उत्तरा अनुग्रहणिका है।

अभियाकृती नामकी धमनी यकृत् मूल में दक्षिण और वाम प्रशाखाओं में विभक्त हो कर यकृत् के दोनों पिण्डो मे फैलती है। इनमे दक्षिण प्रशाखा से पित्तकोपानुगा धमनी उत्पन्न हुयी है।

(ख) अभिप्लीहिका[३] नाम की शाखा सर्प की भांति कुटिल गति से प्लीहा की ओर फैलती हुयी मध्य मे पाच-छ प्रशाखाओं द्वारा आमाशय के ऊर्द्ध्व-देश का पोषण करती है। प्लीहा मूलमे पहुंचने पर इससे आमाशयतलिका वामा नामकी स्थूल प्रशाखा उत्पन्न होती है। यह धनुष के समान वक्र आमाशय तल का आश्रय करके स्थित पूर्वोक्त दक्षिणा आमाशयतलिका से मिली है। अभिप्लीहिकाके इस देशसे उत्पन्न होने वाली आमाशय पादिका नामकी और भी छोटी छोटी प्रशाखाये हैं, पूर्वोक्त आमाशय तलिका नामकी दोनों लम्बी धमनियें की सहकारिणी है।

अभिप्लीहिका नामकी यह धमनी प्लीहा मे प्रविष्ट हो कर बहुत सी प्रशाखा अनुशाखाओं के द्वारा उसके अन्दर फैली है।

---

१ Coeliac Axis २ Hepatic Artery, ३ Splenic or Lienal,

(१०१ चित्र)

अर्द्धोदरिका धमनी और उसकी शाखायें ।

[यकृद्—रज्जुबन्ध से समुन्नमित]
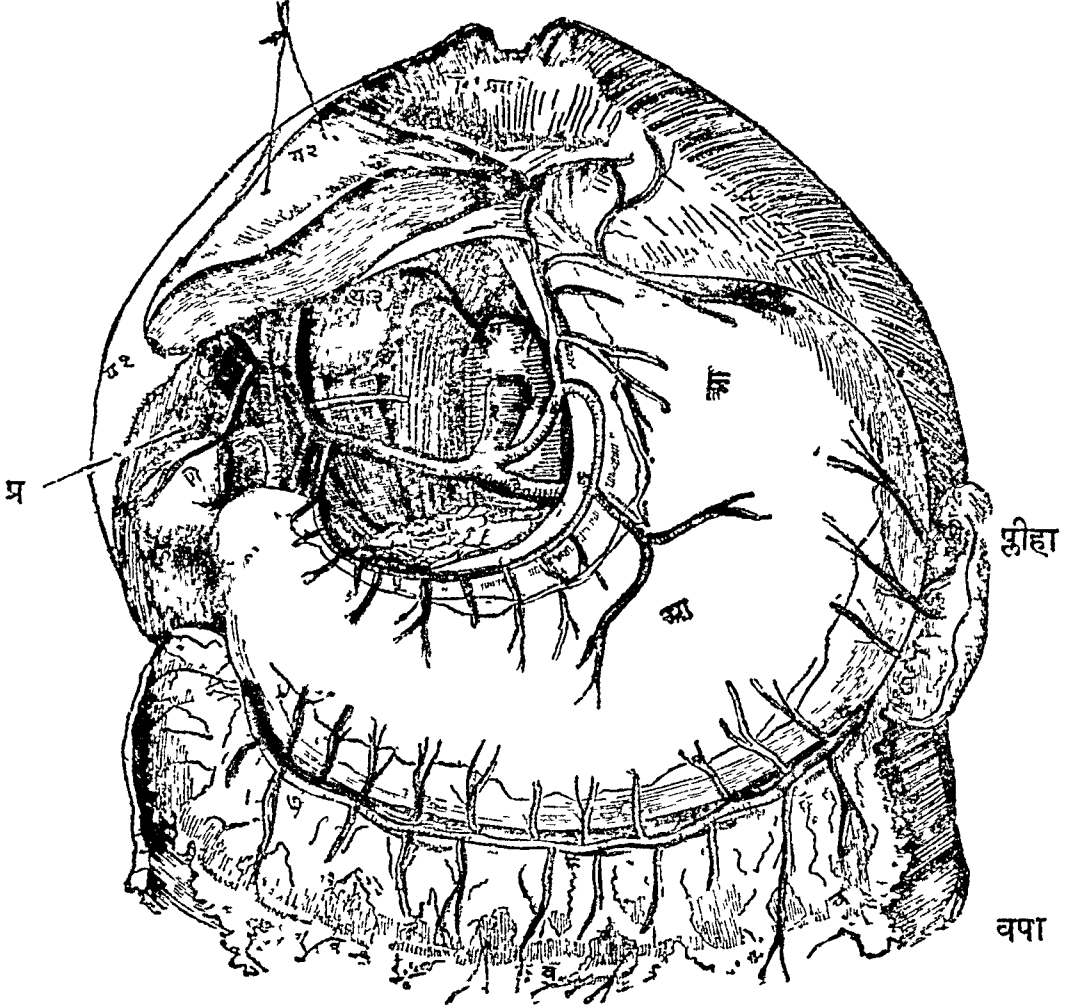
अ० अग्न्याशय। अ० म० अधरा महासिरा। आ० आ० आमाशय। य१ यकृत (वामपिण्ड)। य२ यकृत् (दक्षिणपिण्ड)। य३ यकृत् (पश्चिमपिण्ड)। पि० पित्तकोष। प्र० प्रतीहारिणी महासिरा। म० प्रा० महाप्राचीरा पेशी। व-व व० वपा। १ अर्द्धोदरिका धमनी (अक्षशाखा) २ अभियाकृती धमनी। ३ पित्तस्रोत। ४।५ आमाशयक्रोडिका धमनी। ६ अभिप्लीहिका धमनी। ७।८—आमाशयतलिका धमनियां (मिली हुई)।

(ग) आमाशयक्रोडिका वामा[1]—नामकी धमनी अर्द्धोदरिका की मध्यमा शाखा है। यह आमाशय के क्रोड देश में फैली इसी नामकी पूर्वोक्त दक्षिणा धमनी से मिल कर आमाशय के आधे भाग का तर्पण करती है। दोनों आमाशयक्रोडिका और दोनों आमाशय-तालिकाओं के शाखा प्रतानों द्वारा आमाशय के भीतर और बाहर स्थित सैंकड़ों जालक बनते हैं।

(२) औदरी महाधमनी की दूसरी काण्डशाखा का नाम **उत्तराऽन्त्रिकी**[2] है (१०२ चित्र)। यह अग्न्याशय के पीछे स्थित महाधमनी के भाग से प्रायः कंघी के आकार वाली शाखाओं द्वारा उत्पन्न होती है और अन्त्रबन्धनीयों में तालवृन्त के आकार से फैले हुए शाखाप्रतानों द्वारा सम्पूर्ण क्षुद्रान्त्रों का और बृहदन्त्र के अधिकांश का पोषण करती है। इसकी चार पार्श्वशाखायें मुख्य हैं। यथा—

(क) अधरा अनुग्रहणिका—यह पूर्वोक्त उत्तरानुग्रहणिका के साथ शाखाप्रतानों द्वारा मिल कर ग्रहणी और अग्न्याशय का तर्पण करती है। (ख) मध्यमा बृहदन्त्रिका और (ग) दक्षिण बृहदन्त्रिका। यह बृहदन्त्र के बहुत से भागों को व्याप्त किये हुए है। (घ) उण्डुकान्त्रिका यह बृहदन्त्र के उण्डुक भाग का और समीपस्थ क्षुद्रान्त्र भाग का तर्पण करती है।

उत्तरान्त्रिकी की चरम शाखायें क्षुद्रान्त्रों में बहुत सी अणुशाखाओं द्वारा फैली हैं। इनका नाम क्षुद्रान्त्रिका है।

(३) तीसरी काण्डशाखा **अधराऽन्त्रिकी**[3] नामकी है (१०२ चित्र)। यह उत्तरान्त्रिकी से पतली धमनी है, जो कि गुदा सहित बृहदन्त्र के शेषार्द्ध को पोषण करती है। इसकी (क) प्रथमा शाखा वामा बृहदन्त्रिका नामकी है, यह मध्यमा बृहदन्त्रिका से धनुष की भांति वक्र हो कर मिल कर बृहदन्त्र बन्धनी में फैले शाखा प्रतानों के द्वारा बृहदन्त्र के मध्य और अन्तिम भाग का पोषण करती है। इसकी (ख) मध्यशाखायें दो या तीन हैं ये गुदोण्डुक में फैली हैं। (ग) अन्तिम शाखा उत्तर गुदान्तिका नामकी है, यह उत्तर गुद का पोषण करती है।

---

१ Left Gastric २ Superior Mesenteric Inferior Mesenteric

[१०२ चित्र]

अन्त्रगत धमनियाँ (शाखा-प्रशाखा सहित)।
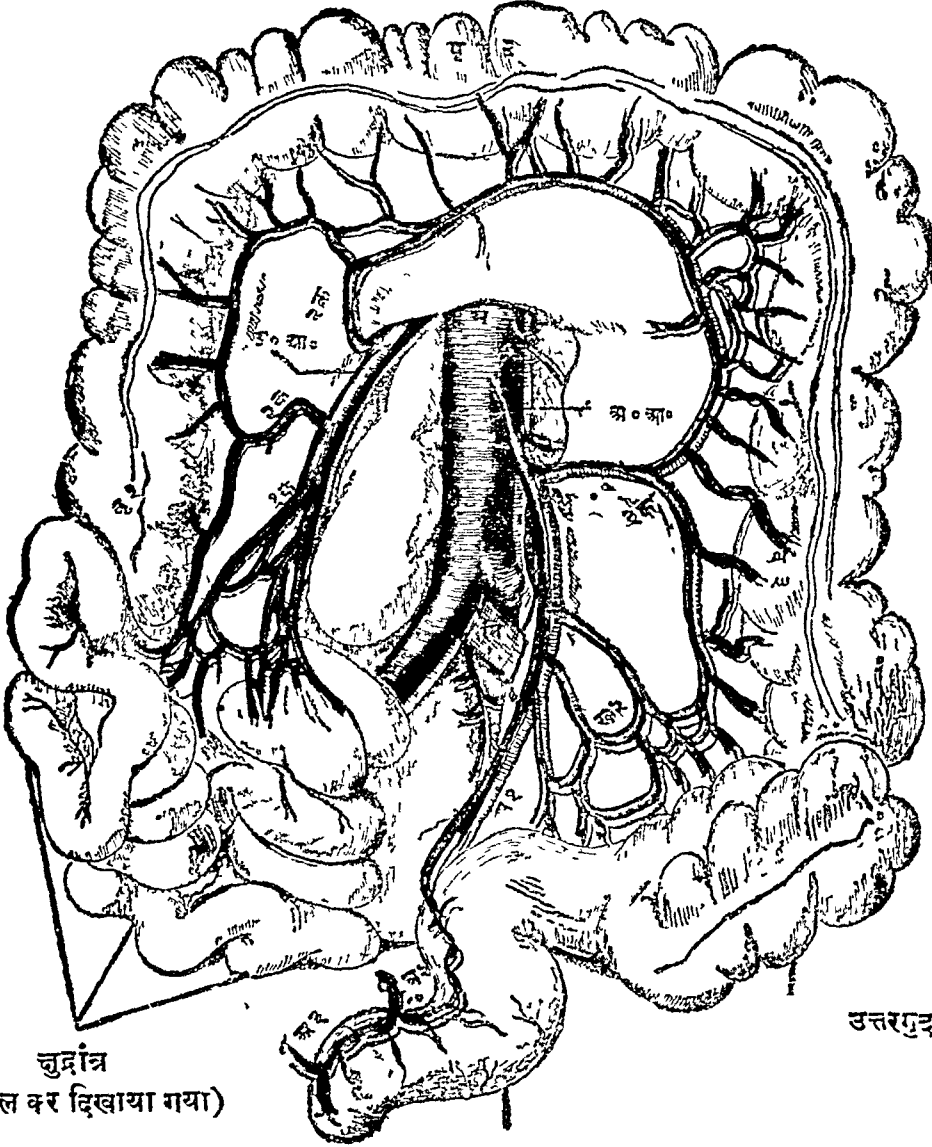
म—महाधमनी।

बृ १—बृहदन्त्र का आरोहिभाग।

बृ २ ,, मध्यभाग।

बृ ३ ,, अवरोहिभाग।

उ० आ०—उत्तरान्त्रिकी धमनी।

अ० आ०—अधरान्त्रिकी धमनी।

१क। २क ३क। उत्तरान्त्रिकी धमनी की अन्त्रगा शाखाये।

अ१। अ२। अ३। अधरान्त्रिकी धमनी की गुदान्तिका शाखाये।

(To face page 132)

(१०३ चित्र)

महाधमनी की श्रोणिगुहान्तरीया शाखा।
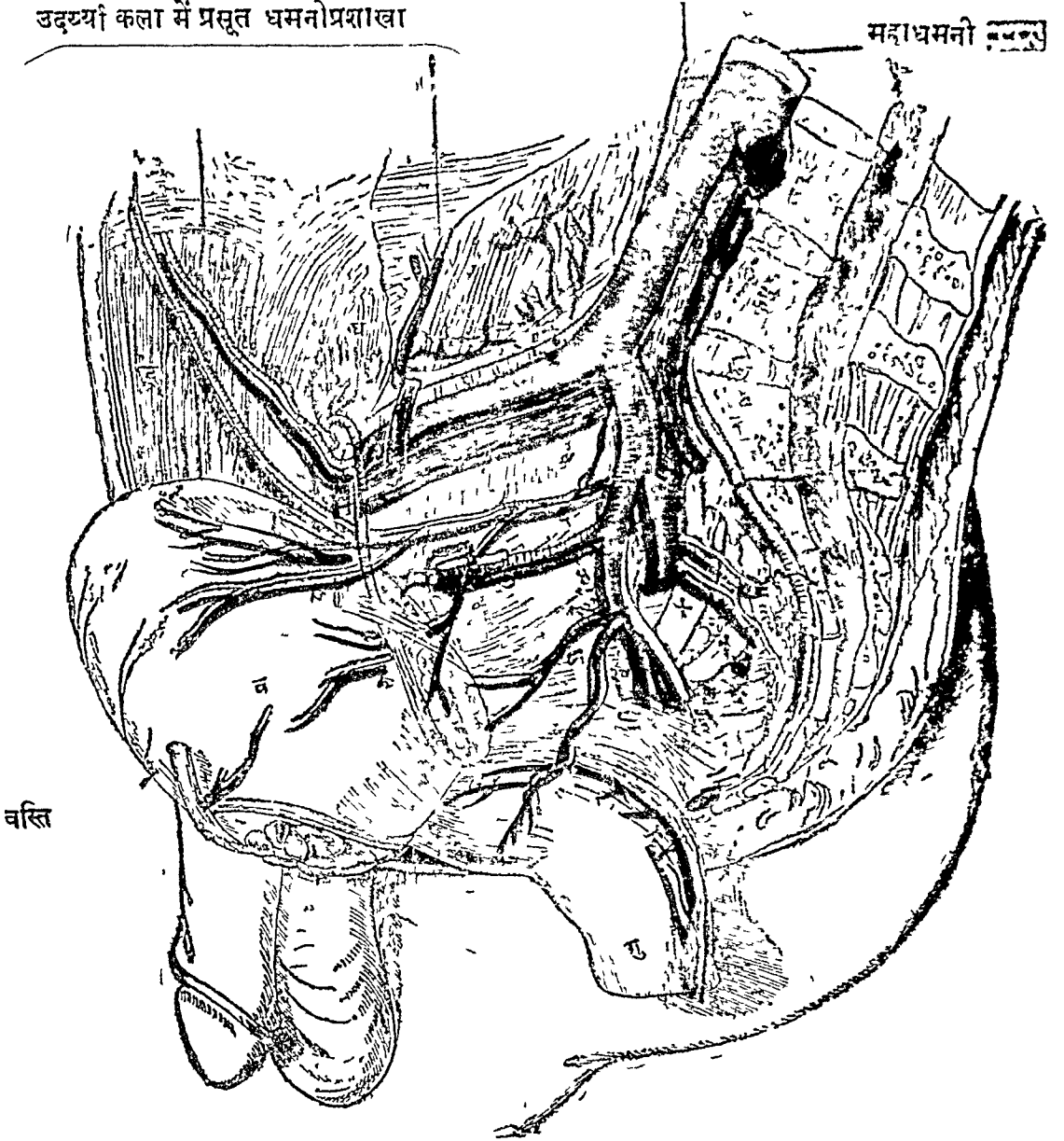
गु—गुद। क५—५मी कटिकशेरुका। द—उदरदण्डिका पेशी।

१—अधिश्रोणिका साधारणी धमनी।

२ ,, बाह्या ,,

३ ,, आभ्यन्तरी ,,

४ उसीकी पुरःशाखा।

५ ,, पश्चिमशाखा।

६।७।८।९—वस्तिगुदगा धमनियां। × × कटित्रिकिणीसंज्ञा नाडियां।

१०—श्रोणवङ्क्षणिका और अधरा नितम्बिनी नाम की धमनियां।

(To face page 136)

सभी आन्त्रिकी धमनियां यथासम्भव शाखाप्रतानों द्वारा परस्पर मिलकर अन्त्र-मूलोमे वहुतसे धमनीचक्रों की रचना करती है।

(४) मध्यमा अधिवृक्किनी नामकी दो काण्डशाखायें महाधमनी के पार्श्वभाग से उत्पन्न हो कर वृक्कों के शिखरस्थित अधिवृक्को[२] मे घुसी है। ये उत्तरा और अधरा अधिवृक्किनी धमनियो से मिल कर अधिवृक्क के पोषण के लिये धमनीचक्र वनाती है।

(५) इसके नीचे इसी प्रकार की 'अनुवृक्का' नामकी दो धमनिया वृक्कों मे जाती है। इनकी दो शाखायें अधिवृक्कों मे फैली है—इनका नाम अधरा अधिवृक्किनी[३] है।

(६) महाधमनी की ओर दो पतली और लम्बी काण्डशाखायें नीचे तिरछी जा कर पुरुषो के वृषणो मे पहुंची है—इनका नाम अनुवृषणिका[४] है। स्त्रियों मे यही बीजकोषों का तर्पण करती है—और अनुबीजकोषिका' नाम से प्रसिद्ध है।

यहां तक आशयानुगा धमनियोंका वर्णन हो चुका।

अव परिसरीया काण्डशाखाओं का वर्णन किया जाता है। इनमे दो अधरा महाप्राचीरिका, आठ अनुकटिका, और एक त्रिकमध्या नाम की है। यथा—(१०० चित्र)।

(१) अधरा महाप्राचीरिका[५] नामकी दो धमनियां महाप्राचीरा के नीचे पहुंची हुयी महाधमनी की ऊपर को दो शाखायें है। (ये कही कहीं अर्द्धोदरिका की अध.शाखा से उत्पन्न होती है। ये महाप्राचीरा के सम्यक् पोषण के लिए, पूर्वोक्त 'महाप्राचीरोत्तरा' नामकी दोनों धमनियो के साथ शाखा-प्रतानों द्वारा परस्पर सम्बन्ध करती है।

इनके पार्श्व से उठी हुयी दो शाखाये अधिवृक्कों मे पहुंचती है—इनका नाम उत्तरा अधिवृक्किनी है।

(२) अनुकटिका नाम की चार चार काण्डशाखायें कटिकशेरुकाओं के सम्मुख एक एक तरफ फैली हैं, ये कटिपेशियोंका तथा उदरकी पेशियोंका पोषण

१ Middle Suprarenal Arteries २ Suprarenal Bodies ३ Side Branches of Suprarenal Artery ४ Testicular (or Ovarian) Arteries ५ Inf Phrenic Artery ६ Lumbar Arteries

करती है। ये उदर के दोनों प्राश्वों मे और मध्यरेखा के समीप शाखाप्रतानों द्वारा परस्पर मिली हैं।

(३) त्रिकमध्या नामकी अकेली धमनी महाधमनी के पीछे से उत्पन्न हो कर त्रिक और अनुत्रिक को गोद मे मध्यरेखा मे फैली है और अनुत्रिक के सम्मुख स्थित है, यह ईडा-पिङ्गला के मूल मे स्थित अण्डाकार नाडीकन्द और गुदा का पोषण करती है। यह महाधमनी की सब से नीची शाखा है जो कि उसके विभाग स्थानसे उत्पन्न है।

महाधमनीसे उत्पन्न हुयी ग्यारह परिसरीया धमनियोंकी व्याख्या हो गयी। अब महाधमनीकी चरम शाखायें का वर्णन किया जाता है।

औदरी महाधमनी के विभाग से दो महाशाखायें उत्पन्न होती हैं। उनका नाम **अधिश्रोणिका साधारणी**[२] है (१०० चित्र)। यह विभाग चतुर्थ कटिकशेरु के सम्मुख वाम पार्श्व मे होता है—यह कह चुके हैं। इनके दक्षिण और पश्चिम मे अधरा महासिरा की दो काण्डसिरायें दिखायी देती हैं। इनके सम्मुख वृक्को से निकले हुए 'गवीनो' नाम के दो मूत्रवह स्रोत और क्षुद्रांत्र दिखायी देते है।

ये महाशाखायें त्रिक-पृष्ठवंशीय सन्धि के सम्मुख दोनों पार्श्वोंमे दो दो अग्रशाखाओ में विभक्त होती है। इनमे बहिर्मुख फैली हुई शाखाओका नाम अधिश्रोणिका बाह्या है। वस्तिगुहा के अन्दर नीचे फैली हुयी शाखाओका नाम अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी है।

इन चारों मूलधमनियो की पारिभाषिक संज्ञा काण्डशाखा है। इनमे —

(१) **अधिश्रोणिका बाह्या**[३] नाम की (महाधमनीकी) काण्डशाखा महाधमनी के विभाग स्थान से आरम्भ हो कर जघनोदर मे बाहर की ओर तिरछी फैली हुयी है, और वंक्षणिका नामकी स्नायुरज्जु तक गयी है। फिर वंक्षणदरीमे से निकलने पर यही **और्वी धमनी** हो जाती है। यह त्रिक और पृष्ठवंशके समीप स्थित कटिलम्बिनी आदि पेशियोंका और लसिका ग्रन्थियें का पोषण अपनी पतली शाखाओं द्वारा करती है और वंक्षणदरी के मूल मे दो मोटी शाखायें भेजती है। इन शाखाओंका नाम अधरा औदरिकी और गम्भीरजघनिका है।

---

१ Middle Sacral Artery. २ Common Iliac Artery. ३ External Iliac Artery.

इनमे प्रथम अधरा औदरिकी नामकी धमनी तिरछी गतिसे उदरपरिसर का भेदन करके उदरदण्डिका पेशीके कञ्चुकके अन्दर प्रविष्ट होती हुयी पूर्वोक्त उत्तरौदरिकी धमनीके शखाप्रतानोंके साथ धमनीचक्र बनाती है, और फिर फलकोषोंमे जाने वाली प्रशाखाये देती है। अन्तिम गम्भीर जघनिका नामकी धमनी फिर तिरछी गतिसे जघनचूड़ाकी ओर जा कर उदरच्छदा चरमा नामकी पेशीका भेदन करके पीछेकी ओर फैलती हुई क्रमशः कटि, नितम्ब और उदरमें शाखाप्रतानों को दे कर उस देशकी धमनियोंके साथ चक्रोंकी रचना करती है।

(२) **अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी**[१] नामकी काण्डशाखा (१०३ चित्र) महाधमनी के अन्तिम विभाग देश से निकल कर जघनकपाल के नीचे 'गृध्रसी द्वार' तक फैली है। यह वस्तिगुहा मे अंगुल मात्र दिखायी देती है। वहां पर यह सम्मुख और पश्चिममे जाने वाली दो शाखाओंमे विभक्त हो जाती है।

इनमे सम्मुख शाखा मे पुरुषों मे छः या सात और स्त्रियों में केवल सात ही प्रशाखाये उत्पन्न होती हैं। यथा उत्तरा वस्तिगा, अधरा वस्तिगा (स्त्रियों मे अनुयोनिका), मध्यमा गुदान्तिका, गुदोपस्थिका, अनुगर्भाशया, श्रोणिवक्षणिका और अधरा नितम्बिनी।

इनकी अनुशाखाओ के द्वारा वस्तिगुहा के अन्दर रहने वाली तथा 'मूलाधार चतुरस्र' मे स्थित रचनाओ का पोषण होता है। पश्चिमा शाखा से उत्पन्न होने वाली शाखाये कटिश्रोणिका त्रिकपार्श्विकी और उत्तरा नितम्बिनी है। इनकी अनेक अनुशाखाओं के द्वारा मुख्यरूप से कटि, त्रिक और नितम्ब से सम्बद्ध पेशियोंका पोषण होता है।

यहा पर यह स्मरण रखना चाहिए कि यही अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी नामकी धमनी गर्भस्थ शिशु के शरीरमे संवाहिनी नामकी अपनी दो शाखाओं के द्वारा माता की अमरा मे रक्त ले जाती है, और इसीलिए यह उस समय दुगुनी मोटी होती है। बालक उत्पन्न होने पर ये धमनियां प्रायः शुष्क हो कर संवाहिनी रज्जु नामकी वस्तिरज्जु बन जाती है।

अब पूर्वोक्त प्रशाखा धमनियोका विस्तार कहते हैं—यथा—(१०३ चित्र)।

(क) उत्तरा विस्तगा[२] नामकी धमनी वस्ति, दोनो शुक्रवह स्रोत और दोनों गवीनियों का पोषण अपने अनुशाखा-प्रतानो द्वारा करती है।

---

१ Internal Iliac or Hypogastric २ Superior Vesical.

(ख) अधरा वस्तिगा नाम की धमनी पुरुष की वस्ति, पौरुष ग्रन्थि और दोनों शुक्राधारिकाओ का पोषण करती है। स्त्रियों मे यही अनुयोनिका नामकी है जो कि अनुशाखाओं द्वारा वस्ति और योनिका तर्पण करती है।

(ग) मध्यमा गुदान्तिका[२] नामकी धमनी मध्यगुद और वायु का पोषण करती है।

(घ) गुदोपस्थिका[३] नामकी धमनी गुद, उपस्थ आदि का पोषण करती है। यह धमनी गृध्रसी द्वारसे निकल कर कुकुन्दर पिण्ड की गोदमे स्थित स्नायु-मार्ग से, अपने नामकी नाडी और सिरा के साथ 'मूलाधारचतुरस्र' मे प्रविष्ट होती है। इसकी कुछ अनुशाखायें उस देशमें स्थित पेशियोमे घुसी हैं। अन्य शाखायें अधरा गुदान्तिका, मूलाधारिणी, मूत्रस्रोतोमूलिका, मूत्रस्रोतोऽनुगा, शिश्नपृष्ठिका और शिश्नमासगा नामकी हैं, इनकी व्याख्या इनके नाम से ही होती है। स्त्रियो मे भी ये इसी प्रकार हैं, किन्तु मूलाधारिणी भगोष्ठों मे और दोनों शिश्नगा भगशिश्निका में घुसती हैं, इतनी विशेषता है। इन छः अनुशाखाओं मे पहिली दो उत्तान और अन्तिम चार गम्भीर हैं, ये पूर्वोक्त 'त्रिकोणप्रावरणी' दोनो स्तरो के अन्तरालमे फैली हैं—इसे स्मरण रखना चाहिए।

(ङ) अनुगर्भाशया[४] नामकी धमनी स्त्रियोंमे ही पायी जाती है। यह गर्भाशय के प्रत्येक पार्श्व मे कूर्चाकार शाखाओ द्वारा फैली है। यह अपने पार्श्वकी अनुबीजकोषिका नामकी धमनी, अनुयोनिका धमनी तथा अपने नाम-वाली दूसरी धमनी की प्रशाखाओ के साथ योनि, गर्भाशय और दोनो बीजकोषो के चारों ओर धमनीचक्र बनाती है। गर्भिणी स्त्री मे इन सब धमनियोंके आयतन में विशेष वृद्धि देखी जाती है।

(च) श्रोणिवंक्षणिका[५] नामकी धमनी श्रोणिगवाक्ष से निकल कर वंक्षणसन्धि की ओर गयी है। यह अपनी अनुशाखाओं द्वारा वस्तिगुहा के अन्दर वस्ति, जघनोदर और भगास्थि सन्धि का पोषण करती है एवं वस्तिगुहा के बाहर वंक्षण देश में स्थित पेशियो को तथा वंक्षणसन्धि को तर्पित करती है।

---

१ Inf Vesical २ Middle Hæmorrhoidal. ३ Internal Pudendal
४ Uterine ५ Obturator.

(छ) अधरा नितम्बिनी[1]—नामकी धमनी अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी की सम्मुख शाखा से उत्पन्न होने वाली अन्तिम प्रशाखा है । यह श्रोणिगुहा के अन्दर गुद, वस्ति आदि का, और उसके पार्श्व तथा पृष्ठ मे स्थित पेशियों का प्रधानरूप से पोषण करती है । यह वस्तिगुहा के अन्दर कुछ अनुशाखाओं के द्वारा वस्ति गुद और शुण्डिका आदि पेशियों को सन्तर्पित करके गृध्रसी द्वार से निकल कर नितम्बपिण्डिका गुर्वी और ऊरुप्रसारी आदि पेशियों को शाखाप्रतानो द्वारा व्याप्त करती है

यहां तक आभ्यन्तरी अधिश्रोणिका की सम्मुख शाखाओंसे उत्पन्न होने वाली धमनियां कही गयीं । इसकी पश्चिम शाखा से उत्पन्न होने वाली धमनियां तीन ही हैं । यथा (१०३)—

कटिश्रोणिका[2]—नामकी धमनी वस्तिगुहा के अन्दर रहने वाली दीर्घा कटिलम्बिनी, कटिचतुरस्रा और श्रोणिपक्षिणी पेशियों का पोषण अनुशाखाओं के द्वारा करती है । इसकी एक अनुशाखा पृष्ठवंश के अन्दर घुस कर 'सुषुम्नाचामर'[3] का भी सन्तर्पण करती है ।

त्रिकपार्श्विका[4]—नामकी धमनी अपनी उत्तरा और अधरा अनुशाखाओं से त्रिकास्थिविवरो मे घुसकर उसके अन्दर की नाड़ियो को शाखाप्रतानों द्वारा सन्तर्पित करती है और त्रिकपृष्ठ में बाहर आ कर उस देश की पेशी और त्वचा को पोषण देती है ।

उत्तरा नितम्बिनी[5]—नाम की धमनी आभ्यन्तरी अधःश्रोणिका की चरम प्रशाखा है, यह उत्तान और गम्भीर अनुशाखाओं से नितम्बपिण्डिका नामकी पेशियों का, त्रिक और पृष्ठ देश का, तथा वंक्षण सन्धि का पोषण करती है । इसकी दूसरी अनुशाखा अस्थिपोषणके लिये जघन कपालके अन्दर घुसी है ।

यहां तक मध्यकाय धमनियो का सविस्तार वर्णन हो गया ।

इति पञ्चम अध्याय ।

---

१ Inf Gluteal २ IleoLumbar. ३ Cauda Equina: ४ Lateral Sacral. ५ Superior Gluteal,

षष्ट अध्याय।

ऊर्ध्वाधःशाखीय धमनियों का वर्णन।

यद्यपि ऊर्ध्व और अधःशाखाओं की धमनियो मे बहुत कुछ सादृश्य है, तथापि पूर्णरूपसे समानता नहीं समझनी चाहिये--क्योंकि ऊर्ध्व और अधःशाखाओं की रचना में तथा सन्निवेश प्रकार में विलक्षणता है। इसलिए इनका पृथक् पृथक वर्णन किया जायगा।

ऊर्ध्वशाखा की धमनियां।

ऊर्ध्वशाखाओंको सब धमनियां अक्षाधरा नामकी दो स्थूल धमनियोंसे उत्पन्न हुई हैं। ये अक्षाधरा धमनियां बाये तरफ महाधमनी से साक्षात् और दक्षिण तरफ काण्डमूला धमनी से उत्पन्न होकर अक्षकास्थिओं के नीचे प्रथम पर्शुकाओं की बहिर्धारा तक अक्षाधरा नाम से प्रसिद्ध हैं। आगे कक्षाओ के अन्दर घुसने पर इनका नाम कक्षाधरा हो जाता है। एक एक कक्षाधरा नामका धमनी प्रत्येक बाहु मे प्रविष्ट हो कर बाहवा नामकी धमनी हो जाती है, और यही धमनी सब बाहु धमनियो का मूल है।

कक्षाधरा।

ग्रीवामूलमे महाधमनीकी जो काण्डशाखा अक्षाधरा नामकी है, वही टेढी हो कर कक्षादरीमे प्रविष्ट होती हुई प्रथम पर्शुका की बहिसीमा का उल्लंघन करके अंसाधरिका पेशीकी नीचेकी सीमा तक **कक्षाधरा**[1] नाम लेती है (१०४ चित्र)। यह धमनी कक्षादरीमें उरश्छदा नामकी दोनों पेशियोंको कण्डराओ से सम्मुख में ढंपी हैं, और अपने नामकी सिराके पार्श्वमे स्थित कक्षानुगा नाडीप्रवेणीको भेदन करके बाहुमूलमे फैली है। इसकी छः शाखायें ऊपर और नीचे क्रमशः अंस-सन्धि और उरःपार्श्वकी ओर गयी है। इनके नाम ऊर्ध्वोरस्का, अंसोरस्का, दीर्घोरस्का, अंसकपालिनी, अंसवेष्टनिका अग्रिमा और अंसवेष्टनिका पश्चिमा है।

ऊर्ध्वोरस्का[2]—नामकी धमनी कक्षाधराकी सबसे ऊपरकी छोटी और पतली शाखा है, यह उरश्छदा नामकी पेशीका पोषण करती है।

अंसोरस्का—नामकी धमनी कक्षाधराकी छोटी और मोटी अक्षशाखा है, जो कि दो दो अंसगा प्रशाखाओ से अंसकूट और अंसच्छदा पेशी का पोषण

१ Axillary Artery २ Sup. Thoracic Artery. ३ Thoracoacromial Artery.

[१०४ चित्र]

कक्षाधरा और बाहवी धमनी (शाखा सहित)।
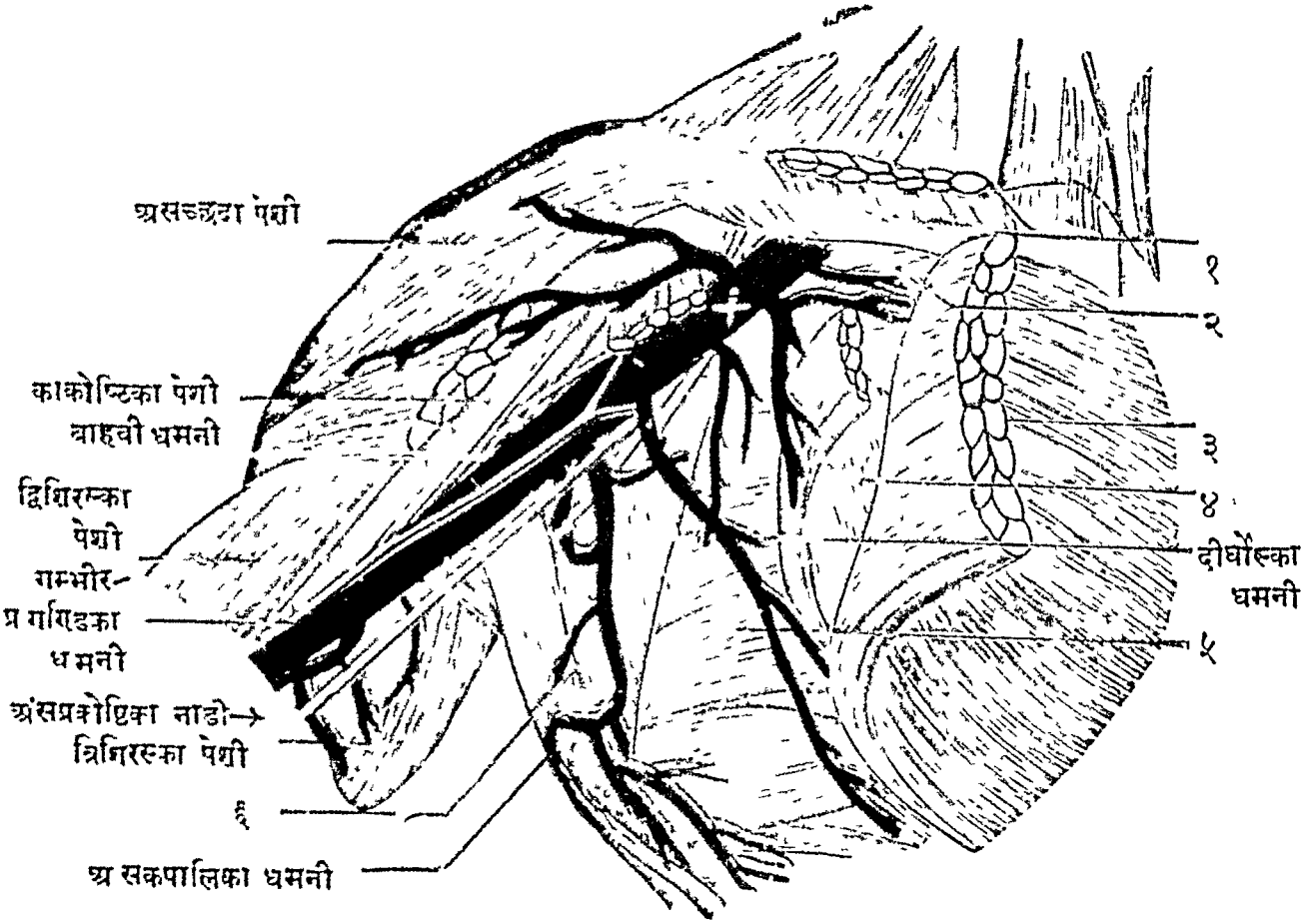
१। उर:कर्णमूलिका पेशी और अक्षकाधरा पेशी।
२–कक्षाधरा धमनी को दो शाखाये। ३–उरश्छदा गुर्वी पेशी।
४। उरश्छदा लघ्वी पेशी। ५। अरित्रा अग्रिमा पेशी।
६ कटिपार्श्वच्छदा और असांतरिका पेशी।

(To face page 138)

[१०५ चित्र]

वाहवी धमनी और उसकी शाखायें।

वाहवी धमनी का विभागस्थान

(To face page 140)
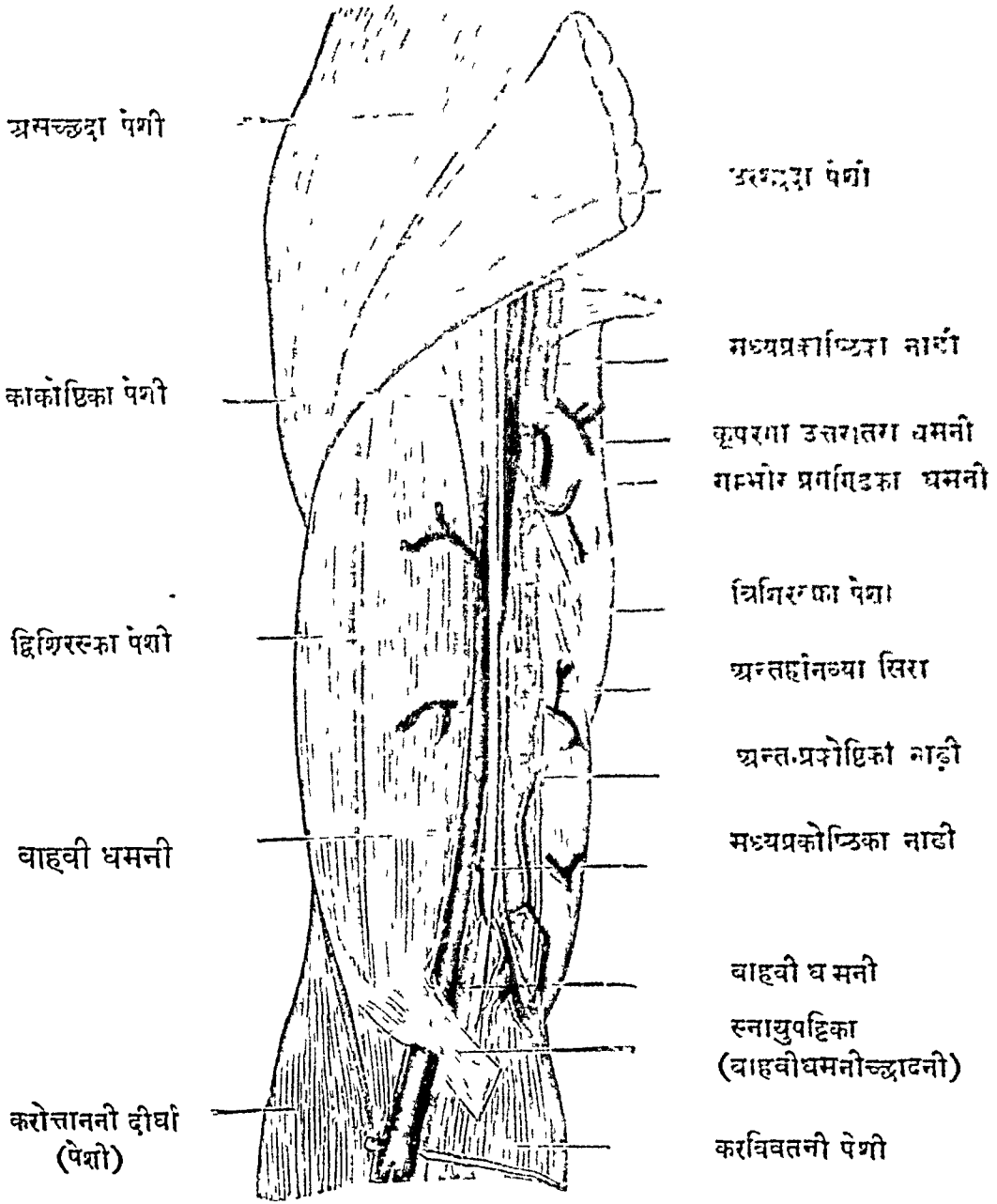
करती है। और दो उरोगा प्रशाखाओं से अक्षाधरिका नामकी पेशी को और अक्षकोरः सन्धि को तथा उरश्छदा नामकी पेशी को पोषण करती है। इसकी और प्रशाखायें कक्षादरी में स्थित लसीकाग्रन्थि आदि का पोपण करती है।

दीर्घोरस्का[1]—नामकी धमनी कक्षाधरा की सबसे लम्बी उरोगामिनी शाखा है। यह उरश्छदा नामकी दोनों पेशियों को और अग्रिमा अरित्रा पेशीको प्रशाखाओं द्वारा पोपण करती हुई उरःपार्श्वमे अन्तःस्तनिकादि धमनियो के साथ और अंस तथा कक्षा में अंसगा धमनियों के साथ मिलकर धमनीचक्रको बनाती हैं। स्त्रियोंमे इसकी बहिःस्तनिका नामकी प्रशाखा स्तन के पोपणके लिए फैली हुई अन्त.स्तनिका धमनीके साथ स्तनके चारो ओर धमनीचक्रको बनाती है।

अंशकपालिनी[2]—नामकी धमनी कक्षाधरा की सब से मोटी शाखा हैं जो कक्षामार्ग से अंसफलक को अधःकोटिकी ओर फैली है। यह अंसोरस्का आदि अंसधमनियों के साथ अंसकपालिकाके चारो ओर धमनीचक्र को बनाती है। इसका अंसपृष्ठिका नामकी प्रशाखा अंसकपालिकाके पृष्ठकी ओर गई है।

अंसवेष्टनिका - अग्रिमा और पश्चिमा[3]—नामकी दो धमनियां कक्षाधरा के शेषभागसे उत्पन्न हो कर, प्रगण्डास्थि-ग्रीवाके सन्मुख और पीछे टेढ़ी होकर फैली है और अंससन्धिमे तथा अंसच्छदा पेशी मे घुसती है। इन दोनोंके परस्पर और गम्भीर प्रगण्डिका नामकी धमनी के साथ शाखा प्रतानों से सम्बन्ध होने पर अस-चक्रके चारों ओर धमनीचक्र बनता है।

कहीं-कहीं अन्तःपार्श्व मे कक्षाधरा की एक दूसरी क्षुद्रशाखा दिखायी देती है—जिसका नाम पार्श्वोरस्का है, यह उरःपेशियोंका पोषण करती है। परन्तु इसकी स्थिति अनिश्चित है।

बाहवी धमनी।

बाहवी धमनी[4]—कक्षाधरा धमनी ही अंसाधरिका पेशी की कण्डरा को लङ्घन करके बाहु मे प्रविष्ट होकर कूर्परसन्धि तक **बाहवी धमनी** नामको प्राप्त होती है (१०४।१०५ चित्र) ये कक्षा मे काकोष्ठिका पेशी की और बाहु मे द्विशिरस्का पेशी की अन्तःसीमा में दो सहचरी सिराओं के साथ रहती है। इसकी अन्तःसीमा में अन्तर्बाहुका[5] नामकी सिरा और 'प्रकोष्ठिका' नामकी तीन

१ Lateral (or Long) Thoracic Artery २ Subscapular Art. ३ Anterior and Posterior Circumflex Arteries ४ Axillary Artery ५ Basilic Vein

नाड़ियां दिखायी देती है। इनमे मध्यप्रकोष्ठिका नामकी ऊर्द्ध भाग में धमनी की बहिःसीमा मे रहती है परन्तु क्रमशः उसको उलङ्घन करके अधरार्द्धमे उसकी अन्त.सीमा मे दीखती है। धमनी के पश्चिम में इसीकी गम्भीर प्रगण्डिका नामकी शाखा, बहिप्रकोष्ठिका नामको नाड़ी के साथ रहती हैं और त्रिशिरस्का नामकी पेशी दीखती है। कूर्परसन्धिके सम्मुख में तिरछी जाती हुई यह धमनी द्विशिरस्का पेशी की कूर्परपट्टिका नामकीं तिरछी कण्डरावन्धनी से धारण की जाती है। इस धमनीका सम्बन्ध इस प्रकार का है।

इसके पार्श्व से उठने वाली सात या आठ शाखायें हैं—और शेपमे अग्रशाखा दो हैं। इनमे—

गम्भीरप्रगण्डिका[1]—नामकी मोटी और लम्बी प्रथमा शाखा बहिःप्रकोष्ठिका नामकी नाड़ी की सहचरी हो कर प्रगण्डास्थि की पश्चिमस्थ तिरछी सीमा का आश्रय करके सर्पगति से प्रगण्ड को घेरती हुई इसकी बहिःसीमा मे फैली है। यह दो शाखाओ मे विभक्त हो कर कूर्परसन्धि के सम्मुख और पीछे बहिःकूर्पर नामकी आरोहिणी धमनी के साथ धमनीचक्र बनाती है। इसकी अन्य दो शाखायें त्रिशिरस्का पेशी को और प्रगण्डास्थि नलकको पोषण देती हैं।

प्रगण्डपोषणी[2]—नामकी बाहुधमनी की दूसरी शाखा भी मुख्यतः प्रगण्डास्थि का पोषण करती है।

कूर्परगा उत्तरान्तरा[3]—नामकी शाखा वाहुधमनी के उर्ध्वभाग से उत्पन्न हो कर कूर्पर सन्धि की पश्चिम अन्तःसीमा मे फैली है। यह धमनीचक्र बनाने के लिये अन्तःप्रकोष्ठिया धमनी की कूर्परान्तरा पृष्ठारुहा नामकी प्रशाखाकी ओर जाती है।

कूर्परगा अधरान्तरा[4]—नामकी शाखाधमनी धमनीचक्र बनाने के लिए कूर्पर-सन्धि के पीछे तिरछी गई है। और इसके सम्मुख मे अन्तःप्रकोष्ठिया धमनी की कूर्परान्तरा अग्ररुहा नामकी प्रशाखा मिली है।

बाहुधमनी की पेशीगा नामकी तीन चार शाखायें काकोष्ठिका, द्विशिरस्का और कूर्परद्वारिका पेशीका पोषण करती हैं।

---

१ Arteria Profunda Brachii २ Nutrient Artery of Humerus.
३ Superior Ulnar Collateral Artery. ४ Inferior Ulnar Collateral Artery

प्रकोष्ठधमनियां ।

वाहुधमनी की दो अग्रशाखायें है—वहिःप्रकोष्ठिया और अन्तःप्रकोष्ठिया । वाहुधमनी ही कूर्परसन्धि के सम्मुख में गम्भीर घुस कर इन शाखाओंमे विभक्त हो जाती है।

वहिःप्रकोष्ठिया धमनी ।

वहिःप्रकोष्ठिया[१]—नामकी (१०६।१०७ चित्रों में) धमनी वाहुधमनी वाह्यशाखा हैं जो दीर्घा करोत्ताननी पेशी की अन्तःसीमा को अंगुष्ठमूल तक अनुसरण करती है। इसके आगे यह मणिवन्ध की वहिःसीमा से तिरछी और पीछे फैल कर अंगुष्ठमूल मे दीर्घा और अंगुष्ठापकर्पणी नाम की पेशी की और अंगुष्ठप्रसारणी नामकी दो पेशियों की कण्डराओं से ढंपी जाती है, फिर अंगुष्ठ तथा तर्जनी को मूलशलाकाओ के अन्तराल मे पश्चिमशलाकान्तराला पेशी को भेदन करके करतलमे घुसती है। यही धमनी करतल मे धनुष के सामान टेढ़ी हो कर करतलधानुपी गम्भीरा नामकी धमनीको वनाती है।

इसकी मुख्यशाखायें पांच है और पेशीगा शाखायें पाच-छः हैं। यथा—

आरोहिणी वहिःकूर्परिका[२]—नामकी धमनी प्रशाखा कूर्परसन्धीकी वहिःसीमामें उत्पन्न हुई है। यह गम्भीरप्रगण्डिका नामको धमनीकी वहिःकूर्परगा अनुशाखासे मिलकर कूर्परसन्धीकी वहिःसीमामें धमनीचक्र वनाती है।

वहिःमणिवन्धीया अग्रिमा और पश्चिमा[३]—ये दो प्रशाखाये मणिवन्धसे ऊपर वाहर सीमामे उत्पन्न हुई हैं। ये इसी प्रकारकी अन्तर्मणिवन्धीया धमनियोंके साथ मणिवन्धके सम्मुख और पीछे धमनीचक्रको वनाती हैं।

धानुपीयोजनी उत्ताना[४]—नामकी धमनी मणिवन्धके सम्मुखभागमें उत्पन्न होकर नीचे फैली है। यह करतलमे उत्ताना करतल धानुपीसे मिलती है।

शलाकापृष्ठिका प्रथमा[५]—नामकी धमनी वहिःप्रकोष्ठिया धमनीके अंगुष्ठमूल-पृष्ठभागसे उत्पन्न हुई है। यह अंगुष्ठपृष्ठिका और तर्जनीपृष्ठिका नामकी अग्रशाखाओ में विभक्त होकर फैली हैं।

पेशीगा पांच-छः शाखायें प्रकोष्ठकी वहिःसीमामें स्थित पेशियोंमे विशेष रूप से फैली हैं।

करतलधानुपी गम्भीरा[६]—वहिःप्रकोष्ठिय धमनीका अंतिम भाग है, जो कि करतलमें घुसा है। इसका विशेष वर्णन करधमनियोंके वर्णनके समय किया जायगा।

---

१ Radial Artery. २ Radial Recurrent Artery. ३ Volar Radial Carpal and Dorsal Radial Corpal Arteries. ४ Superficial Volar Artery. ५ Dorsal Metacarpal Artery. ६ Deep volar Arch.

अन्तःप्रकोष्ठिया धमनी।

अन्तःप्रकोष्ठिया[१]—नामकी धमनी वाहवी धमनी की शाखा है। यह अन्तःप्रकोष्ठिया पेशियो से पूर्वार्द्ध मे घिरी है (१०६।१०७ चित्र)। यह कूर्पर-सन्धि के नीचे सम्मुख भाग मे स्थित वाहवी धमनी के विभाग स्थान से आरम्भ हो कर प्रकोष्ठ की अन्तःसीमा का अनुसरण करती हुई मणिवन्ध तक पहुंच कर करतलमे घुस जाती है और वहां पर धनुष के समान वक्र हो कर उत्तान करतल धानुषी नामकी धमनी हो जाती है। वहिःप्रकोष्ठिया धमनी की धानुषीयोजनी शाखा से मिल कर उत्ताना करतल धानुषी नामक धमनी हो जाती है। इसकी छः प्रशाखायें मुख्य है। और पांच-छ पेशीगा है। यथा—

(१-२) कूर्परान्तरिका[२]—नामकी दो आरोहिणी धमनी, कूर्परकी अन्तः-सीमा में सामने पीछे और ऊपरको फैली है। इनमे एक अग्रारुहा और दूसरी पृष्ठा-रुहा नामकी हैं। ये बाहवी धमनी की दो कूर्परगा शाखाओं से कूर्परसन्धि की अन्तःसीमा के चारों ओर धमनीचक्रकी बनाती है।

(३) अरत्निमध्या साधारणी[३]—नामकी सब से मोटी प्रशाखा वाहवी धमनी के विभाग स्थान के अर्द्धांगुल आगे से उत्पन्न हुई है। यह अंगुलीसङ्कोचनी पेशियो के मध्य मे अधिक गहरी घुस कर प्रकोष्ठास्थियो के अन्तरालमे फैली दो शाखाओं मे विभक्त हो जाती है। इनमे एक प्रकोष्ठान्तराला नाम की कला के सम्मुख मणिबन्ध की ओर फैली है, इसका नाम अरत्निमध्या अग्रिमा है। दूसरी इस कला का भेदन करके पश्चिम मे मणिबन्ध की ओर गयी हैं, इसका नाम अरत्निमध्या पश्चिमा है। इनमे प्रत्येक की तीन तीन प्रकारकी अनुशाखायें है। सन्धिगा, मासगा और अस्थिगा।

(४-५) अन्तर्मणिवन्धीया[४]—नामकी दो शाखायें मणिवन्ध के सम्मुख और पीछे, इसकी अन्तःसीमा मे जाती हैं। ये इसी प्रकार की वहिःप्रकोष्ठिया शाखाओ से धमनीचक्र को बनाती है।

(६) धानुषीयोजनी गम्भीरा[५]—नामकी प्रशाखा करमूलकी अन्तःसीमामे गम्भीर घुस कर गम्भीरा करतल धानुषी से मिल जाती है।

---

१ Ulnar Artery २ Anterior and Posterior Ulnar Recurrent Arteries ३ Common Interosseus Artery. ४ Volar and Dorsal Ulnar Carpal Arteries ५ Deep Volar Communicating Artery.

[१०६ चित्र]

अन्तःप्रकोष्ठीया और बहिःप्रकोष्ठीया धमनी

(दक्षिण प्रकोष्ठका अगभीर व्यवच्छेद से दिखायी है)
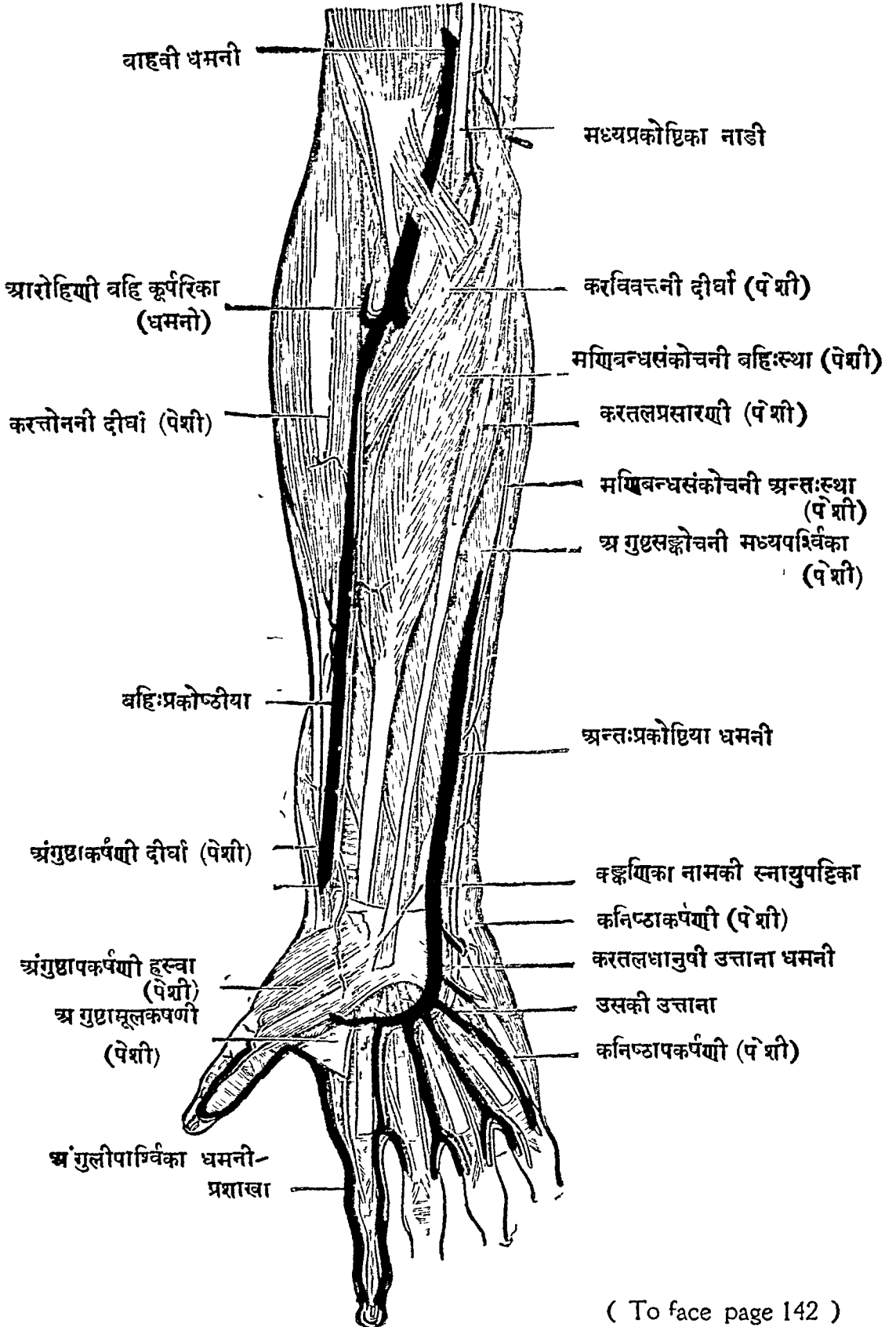
(To face page 142)

(१०७ चित्र)

अन्तःप्रकोष्ठीया और बहिःप्रकोष्ठीया धमनी

(दक्षिण प्रकोष्ठ का गम्भीर व्यवच्छेद से दिखायी है)
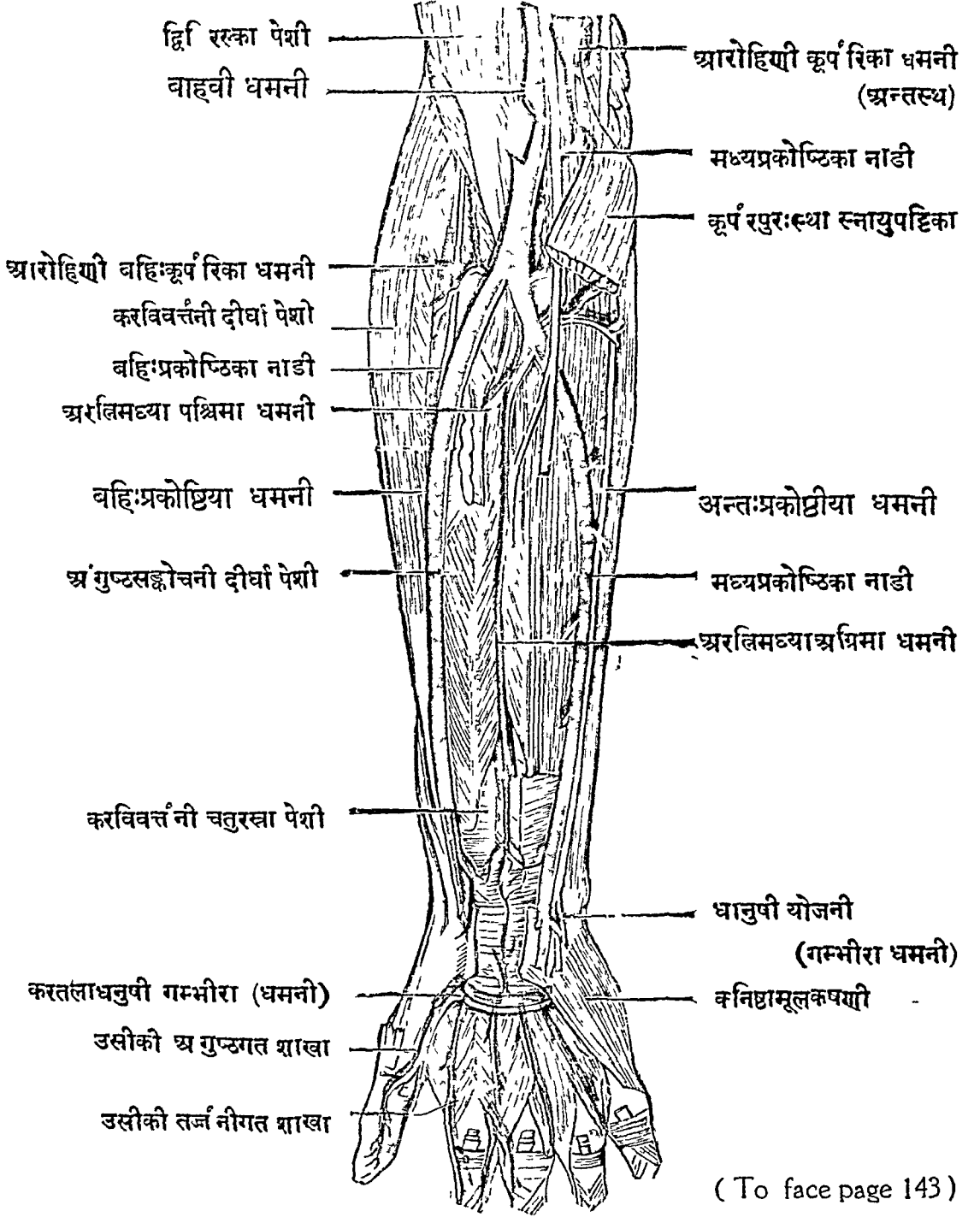
(To face page 143)

करतलधानुषी उत्ताना नामकी धमनी अन्तःप्रकोष्ठिया धमनी का अन्तिम भाग है, जो करतलमें घुसा है।

करधमनियां।

करधमनियां दो प्रकारकी हैं—करतलीया और करपृष्ठीया। इनमे करतलीयो के मूलमे दो धमनियां हैं—**करतलधानुषी उत्ताना** और **करतलधानुषी गम्भीरा**। इनमे—

करतलधानुषी उत्ताना[१]—(१०६ चित्र) नामकी धमनी अन्तःप्रकोष्ठिय धमनी के धनुष के समान वक्र प्रान्तभाग से बनती हैं। इसके साथ बहिःप्रकोष्ठिय धमनी की धानुषी योजनी शाखा मिली है। यह करतल के मध्यभाग में करत-तलिका नामकी कलाकण्डरा मात्र से ढंपी रहती है। इससे उत्पन्न हुई चार प्रशाखाये तर्जनी आदि चार अंगुलियों के मूलशलाकान्तरालों में फैली है। इनमें प्रत्येक प्रशाखा अंगुलीमूलमें दो शाखाओं में विभक्त होकर समीपवर्ती अंगुलीके दोनों पार्श्वों में फैलती हैं। यथा—प्रथमा शाखा तर्जनी और मध्यमाके पार्श्वों मे, द्वितीया—मध्यमा और अनामिका के पार्श्वों मे, तृतीया—अनामिका और कनिष्ठा के पार्श्वों मे, चतुर्था—कनिष्ठा को बाह्य सीमा मे। तर्जनी के बहि-पार्श्व में, और अंगुष्ठ के पार्श्वों मे गम्भीर करतल धानुषी की शाखा भी देखी जाती हैं। वहा उत्तान करतल धानुषी की एक और शाखा भी करभदेश की तरफ जाती है।

करतलधानुषी गम्भीरा[२]—नामकी धमनी (१०७ चित्र) कूर्चास्थियोके सम्मुख मे बहिःप्रकोष्ठिया धमनी के अन्तिम धनुर्वक्र भाग से बनती हैं। इसके साथ अन्तःप्रकोष्ठिया धमनी की धानुषी योजनी नाम की शाखा मिली है। इसकी अंगुलीमूलमे जाने वाली पाच शाखायें है। इनमें पहिली का नाम अंगुष्ठ-मूलगा है—यह दो भागों मे विभक्त होकर अंगुष्ठपार्श्वोंमे फैली है। दूसरी का नाम तर्जनीमूलगा है—यह तर्जनी के बहिःपार्श्व मे हो कर गयी है। शेष तीन उत्तान करतल धानुषी की तीन शाखाओं से तर्जनी आदि चारो अंगुलियोंके अन्त-राल मूल मे मिलती है। और इनके संयोग स्थानो से योजनी नामकी तीन प्रशाखायें करतल मांसको भेदन करके पीछे फैली हैं। इनसे मूल शलाका पृष्ठ स्थित तीन धमनियों को रक्त मिलता है।

---

१ Superficial Volar Arch २ Deep Volar Arch

इसकी दो तीन शाखायें मणिवन्ध के सम्मुख स्थित धमनीचक्र में घुसी हैं। करपृष्ठीया धमनियों मे चार मुख्य है- इसका नाम शलाकापृष्ठिका[१] हैं। इनमे प्रथम वहिःप्रकोष्ठिय धमनी से उत्पन्न हुई है— इसका वर्णन पहले हो चुका है। यह अंगुष्ठ पृष्ठ मे, तर्जनी पृष्ठ में और उसके वहिःपार्श्व मे दो तीन शाखाओं से फली है। दूसरी, तीसरी और चौथी शलाकापृष्ठिका मणिवन्ध के पश्चिम से स्थित धमनीचक्र से उत्पन्न होती हैं, ये तर्जनी आदि चारों अंगुलियो के अन्तरालोमे दिखायी देती हैं। इनमें प्रत्येक धमनी दो-दो शाखाओं में विभक्त होकर समीपवर्ती अंगुलीके पृष्ठपार्श्वों मे फैलती है।

इस प्रकार प्रत्येक अंगुष्ठ के पीछे एक या दो धमनी, और तलपार्श्वों में दो दो धमनी है। शेष अगुलियो मे प्रत्येक मे चार धमनी—दो तल पार्श्वों में और दो पृष्ठ पार्श्वों में। इनमे तल पार्श्वगा दोनों धमनी अंगुली के अग्रभाग मे सम्मुख की ओर धमनीचक्र को वनाती है, और पृष्ठपार्श्वगा दोनों धमनी नखभूमिमे धमनीचक्र वनाती हैं। कर मे स्थित पेशी आदि रचनायें, करतल-धानुपीकी और मणिबन्धीय धमनियोकी शाखाप्रतानो द्वारा पोषित होती है।

अधःशाखा की धमनियां।

अधःशाखा की धमनियो का मूल औवीं नामकी धमनी है। जो नितम्बीया धमनिया अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी की प्रशाखा, अनुशाखा आदि है, वे प्रायः औवीं धमनी की जघनगा शाखाप्रतानों के साथ नितम्बजघन के चारो ओर धमनीचक्रको वनाती हैं—इनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

औवीं धमनी।

मध्यशरीर मे औदरी महाधमनीके विभाग से उत्पन्न हुई अधिश्रोणिका बाह्या नामकी जो काण्डशाखा है वही वक्षणदरी के मुख से निकल कर **औवीं[२] नामकी धमनी** हो जाती है (१०८ चीत्र)। यह वंक्षण देशकी अन्तःसीमामे औवीं सिरा से और वहिःसीमा मे औवीं नाड़ी से घिरी है, और ऊरुमध्य मे ऊरुकञ्चुका से ढपी है। वहा पर सिरा और धमनी एक ही सिराकञ्चुक मे रहती हैं। उसकी अन्त.सीमामे वृषणवन्धनियो को धारण करने वाला अन्तर्वंक्षणीय नामका छिद्र वंक्षणके अन्दर दीखता है।

---

१ Dorsal Metacarpal Arteries २ Femoral Artery

(१०८ चित्र)

और्वी धमनी (शाखा सहित)।
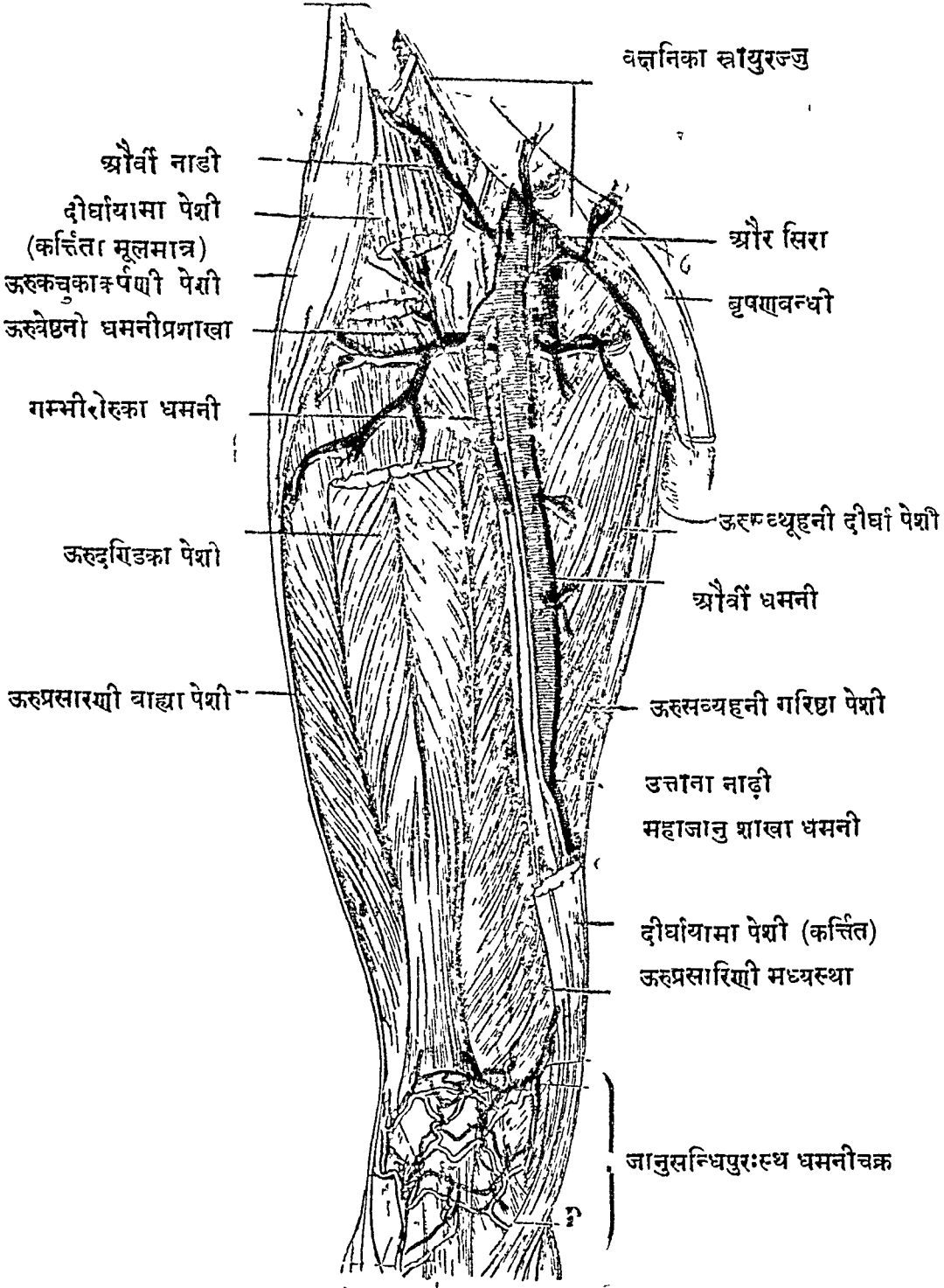
(To face page 144)

(१०६ चित्र)

ऊरुजानुपृष्ठिका और पश्चिमजंघिका धमनी

(जानुसन्धि और जंघा का पीछे का भाग)
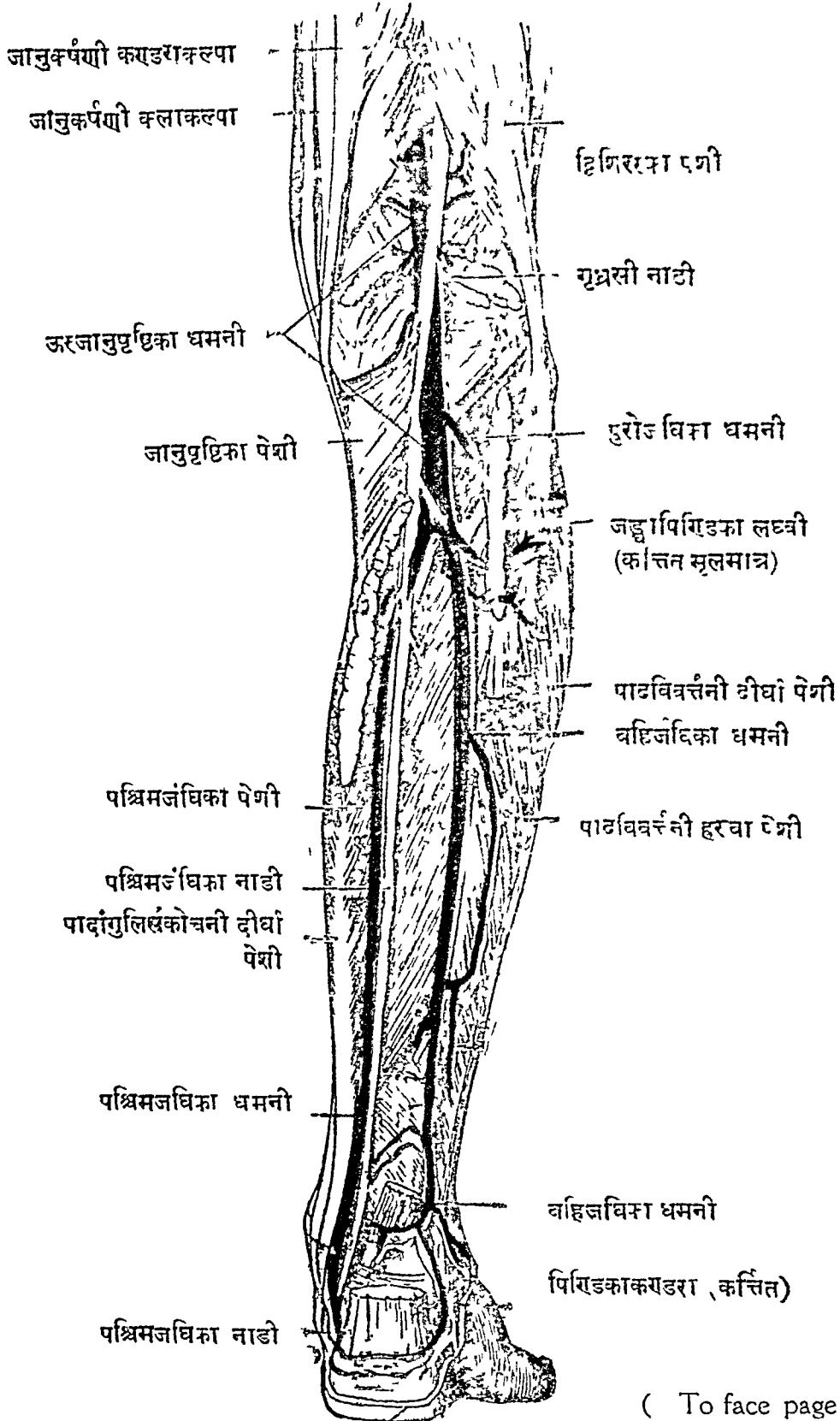
(To face page 146)

यह कनिष्ठांगुलि के समान मोटी धमनी ऊरूके सम्मुखभाग मे वंक्षण के मध्यविन्दु से आरम्भ हो कर तिरछी अन्तःसीमा में फैली है और ऊरू की आधी से अधिक लम्बाई को लांघ कर ऊरूसंव्यूहनी गरिष्ठा नाम की पेशी को भेदन करके ऊरू के पश्चिम भाग जाती है। पेशी का भेदन करने के पश्चात इसका नाम ऊरू जानुपृष्ठिका हो जाता है।

इसकी छः शाखायें मुख्य हैं। और पाँच छः मांसगा शाखा गौण है। इनमे—

(१) उत्ताना औदरिकी[१]—नाम की शाखा उरु की अन्तःसीमा मे ऊरु-कञ्चुका के अनुवंक्षणीय छिद्र से वाहर निकल कर उदर की परिधिमे नाभिदेश तक चढ़ती हैं। इसकी प्रशाखायें त्वचा मे, मेदोधरा कला मे, और वंक्षणस्थ लसीकाग्रन्थियो में फैली है।

(२) उत्तानजघनिका वेष्टनी[२]—नामकी शाखा जघनधारा की ओर गई हुई शाखाप्रतानों द्वारा जघनको घेरकर जघन और वंक्षणकी वहिःप्रावरणी त्वचा, वंक्षणस्थ लसीकाग्रन्थियों का पोषण करती है।

(३-४) वहिरौपस्थिकी[३]—नाम की दो धमनी—उत्ताना और गम्भीरा हैं। ये ऊरु की अन्तःसीमा मे उत्पन्न हो कर उपस्थ के वहिर्भाग की ओर तिरछी फैली हैं। इनमें उत्ताना धमनी सम्मुख मे ऊरुकञ्चुका की भेदन करके अनुवंक्षणीय छिद्र से वाहर आकर भगास्थि-सन्धान की ओर फैली है। यह वस्तिदेश की, शिश्न की, और अण्डकोषों की त्वचा मे (स्त्रियोंके भगोष्ठ में) शाखाप्रतानो द्वारा फैली है। गम्भीरा वहिरौपस्थि की धमनी इसके नीचेसे इसी की भांति तिरछी गई है। और इन्हीं भागों में विशेषतः औपस्थिक त्रिकोण में अधिक गहरी फैली है।

(५) **गम्भीरोरुका**[४]—नामकी स्थूलधमनी (१०८ चित्र) औवीं धमनी मूल देश के दो तीन अंगुले आगे से उत्पन्न होकर पीछे ऊरु की अन्तःसीमा मे औवीं धमनी का अनुसरण करती है, और उसी की भांति ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा पेशी का भेदन करती है। इसको दो प्रशाखायें ऊरु की अन्तः और वहिःसीमामे फैली है। इनका नाम ऊरुवेष्टनी है। इनमें प्रत्येक शाखामे तीन तीन प्रशाखाओमें

---

१ Superficial Epigastric Artery २ Superficial Iliac Circumflex Art
३ External Pudendal Art—Superficial and Deep ४ Profunda Femoris Artery,

विभक्त होकर जघन, नितम्ब और वंक्षण सन्धि के चारों ओर ऊर्ध्व-अधःस्थित धमनियों के द्वारा धमनीचक्रो की रचना करती है और प्रशाखाओं के द्वारा कुछ ऊरुसम्बद्धा पेशियों का पोषण करती हैं गम्भीरोरुका की ओर भी कई एक मांसगा नामकी प्रशाखा हैं, जिनमे से तीन चार ऊरुसंव्यूहनी नामकी पेशी का भेदन करके फैली हैं ।

(६) महाजानुका[१]—नामकी शाखा और्वी धमनीके पीछे की तरफ जाने से पहिले उत्पन्न होकर जानु की अन्तःसीमा में फैली है । यह एक प्रशाखा से जानु के अन्तर्देशस्थ पेशियों का और जानुसन्धि का पोषण करती हैं, और सम्मुखस्थ शाखाप्रतानो द्वारा धमनीचक्र मे घुसती है । और्वी धमनीकी पांच-छः मांसगा शाखायें ऊरुकी अन्तःसीमा मे स्थित पेशियोंका विशेष रूपसे पोषण करती हैं ।

ऊरुजानुपृष्ठिका धमनी ।

ऊरुजानुपृष्ठिका[२]— नामकी और्वी धमनी ही ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा नाम की पेशी को भेदन करके पीछे जानुपृष्ठखातमे फैली, जानुपृष्ठिका नामकी पेशी का अधोधारा तक ऊरुजानुपृष्ठिका नामकी है (११० चित्र । यही अन्तमे पुरोजंघिका और पश्चिमजंघिका नाम की धमनियों मे विभक्त हो जाती है । इसके पश्चिम में जानुपृष्ठिका नाम की सिरा और जंघानुगा नाम की नाड़ी जानुपृष्ठपट्टिका से रक्षित रहती हैं । इसका सम्मुख मे ऊर्वस्थि के अधःप्रान्त का पृष्ठ और जानुसन्धि का पृष्ठ मेद से घिरा दीखता है । इसके दोनों ओर जंघापिण्डिका नामकी दोनों पेशियों के मूलभाग है ।

ऊरुजानुपृष्ठिका को तीन प्रकार की शाखायें है— त्वाच शाखा, मांसगा शाखा और जानुगा शाखा । इनमे त्वाच शाखा जानु और जघा के पृष्ठ मे फैली है, मांसगा शाखा दो-तीन है जो कि ऊरु की अन्तःसीमा की पेशियों मे फैली हैं । और अन्य दो शाखाये' जङ्घापिण्डिकामे घुसी है ।

जानुगा शाखायें पाच है—दो उत्तर जानुगा और दो अधर जानुगा जो कि जानुसन्धि की बाह्य और आन्तर सीमा मे फैली है, और एक मध्यजानुगा, जो जानुसन्धिकोष का भेदन करके जानुसन्धिमे घुसी है । इनसे जानुसन्धि के चारो ओर धमनीचक्र बनाता है ।

---

१ Highest Genicular Artery (Anastomotiea Magna) २ Popliteal Artery

पुरोजङ्घिका धमनी।

पुरोजङ्घिका[1]—नामको धमनी (१११ चित्र) ऊरूजानुपृष्ठिका धमनी की अग्रिमा शाखा है जो कि जङ्घास्थि और अनुजङ्घास्थि के ऊर्ध्वप्रान्तों के अन्तरालमें सन्मुख गई है। यह अस्थियों के अन्तराल मे स्थित कला के सामने जङ्घा के सम्मुख अन्तःसीमा मे दोनों गुल्फों के मध्य तक इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके नीचे पादपृष्ठमे इसको पादपृष्ठिका संज्ञा हो जाती है।

यह पुरोजङ्घिका नामकी धमनी जङ्घास्थिकी अन्त.सीमामे जङ्घापुरोगा नामकी पेशी से अधिक भाग मे ढंपी है। और इसके अधःप्रान्त के समीप मे केवल त्वक् और कला से ही आवृत रहती है। यह गुल्फों के मध्य मे गुल्फवस्तिका नामकी स्नायु के नीचे अंगुष्ठप्रसारणी और अंगुष्ठप्रसारणी पेशियों की दो कण्डराओं के अन्तरालमें अनुसृत होती है। पुरोजङ्घिका गम्भीरा नामकी नाडी दो सहचरी सिराओं के साथ इसका अनुवर्त्तन करती है।

इसकी मुख्य प्रशाखायें चार है, और मांसगा शाखायें वहुत सी हैं। यथा--

(१-२) जानुगा अग्रारुहा और जानुगापृष्ठारुहा[2] - नामकी आरोहिणी शाखायें जानु के चारों ओर स्थित धमनीचक्र मे सम्मुख और पीछे मिली है।

(३-४) गुल्फो के सम्मुख दो प्रशाखायें—अग्रिमा अन्तर्गुल्फिका[3], और अग्रिमा वहिर्गुल्फिका[4] नामकी है। ये अन्तर्गुल्फ और वहिर्गुल्फ की ओर फैल कर वहिर्जङ्घिका की चरम शाखाप्रतानों के साथ दो धमनीचक्रों को वनाती हैं। मांसगा शाखायें पुरोजङ्घिका के पार्श्वों से उत्पन्न होकर जङ्घापेशियोंमे एवं त्वचामे चारों ओर फैली है।

पश्चिमजङ्घिका।

पश्चिमजङ्घिका[5]- नामकी शाखा धमनी (१०६ चित्र) जानुपृष्ठिका पेशी की अधोधारा से आरम्भ करके जङ्घास्थि और अनुजङ्घास्थि के मध्यमे नीचे जङ्घा-पृष्ठकी अन्तःसीमा मे अन्तर्गुल्फ और पार्ष्णि के अन्तराल तक फैली है। यह जङ्घापिण्डिका से ढंपी रहती है। और क्रमशः जङ्घा की अन्तःसीमा में एवं गुल्फ के समीप मे केवल त्वक् और कला से ढंपी है। यह अंगुष्ठमूलमें स्थित धमनीकी भांति स्पर्शसे अनुभूत होती है।

---

१ Anterior Tibial Artery २ Tibial Recurrent—Anterior and Posterior Arteries ३ Anterior Internal Malleolar Artery ४ Anterior External Malleolar Artery ५ Posterior Tibial Artery

इसकी मुख्य प्रशाखायें सात हैं—इनमे सब से मुख्य प्रशाखा बहिर्जङ्घिका धमनी है, जो जङ्घापृष्ठ की बहि:सीमा मे फैली है। दूसरी मांसगा शाखायें पांच-छः हैं। यथा—

(१) बहिर्जंघिका[1]- नामकी स्थूल प्रशाखा (१०६ चित्र) पश्चिम-जङ्घिका के मूलदेश के चार अंगुल नीचे से उत्पन्न होती है। यह कुछ टेढ़ी हो कर जङ्घापिण्डिका को बहि:सीमा के साथ साथ बहि:गुल्फके अन्त तक जाकर वही शाखाप्रतानों के द्वारा फैल जाती है। इसकी अनुशाखायें—अनुजङ्घास्थि पोषणी, कलानिर्भेदिनी, पार्ष्णिपृष्ठगा योजनी, बहि:पार्ष्णिगा और पेशीगा हैं। इनमें कलानिर्भेदिनी अस्थ्यन्तराला कला का भेदन करके जङ्घा के सम्मुख बहि:-सीमा मे फैली है। पार्ष्णिपृष्ठगा योजनी पार्ष्णि के ऊर्ध्वदेश में पिण्डिका कण्डरा के सम्मुख टेढ़ी होकर घुसी है और पेशीगा अनुशाखायें जङ्घापृष्ठमें स्थित पांच-छः पेशियोका पोषण करती है।

(२) जङ्घास्थि पोषणी—नामकी प्रशाखा जङ्घास्थि में प्रविष्ट होती है।

(३) पार्ष्णिपृष्ठगा योजनी—नामकी प्रशाखा पूर्व की भाति पिण्डिका-कण्डरा के सन्मुख टेढ़ी हो कर घुसी है, और अपनी नाम वाली पूर्वोक्त धमनी के साथ चक्र बनाती है।

(४) अन्तर्गुल्फिका पश्चिमा—नामकी प्रशाखा अन्तर्गुल्फ के ऊपर फैल कर अपने नामकी अग्रिम धमनी के साथ चक्रको बनाती है।

(५) अन्त:पार्ष्णिगा=नामकी तीन चार प्रशाखायें पार्ष्णिको अन्तःसीमा मे पार्ष्णि के पोछे और पादतल मूल मे धमनीचक्रोको बनाती है।

(६-७) पादतलीय संज्ञा वाली दो प्रशाखायें पादतलीया अन्तरा और पादतलोया धानुपी हैं। इनमे प्रथमा पांव की अन्तःसीमा की पेशियो मे और त्वचा आदिमें शाखाप्रतानों द्वारा फैली है। पादतलीया धानुपी पांवकी अन्तः-सीमा मे ही पार्ष्णि और नौनिभ के सन्धिदेश के नीचे उत्पन्न हो कर तिरछी बाहर जाती है और फिर टेढ़ी हो कर अन्तर्मुखी हो जाती है। इसका वर्णन पादतल धमनियों मे आवेगा।

---

[1] Peroneal Artery

[११० चित्र]

पुरोजङ्घिका धमनी (शाखा सहित)

(जानुसन्धि और जंघा का सम्मुख भाग)
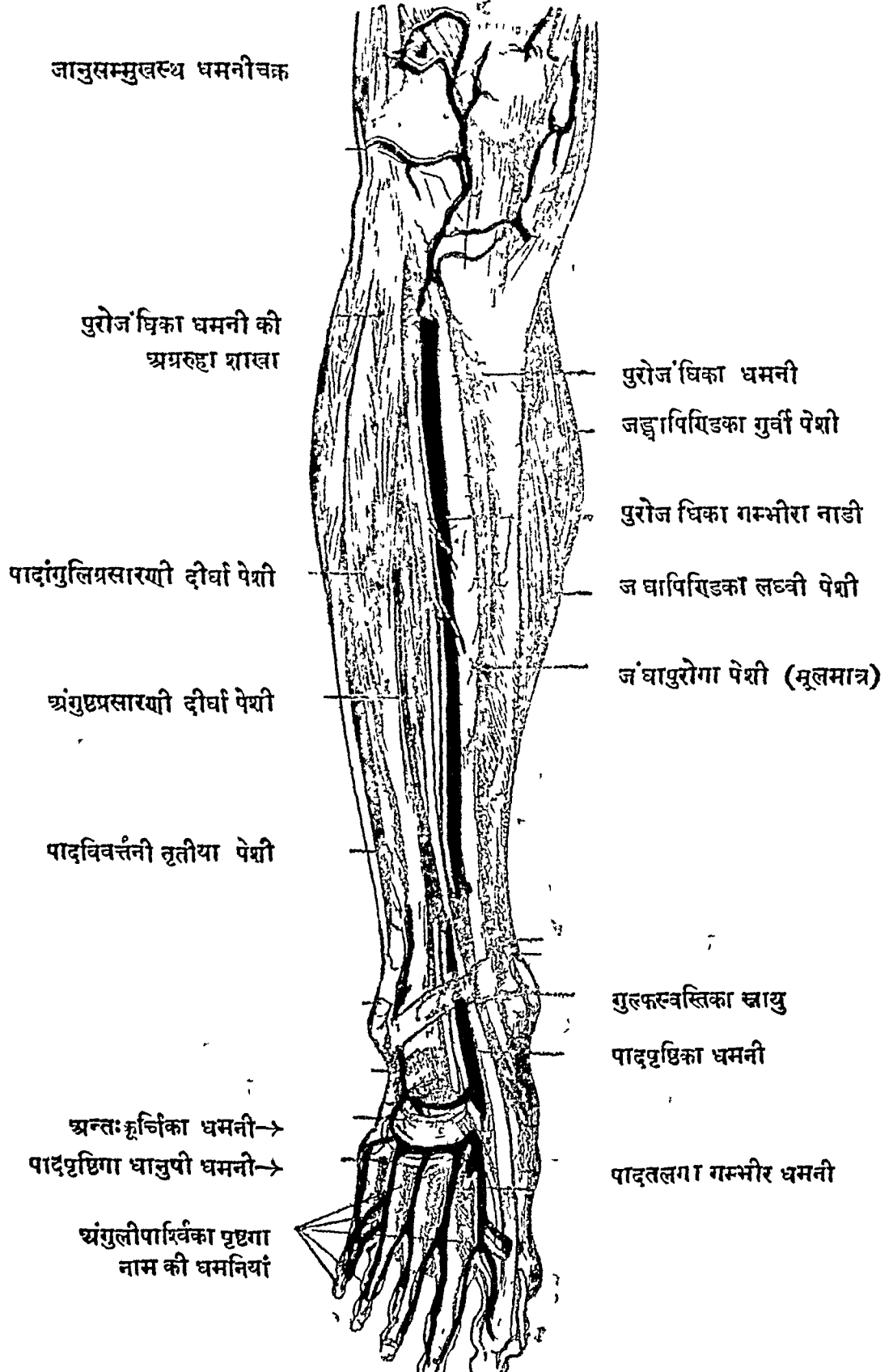
(१११ चित्र) उत्तान पादतलीय धमनीराजि।

पश्चिमजंघिका धमनी की
अन्तःपार्ष्णि शाखायें
पादतलिका स्नायु
(कर्त्तित मूल)
पादांगुष्ठपकर्षणी पेशी
पादतलगम्भीरा धमनी
उसकी अंगुष्ठगा शाखा
कनिष्ठापकर्षणी पेशी
पादांगुलिसङ्कोचनी ह्रस्वा पेशी
पादतलधानुषी धमनी की
उत्तानशाखा
अगुलिपार्श्विकी शाखाधमनियां
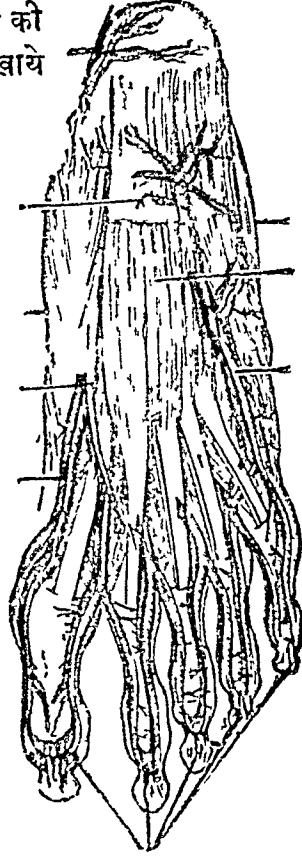
[११२ चित्र] गम्भीर पादतलीय धमनीराजि।

पश्चिमजंघिका धमनीकी अग्रशाखा
पादतलीया धमनीकी अंतःशाखा
दीर्घा पादांगुलिप्रसारणी
पेशीको कण्डरा
दीर्घा पादांगुष्ठसङ्कोचनी
पेशीकी कण्डरा
पादतलधानुषी धमनीकी
निर्भेदिनी शाखा→
पादतलधानुषी धमनी
पादतलचतुरस्रा पेशी
पादतलधानुषी धमनीकी
अगुलिपार्श्विकी शाखावली
(१।२।३।४)

(To face page 150)

पादधमनिया ।

ये दो प्रकारकी है—पादपृष्ठगा और पादतलगा । इनमे पादपृष्ठगाओ में पादपृष्ठिका नामकी धमनी मुख्य है, और पादतलगा मे पादतलीया धानुषी मुख्य है। इन दोनों का निर्देश ऊपर आ चुका है।

पादपृष्ठिका ।

पादपृष्ठिका[१]—नामकी धमनी (११० चित्र) पुरोजङ्घिकाका पादपृष्ठगत अन्तिम भाग है। पुरोजंघिका ही गुल्फोंके मध्यमे सामने गुल्फस्वस्तिका नामकी स्नायुपट्टिका से ढंपी रहती है, और इसके नीचे स्थित स्नायुसुरङ्गापथ से पाद-पृष्ठमे निकलती है। अंगुष्ठमूलशलाका के मूल मे इसोकी पादपृष्ठिका संज्ञा हो जाती है। और यही फिर उत्तर शलाकान्तराला पेशी को भेदन कर पादतल मे घुसने पर पादतलगा गम्भीरा नामकी धमनी हो जाती है।

इसका सम्बन्ध गुल्फान्तराल में स्थित स्नायुसुरङ्गमे इस प्रकार से है—वहां धमनी की अन्तःसीमा मे जंघापुरोगा और अंगुष्ठप्रसारणी पेशियों की कण्डरायें दिखाई देती हैं। बहिःसीमा में अंगुलीप्रसारणो दीर्घा की और पादविवर्त्तनी तृतीया पेशीकी सम्मिलित कण्डरा दीखती है। वहा धमनीकी सहचरी पुरोजंघिका गम्भीरा नाम की नाड़ी और दो सिरायें है।

इसकी चार शाखायें पादपृष्ठ में मुख्य हैं-- बहिःकूर्चिका, अन्तःकूर्चिका, पादपृष्ठगा धानुषी और अंगुष्ठपृष्ठिका।

इनमे बहिःकूर्चिका नामकी शाखा नौनिभ अस्थि के सम्मुखभाग को तिरछा लांघ कर बहिःसीमा मे फैली बहिर्गुल्फीय धमनीचक्र से और पादपृष्ठगा धानुषी की शाखाप्रतानों से मिली है।

अन्तःकूर्चिका—नामकी शाखा प्रायः करके युग्म है, यह गुल्फ और पाद की अन्तःसीमा में शाखाप्रतानों से फैली है।

पादपृष्ठगा धानुषी—नामकी धनुष के समान टेढ़ी, ह्रस्व प्रशाखा पाव की बहिःसीमा में फैली है और पूर्व शाखासे मिली है। इसकी चार प्रशाखायें पाचों अंगुलीमूलशलाकाओं के अन्तरालों मे फैली है । इनमे अंगुष्ठाभिगा और

१ Doisalis Pedis Artery

कनिष्ठाभिगा नामकी अनुशाखायें तीन-तीन पतली शाखाओं मे विभक्त हैं। शेष दोनों दो दो पतली शाखाओ मे विभक्त हैं। और ये पतली शाखायें पादांगुलियों के पृष्ठ और पार्श्वो मे फैली हैं– इनका नाम अंगुली पार्श्विका पृष्ठगा है।

इस प्रकार इनमे से दो दो धमनियां प्रत्येक अंगुली के पृष्ठपार्श्वों में फैली हुई नखभूमिमे सूक्ष्म प्रतानो द्वारा धमनीचक्रों को बनाती है।

अंगुष्ठपृष्ठिका धमनी पादपृष्ठिका से उत्पन्न होती है।

पादतल धानुषी।

पादतलधानुषी[1]—नामकी धमनी (११२ चित्र) पश्चिमजंघिकाकी अग्र-प्रशाखाओ के मध्य में वहिर्मुखी हैं। यह पांव की अन्तःसीमा मे पार्ष्णि और नौनिभ नामकी कूर्चास्थियो की सन्धि के नीचे से उत्पन्न हो कर, तिरछो सामने और वाहर की ओर कनिष्ठा मूलशलाका के मूल तक जाती है। फिर सामने अन्तःसीमा की ओर धनुष के समान बक्र हो कर फैलती है, यह अंगुष्ठमूल-शलाका के मूलमें पादतल गम्भीरा नामकी धमनीसे मिली है।

इसकी वहुत सी अनुशाखायें पादतलमे और त्वचा आदिमें फैली हैं। प्रधान अनुशाखाये—छः पुरोगा और तीन पश्चिमगा निर्भेदनी नामकी हैं।

इनमें छः पुरोगा अनुशाखाओं के मध्य में स्थित चार अनुशाखायें पांचों अंगुलीमूलशलाकाओ के अन्तरालो मे फैली है। ये अंगुलीमूलो के अन्तरालो मे दो दो पतली शाखाओंमें विभक्त होती है। ये अंगुलियोंके सन्निहित पार्श्वों में फैलती है। पुरोगा दो अनुशाखायें विभक्त न हो कर अगुष्ठ और कनिष्ठिका की अन्त और वहिःसीमामें फैली है। ये अंगुलीपार्श्विका तलगा नाम की दस धमनिया अंगुलियोके अग्रभागमें धमनीचक्रो को वनाती है।

और निर्भेदिनी सज्ञा वाली तीन पश्चिमा अनुशाखायें पादतल पेशियों का भेदन करके पादपृष्ठमें पहुची है और पादपृष्ठिका धमनी की अंगुलीमूलपृष्ठों में स्थित अनुशाखाओंसे मिल जाती हैं।

धमनीखण्ड समाप्त।

---

१ Lateral Planter Artery,

सिराखण्ड ।

प्रथम अध्याय ।

=अग्रसिरा[1] वर्णनीय=

सब सिराओ का आशय (पहुंचनेका शेप स्थान) हृदय है, जैसे कि नदियोका समुद्र। ये सब सिरायें अविशुद्ध रक्तको वहन करती है, परन्तु फुस्फुस से उत्पन्न सिरायें विशुद्ध रक्त को वहन करती है। सब सिराओ का आरम्भ जालकों से होता हैं। ये सिरायें सूक्ष्म सिराप्रतानों द्वारा जालकों से रक्त को लेती हैं, और इनके मिलने से पतली सिरायें बनती है, इनके परस्पर मिलने से क्रमशः उत्तरोत्तर स्थूल सिरायें बनती है, और स्थूल सिरायें काण्डसिराओं मे प्रविष्ट होती है एवं काण्डसिरायें उत्तरा महासिरा और अधरा महासिरा मे प्रवेश करती हैं, और वे हृदय मे। यह सिराओ का संयोगक्रम है। इनका वर्णन का क्रम धमनियों के वर्णन क्रम के विपरीत है, क्योकि सिरायें उत्तरोत्तर संयुक्त होती जाती है, और धमनिया उत्तरोत्तर विभक्त होती जाती है।

मस्तिष्कके बहिर्वृति मे सिरोऽस्थियों के अन्दर परिखा मे आश्रित चौड़े सिरामार्ग है, इनका नाम सिरासरिद् वा सिराकुल्या है। सिराप्राचीरिका[2] सिरा-कपाटिका[3] और सिराकञ्चुका[4] की व्याख्या धमनीखण्ड में पहले ही की जा चुकी है। यह स्मरण रखना चाहिए कि सब सिराओं में सिराकपाटिकायें नहीं होती यथा—उत्तरा-अधरा महासिराओ मे, प्रतिहारिणी सिरा में, मस्तिष्क यकृद् वृक्क और गर्भाशय से उत्पन्न होने वाली सिराओ मे, एवं गर्भस्थ शिशुकी संवाहिनी महासिरा मे कपाटिकायें नही है।

सिरायें दो प्रकार की है—उत्ताना और गम्भीरा। इनमे उत्ताना, त्वचाके नीचे वाह्यप्रावरणी में रहती है, ये समान नाम विशिष्ट किसी धमनी का अनुवर्त्तन नहीं करतीं। ये पतले गोरे शरीर मे प्रायः सर्वत्र ही त्वचा के नीचे देखी जाती हैं—विशेपतः शाखाओं में। अन्त में ये भी गम्भीर सिराओं में प्रविष्ट होती हैं, गम्भीर

---

१ अग्रसिरा—आरम्भिक सिरा (आगे कही जायगी)। २ Media or Walls. ३ Valves of Veins. ४ Sheaths of Veins.

सिरायें प्राय. धमनियो की सहचरी है। इनमें स्थूल धमनियोंकी सहचरी सिरायें स्थूल और अकेली है। पतली धमनियो को सहचरी सिरायें पतली, और प्रायः युग्मा होती है ऊर्ध्व और अधःशाखाओं में।

शरीर में प्रायः सर्वत्र सूक्ष्म, स्थूल सिराओं का परस्पर अनुप्रवेश दिखाई देता है। इसलिए सिराचक्र और सिराजालो का सम्पूर्ण शरीर में धमनीचक्रो की अपेक्षा संख्या में आधिक्य है।

बहुत सी सिरायें प्रत्येक पुरुप में भिन्न क्रम से संयुक्त होती है और प्रायः रचना भेद से भी भिन्न होती है। इसलिए यहा पर सिराओंका वर्णन साधारण तथा जिस तरहका देखनेमें आता है उसीका वर्णन किया जायगा।

वर्णनकी सुगमता के लिए पहले शाखा, शिरोग्रीवीय सिराओं का, और फिर मध्यशरीर की सिराओं का वर्णन दो अध्यायों में किया जायेगा। शाखाओं की, और शिरोग्रीवाकी सिराओं द्वारा मध्यशरीर की सिराओ के पूरण होने के कारण उनकी अग्रसिरा संज्ञा है।

ऊर्ध्वशाखा की सिरायें।

इनमे प्रथम उत्तान सिराओंका वर्णन करते है। प्रत्येक ऊर्ध्वशाखाकी उत्तान सिराओ में दो सिरा मुख्य है—वहि सीमा में **बहिर्बाहुका** और अन्तसीमा में **अन्तर्बाहुका**। इनकी सहकारिणी दो ही मुख्य सिरायें हैं— मध्यप्रकोष्ठिका और मध्यबाहुकायोजनी।

बहिर्बाहुका[1] नामकी सिरा (११३ चित्र) प्राय. अंगुष्ठमूल से आरम्भ हो कर प्रकोष्ट की वहि.सीमा के साथ-साथ जा कर कूर्परसन्धि के सम्मुख में दिखती है और फिर यह पहले प्रगण्ड की वहिःसीमा में और पीछे टेढ़ी हो कर अंसमूल की अन्त.सीमा के साथ-साथ अक्षकास्थि के नीचे फैलती है, और क्रमश अंसच्छदा और उरश्छदा पेशियोके अन्तरालमें गम्भीर भावसे घुसती है। यह सिरा अन्तमें कक्षाधरा नामकी स्थूल मे मिल जाती है।

अन्तर्बाहुका[2] नामकी सिरा (११२ चित्र) कनिष्ठांगुलिके मूल से आरम्भ होकर प्रकोष्ठपृष्ठ की अन्तःसीमाके साथ-साथ तिरछी जाकर कूर्पर की अन्त सीमा में सामनेकी ओर दिखायी देती है। फिर यह प्रगण्ड की अन्तःसीमा में जा कर

१ Cephalic Vein. २ Basilic Vein

[चित्र ११३ चित्र]

बाहुके सम्मुखस्थ सिरायें।
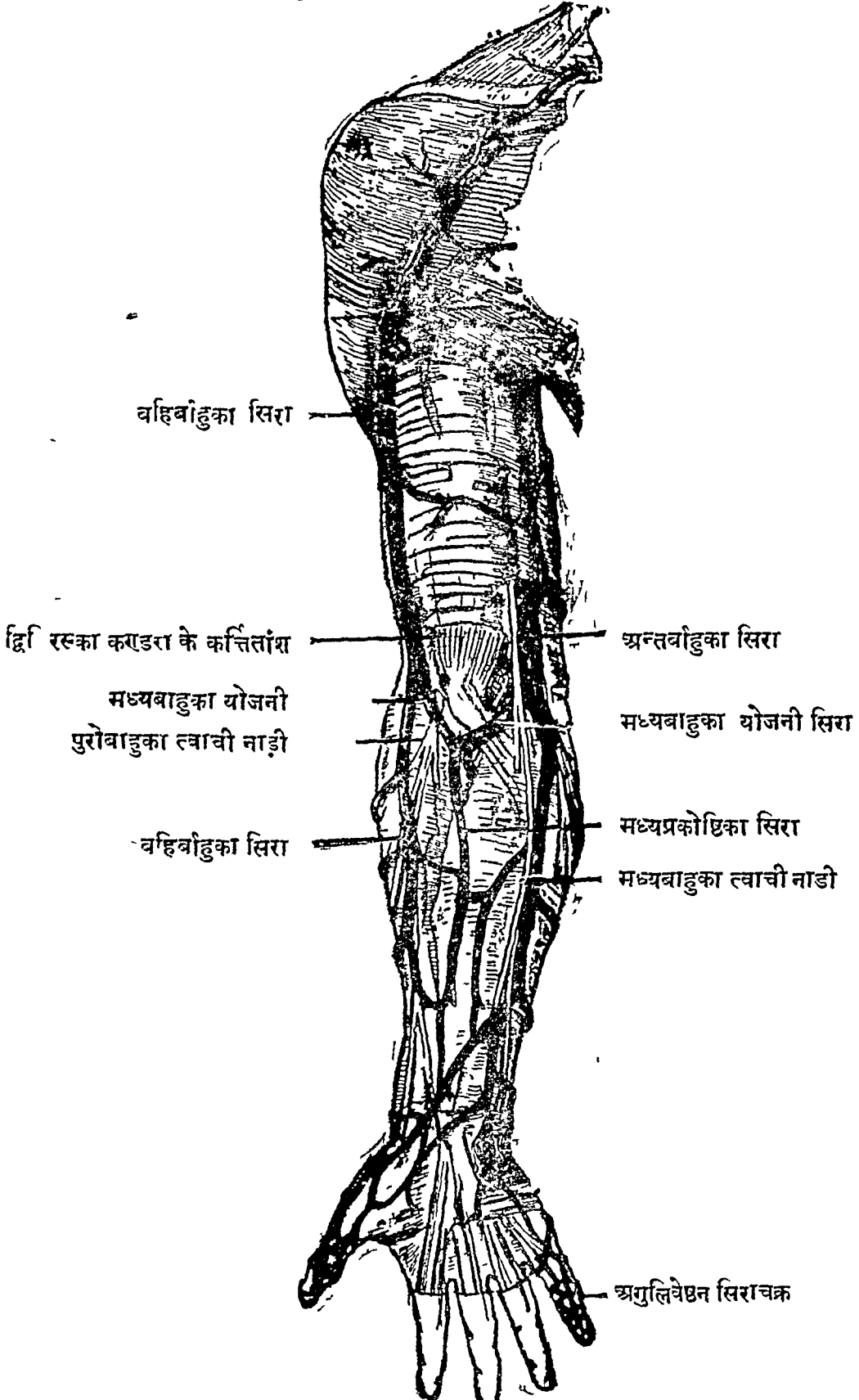
प्रगण्डके मध्यभाग में बाहुकञ्चुक को भेद कर गम्भीर भाव से जाकर बाहवी धमनी की सहचरी दोनो सिराओं से मिलती है। शेषमें यह सिरा कक्षामें जाकर कक्षाधरा नामकी अकेली स्थूल सिरा हो जाती है।

इन दोनों सिराओका परस्पर संयोग प्रकोष्ठके सम्मुख और पीछे तिरछी फैली सिराओके द्वारा होता है। विशेप कर—

मध्यबाहुका योजनी[1]—नामकी मोटी, तिरछी और छोटी सिरा कूर्परके सम्मुख इनको आपसमें मिलाती है।

मध्यप्रकोष्टिका[2] नामकी सिरा (११३चित) प्रकोष्ठके सामने अन्तर्बाहुका सिराके मध्य में प्राय. सीधी ऊपरको फैली है। यह कूर्परसन्धि के निचले भाग में अन्तर्बाहुका सिरामें घुसती है। यह प्रकोष्ठके सामने अन्तर्बाहुका और बहिर्बाहुका सिराओ से तिरछी योजनी सिराओके द्वारा संयुक्त होती है।

इन सिराओं का पूरण इस प्रकार से होता हैं—करपृष्ठमे अंगुलीपृष्ठिकादि सिराओं से भरे हुए सिराजाल का नाम 'करपृष्ठिक" है, और करतलमे अंगुलीतलिकादि सिराओं द्वारा "करतलिक" नामका सिराजाल बनता है। ये दोनों सिराजाल अंगुलीमूलान्तराल मे स्थित सिराजाल से परस्पर मिले हैं। इनमे करपृष्ठ के उत्तान सिराजाल मणिबन्ध के समीप मे थोड़ी सी सिराओ मे परिणत हो कर अधिकतः वहिर्बाहुका सिरा मे घुसते हैं। अन्तःसीमा स्थित सिराजाल प्रायः अन्तर्बाहुका मे प्रवेश करते है। करतलिका सिराजाल अधिकतः अन्तर्बाहुका और मध्यप्रकोष्ठिका सिराओ मे ही घुसते हैं। वहिःसीमा में स्थित सिराओं का प्रायः वहिर्बाहुका सिरा मे प्रवेश होता है।

प्रकोष्ठ-प्रगण्डीय सब उत्तान सिराओं का अन्तर्बाहुका और वहिर्बाहुका सिराओं में यथासम्भव प्रवेश हो जाता है। अंसपृष्ठ से उठी हुई कुछ सिराओं का भी प्रायः अंसके समीपमें वहिर्बाहुका सिरा में प्रवेश होता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि—रक्तमोक्षण के लिये अन्तर्बाहुका, वहिर्बाहुका और मध्यबाहुका—इन तीन सिराओ का व्यधन करना विशेष सुगम होता है। इनमें से कोई एक सिरा द्वारा कुशल चिकित्सक विसूचिका आदि रोगोंमें मूमुर्षु रोगीके शरीर में लवणजल का प्रवेश करा सकते हैं। जिससे शरीरसे निकला

---

१ Median Cubital Vein २ Median Anti-brachial Vein.

हुआ जलीय भाग अनायास पूरण हो जाता और रोगी शीघ्र ही जीवित हो जाता है।

गम्भीर सिरायें।

ऊर्ध्वशाखामें सभी गम्भीर सिरायें धमनियों की सहचरी एवं प्रायः युग्मा होती हैं। इनमें प्रत्येक धमनी के पार्श्वोंमें दो-दो सिरायें हैं ये अनुप्रस्थ गई हुई योजनी नामकी सिराओं से जहां-तहां जुड़ी हैं।

इनकी संज्ञा धमनी की भांति ही है। यथा—अंगुलीपार्श्विका, करतलधानुषी उत्ताना और गम्भीरा[1] एवं अरत्निमध्या[2]। इनमें करसिरायें प्रकोष्ठ सिराओंमें और प्रकोष्ठसिरायें वाहवी सिराओं में प्रविष्ठ होती है, और वाहवी धमनी की पार्श्ववर्त्तिनी दोनों सिरायें कक्षाधरा नामकी एक ही स्थूल सिरा में परिणत हो जाती हैं।

गम्भीर सिराओं को उत्तान सिराओं से मिलाने वाली बहुत सी सिरायें हैं। विशेष कर अन्तर्वाहुका नामकी उत्तान सिरा वाहवी धमनी के पार्श्व में गम्भीर भावसे जा कर उसकी सहचरी दोनो सिराओं से मिली हैं।

कक्षाधरा[1]—नामकी सिरा इसी नामकी धमनी के पार्श्व में रहती है और अक्षकास्थि के नीचे से प्रथम पर्शुका की वहिःसीमा तक इस नाम को धारण करती है। इसमें कक्षाधरा धमनी की शाखाओं की सहचरी सिरायें और अंसकपालिनी और अंसवेष्टनिका आदि सिरायें परस्पर मिलने से तीन चार सिरायें बन कर अक्षाधरामें प्रवेश करती हैं। अक्षकास्थि के नीचे वहिर्वाहुका नामकी उत्तान सिरा इसमें घुसती है—यह पहले कह चुके है। यह कक्षाधरा सिरा प्रथम पर्शुका पर आकर अक्षाधरा नाम धारण करती है।

अक्षाधरा[5]—नामकी सिरा (११६ चित्र) अक्षकास्थि के नीचे तिरछी टेढ़ी हो कर अक्षक और उरःफलक की सन्धि के पृष्ठ तक जाती है और अनुमन्या नामकी ग्रीवागता काण्डसिरा से मिल कर गलमूलिका नामकी अधोमुखी सिरा हो जाती है। इसका वर्णन वक्ष देशीय सिरा वर्णन के समय फिरसे करेंगे।

---

१ Digital Veins. २ Palmer Arches. ३ Interosseous Veins ४ Axillary Vein. ५ Snbclavian Vein

[११४ चित्र] अधःशाखीय सिरायें।
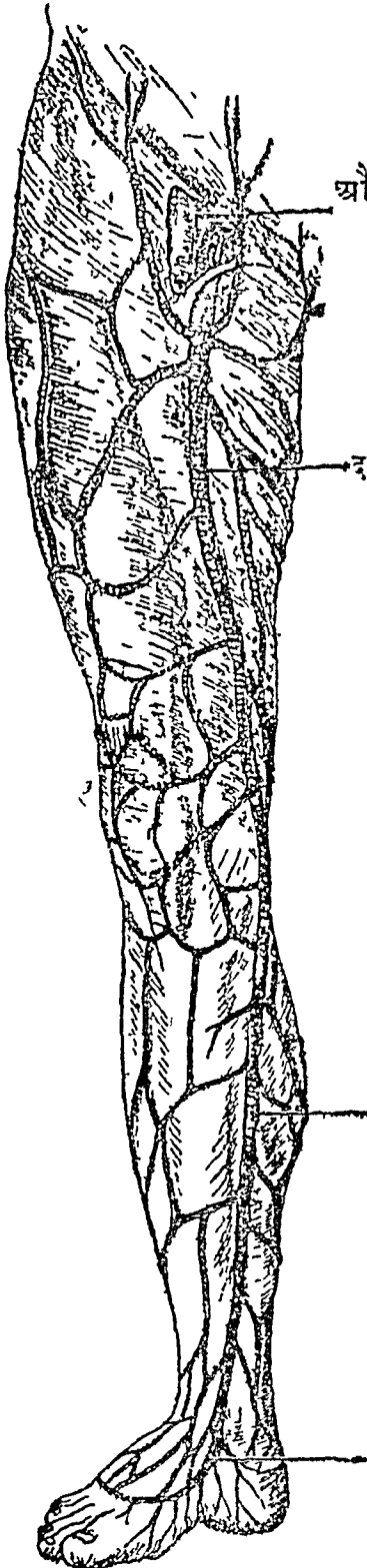
(द—द दीर्घोत्ताना सिरा)

अक्षाधरामें घुसने वाली पुरोग्रीविका, और अधिमन्या नामकी ग्रीवा से आयी हुई दो ही सिरायें मुख्य हैं ओर इसके साथ अनुमन्या सिरा के संयोगस्थलमें दक्षिण की तरफ से दक्षिण लसिकाकुल्या और वाम भागकी तरफसे वामा रसकुल्या (रसप्रपा) इसमें घुसती है—यह विशेषता है।

अधःशाखा को सिरायें।

प्रत्येक अधःशाखामें दो उत्तान सिरायें मुख्य है—दीर्घोत्ताना और ह्रस्वोत्ताना (११४ चित्र)। इनमें—

दीर्घोत्ताना[1]— नामकी सिरा (११४ चित्र में) सक्थि-सिराओं में सब से लम्बी है। यह पांव की अन्तसीमा से आरम्भ करके जंघा के अन्तःप्रदेशमें तिरछी जाती है। फिर जानुपृष्ठकी अन्तःसीमाका स्पर्श करके फिर ऊरुमें तिरछी ऊपर तथा सम्मुख को जा कर 'ठ' अक्षर के आकार वाले अनुवंक्षणीय छिद्र से और्वी सिरामें प्रवेश करती है। यह नीचे पतली और ऊत्तरोत्तर मोटी है। यह जानुके अधःप्रदेशमें कहीं युग्मरूप से भी दीखाई देती है।

ह्रस्वोत्ताना[2]— नामकी सिरा (११४ चित्र में) बहिर्गुल्फके पश्चिमदेशसे आरम्भ कर तिरछी जानुपृष्ठ तक गई है। यहा जानुपृष्ठ खात को ढापने वाली गम्भीर प्रावरणी को भेदन करके ऊरुजानुपृष्ठिका सिरा में घुसी है। यह वहां गम्भीर भाव से प्रवेश करने के पहले ऊर्ध्वमुखी उत्तानयोजानी नामकी सिरा को द्वार करके दीर्घोत्ताना से मिली है।

इन सिराओ का पूरण इस प्रकार से होता है— पादपृष्ठ मे अंगुलीपृष्ठिकादि सिराओ से निर्मित उत्तान सिराजाल है, जिसका नाम पादपृष्ठिक है। पादतलमे भी पादांगुली आदि से प्रारम्भ हुए इसी प्रकार का सिराजाल है जिसका नाम 'पादतलिक' है। इनको परस्पर मिलाने वाला सिराजाल अंगुली मूलके अन्तरालमे और पावकी अन्तः एवं बहिःसीमा मे स्थित हैं। इनमे पादपृष्ठीय और पांव की बहिःसीमा मे स्थित सिराजाल ह्रस्वोत्ताना सिरा मे प्रविष्ट होते है, शेष दीर्घोत्ताना मे। जङ्घा और ऊरु मे अन्य उत्तान सिरायें परस्पर मिलाने वाले सिराजालो से मोटी होती हुईं शेष मे ह्रस्वोत्ताना और दीर्घोत्ताना सिराद्वय का पूरण करती है। विशेष कर दीर्घोत्ताना मे उदर, जघन तथा उपस्थ गत कई उत्तान

१ Long Saphencus २ Short Saphencus

सिरायें प्रविष्ट होती हैं। यहा उत्तानोदरिकी सिरा को उरःपार्श्व की सिराओं से मिलाने वाली एक दीर्घ सिरा औदरोरसी नामकी है। यह दीर्घोत्तानाको कक्षाधरा सिरा से मिलाती है, यही विचित्रता है।

अधःशाखा की गम्भीर सिरायें।

अधःशाखा की गम्भीर सिरायें अधिकतः ऊर्ध्वशाखा की भाति हैं प्रायः ये युग्म और धमनियो की सहचरी होती हैं, एवं धमनियों के अनुसार नाम धारण करती हैं। इनमे पादतलगा सिराओं का संग्रह पश्चिमजंघिका नामकी दो सहचरी सिराओं मे होता है और पादपृष्ठिकाओ का पुरोजंघिका नामकी दो सिराओं मे। पुरोजंघिका और पश्चिम जंघिकाओं का प्रवेश उरुजानु-पृष्ठ मे उरुजानुपृष्ठिका नामको सिरा मे होता है, और यह अकेली ऊरू के सम्मुख जाकर **और्वी** नामकी सिरा हो जाती है। वंक्षण से ऊपर उदरगुहा मे प्रवेश कर के यही सिरा शेष मे **अधिश्रोणिका वाह्या**[1] नामकी स्थूल सिरा हो जाती है (१०८।१०६ चित्र)।

शिरोग्रीवाकी सिरायें।

वर्णन की सुगमता के लिए शिरोग्रीवा सिरायें तीन प्रकार से विभक्त की गयी हैं। यथा—शिरोबाह्या सिरायें (मुखमण्डल की सिराओ के साथ), ग्रीवा सिरायें और शिरोऽभ्यन्तरीया सिरायें।

शिरोबाह्या सिरायें।

शिरोबाह्या सिराओ में—शिर के प्रत्येक आधे भागमें नौ-नौ सिराये मुख्य है (११५ चित्र)। ये ललाटिका, अधिभ्रुवा, नासामूलिका, अग्रिमवक्त्रिका, अनुशाखा, अन्तर्हानव्या, पश्चिमकर्णिका, पश्चिमवक्त्रिका और कपालमूलिका नामकी है। ये परस्पर मिल कर मुखमण्डलके साथ शिर के वहिःस्थित सिराजालों का रक्त ग्रीवासिराओ में ले जाती है। इनमे ललाटिका और अधिभ्रुवा—ये दो सिरायें ललाट के एक-एक ओर नासामूल तक जाती हैं। ये सिरायें कईयो के ललाटपर तिलकके आकारमे स्पष्ट दिखायी देती है।

१ The External Iliac Vein.

(११५ चित्र)

शिरोबाह्या सिराएं।
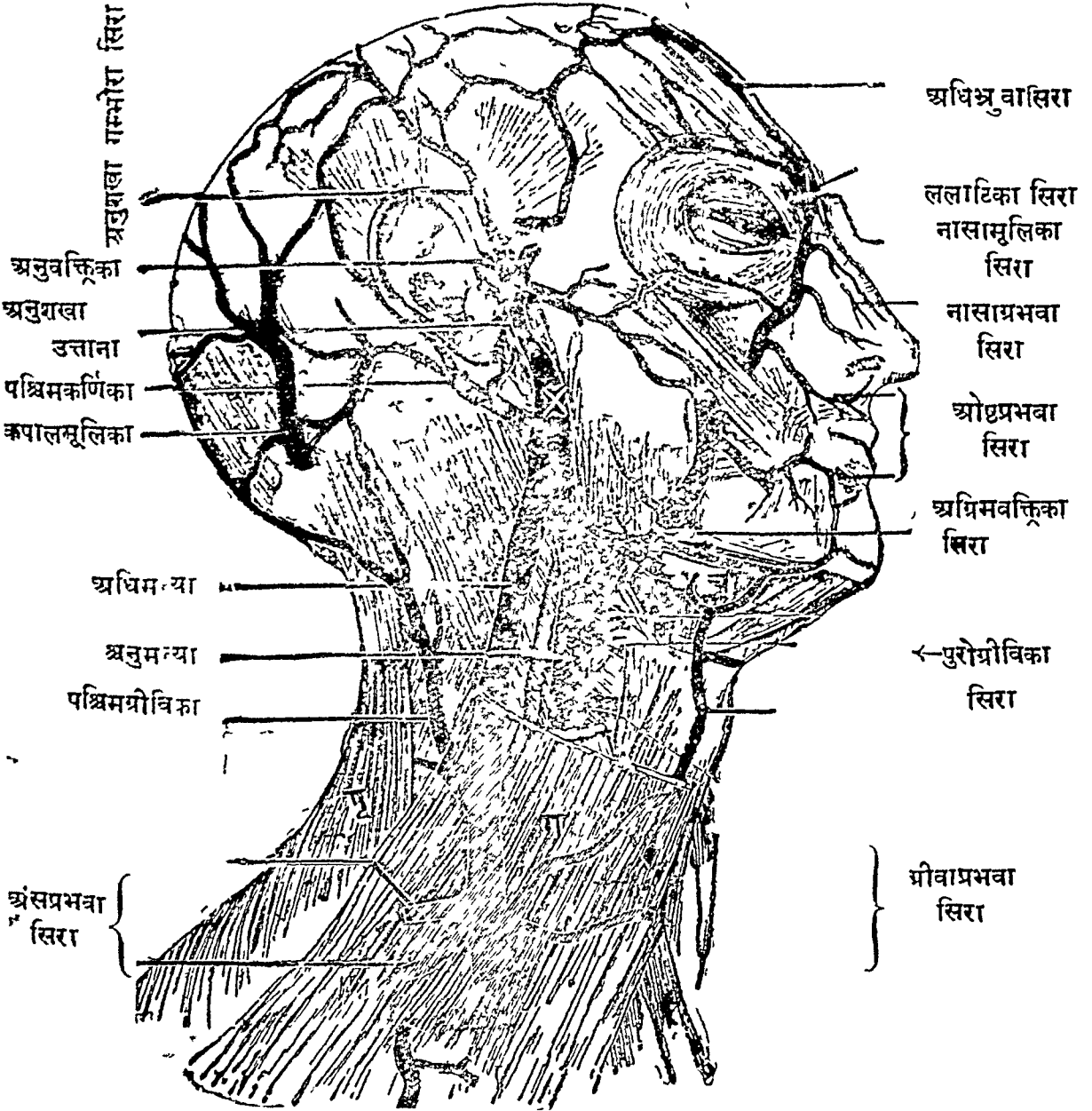
[ह—अधोहनु। च—चिबुकाधरीया ग्रन्थियाँ। ग्रीवाप्रच्छदा। पृ—पृष्ठच्छदा।]

नासामूलिका[१]—नामकी सिरा पूर्वोक्त ललाटिका और अधिभ्रूवा सिराओं संयोग से उत्पन्न हुई है। यही नासापार्श्वको अतिक्रमण करके तिरछी हनुकोण की ओर फैल कर गण्डकूट के नीचे 'अग्रिमवक्त्रिका नामकी सिरा हो जाती है। इस सिरा का पूरण नेत्रके अधःप्रदेश, नासापार्श्व, गण्ड और अधरोष्ठ आदि से आई हुई सिराओ द्वारा होता है। यह हनुकोणके अधःप्रदेश मे 'पश्चिम वक्त्रिका सिरा का अग्रिम शाखा से मिल कर ग्रीवा मे अनुमन्या नामकी स्थूल सिरामे घुसी है।

अनुशंखा[२]—नामकी उत्ताना और गम्भीरा दो सिरायें शखदेश मे स्थित सिराजालों के रक्त से पूर्ण होती हैं और ये कानके सम्मुखमें दीखती है। यही सिरा कर्णमूलके नीचे अन्तर्हानव्या सिरासे मिल कर पश्चिम वक्त्रिका हो जाती है।

अन्तर्हानव्या[३]—नामकी सिरा अपने नाम वाली धमनी की सहचरी हैं, हनुके अभ्यन्तरस्थ सिराजालों से इनका पूरण होता है। यह सिरा अधोहनुसन्धिके नीचे अनुशङ्खा से मिल कर पश्चिम वक्त्रिका हो जाती है।

पश्चिमकर्णिका[४]—नामकी सिरा कर्ण के पश्चिम देश से आकर इसके नीचे पश्चिम वक्त्रिका सिरामे घुसती है।

पश्चिमवक्त्रिका[५]—नामकी सिरा कर्णमूल में अनुशङ्खा और अन्तर्हानव्या नामकी सिराओं के मेल से उत्पन्न हो कर हनुकोण पृष्ठ मे जाकर अग्रिमवक्त्रिका नामकी पुरोगा शाखा से मिलती है, और नीचे फैल कर ग्रीवा में अधिमन्या नामकी सिरा हो जाती है।

कपालमूलिका[६]—नामकी सिरा करोटि के पश्चिमस्थ सिराजाल के मेल से बनती है और कपालमूल मे पृष्ठच्छदा नामकी पेशी का भेदन करके कपाल-मूलिक नाम के त्रिकोण में घुसी है। यह 'गम्भीर ग्रीवीया' सिराओ से मिल जाती है अथवा अनुमन्या नामकी स्थूल सिरा मे घुसती है।

ग्रीवा सिरायें।

ग्रीवा के प्रत्येक आधेभाग मे पांच ग्रीवा सिरायें मुख्य है—पुरोग्रीविका, अनुमन्या, अधिमन्या, पश्चिमग्रीविका और मस्तिष्कमातृका (११५ चित्र)। इनमें अनुमन्या सब से मोटी है।

---

१ Angular Vein २ Superficial Temporal Vein ३ Internal Maxillary Vein ४ Posterior Auricular Vein ५ Posterior Facial Vein. ६ Occipital Vein

पुरोग्रीविका[१]— नामकी सिरा जिह्वामूलमे स्थित सिराजालके सम्मेलन से उत्पन्न हो कर ग्रीवामध्यरेखा के पार्श्व मे नीचे फैल कर गलमूल मे अधिमन्या अथवा अक्षाधरा सिरा मे प्रविष्ट हुई है।

अनुमन्या[२]—नामकी अतिस्थूल सिरा ग्रीवापार्श्व मे मन्या नामकी पेशी से ढंपी रह कर प्रायः उसके साथ-साथ नीचे जाती है। यह पहिले अन्तर्मातृका का और फिर महामातृका धमनी का अनुसरण करती है। यह मुख्यतः मस्तिष्क के अन्तःस्थित सिरारक्त का संग्रह करती है। मुखमण्डल के उत्तान सिराजाल का और ग्रीवासिराओ का अधिकृतः इसी मे प्रवेश होता हैं। यह सिरा शिर के अन्तः-स्थित पार्श्विका नामकी सिरापरिखा की करोटिमूल मे अनुवृत्तिरूपा है। यह सिरा पश्चिम कपाल के पार्श्व मे स्थित अनुमन्याविवर से ग्रीवा मे घुसती है और मुख, जिह्वा, गलविल आदि से आई हुई सिराओ द्वारा कपालमूलिका आदि सिराओं से इसका पूरण होता है। अन्त मे गलमूल मे अक्षाधरा नामकी सिरासे मिलकर यही सिरा गलमूलिका नामकी काण्डसिरा बन जाती है।

अधिमन्या[३]— नामकी सिरा अधिकतः शिरोग्रीवा की बाह्य सिराओं का और विशेपतः मुखमण्डल की गम्भीर सिराओं के रक्त का संग्रह करती है। यह ग्रीवा के प्रत्येक पार्श्व मे मन्या नामकी पेशी पर चढ़ी हुयी है और कर्णमूल से अक्षकास्थि के मध्यबिन्दु तक तिरछी फैली है। यह पुरोग्रीविका और पश्चिमग्रीविका सिराओसे और अंसग्रीविका नामकी दो तिरछी सिराओं से मिल कर ग्रीवामूलमें अक्षाधरा सिरा मे घुसती है।

पश्चिमग्रीविका[४]—नामकी सिरा करोटि के पश्चिमस्थ उत्तान सिराओंसे भरी जाती है। यह पश्चिम कपालमूल से आरम्भ कर ग्रीवापार्श्व में अधोमुख तिरछी जाकर अधिमन्या सिरा मे घुसी है।

मस्तिष्कमातृका[५]—नामकी सिरा इसी संज्ञा वाली धमनीकी सहचरी है। यह मस्तिष्कमूल मे स्थित रक्तके अधिक भागका और कशेरुओं के सिरारक्तका संग्रहण करती है। यह ग्रीवाकशेरुओं के बाहुप्रवर्धनो मे स्थित छिद्रमार्गसे अधोमुख जाकर गलमूलिका नामकी सिरा मे घुसती है। ग्रीवाकशेरुओ के प्रान्तों मे स्थित सिराओं का वर्णन मध्यशरीर की सिराओंके वर्णनमें आवेगा।

---

१ Anterior Jugular Vein २ Internal Jugular Vein ३ Ext Jugular Vein ४ Post Ext. Jugular Vein, ५ Vertebral Vein.

शिरोऽभ्यन्तरीया सिरायें।

ये तीन प्रकार की हैं—कपाल-पलान्तरिका, मस्तिष्कीया और सिरासरित्। इनमे—

(क) कपालपलान्तरिका[१]—नामकी सिरायें (११६ चित्र) कपालास्थिको बनाने वाले दोनों पलकों के अन्तराल मे फैली हैं और ये स्थूल और कुटिल है। इनका सम्बन्ध सूक्ष्म अस्थिछिद्रों मे जाने वाले सिराजालो द्वारा मस्तिष्कवृतिगा सिराओं से, सिरासरितों से और करोटि की वाह्यसिराओं से होता है। ये चार प्रकारकी हैं—अग्रिमकपालिका, शङ्खपूर्वा, शङ्खपश्चिमा और पश्चिमकपालिका। इनका परस्पर संयोग पुरःकपाल, पार्श्वकपाल और पश्चिम कपाल के पलको के अन्तरालों मे शाखाप्रतानो द्वारा होता है।

(ख) मस्तिष्कीया सिरायें दो प्रकार की है—मस्तिष्कप्रभवा और अनुमस्तिष्कप्रभवा।

इनमें मस्तिष्कप्रभवा फिर दो प्रकारसे विभक्त है—मस्तिष्कवाह्या और मस्तिष्काभ्यन्तरीया। इनमें वाह्य सिरायें प्रायः मस्तिष्कदलों के अन्तरालों में स्थित सीताओं मे फैली हैं, ये स्थान भेद से उत्तरा, अधरा और मध्यमा सिराओं मे विभक्त हैं। मस्तिष्काभ्यन्तरीया सिरायें मस्तिष्क के आभ्यन्तर भागों से उत्पन्न हो कर दो स्थूल सिराओं मे परिणत होती हैं, ये स्थूल सिरायें- अन्त्यमूलिका और अनुश्रृङ्खलिका नाम से प्रसिद्ध है। इनका वर्णन मस्तिष्कके वर्णन के समय आवेगा और इनके संयोग से उत्पन्न हुई महती मस्तिष्कमूलिका[२] नामकी सिरा मस्तिष्कमूलमे दीर्घिका योजनी नामकी सिराकुल्यामे घुसी है।

अनुमस्तिष्कप्रभवा सिरायें अनुमस्तिष्क को व्याप्त करके स्थित हैं, ये उत्तरा और अधरा सिराराजियो में विभक्त हैं। इनमें उत्तरा सिराराजी सङ्घबद्ध होकर दीर्घिका योजनी सिराकुल्यामें घुसती है। अधरा सिराराजी पार्श्विका नामकी दो सिरासरितों में और पश्चिमाधरिकामें प्रविष्ट होती है।

(ग) **सिरासरित्** अथवा **सिराकुल्या**[३]—(११७।११८ चित्र) यह दो स्तरों में विभक्त और मस्तिष्कच्छदा कलाके अन्तराल में स्थित सिरामार्ग हैं, जो कि करोटिके अन्तस्तलमें दीखते है। ये कपालास्थियो के, जतूका एवं शङ्खा-

१ Diploic veins. २ Terminal Cerebral veins ३ Choroid veins.

स्थियोंकी सिरापरिखाओं मे बहते हैं और प्राधान्यतः मस्तिष्क की सिराओंसे पूरण होते हैं। ये स्वयं पार्श्विका नामकी सिरासरितों द्वारा अनुमन्या नामकी ग्रीवा-सिराओ को पूरण करते है।

इनमे स्थूल और दीर्घ सिरामार्ग की सिरासरित् संज्ञा है और पतले छोटे सिरामार्ग की सिराकुल्या अथवा सब की साधारण संज्ञा सिरासरित् ही कही जा सकती है। ये दो प्रकार के है—पश्चिमोत्तरा और पश्चिमाधरा —

दीर्घिका उत्तरा[१]—नामकी सिरासरित् पश्चिमोत्तरा सिराओंमे मुख्य और सब से लम्बी है। यह करोटिपटल के भीतर मध्यरेखा मे स्थित दीर्घिका नामकी सिरापरिखा का आश्रय करके बहती है और दात्रिका नामकी कला की दो स्तरों मे विभक्त ऊर्ध्वधारा से धारण की जाती है। ये दोनो स्तर सिरापरिखा के तटों मे लगे है। यह सिरासरित् सम्मुख में झर्झरास्थि के शिखरकण्टक से आरम्भ हो कर पश्चिम कपाल के सम्मुख तल मे स्थित महावर्त्त तक जाती है और प्रायः वहां पार्श्विकी सिरासरितो से—(कही दक्षिणपार्श्विका सिरासरित् से) मिली है। इसके दोनों ओर करोटिपटल में तीन - चार सिरापल्वल नामके क्षुद्र सिराखात दिखायी देते है।

इस सिरासरित् मे उत्तरा मस्तिष्काभ्यन्तरीया, कपालान्तरिका और मस्तिष्क-वृतिगा सिरायें घुसती हैं।

दीर्घिका अधरा[२]—नामकी सिराकुल्या मस्तिष्क को विभक्त करने वाली दात्रिका नामकी कला की अधोधारा के पश्चिमार्द्ध के अनुक्रम से फैलती है और उसके दो स्तरो के अन्तराल मे लटकती है। यह दीर्घिकायोजनी नामकी पश्चिमस्थ सिराकुल्यासे मिली है।

दीर्घिका योजनी[३]—नामकी सिराकुल्या सम्मुख में मस्तिष्कच्छदा कला की मध्यरेखा मे स्थित पूर्वोक्त सिराकुल्या से और पश्चिम में महावर्त्त से मिल जाती हैं।

अनुपार्श्विका[४] - नामकी दो सिरासरित् सब से स्थूल है। ये पश्चिम-कपाल के केन्द्रभूत महावर्त्त के दोनों ओर बाहु की भांति फैली हुयी पार्श्विकी नामकी सिरापरिखों में बहती हैं और ये आड़ेरूप से स्थित पक्षपुट नामक मस्तिष्क-

---

१ Superior Sagittal Sinus २ Inf Sagittal Sinus, ३ Straight Sinus
४ Transverse Sinus

[११६ चित्र]

कपालपत्रान्तरिका सिरा ।

(यहां भीतरी सिराजाल को दिखलाने के लिए कपालास्थि-निर्मापक वाह्यपत्रक हटा दिया गया है ।)
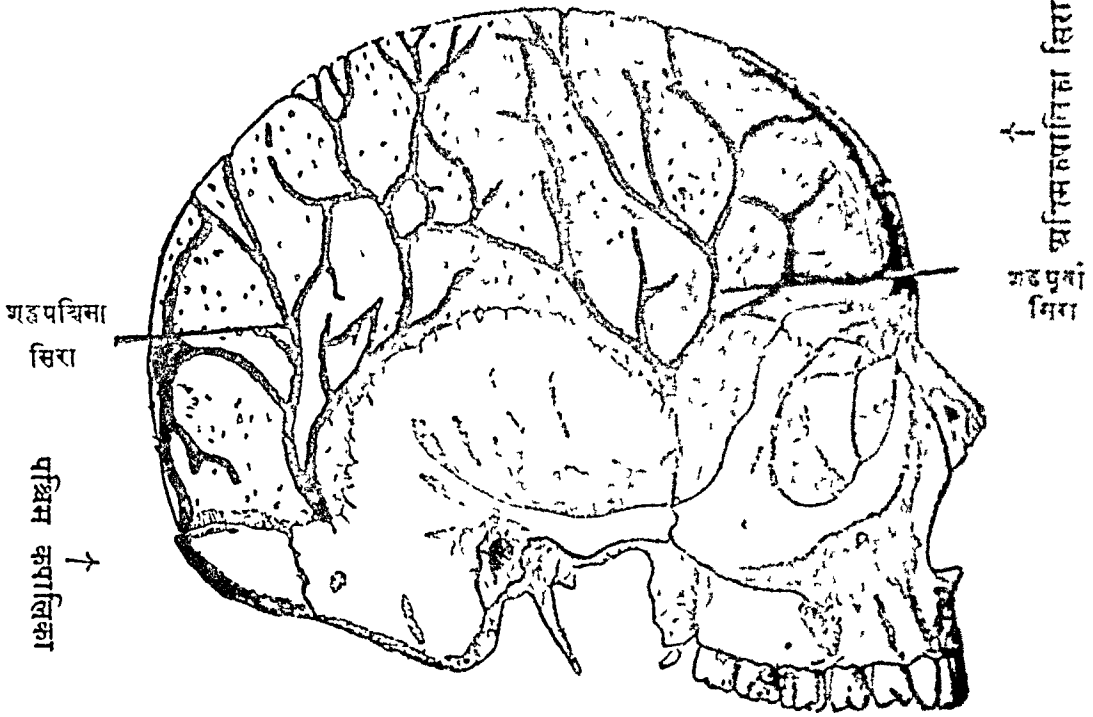
[११७ चित्र]

शिर के भीतर की सिरासरित् या सिराकुल्या ।

[अनुलम्ब भाव से करोटि का छेदन करके दिखलायी गयी है ।]
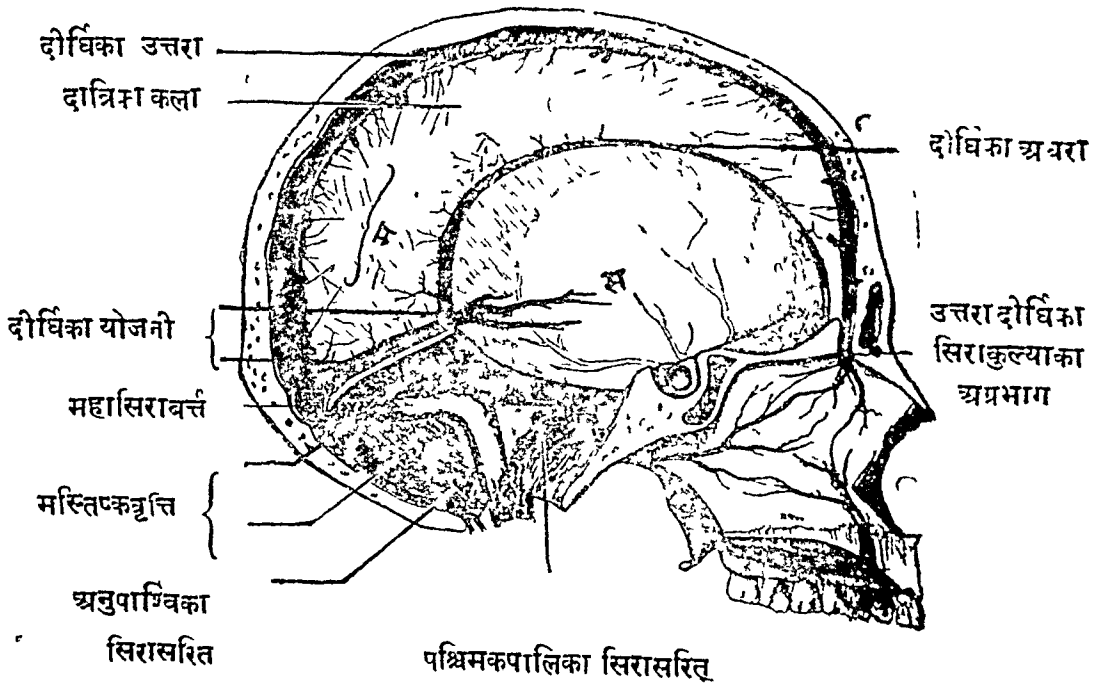
वृत्ति भाग के दो स्तरों मे विभक्त पश्चिमधारा से धारण किये जाते है। ये दोनो स्तर सिरापरिखा तटों मे लगे है। इनके मध्य मे स्थित महावर्त्त सम्मुख मे ऊपर दीर्घिका से और नीचे अनुदीर्घिका सिरासरित् से मिला है। कभी दक्षिणपार्श्विका नामकी सिरासरित् दीर्घिका की अनुवृत्तिरूपा और वामपार्श्विका सिरासरित् अनुदीर्घिका की अनुवृत्तिरूपा होती है। तब इनका महावर्त्त मे परस्पर संयोग नही दीखता। पार्श्विका नामकी ये दोनों सिरासरित बहिःसीमाओ मे टेढ़ी हो कर अर्द्धचन्द्रिका नामकी सिरापरिखाओ मे बहती है। ये बहिःप्रान्तों मे अनुमन्या विवर नामक अस्थिविवरों के ऊपर अनुमन्या नामकी दो स्थूल सिराओं मे मिली हैं।

पश्चिमकपालिको[१]—नामकी सिराकुल्या पश्चिमकपालमूल से ऊपर मध्यरेखा के साथ जा कर महावर्त्त मे घुसी है। (११८ चित्र)।

महासिरावर्त्त[२]—नामका सिरावर्त्त (११८ चित्र) पूर्वोक्त पाचों सिरा सरितों का सन्धिस्थान है, यह पश्चिमकपाल के अभ्यन्तर तल के केन्द्र में है। इसको प्राचीन लोगों ने सद्योमारक 'अधिपति' नामक मर्म कहा है।

पश्चिमाधरा नामकी युग्म सिरासरित चार हैं और सिराकुल्याचक्र एक है। इसके दोनों ओर मस्तिष्कमूल मे और भी पतली सिराकुल्यायें दीखती हैं। जैसे—

त्रिकोणिका[३]—नामकी दो सिरासरित् (११८चित्र) युग्मा सिरासरितों में मुख्य है। ये जतूकास्थि के शरीर के दोनों ओर मातृका परिखाओ मे रहती है। यह सीमाओं मे प्रायः त्रिकोण होने से इनकी त्रिकोणिका सञ्ज्ञा है। प्रत्येक त्रिकोणिका सम्मुख मे जतूकापक्षान्तराल से आरम्भ हो कर शङ्खास्थिके अग्रभाग तक फैली है, इसी सिरासरित् को भेदन करके अन्तर्मातृका नामकी धमनी गयी है, और इसके चारो ओर तीसरी से लेकर छठी तक ४ नाड़ियां कला से ढंपी दिखायी देती हैं।

दोनो त्रिकोणिका सिरासरित् चाक्षुषी और मस्तिष्कीया सिराओसे भरी जाती हैं। इसका रक्त अश्मतटिनी नामको सिराकुल्याओ द्वारा पश्चिमस्थ पार्श्विका नामकी सिरासरितोंमें जाता है।

त्रिकोणिका योजनी[४] नामकी दो छोटी सिराकुल्यायें है— अग्रिमा और पश्चिमा। ये जतूकास्थि के पोषणक खात के सम्मुख और पीछे आड़े रूप से

---

१ Occipital Sinus २ Confluence of Sinuses ३ Cavernous Sinuses ४ Inter,cavernous Sinuses

[११८ चित्र]

करोटिभूमिगत सिरासरित् और सिराकुल्यायें

(अनुप्रस्थ छेद से दर्शित)

[सम्मुखभाग]
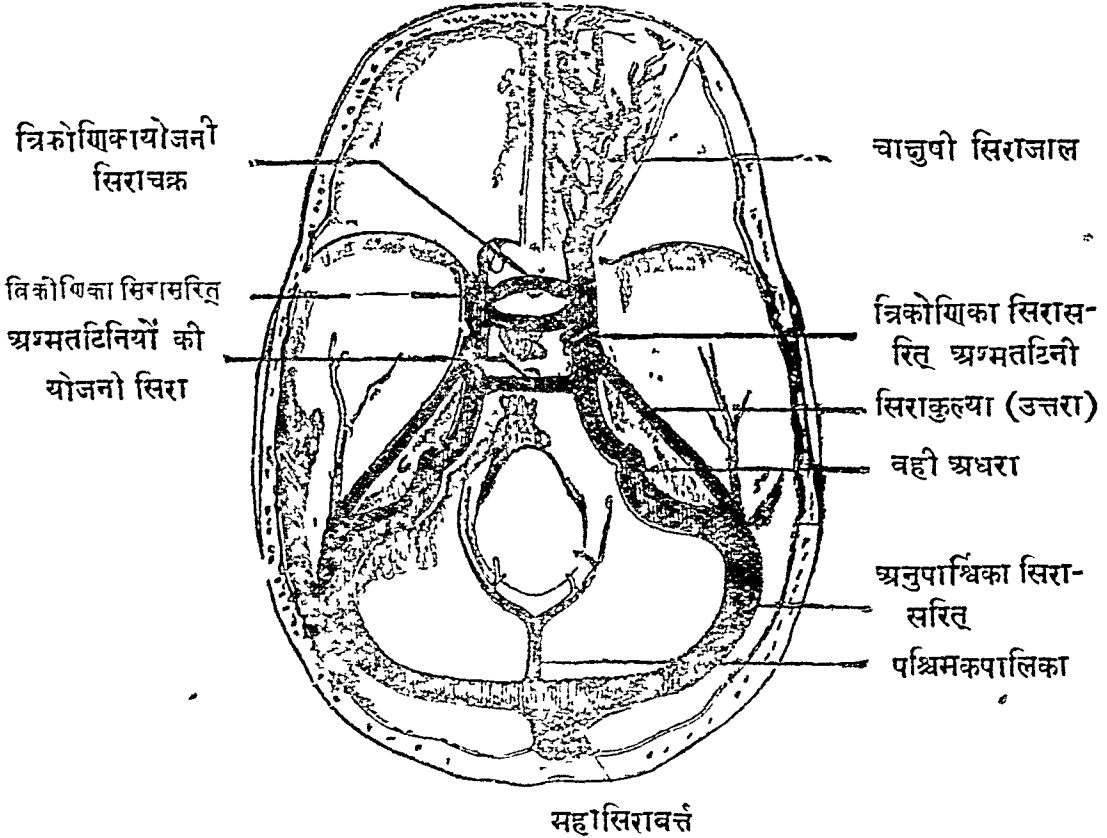
रह कर तिकोणिका नामकी सिरासरितों को परस्पर जोड़ती हैं। पोषणक ग्रन्थिको घेर कर रहने के कारण इन दोनों के मिलने पर 'परिपोषण' नामक सिराचक्र बनता है।

अश्मतटिनी[१]—नामकी दो दो पतली-पतली सिराकुल्या उत्तरा और अधरा नामकी हैं। ये एक-एक ओर शङ्खास्थि के अस्मतट भाग में अधिष्ठित हैं। इनमें दोनो उत्तरा सिराकुल्यायें लम्बी हैं, ये दोनों पार्श्विक सिरासरितों को त्रिकोणिकाओं से जोड़ देती हैं। दोनो अधरा सिराकुल्यायें त्रिकोणिका स्थित रक्तांश को और सुषुम्नाशीर्षक, धम्मिल्लक एवं अनुमस्तिष्क मे स्थित सिराओं के रक्त को अनुमन्या नामकी ग्रीवा सिराओ मे पहुंचाती हैं।

---

१ Petrosal Sinuses (Sup & Inf)

मस्तिष्कमूलिका सिराकुल्याचक्र[1] —मस्तिष्कमूलभाग में पश्चिम-कपालमूल के ऊपर है। यह अधरा अश्मतटिनियो को आड़ेरूप से मिलाता है। इसका रक्त महाविवर की परिसर का आश्रय करके पृष्ठवंश के अन्दर कशेरुकान्तरीय अग्रिम सिराजालों में घुसता है। मस्तिष्कमूलिका नामकी पूर्वोक्त ग्रीवासिरायें इस रक्तको इकट्ठा करती हैं।

और भी कई सूक्ष्म सिराकुल्यायें है, जो पार्श्वकपालो मे शङ्खास्थियों मे और धमनीप्रतानाङ्को मे लगी हैं। ये मध्यमा मस्तिष्कवृत्तिगा धमनियो के शाखाप्रतानो की सहचरी हैं। इनका रक्त अधिकतः दीर्विका सिरासरित्मे अथवा इसके संयुक्त पल्लवों में घुसता है।

इस स्थान पर यह स्मरण रखना चाहिये कि सिरासरितों में रक्तकी अधिकता होने पर सात-आठ सिराओं से मस्तिष्कान्तरीय रक्त वाहर निकल आता है। ये पार्श्वकपालादि में स्थित करोटि के छिद्रमार्गों से वाहर निकल कर ग्रीवासिराओमे रक्त को ले जाती हैं। इनका नाम सिरापरिवाहिका है।

द्वितीय अध्याय।

=मध्यकाय सिरावर्णन=

सम्पूर्ण शरीर की सिराओं के क्रमशः संयोग से उत्पन्न हुई **उत्तरा** और **अधरा महासिरा** मध्यशरीरमें रहती है। वक्षःस्थल मे फुस्फुस से आई हुई सिरायें तथा हार्दिकी सिरायें और उदरमे यकृत्की ओर जानेवाली **प्रतिहारिणी** नामकी स्थूल सिरा इनसे पृथक है। इन सिराओ का महासिराओं से साक्षात् सम्वन्ध नही है।

इनमे अधिकतः ऊर्ध्वशाखा की वहुत-सी सिराओं का और कुछ ग्रीवा सिराओं का रक्त संग्रह दोनों **अक्षाधरा** सिराओं से होता है। शिरोग्रीवीय सिराओं का रक्त दोनों अनुमन्या सिराओं मे प्रवेश करता है। अक्षधरा और अनुमन्या के मिलने से उत्पन्न **गलमूलिका** नामकी एक २ काण्डसिरा एक २

१ Basilar Plexus २ Emissary veins.

तरफ वनती है—यह कई शिरोग्रीवीय सिराओं के रक्तको साक्षात् रूप से संग्रह करती है। दोनों गलमूलिका सिराओं के मिलने से **उत्तरा महासिरा** होती है। यह और भी वाह्य तथा आभ्यन्तर वक्षःस्थल की सिराओं से भरी जाती है और शेष मे कर हृदय के दक्षिण अलिन्द के ऊर्ध्वप्रदेश मे घुसती है। फुस्फुस से आयी हुयी चार विशुद्ध रक्तवहा सिरायें हृदय के वाम अलिन्द मे घुसती है। परन्तु हार्दिकीसिरायें हृदय के दक्षिण अलिन्द मे घुसती है। औरसी सिराओंका संक्षिप्त वर्णन यहां तक हो गया।

अधःशाखीय सिराओं का रक्तसंग्रह अधिकतः और्वी सिराओं से होता है। एक एक और्वी सिरा वंक्षणदरी मे घुसकर अधिश्रोणिका वाह्या नामकी मोटी सिरा हो जाती है। गुद, उपस्थ और वस्तिगुहा आदि की सिराओंका रक्तसंग्रह अधिकतः दो अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी सिराओं के द्वारा होता है। अधिश्रोणिका वाह्या और अधिश्रोणिका अभ्यन्तरी के संयोग से एक-एक ओर अधिश्रोणिका साधारणी नामकी स्थूल सिरा वनती है। यह कटि और त्रिक की कूछ सिराओं का रक्तसंग्रह करती है अर्थात् इन सिराओं का अधिश्रोणिका साधारणी में प्रवेश होता है। दोनों अधिश्रोणिका साधारणी के मिलने से **अधरा महासिरा** उत्पन्न होती है। यह महासिरा अन्य वाह्या एवं अभ्यन्तरी औदरी सिराओं द्वारा पूर्ण होकर हृदय के दक्षिण अलिन्द मे नीचेसे घुसती है।

प्रतीहारिणी सिरा— आमाशय, पक्वाशय, प्लीहा आदि के रक्त को संग्रह करती हुयी यकृत मे घुसती है, और इसका रक्त याकृती सिराओं द्वारा अधरा महासिरा मे संगृहीत होता है।

ग्रीवा, पृष्ठ और कटिदेशमे स्थित पृष्ठवंशीय सिराओं का क्रमशः ग्रीवा, पृष्ठ और कटिदेश मे स्थित पूर्वोक्त सिराओं मे प्रवेश होता है। शिष्यवुद्धि की विशदता के लिये इनका पृथक वर्णन किया जायगा।

औरसी सिरायें।

औरसी सिराओंमे प्रायः वारह सिरायें मुख्य है—दो गलमूलिका, एक उत्तरा महासिरा, चार फुस्फुसीया सिरायें और पाच (या छः) हार्दिकी सिरायें।

गलमूलिका[1]—नामकी (११९ चित्र) दो स्थूल काण्डसिरायें गलमूलों से तिरछी नीचे जाकर महाधमनी के तोरण भाग के ऊपर परस्पर मिलती हैं इनके द्वारा ग्रीवा, अंस और वाहुकी सम्पूर्ण सिराओं का रक्तसग्रह हो जाता है। इनमे—

१ Innominate veins.

दक्षिणा गलमूलिका सिरा[१]—डेढ़ अंगुल लम्बी और मोटी है। यह दक्षिण अक्षकास्थि और उरःफलक की सन्धि के पीछे दक्षिणा अक्षाधरा और दक्षिणा अनुमन्या नामकी सिराओं के संयोग से बनी है। यह प्रायः सीधी गति से नीचे जाकर आगे तिरछी गति से प्रथम दक्षिण उपपर्शुका के पीछे मे वामा गलमूलिका सिरा से मिली है। यह काण्डमूला धमनी के सम्मुख और दक्षिणमें दिखायी देती है। इसको पूर्ण करने वाली सिरायें (अक्षाधरा और अनुमन्या के सिवाय) चार हैं, यथा - दक्षिणा मस्तिष्कमातृका, अन्तःस्तनिका, अधरग्रैवेयकी और प्रथमा पर्शुकानुगा। और उत्तरा पर्शुकानुगा मेलनी नामकी सिरा भी प्रायः इसीमे घुसती है।

वामा गलमूलिका सिरा[२]—डेढ़ अंगुल लम्बी है। यह वाम अक्षकोर सन्धि पृष्ठ मे दिखायी देती हैं। यह वामा अक्षाधरा और वामा अनुमन्या सिरा के संयोग से बनी है। यह अत्यन्त तिरछी गति से पूर्वोक्त प्रदेश मे दक्षिण गल-मूलिका सिरा से मिल कर उत्तरा महासिरा को बनाती है। यह तिरछी जा कर पश्चिममें स्थित वामा अक्षाधरा और अन्तःस्तनिका धमनी को तथा वाम अनु-कोष्ठिका और प्राणदा नाड़ी को तथा क्लोमनलिका और काण्डमूला नामकी धमनी को उल्लंघन करती है। इसका पूरण पूर्वकी भांति वामा सिरायें और वामोत्तरा पर्शुकानुगा मेलनी सिरायें करती हैं।

अब गलमूलिका सिराओं को पूरण करने वाली सिराओ की व्याख्या करते है। इनमे से अक्षाधरा, अनुमन्या, और मस्तिष्कमातृका सिराओ की व्याख्या पहिले आ चुकी है।

अन्तःस्तनिका[३]—नामकी दो सिराये (११६ चित्र) अपने ही नामकी धमनिओं की सहचरी है। इनमे दक्षिणा, दक्षिणा गलमूलिका सिरा मे और वामा गलमूलिका सिरामे घुसी है। ये उरःस्थल के चारों ओर स्थित बहुत सी बाह्य और आभ्यन्तरीया सिराओं का रक्तसंग्रह करती है।

अधरग्रैवेयकी[४]—नामकी दो सिरायें (११६ चित्र) ग्रैवेयक ग्रन्थि के मूलमें स्थित सिराचक्र से उत्पन्न होती है। ये नीचे की तरफ जा कर पूर्व की भाँति गलमूलिका सिरामें घुसी हैं यह सिराचक्र श्वासनलिका, अन्ननलिका आदि से आयी हुयी बहुत सी सिराओं से भरा जाता है।

---

१ Right Innominate Vein. २ Left Innominate Vein. ३ Internal Mammary Veins, ४ Inferior Thyreoid Veins.

पर्शुकानुगा[१]—नामकी सिरायें इसी संज्ञावाली धमनियोंकी सहचरी (११६ चित्र) है । इनमे दोनो प्रथमपर्शुकानुगा, पृष्ठवंश और पर्शुका के सन्धिस्थान से ऊपर जा कर गलमूलिका सिराओं में क्रमशः अपनी अपनी तरफ घुसी है। दूसरी, तीसरी और चौथी पर्शुकानुगा सिराओं के संयोग से एक एक ओर उत्तरा पर्शुकानुगा मेलनी नामकी सिरा उत्पन्न हुयी है। इनमे वामा सिरा वामा गलमूलिका मे और दक्षिणा सिरा दक्षिणा गलमूलिका मे या दक्षिणा पुरोवंशिका सिरा मे घुसती है। शेष पर्शुकानुगा सिरायें पुरोवंशिका नामकी सिराओ मे घुसती है। और सब पर्शुकानुगा सिरायें उरःपरिसर के पृष्ठ में स्थित पार्श्वीय सिराओंका रक्त संग्रह करती हैं ।

उत्तरा महासिरा ।

उत्तरा महासिरा[२]—शरीर के उत्तरार्द्ध के सिराओं का रक्तसंग्रह करने वाली (११६ चित्र), पांच अंगुल लम्बी और बहुत मोटी सिरा है। यह दोनों गलमूलिका सिराओ के संयोग से बनी है। यह दक्षिण तरफ प्रथम उपपर्शुका के पृष्ठ से आरम्भ करके उरःफलककी दक्षिण सीमा के साथ साथ नीचे चली है और दक्षिण तृतीया उपपर्शुका तक जा कर हृदय के दक्षिण अलिन्द में घुसी है। यह महासिरा अधरार्द्ध में हृदयधर कलाकोष के कुछ भाग से ढंपी है।

इसका सम्बन्ध इस प्रकार से हैं। इसके सम्मुख मे—दक्षिण फुस्फुस की सम्मुखकी धारा है—उसको ढांपने वाली उरस्या कला के सहित। पश्चिम मे—दक्षिण फुस्फुस का वृन्त देश ओर दक्षिणा प्राणदा नाड़ी । दक्षिण मे—दक्षिणा अनुकोष्ठिका नाड़ी और उरस्या कला के सहित दक्षिण फुस्फुस। और वाम में आरोहिणी महाधमनी।

इसको पूर्ण करने वाली सिरायें—यथा-पुरोवंशिका दक्षिणा, हृत्कोषीया सिरायें और फुस्फुसान्तरालीय रसग्रन्थि आदि से उत्पन्न होने वाली सिरायें। इनमे प्रथमा मुख्य है।

पुरोवंशिका दक्षिणा[३]—नामका सिरा (११६ चित्र) पृष्ठवंशके सम्मुख दक्षिण पार्श्व मे दिखायी देती है। यह पुरोवंशिका नामकी सिराओं मे सब से बड़ी है। यह उदरगुहा मे दक्षिणा अनुकटिका सिरा (या अधरा महासिरा) के शाखारूप मे प्रथम कटिकशेरुकाके सम्मुख भाग से आरम्भ हो कर ऊपर

---

१ Inter-costal Veins. २ Superior Vana Cava. ३ Azygos Vein.

[११६ चित्र]

मध्यकाय की सिरायें।
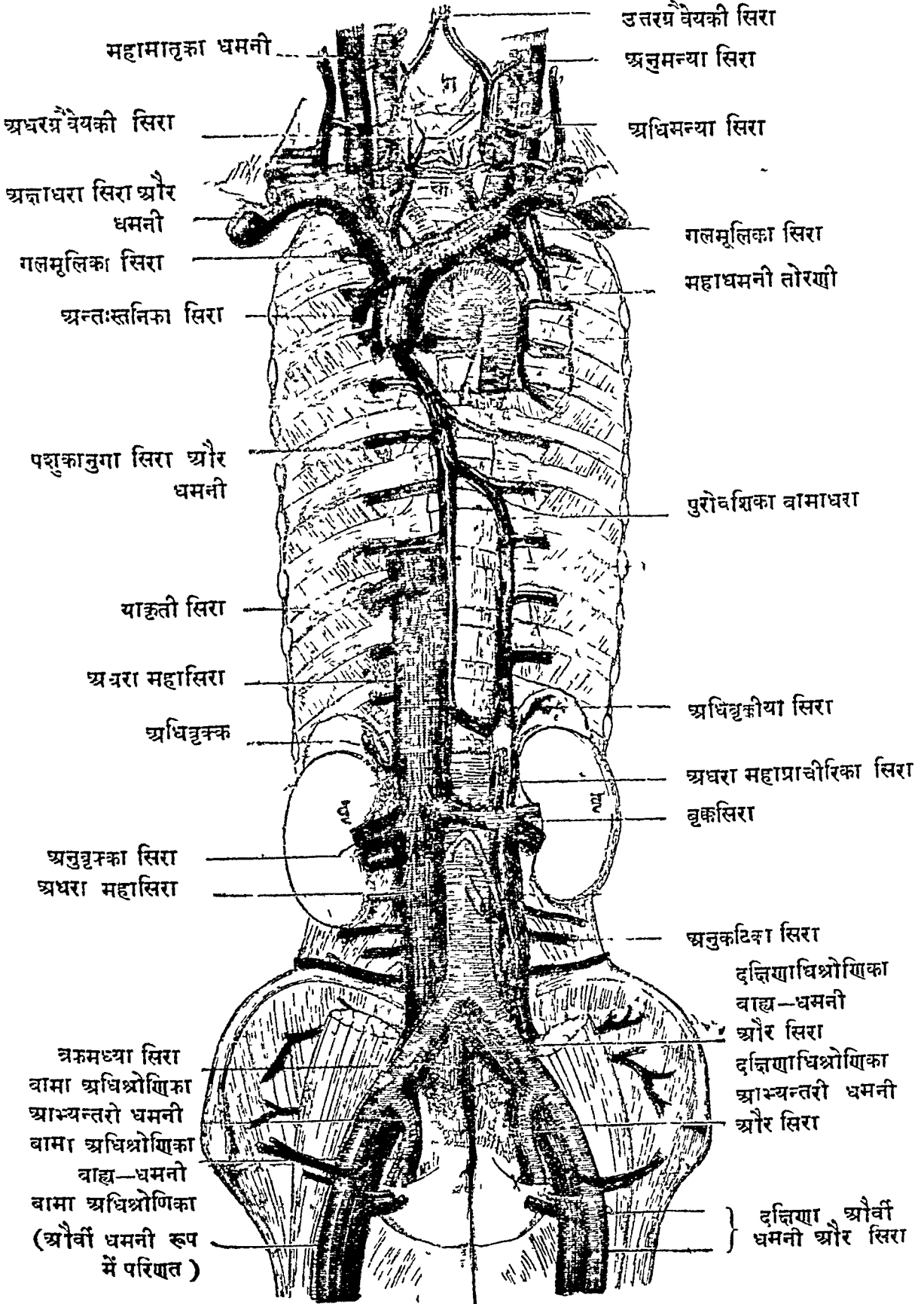
[ग—ग्रैवेयक ग्रन्थि। क—क्लोमनलिका। वृ—वृक्कद्वय]

(To face page 170)

जाती हुयी महाप्रचीरा के महाधमनी छिद्र द्वारा उरोगुहा मे प्रविष्ट होती है। यह सिरा उरोगुहा में चतुर्थ पृष्ठ कशेरुका तक जाकर आगे में धनुप के समान टेढ़ी हो कर दक्षिण फुस्फुस का वृन्त को लांघ कर उत्तरा महासिरा मे घुसी है। इसको भरने वाली वहुत सी सिरायें हैं, यथा—दश दक्षिण पर्शुकानुगा, दो वामा पुरोवंशिका, दक्षिण क्लोमसिरायें हृत्कोपीय सिरायें, और फुस्फुसान्त-रालीया सिरायें।

पुरोवंशिका वामोत्तरा[१] और वामाधरा[२]-- नामकी दो सिरायें पृष्ठवश के वाम भाग मे हैं (११६ चित्र)। इनमे प्रथम सिरा चौथी, पांचवी और छठी पर्शुकानुगा सिराओ से, और प्रायः वाम क्लोमसिराओं से भरी जाती है और सातवीं पृष्ठकशेरुका को लङ्घन करके दक्षिणा पुरोवंशिका सिरा मे घुसी है। दूसरी सिरा कटिवंशके सम्मुख भागसे आरम्भ होकर दक्षिणा पुरोवशिकाकी भाति महाप्राचीराका भेदन करके ऊपर जाकर अष्टम पृष्ठ कशेरुकाको लांघकर उसी सिरा मे घुसती हैं। यह नीचे से आयी चार या पांच पर्शुकानुगा सिराओं से भरी जाती है। कभी वामोत्तरा पुरोवंशिका का सर्वथा अभाव भी होता है। तव वामोत्तरा पर्शुकानुगा मेलनी नामकी सिरा इसका कार्य करती है।

फुस्फुसीया सिरा।

फुस्फुसीया[३] अथवा फुस्फुसागता नामकी सिराये हृदयमें प्रवेश करती हैं, इसलिए ये संज्ञामात्र से सिरा है, वास्तव में ये फुस्फुस में से शोधित धमनीरक्त को वहाती है, और धमनी की भांति कार्य करने से फौस्फुस रक्तसंवहन का साधन वनी हैं। यह पहले कह चुके है (६४ चित्र।

प्रत्येक फुस्फुस से दो दो सिरायं आती है, अतः इनकी संख्या चार हैं। इनका प्रारम्भ फुस्फुसीय वायुकोपो के चारों ओर स्थित जालकों के सूक्ष्म सिरा-प्रतानों द्वारा होता है। इनके मिलनेसे सूक्ष्म सिरायें वनती हैं, और क्रमशः इनका परस्पर संयोग होने पर अन्तमे प्रत्येक फुस्फुस पिण्ड से एक-एक सिरा उत्पन्न होती हैं। दक्षिण फुस्फुस के तीन पिण्डों मे विभक्त होने के कारण इनमे से तीन सिरायें उत्पन्न होती हैं परन्तु ये फुस्फुसवृन्त के समीप में मिल कर दो सिरा हो जाती हैं। वाम फुस्फुस के दो पिण्डों मे विभक्त होने के कारण इसमे से प्रारम्भ में ही दो सिरायें उत्पन्न होती है।

---

१ Hemi azygos vein, २ Accessory Hemi-azpgos vein ३ Pulmonary veins.

ये फुस्फुसीय सिरायें हृदय के वामालिन्द के पीछे स्थित चार छिद्रों द्वारा हृदयमे घुसती है। कभी कभी दो वाम सिरायें मिल कर एक होती है और एक ही छिद्र से घुसती हैं, तब हृदय के वामालिन्द मे तीन ही छिद्र दिखाई देते हैं।

क्लोमसिराये क्लोमस्थ सिरा को रक्त वहाने वाली हैं। ये दक्षिणा या वामा पुरोवंशिका सिरामे घुसती हैं— यह पहिले कह चुके हैं।

हार्दिकी सिरायें[१]— प्रायः हार्दिकी धमनियों की सहचरी हैं। ये हृदयकी वहिःस्थित सीताओ मे एक एक होती है, और सम्मुख, पीछे और पार्श्वों में दिखायी देती है। इनका मूल हृदय पृष्ठमे स्थित छोटी मूली के आकारकी सिरा है, जिसका नाम हार्दिकी मूल सिरा[२] है, इसमे पाच-छः सिराओ का प्रवेश होता है। यह सगृहीत रक्तको हृदयके दक्षिण अलिन्दमे पहुंचाती है।

और भी छोटी सिरायें हृदय की परिधिमे इधर-ऊधर फैली हैं। ये सूक्ष्म छिद्र मार्गोसे हृदयके दक्षिणालिन्दमें या दक्षिणा निलय में साक्षात् घुसती हैं।

औदरी सिरायें।

औदरी सिराओं मे आठ सिरायें मुख्य हैं यथा—दो अधिश्रोणिका बाह्या, दो अधिश्रोणिका अभ्यन्तरी, इनके मिलने से बनी हुयी अधिश्रोणिका साधारणी दो; तथा इनके भी मिलने से वनी हुयी अधरा महासिरा एक; और इनसे भिन्न आमाशय पक्वाशय आदि के रक्त को संग्रह करने वाली प्रतिहारिणी नामकी सिरा एक। इनमे :—

अधिश्रोणिका बाह्या[३] नामकी दो सिरायें (११६चित्र)और्वी सिराओंके साथ साथ वंक्षणोदरी के मुख से त्रिकपृष्ठवंश सन्धि तक इसी नामकी धमनियों के अन्तःपार्श्व में जाती है। इनमे से एक-एक सिरा अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी सिरा से मिल कर अधिश्रोणिका साधारणी सिरा को वनाती है। प्रत्येक पार्श्व में इसको पूरण करने वाली धमनियों की सहचरी तीन-तीन सिरायें हैं। यथा अधरा औदरिकी, जघनवेष्टनिका गम्भीरा, और भगानुगा। इनका स्थान और रूप आदि इसी नामवाली धमनियोकी भाति है।

अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी—नामकी दोनो सिरायें (११६ चित्र) वस्तिगुहा के अन्तःस्थित सिराओ में मुख्य हैं, ये इसी नामकी धमनियों के पार्श्व में रहती है और उन धमनियोकी शाखाओंकी सहचरी युग्म सिराओं द्वारा

१ Cardiac veins २ Coronary Sinus, ३ External Iliac,

भरी जाती है। प्रत्येक अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी सिरा त्रिक और पृष्ठवंश की सन्धि के सम्मुख मे एक एक बाह्या अधिश्रोणिका नामकी सिरा से मिलकर प्रत्येक अधिश्रोणिका साधारणी नामकी सिराको बनाती है।

दोनों अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी सिराओ की दो पृष्ठगा शाखा है, इनका नाम कटिश्रोणिका सिरा है। इनमे प्रत्येक सिरा अधिश्रोणिका बाह्या और आभ्यन्तरी को परस्पर मिलाने वाली है।

प्रत्येक अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी को पूरण करने वाली सिराओ का संग्रह ऐसा है। श्रोणि के बहिर्देशमे—उत्तरा और अधरा नितम्बिनी सिराये, श्रोणिवंक्षणिका सिरायें, और गुदोपस्थिका सिरायें। त्रिकपार्श्व मे—त्रिकपश्चिमा सिरायें त्रिकास्थि के सन्मुख भाग मे मिली है। गुदोपस्थ की अन्तःसीमामे—मध्यमा गुदान्तिका, अनुवस्तिका, अनुयोनिका और अनुगर्भाशयिका, ये इसी नामके सिराचक्रोंसे उत्पन्न हुयी है।

यहा पर सिराचक्रो को विशेषतः याद रखनी चाहिये।

(क) **गुदवेष्टन सिराचक्र**[1]—(१२१चित्र)यह सिराचक्र पुञ्जीभूतसिराप्रतानों से बना है जो कि तीन सिराओमे परिणित होकर साक्षात् अथवा परम्परासे आभ्यन्तरी अधिश्रोणिका सिरा को पूरण करता है। इन सिराओं का नाम उत्तरा, मध्यमा और अधरा गुदान्तिका है। इनका सम्बन्ध आन्त्रिकी सिराओ से और प्रतिहारिणी सिरासे है। यह सिराचक्र अनुवस्तिक सिराचक्र से एवं स्त्रियों के अनुयोनि गर्भाशयिक सिराचक्र से भी सम्बन्ध रखता है। गुदवेष्टन सिराचक्र—बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का हैं। इनमे आभ्यन्तर सिराचक्र प्रायः आयताकार एवं परस्पर मिली हुई सिराओं द्वारा बना है, यह विशेषतः गुदा की ओर फैला है। यह सिराचक्र आन्त्रिकी सिराओ मे प्रविष्ट सिराप्रतानो द्वारा प्रतिहारिणी सिरा के साथ विशेष रूप से सम्बन्ध करता है। जब किसी भी कारण से इस सिराचक्र का ऊर्ध्वमुख रक्तसञ्चरण रुक जाता है, तब मलत्याग के समय गुदाचक्र में स्थित सिरामुखो के टूट जाने से रक्तस्राव होता है। कला से ढंपे हुए आयताकार ये ही सिरामुख रक्तार्श (खूनी बवासीर) की भूमि हैं।

---

१ Hæmorrhoidal Plexus of Veins.

(ख) **औपस्थिक सिराचक्र**[1]—(१२१ चित्र) यह सिराचक्र भगास्थि सन्धि के नीचे उपस्थमूल मे हैं। यह शिश्नपृष्ठिका (स्त्रियों की भगपृष्ठिका) सिराओं से और वस्तिद्वार मे स्थित पौरुषग्रन्थि के चारों ओर फैली हुयी सिराओं से बनता है। सिरा प्रतानों द्वारा अनुवस्तिक सिराचक्र से इसका सम्बन्ध होता है।

(ग) **अनुवस्तिक सिराचक्र**[2]—यह सिराचक्र वस्ति को संवेष्टन करता है (१२१ चित्र) यह स्त्रियों के अनुयोनिका सिराचक्र से और पुरुषोंके पूर्वोक्त सिराचक्रो से सम्बन्ध रखता हैं।

(घ) **अनुयोनि-गर्भाशयिक सिराचक्र**[3]– योनि और गर्भाशय का वेष्टन करता है। यह अनुयोनिका और अनुगर्भाशयिक भेद से दो भागों में विभक्त किया जाता है। इन दोनोका सम्बन्ध पूर्वोक्त सब सिराचक्रों से है। और अन्तमे अनुयोनिका सिराचक्रका रक्त अनुयोनिका नामकी दो सिराओ द्वारा आभ्यन्तरी अधिश्रोणिका सिरामे प्रवेश करता है। अनुगर्भाशयिक सिराचक्रका रक्त भी अनुगर्भाशयिका नामकी दो सिराओ से उसी सिरा मे प्रवेश करता है।

अधिश्रोणिका साधारणी[4]–नामकी दो बड़ी काण्डसिरायें(१२१चित्र) एक एक ओर इसी नामकी वाह्या और आभ्यन्तरी सिरा के संयोग से उत्पन्न हुयी है। ये त्रिक और पृष्ठवंश के सन्धि के सम्मुख भाग से तिरछी अन्तर्मुख जा कर चतुर्थ तथा पञ्चम कटिकशेरुका सन्धि के सामने दक्षिण तरफ मिल कर अधरा महासिरा को बनाती हैं। इनमें दक्षिणा सिरा छोटो और प्रायः सीधी है, यह अपने नाम वाली धमनी के पीछे और वहिःपार्श्व मे दिखायी देती है। वामा सिरा लम्बी और तिरछी हैं, यह प्रथम अपने नामवाली धमनी के अन्त.पार्श्व मे, और फिर उसी के पीछे रहती है। एक एक सिरा कटिश्रोणिका सिराका रक्तसंग्रह करती है और कभी त्रिकपार्श्विका का भी। इनमे वामा सिरा त्रिकमध्या सिरा का भी रक्तसग्रह करती है, यह विशेषता है।

अधरा महासिरा।

अधरा महासिरा[5]—शरीर के निम्नार्ध का रक्त को संग्रहण करती है (११६।१२१ चित्रों मे)। यह साधारणी अधिश्रोणिका नामको दो सिराओसे

---

१ Pudendal Plexus of veins २ Vesical Plexus ३ Uterine Plexus, ४ Common Iliac veins· ५ Inferior vana Cava·

वनी है यह चतुर्थ तथा पञ्चम कटिकशेरुका-सन्धि के ऊपर महाधमनी के दक्षिण पार्श्व के अनुक्रम से ऊपर गयी है और शेष में यकृत् पृष्ठ में स्थित गम्भीर परिखा में रहती है। इसके आगे यह महाप्राचीरा का भेदन करके अपने छिद्रपथ से उरोगुहा में पहुंच कर हृदय के दक्षिण अलिन्द में नीचे से घुसती है। इसका मुख हृदयधर कलाकोप से वेष्ठित रहता है। इसके मुख में एक सिराकपाटिका है, जो कि इसके रक्त को नीचे जाने से रोकती है। यह कपाटिका गर्भस्थ शिशु में ही विशेषतः स्पष्ट और कार्यकारिणी होती है।

उदरगुहामे अधरा महासिरा का सम्बन्ध नीचे से ऊपर के क्रम से इस प्रकार का है। इसके सम्मुख में—अन्त्रवन्धनियों का मूलदेश, दक्षिणा अनुवृषणिका धमनी, ग्रहणी का अधर भाग, अग्न्याशय का शीर्षदेश, पित्तवह स्रोत, प्रतिहारिणी सिरा, अभियाकृती धमनी और यकृत्पृष्ठ। इसके पीछे—पृष्ठवंश, दक्षिणा कटिलम्बिनी दीर्घा नामकी पेशी, महाप्राचीरीका दक्षिणमूल, और सात दक्षिण धमनिया (अधरा महाप्राचीरिका, अनुवृक्का, अधिवृक्किनी, चार अनुकटिका), पिगला नामकी नाड़ी और दक्षिण अधिवृक्क हैं। इसके दक्षिण में दक्षिण वृक्क और दक्षिणा गवीनी[१] हैं। वाम मे—महाधमनी, महाप्राचीरा का दक्षिणमूल और यकृत् का कुछ अंश है।

यह अधरा महासिरा दोनों अधिश्रोणिका साधारणी सिराओं से तथा अन्य सिराओं से भरी जाती है। अन्य सिरायें यथा—आठ अनुकटिका, दक्षिणा अनुवृषणिका, (स्त्रियों की अनुवीजकोपिका), अनुवृक्का, दक्षिणा अधिवृक्किनी दक्षिणा अधर प्राचीरिका, और यकृती सिरायें। इनमे—

अनुकटिका[१]—नामकी चार सिरायें पृष्ठवंश के प्रत्येक पार्श्व में (११६ चित्र) हैं। ये कटिपृष्ठ मे रहने वाली, विशेपतः पृष्ठवंश में रहने वाली, सिराओं का रक्तसंग्रह करती है। इनको पुरोवंशिका आदि सिराओं से जोडने वाली आरोहिणी अनुकटिका नामकी सिरा है, जो पृष्ठवंश के सम्मुख में ऊपर जाती है।

अनुवृषणिका[२]—नामकी दो सिरायें दोनों वृषण वन्धनियों में तथा वृषण पृष्ठ में स्थित सिराजालों का रक्त संग्रह करती है। प्रत्येक सिराजाल से उत्पन्न तीन - चार सिरायें वंक्षणसुरङ्गा पथ से ऊपर फैल कर क्रमशः इसी नामकी धमनियों की सहचरी दो सिराओं में परिणत होती है। इनमें दक्षिणा अनुवृषणिका अधरा महासिरा में और वामा, वाम अनुवृक्का में घुसती है। स्त्रियों मे ये ही सिराये बीजकोषोंसे उत्पन्न होकर अनुवीजकोपिका नाम से प्रसिद्ध है।

१ Lumbar veins २ Spermatic veins

अनुवृक्का[1]—नामकी दो स्थूल सिरायें वृक्कों से निकल कर इसी नामकी धमनियों के सम्मुख में रहती है (११६ चित्र)। इनमें वामा सिरा दक्षिणा से तिगुनी लम्बी है, यह महाधमनी के सम्मुख भाग को लाघ कर फैली है। यह वामा अनुवृक्का तथा अधरा महाप्राचीरिका और अधिवृक्किणी सिरा के रक्त का संग्रह करती है। दोनों अनुवृक्का सिराओं की अधरा महासिरा में प्रवेश होता है।

अधिवृक्किणी[2]—नामकी दो सिरायें अधिवृक्कों से निकलती है (११६ चित्र)। इनमें दक्षिणा अधरा महासिरा मे और वामा वामा अनुवृक्का मे घुसती है।

(१२० चित्र)

हार्दिकी मूलसिरा (हृदयके पृष्ठस्थ)।
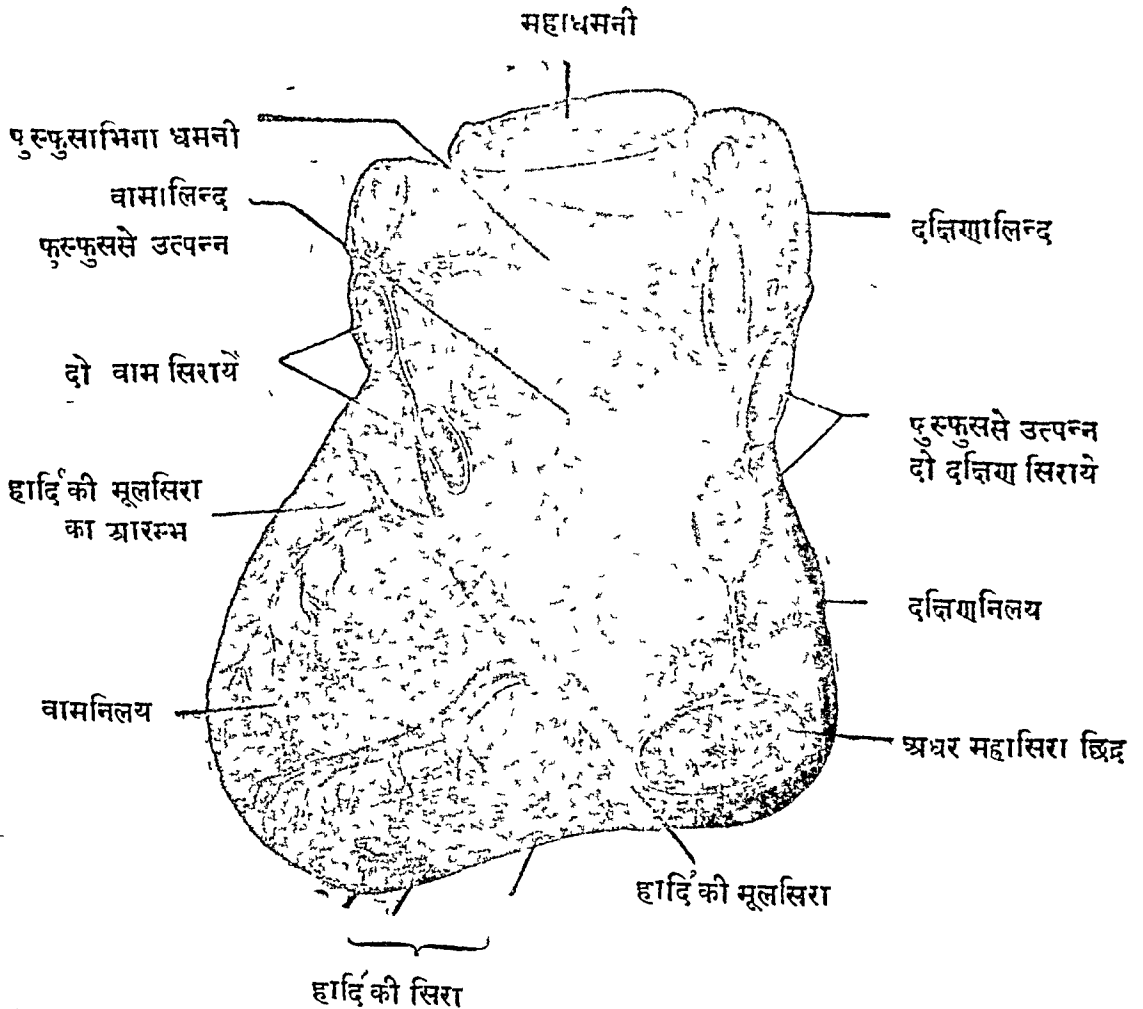
१ Renal veins २ Suprarenal veins

(१२१ चित्र)
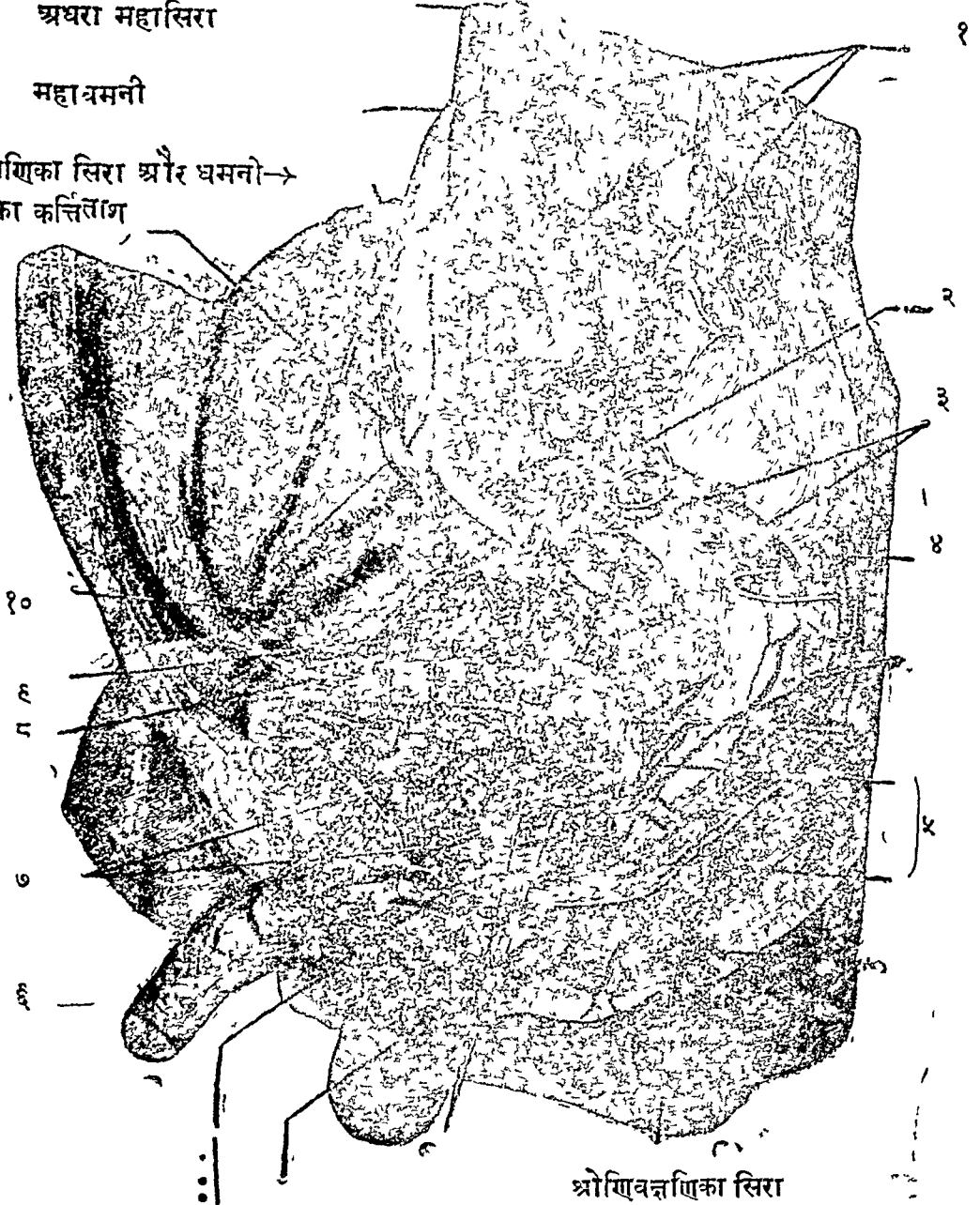
श्रोणि-वस्ति-गुदोपस्थिका सिरा।

(चित्रव्याख्या :—१ अनुकटिका सिरायें, २ अधिश्रोणिका साधारणी सिरा, ३ अधिश्रोणिका आभ्यन्तरी सिरा (दक्षिण वामा), ४ उत्तरगुदान्तिका सिरा ५ गुदवेष्टन सिराचक्र, ६ शिश्नपृष्ठिका सिरा) ७ पौरुषग्रन्थिवेष्टन सिराचक्र, ८ गवीनी अधरकर्त्तितांश, ९ गुदोपस्थिका सिरा, १० अधिश्रोणिका बाह्या सिरा।)

महाप्राचीर तलिका—नामकी दो तीन सिरायें महाप्राचीरा के तल देश से उत्पन्न हुयी हैं। इनमें दक्षिणा सिरा प्रायः एक ही है—यह अधरा महासिरा में घुसी है। वामा दो सिरायें अनुवृक्का में, अधिवृक्किणी में अथवा अधरा महासिरा में प्रविष्ट होती है।

यकृती सिरायें—यकृत् के रक्त का संग्रह करती है। ये प्रतीहारिणी महासिरा की शाखा-प्रतानों से यकृत् मे लाया हुआ रसमिश्रित रक्त को सूक्ष्म सिराओं द्वारा इकट्ठा करके क्रमशः उत्तरोत्तर मोटी हुयी है। ये अन्त में यकृत् के पृष्ठ मे छिपी हुयी तीन स्थूल सिराओं में और कई पतली सिराओं में परिणत होती हैं, और यकृतपृष्ठ को आश्रय करके स्थित अधरा महासिरा मे प्रविष्ठ होती है।

प्रतिहारिणी सिरा।

प्रतीहारिणी[1] महासिरा (१२२ चित्र) आमाशय और पक्वाशय के अन्नरस मिश्रित सिरारक्त को और प्लीहा, अग्न्याशय तथा पित्तकोप के सिरा-रक्तको इकट्ठा करके यकृत् में पहुंचाती है। वह अविशोधित अन्नरस को अधरा महासिरा मे जाने से रोकती है, इसलिए इसका नाम प्रतीहारिणी अर्थात् पहरा देने वाली है। यह सिरा यकृत् में अभियाकृती धमनी के साथ उसी धमनी की भाति शाखा प्रशाखाओं से फैल कर यकृत् पिण्डाणुकों के चारों ओर जालकों को बनाती है। पिण्डाणुकों के अन्दर परिणाम-प्राप्त रक्त का संग्रह पिण्डाणुकों के भीतर फैली हुयी याकृती नामकी सूक्ष्म सिराओं द्वारा होता है। यकृत् की सिराओं का वर्णन पहिले आ चुका है।

यह प्रतीहारिणी सिरा प्रायः चार अंगुल लम्बी है, यह द्वितीय कटिकशेरुका के सम्मुख भाग से आरम्भ करके तिरछी गति से यकृत् की ओर गयी है। इस प्रकार इसके सम्मुख में अग्न्याशयकी ग्रीवा और पश्चिम मे अधरा महासिरा दिखायी देती है। यकृत् मे घुसने के पहिले यह दो शाखाओं मे 'विभक्त हो जाती है। इनमें दक्षिणा शाखा पित्तकोप से उत्पन्न होने वाली सिरा से मिल कर यकृत् के दक्षिण पिण्ड में घुसती है। वामा शाखा बहुत लम्बी है, यह अग्रिम, पश्चिम और मध्यम यकृत् पिण्डों में दो शाखों को देती हुयी यकृत् के वाम पिण्ड मे घुसी है। और यकृत् में प्रवेश से पहिले ही इसमे परिनाभिका योजनी नामकी सिरा घुसी है। [पारिनाभिका योजनी नामकी सिरा आगे कही जायगी। इससे गर्भस्थ शिशु की

---

१ Portal vein

* संस्कृत ग्रन्थमें इसीका नाम अधरा महाप्राचीरिका रहा, परन्तु इसको बदल दिया गया।

[१२२ चित्र]

प्रतीहारिणी महासिरा।

(आशयों के साथ दर्शित)
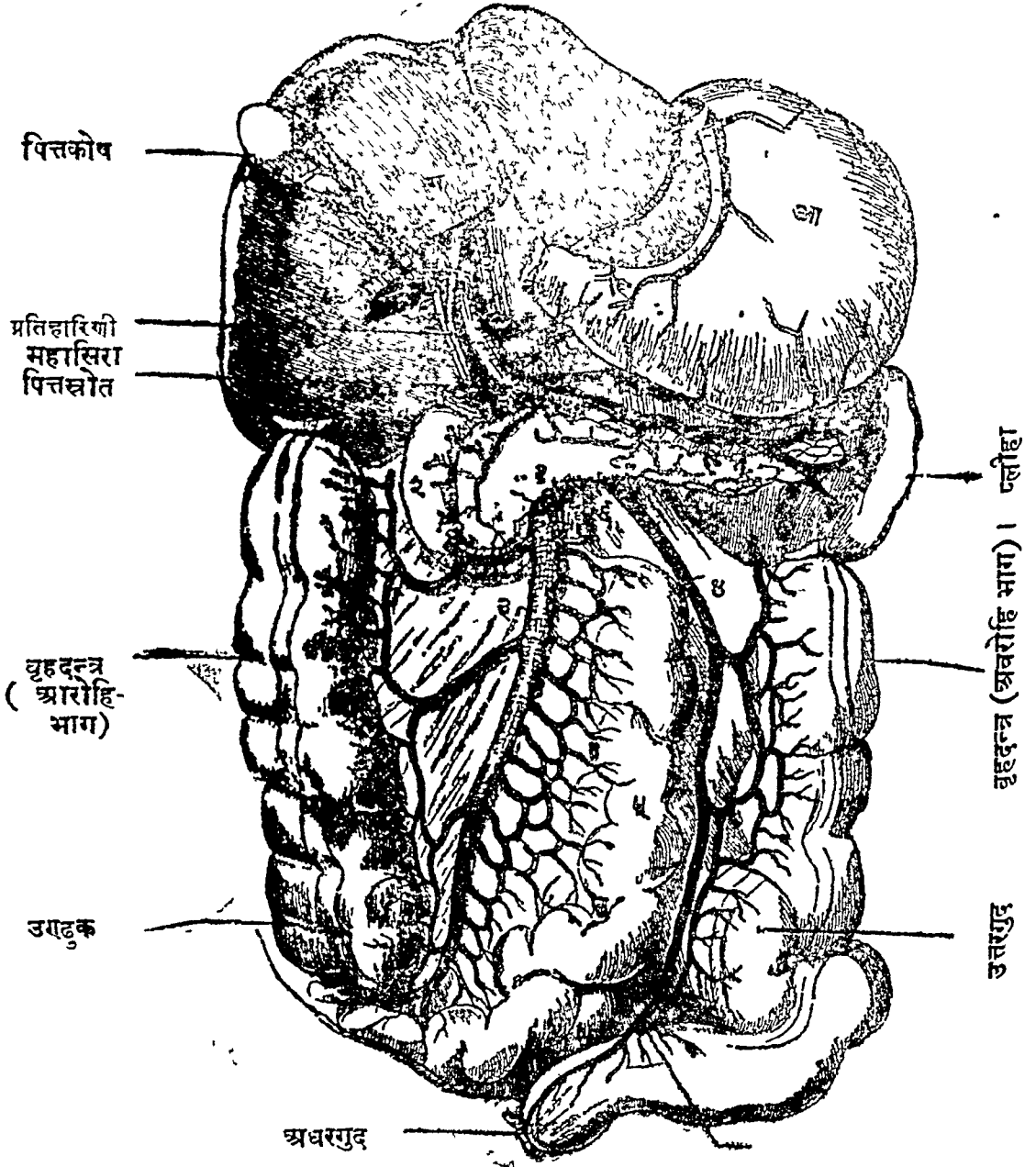
आ—आमाशय। य य—यकृत।

१। अग्न्याशय। २। ग्रहणी का कर्त्तितांश। ३। अधरान्त्रिकी सिरा।

४ उत्तरान्त्रिकी सिरा। ५ क्षुद्रान्त्रप्रभवा सिरा।

६ गुदवेष्ठन सिराचक्र का पिछला अंश।

(बृहदन्त्र का मध्यभाग चित्रमें से निकाल दिया गया है।)

संवाहिनी महासिरा की आगे और पीछे की दो शाखायें भरी जाती हैं, जो शाखायें जन्म होने के बाद सूख जाती है ।

इस प्रतीहारिणी महासिरा को भरने वाली सिराओं में—प्लैहिकी, उत्तरान्त्रिकी आमाशयक्रोडिका, अनुग्रहणिका, पित्तकोषिणी—ये पाच सिरायें मुख्य हैं । पक्‍वाशयिका योजनी नामकी पतली सिरायें भी इसे भरती है । इनमे—

प्लैहिकी[1]—नामकी स्थूल सिरा (१२२ चित्र) प्लीहा की तीन - चार मूलसिराओं द्वारा उत्पन्न होकर प्लीहा के वृन्तसे अग्न्याशय की ऊर्ध्वभाग के साथ-साथ कुटिल गति से आडी दक्षिण की ओर गयी है । यह मध्यमार्गमें अग्न्याशय से उत्पन्न हुयी सिराओंसे भी भरी जाती है और शेष भागमें **आमाशय तलिका**[2] नामकी ऊर्ध्वमुखी सिरा से मिल कर बहुत मोटी हो जाती है । फिर अग्न्याशय के शिर में उत्तरान्त्रिकी सिरा से मिल कर प्रतिहारिणी सिरा को बनाती है ।

उत्तरान्त्रिकी[3]—नामकी स्थूल सिरा (चित्र १२२) क्षुद्रान्त्रों से, और बृहदन्त्र के आरोहि एवं मध्य भाग से उत्पन्न हुए सिराप्रतानों के मिलने से बनी है । यह अन्त्रमूलबन्धनी मे ऊपर की तरफ फैल कर क्रमशः मोटी होती है । यह अग्न्याशय के क्रोडदेश का आश्रय कर के और उसके पीछे जाकर प्लैहिकी सिरा से मिल कर प्रतीहारिणी सिरा को बनाती है । वपामाशयिका आदि सिराये उत्तरान्त्रिकी सिरा में ही प्रविष्ट हुयी है ।

अधरान्त्रिकी[4]—नामकी सिरा बृहदन्त्र के अवरोहीभाग से रक्तका संग्रह करती है (१२२ चित्र) । यह अग्न्याशय के मध्यभाग के पृष्ठ तक जाकर प्लैहिकी सिरा से मिली है—यह पहिले कह चुके है ।

आमाशयक्रोडिका[5]—नामकी सिरा (१२२ चित्र) आमाशयकी कोरोदर परिधि मे दिखायी देती है, यह आमाशय की कोरोदर परिधि के सम्मुख और पश्चिम देश में स्थित सिराओं का रक्त संग्रह करती है । यह यकृत् के वृन्तदेश मे ग्रहणी के पीछे प्रतिहारिणी सिरा मे घुसी है ।

अनुग्रहणिका[6]—नामकी ह्रस्व सिरा (१२२ चित्र) ग्रहणीपार्श्विका नामकी पतली सिराओंसे भरी जाती है और इसके समीप में ही प्रतिहारिणी सिरा में वाम पार्श्व से घुसती है ।

---

१ Splenic vein २ Right Gastro epoploic vein. ३ Superior Mesenteric vein ४ Inferior Mesenteric vein ५ Coronary Gastric vein, ६ Pyloric vein

पित्तकोषिणी सिरा[1]—इसी भांति पित्तकोष के चारों ओर से आयी हुयी सिरा प्रतानों के मिलने से बनी है। यह पित्तस्रोत के पार्श्व मे जा कर प्रतीहारिणी सिरा की दक्षिण शाखा से मिल जाती है।

परिनाभिका योजनी[2]—नामकी सिरायें उदर के सम्मुख परिसर में शुष्क संवाहिनी सिराओं के साथ साथ जाती है और नाभि से ऊपर फैल कर प्रतिहारिणी की वामा शाखा में घुसी है। ये उदरकी परिसरीय सिराओं के और अधिश्रोणिका नामकी सिराओं के साथ पतले सिराप्रतानो से सिराचक्रों को बनाती हुयी प्रतिहारिणी से सम्बन्ध करती है।

जलोदर आदिमें याकृत रक्त संवहन का धीरे धीरे अवरोध होने पर आग्नाशय पक्वाशय आदि के सिरा-रक्तका एक भाग सार्वकायिक सिराओं मे इन्हीं सिराओं से प्रकार घुसता है। और दूसरे भाग से उदरगुहा के अन्दर जल का संचय होता रहता है। इसलिए जलोदर मे उत्तान सिरायें अधिक स्पष्ट और मोटी हो जाती है—यह विशेषतः स्मरण रखना चाहिये।

यहा तक मूल शाखाओं के साथ प्रतीहारिणी सिराका वर्णन हो गया।

पृष्ठवंशीय सिरायें[3]—असंख्य एवं विचित्र सन्निवेशाकी है (१२३ चित्र)। ये कशेरुओं को बाहर और अन्दर से घेर कर परस्पर योजन करने वाली सिराओं से मिल कर चारों ओर फैली रहती है (१५३ चित्र)। वर्णन की सुगमता के लिए इनका चार प्रकार से विभाग किया जाता है॥

[१२३ चित्र]

२११ पृष्ठकण्टक वेष्ठन सिराचक्र
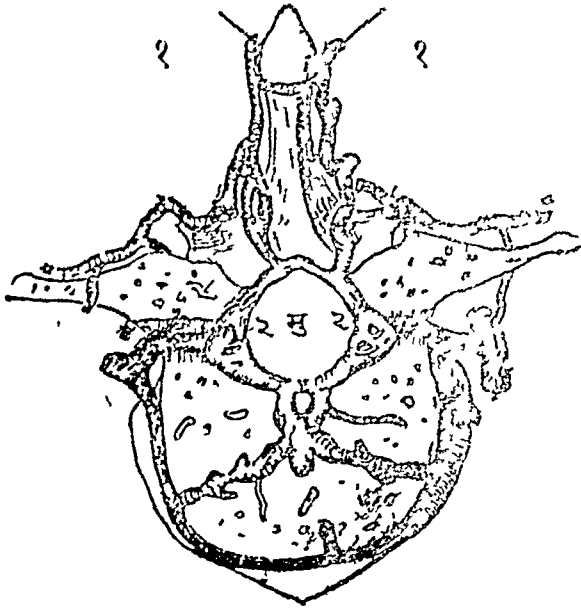
यथाः—

(१) कशेरुसिराचक्र बाह्य—कशेरुओं के बाहर की परिधि को घेरता है। इनके अग्रिम और पश्चिम सिराचक्र अधिक स्पष्ट है। इनमे अग्रिम सिराचक्र कशेरुपिण्डों के सम्मुखस्थ है, यह विशेषतः पिण्डान्तरीया सिराओंसे भरा जाता

---

१ Cystic vein २ Par,umbilical veins ३ External Vertebral venous Plexuses

है। पश्चिम कशेरु सिराचक्र पृष्ठमें स्थित है—यह प्रायः गम्भीर पृष्ठपेशियों से उत्पन्न होने वाली सिराओं से भरा जाता है।

(२) कशेरुसिराचक्र आभ्यन्तर[१]—सुषुम्ना विवर का संवेष्टन बना हुआ है (१२३ चित्र में २।२)। यह सुषुम्नाकाण्ड की वेष्टनी कला के और अस्थिमय विवर परिधि के बीच मे रहता है। यह विशेषतः कशेरुपिण्डों के पृष्ठस्थ मोटी सिराओं से भरा जाता है।

(३) कशेरुपिण्डान्तरीय सिरायें[२]—कशेरुपिण्डों का भेदन करके बाणकी गति से (सामने से पीछे भेद करके) बाहर जाकर बाह्य और आभ्यन्तर सिराचक्रों में प्रविष्ट होती है। ये परस्पर सम्बन्ध कराने वाली सिराचक्र योजनी सिरायें सर्वत्र फैली है।

(४) कशेरुचक्रान्तरीय सिरायें[३]—कशेरुचक्रों के अन्दर की छिद्रों से नाड़ियों के साथ निकली है। ये बाह्य और आभ्यन्तर सिराचक्रों से रक्त को संग्रहण करती हुयी ग्रीवा और मध्यकाय के अन्दर की सिराओं मे इस प्रकार घुसती है, यथा—ग्रीवा गता सिरायें दो मस्तिष्कमातृका सिराओं मे, पृष्ठभागकी सिरायें पर्शुकानुगाओं में, कटि-गता सिरायें अनुकटिकाओं मे और त्रिकपार्श्विकाओं में।

सिराखण्ड समाप्त।

---

१ Internal vertebral venous Plexuses २ Inter-vertebral veins
३ Basi-vertebral veins

प्रत्यक्षशारीर ।
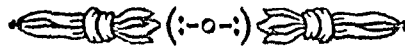
रसायनीखण्ड ।
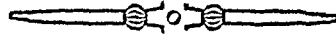
पहला अध्याय ।

यहा से रसायनी का सामान्यरूप से वर्णन आरम्भ हुआ ।

रसायनी[1]—नामकी रसवाहिनी सूक्ष्म और नाजुक प्रणालिया—नख, रोम तथा वाहर की त्वचा ओर तरुणास्थियों को छोड़ कर—सम्पूर्ण शरीर में फैली है। इनमें सव से सूक्ष्म प्रणालिया पतली स्वच्छ दो प्राचीरों से वनी है, शेष तीन प्राचीरों से। इन सब की आकृति सूक्ष्म मोती के गुच्छे के आकार की अथवा कपास के ढीले तागे के आकार की है। (१२५।१२६।१२७ चित्र)।

रस दो प्रकार का है—शुद्ध और मिश्र। इनमें रक्तका पतला स्वच्छ भाग सिरा-धमनियों के सूक्ष्म और अन्तिम प्रतान सम्भूत जालकों से चू-चू कर धातुओं का पोषण करता है, और धातुओं के पोपण से बचा हुआ रस रसायनियों द्वारा लौटता है, उसका नाम लसीका है, यह शुद्ध[2] रस है। और जो लसीका अन्त्रों से दूध, घृत आदि के स्नेह भाग को विशेपतः लेकर प्रायः दूध के समान ही जाता है, सो पयस्विनी-संज्ञक स्रोतों से खींचा जा कर रस प्रपा मे पहुंचता है, वह मिश्र रस है। दूध के समान होने से इसका नाम पायस[3] है, यह दोनों प्रकार का रस रसकुल्याओं द्वारा ऊपर को जाकर गलमूलिका सिराओं मे घुसता है, और फिर उत्तरा महासिरा द्वारा हृदय में पहुंचता है—यह पहिले भी कह चुके है।

असंख्य रसायनिया कक्षा, वंक्षण, उदर आदि प्रदेशों में लसीका-ग्रन्थियों में घुसती है, और उनमें रसको प्रवाहित करती है। यह रस ग्रन्थियों के अन्दर सञ्चरण करता हुआ शुद्ध निर्विप हो कर उनमें से निकली हुयी नवीन रसायनियों द्वारा फिर

१ Lymphatic Vessels or Lymphatics २ Lymph (Pure) ३ Chyle

पहले कहा गया आमाशय और पक्वाशय से जो आग्नेयरस सिरामार्ग का आश्रय करता हुआ सिर रक्त से मिश्रित हो कर प्रतीहारिणी सिरा में प्रवेश करता है, वह अलग है।

आगे चलता है। ये आगे फैलती हुयी रसायनिया मध्यमार्ग मे' दूसरी रसायनियो' से मिल कर फिर भी उसी प्रकार की ग्रन्थियो' में पहुचती हे। इस प्रकार से परस्पर सम्मेलन से क्रमशः मोटी एव' स'ख्या में कम होती हुयी रसायनिया शेप में रसप्रपा और रसकुल्याओं मे' घुसती है। लसीका के प्रतिनिर्वत्तन को रोकने के लिए रसायनियो' मे' सिराकपाटिकाओं' की भाति प्रयोजनानुसार कपाटिकाये' होती है। और ये कपाटिकाये' रसकूल्या में' अधिक स्पष्ट दीखती है।

रसायनियो' का कार्य केवल रस का स'वहन करना ही नही है, अभ्यङ्ग आदि का शोपण करना भी रसायनियो' का ही कार्य है। इसी प्रकार विपाक्त काटे आदि शरीर में' चुभ जाने पर उसका विप आगे रसायनियो' द्वारा ही लसिकाग्रन्थियो'मे पहुंचता है।

रसग्रन्थियां वा **लसीका ग्रन्थियां**[1]—(१२५ चित्र में) शरीर में कही कही गु'जा (चिर्मी), निमौली, शिम्बीबीज आदि के आकार की कोमल ग्रन्थिया है, जो कक्षा, व'क्षण, ग्रीवा, कर्णमूल आदि वाह्य प्रदेशो' में' और पेट एव' छाती के अन्दर बहुत सी दिखायी देती है। ये रसायनी मार्गों मे' मोथे के कन्दों' की भाति पुञ्जीमूत हो कर अथवा पृथक् - पृथक् रहती है। ये वहिर्भाग में' पतले स्नायुमय कोपो' से घिरे है और अपने क्रोड मे' खातो' से चिह्नित है। इन खातों' द्वारा इनके अन्दर सिरा, धमनी और नाड़ियो' के सूत्राकार प्रतानो' के साथ रसायनिया घुसती है। प्रत्येक ग्रन्थिकी परिधि से इनके अन्दर विशोधित रक्त को स'ग्रहण करने वाली नवीन रसायनिया निकलती है। इसलिये रसायनिया दो प्रकार की है—ग्रन्थिप्रवेशिनी और ग्रन्थिनिर्गता।

अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से ग्रन्थियो' के अन्दर स्नायुप्रचीरिकाये' और उनके अन्तरालो' में' नवीन श्वेत कणिकाओ' से भरी हुयी रसजालिकाये' दिखायी देती है, जिनमे' रसायनियो' से लाया हुआ रस सञ्चरण करता हुआ निर्विप हो जाता है और उसकी रक्षा करने वाली श्वेतकणिकाओ' से पूर्ण हो जाता है।

जब रसायनी मार्गों द्वारा किसी भी विप का शरीर में स'क्रमण होता है, तब प्रथम लसीका - ग्रन्थियो' मे ही उसका अवरोध होता है, और वही उसे नष्ट करने का प्रयत्न होता है। इसलिए ये लसीका - ग्रन्थिया शरीर के रक्षक बनी हुयी हें। विप के विध्व'स का प्रयत्न के आरम्भ होने पर ग्रन्थियो' मे दर्द, शोथ और कठिनता

---

१ Lymphatic Glands

होती हैं और विशेषतः उनकी आकार मे बृद्धि होती है, कहीं कहीं ग्रन्थियों में घुसने वाली रसायनियों मे भी दर्द, शोथ आदि हुआ करता है। विष के विशेष तीव्र होने पर ग्रन्थिया कभी कभी नष्ट हो जाती है, तब व्रण की भाति वे पक जाती है अर्थात् उनमे पूय उत्पन्न होता है।

रसकुल्या[1]—नामकी (१२६ चित्र) दो प्रणालिया सम्पूर्ण शरीर के रस का संग्रहण करती है। इनमें—वामा रसकुल्या बहुत लम्बी और प्रधान है क्यों कि यह सम्पूर्ण उरोदेश का भेदन करके ऊपर जाती हुयी शरीर के अधरार्द्ध का और वाम उत्तरार्द्ध का रस को संग्रहण करती है, इसलिये इसको मुख्या रसकुल्या अथवा केवल रसकुल्या कहते है। यह—

मुख्या अर्थात् **वामा रसकुल्या**[2]— (१२४ चित्र) प्रायः एक वित्ती लम्बी, सरकण्डे की पोरी के समान मोटी और ऊपर क्रमशः सङ्कुचित है। यह कटि-वंश के सम्मुख स्थित रसप्रपा से निकल कर (वर्णन आगे देखो) महाप्राचीरा के मध्यस्थित महाधमनी के छिद्रपथ से उर में घुसी है और पृष्ठवंश के सम्मुखभाग में चढ़ती हुयी ऊपर सर्प की भाति कुटिल गति से फैली है। यह सातवें ग्रीवाकशेरु के सम्मुख से तिरछी जाकर अक्षाधरा धमनी को उल्लंघन करके अनुमन्या और अक्षाधरा सिराओं के संयोग स्थल में गलमूलिका सिरा घुसी है।

(व्यक्तिकर) रसकुल्या पश्चिम फुस्फुसान्तराल में दीखती है। इसके बायीं तरफ में महाधमनी दिखायी देती है, दक्षिण में दक्षिणा पुरोवंशिका नामकी सिरा, सम्मुख और दक्षिण में अन्ननलिका। इसके पश्चिम में पृष्ठवंश है।

दक्षिणा रसकुल्या[3]—(१२४ चित्र) छोटी सी और आधी अंगुल मात्र लम्बी तथा सरकण्डे के समान मोटी है, यह केवल ग्रीवामूल में दिखायी देती है। यह दक्षिणा अनुमन्या और दक्षिणा अक्षाधरा सिरा के संयोग स्थल में ग्रीवामूलिका सिरा में घुसी है। यह तीन स्थूल रसायनियों से बनी है, जिनमें एक दक्षिण बाहु की रसायनियों का संग्रहण करती है, दूसरी शिरोग्रीवा के दक्षिणार्द्ध की, और तीसरी उरके दक्षिणार्द्ध में स्थित आशय आदि की। ये स्थूल रसायनियां कहीं कही स्वतन्त्र रूपसे रह कर पूर्वोक्त सिरासन्धि में घुसती है, ऐसे स्थल में दक्षिण रसकुल्या का सर्वथा अभाव होता है।

---

१ Lymph-ducts २ Thoracic Duct ३ Right Lymphatic Duct,

/रसप्रपा[1]—नामकी प्रधान रसाधारिका (१२४ चित्र) वामा रसकुल्या के मूल में है, यह प्रथम और द्वितीय कटिकशेरुओं के सम्मुख और महाधमनी के पीछे रहती है। यह चार अंगुल लम्बी, दो अंगुल चौडी, नीचेसे मोटी और प्रायः छोटे पटोल फल के समान आकार की है। इसमें तीन स्थूल रसायनिया घुसती हैं—दो कटि-मूलिका और एक आन्त्रिकी। ये सब महाधमनी के चारो ओर स्थित रसग्रन्थियों से निकलती है। इनमे दोनों कटिमूलिकायें निचले शरीरार्द्ध की और वस्ति वृक्क आदि की लसीका को वहाती है, आन्त्रिकी रसायनी आमाशय, पक्वाशय, यकृत और प्लीहा आदि की लसीका को वहाती है। ये सब रसायनिया, तथा पायस नामक रस को वहाने वाली अन्त्रों से आयी हुई पयस्विनी नामकी अन्य रसायनिया रसग्रन्थियों में प्रवेश करती है।

यह रसप्रपा ऊपर क्रमशः सङ्कुचितमुखी होकर महाप्राचीरा के अधस्तल में वामा रसकुल्या में परिणत हो जाती है। और वहा तथा महाप्राचीरा के ऊपर—पश्चिम पर्शुकान्तराल की ग्रन्थियों से और फुस्फुसान्तरालीय ग्रन्थियों से आयी हुयी कई रसायनियां इसके साथ मिलती है। रसप्रपा के ग्रीवामूल मे पहुंचने पर इसमें तीन स्थूल रसायनिया घुसती है, यथा—वाम ग्रीवामूल जो शिरोग्रीव वामार्द्ध की रसायनियों को संग्रहण करने वाली है, वामा ग्रीवामूला, और वामा उरोमूला।

अव तक रसायनिया और रसग्रन्थिया संक्षेप से कही गयी है। विस्तार से इसके आगे कहेगे।

दूसरा अध्याय।

यहा से रसायनियों का विशेप रूपसे वर्णन आरम्भ हुआ।

रसायनियों का सामान्य ज्ञान होने पर विशेप रूपसे इन्हें जानना चाहिए—स्थान और सम्वन्ध के परिज्ञान के लिये और वीसर्प की गतिनिर्णय करने के लिये। अतः अव रसग्रन्थियों का और रसायनियों का सक्षेप से वर्णन सम्वन्ध के साथ करेगे।

इनका पाच प्रदेशों में विभाग किया जाता है—शिरोग्रीव में, ऊर्ध्व एवं अधः-शाखाओं मे, उदर मे, तथा उर मे।—

---

१ Cisterna (or Receptaculum) Chyli

(१२४ चित्र)

रसप्रपा का संस्थान।
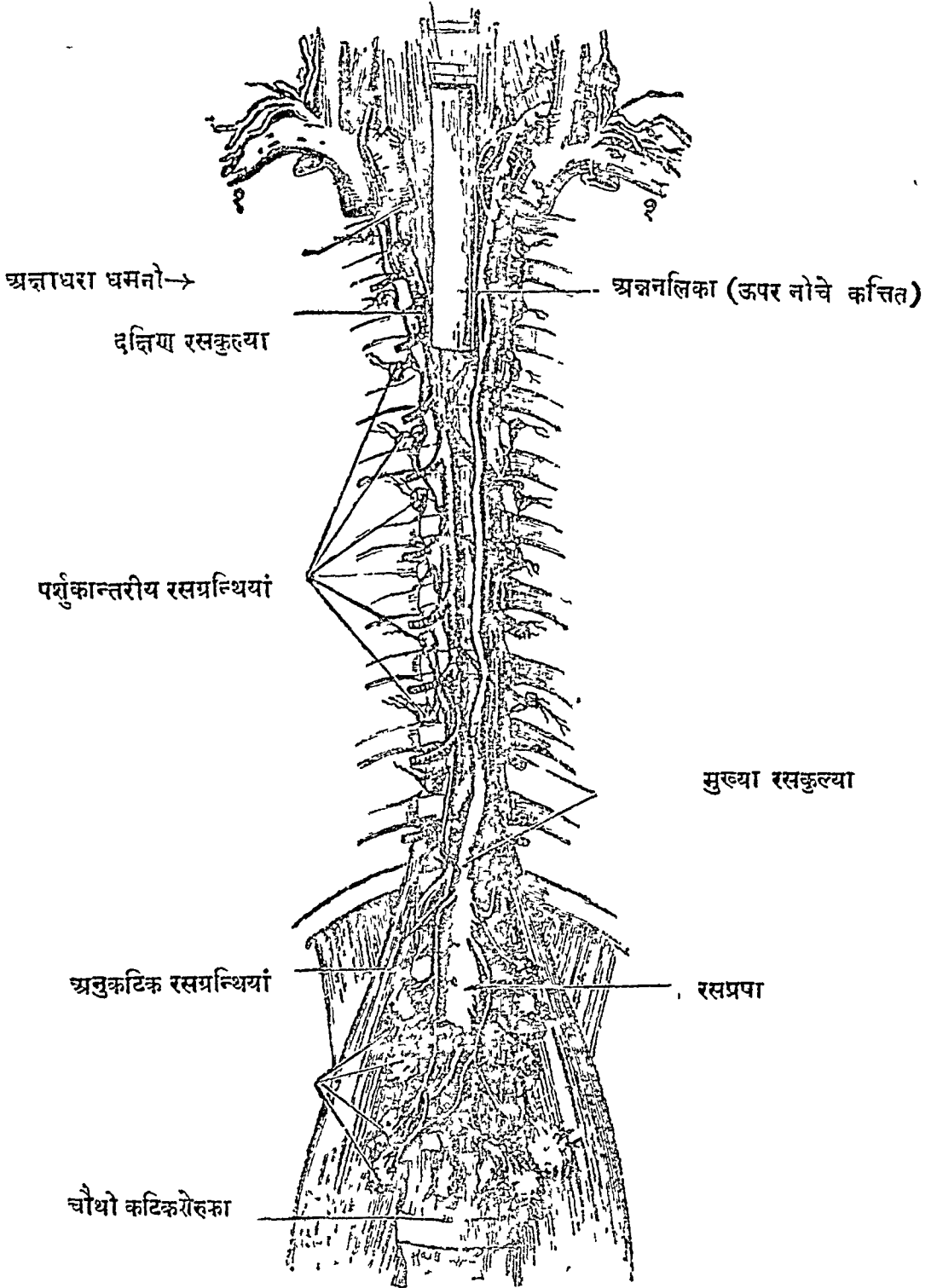
१।१ अक्षाधरा सिरा। २।२ अनुमन्या सिरा।

१—शिरोग्रीवीय रसग्रन्थियां और रसायनियां :—

शिर में रसग्रन्थिया सात बाह्य प्रदेशों में दीखती है। यथा—

(१) **कपालमूलिक**[१]—नामकी दो तीन ग्रन्थिया (१२५ चित्र—शिरोग्रीव-सन्धि के पीछे पश्चिम कपालमूल मे हैं। इनमें करोटिपश्चिमा रसायनिया घुसती है।

(२) **पश्चिमकर्णिक**[२]—नामकी (१२५ चित्र) दो तीन ग्रन्थियां—कानके पीछे प्रत्येक ओर है। इनमें शंखदेश से ऊपर गयी हुयी और कान के पीछे स्थित रसायनिया घुसती है।

(३) **अग्रिमकर्णिक**[३]— नामकी दो तीन ग्रन्थिया — कर्णपाली के सन्मुख ऊर्ध्वभाग में हैं। इनमें कर्णपाली से उत्पन्न हुयी कुछ रसायनिया घुसी है।

(४) **अग्रिमकर्णमूलिक**[४]नामकी रसग्रन्थिया (१२५ चित्र)—कर्णमूलके सन्मुख एक एक ओर है। ये दो ग्रन्थिपुञ्ज में विभक्त है, जिनमें प्रथम ग्रन्थिपुंज उत्तान अर्थात् अगभीर है, यह त्वचा के नीचे और कर्णमूलिक नामकी वड़ी लालाग्रन्थि पिण्डों के वीच मे है। इसमें शिर, अपाङ्ग, कर्ण और ललाट से आयी रसायनिया घुसती है। दूसरा ग्रन्थिपुञ्ज गम्भीर और गलविलपार्श्व में है, इसमें नासा, तालु तथा गलविल से उत्पन्न होने वाली रसायनिया घुसती है।

(५) **मौखिक**[५]नामकी मुखसम्बन्धी सात वा आठ क्षुद्र रसग्रन्थिया मुखके प्रत्येक पार्श्व में तीन प्रकार से सन्निविष्ट है, यथा—नेत्र के निचले प्रदेश में नेत्राधरीय नामकी दो तीन ग्रन्थिया, कपोल में सृक्कणीके वहिर्देश में कपोलिका नामकी दो तीन ग्रन्थिया; और इसके नीचे अधोहनु के पार्श्व में हनुपार्श्विक नामकी ग्रन्थिया। इनमें नेत्रपुट और नेत्रवर्त्म से उत्पन्न होने वाली तथा गण्ड, नासा और हनुकूट के अन्तराल में दो तीन गम्भीर ग्रन्थिया भी है, ये मुख, नासा और गलविल की रसायनियों के रस का संग्रह करती है।

---

१ Occipital Glands २ Posterior Auricular Glands ३ Anterior Auricular Glands ४ Parotid Lymph-glands, ५ Buccinator Lymph gland

(६) **जिह्वामूलिक**[1] नामकी दो तीन छोटी ग्रन्थिया—जिह्वामूलमें चिबुक-जिह्वा-कण्ठिका नामकी पेशियों के मध्य में स्थित है। इनमें जिह्वामूल में स्थित कुछ रसायनिया घुसती है।

(७) **गलविलपश्चिम**[2]—नामकी दो तीन ग्रन्थिया—ग्रसनिका के पीछे छिपी है। इनमें नासा और गलबिल से आयी हुयी रसायनियों के रस का प्रवेश होता है।

इन सब से निकली हुई रसायनिया 'गम्भीरग्रीविक' ग्रन्थियों में घुसी है।

ग्रीवा में दो प्रकार की रसग्रन्थिया हैं—उत्तान और गम्भीर। इनमें—

(१) **उत्तानग्रीविक**[3]—नामकी ग्रन्थिया तीन प्रकार से बिभक्त हैं—हन्वधरीय, कण्ठिकोत्तर और पुरोग्रीविक। इनमें—

(क) **हन्वधरीय**[4] नामकी पाच या छः रसग्रन्थिया(१२५ चित्र)—हनुकोण के नीचे और इसी नामकी लालाग्रन्थि के सम्मुख में स्थित है। इनमें भ्रूमध्य, नासा-पार्श्व, गण्ड, जिह्वा, अधरोष्ठ, दन्तवेष्ट आदि से आई हुई रसायनिया घुसती है।

(ख) **कण्ठिकोत्तर**[5]—नामकी दो तीन रसग्रन्थिमा (१२५ चित्र)—कण्ठिकास्थि के ऊपर में मध्यरेखा के दोनों पार्श्वों में हैं। ये जिह्वाग्र और मुखभूमि से उत्पन्न होने वाली रसायनियों की रस को ग्रहण करती है।

(ग) **पुरोग्रीविक** अथवा **मन्यापुरस्त्य**[6] नामकी बहुत सी रसग्रन्थिया—मन्या नामकी पेशी के सम्मुख में और अधिमन्या नामकी सिरा के दोनों ओर और दोनों मन्याओं के मध्य में श्वास नलिका के दोनों तरफ रहती है। इनमें पूर्वोक्त कर्णमूल, कपाल आदि से आई और ग्रीवा में जाती हुई कुछ रसायनिया घुसती है।

(२) **गम्भीरग्रीविक**[7]—नामकी रसग्रन्थिया (१२५ चित्र)—प्रायः बीस या पचीस है। ये ग्रीवापार्श्वों में मन्या नामकी पेशी से और गम्भीर प्रावरणी से ढंपी रहती है और गलमूल तक दोनों अन्तर्मातृका धमनी एवं अनुमन्या नामकी सिराओं का प्रायः अनुसरण करती है।

---

१ Lingual Lymph-glands २ Retro pharyngeal Lymph-glands ३ Superficial Cervical Lymph-glands ४ Sub-maxillary Lymph-glands ५ Sub-mental or Supra hyoid Lymph-glands ६ Anterior Cervical Lymph-glands ७ Deep Cervical Lymph-glands

(१२५ चित्र)

शिरोग्रीवीय रसग्रन्थियां और रसायनियां ।
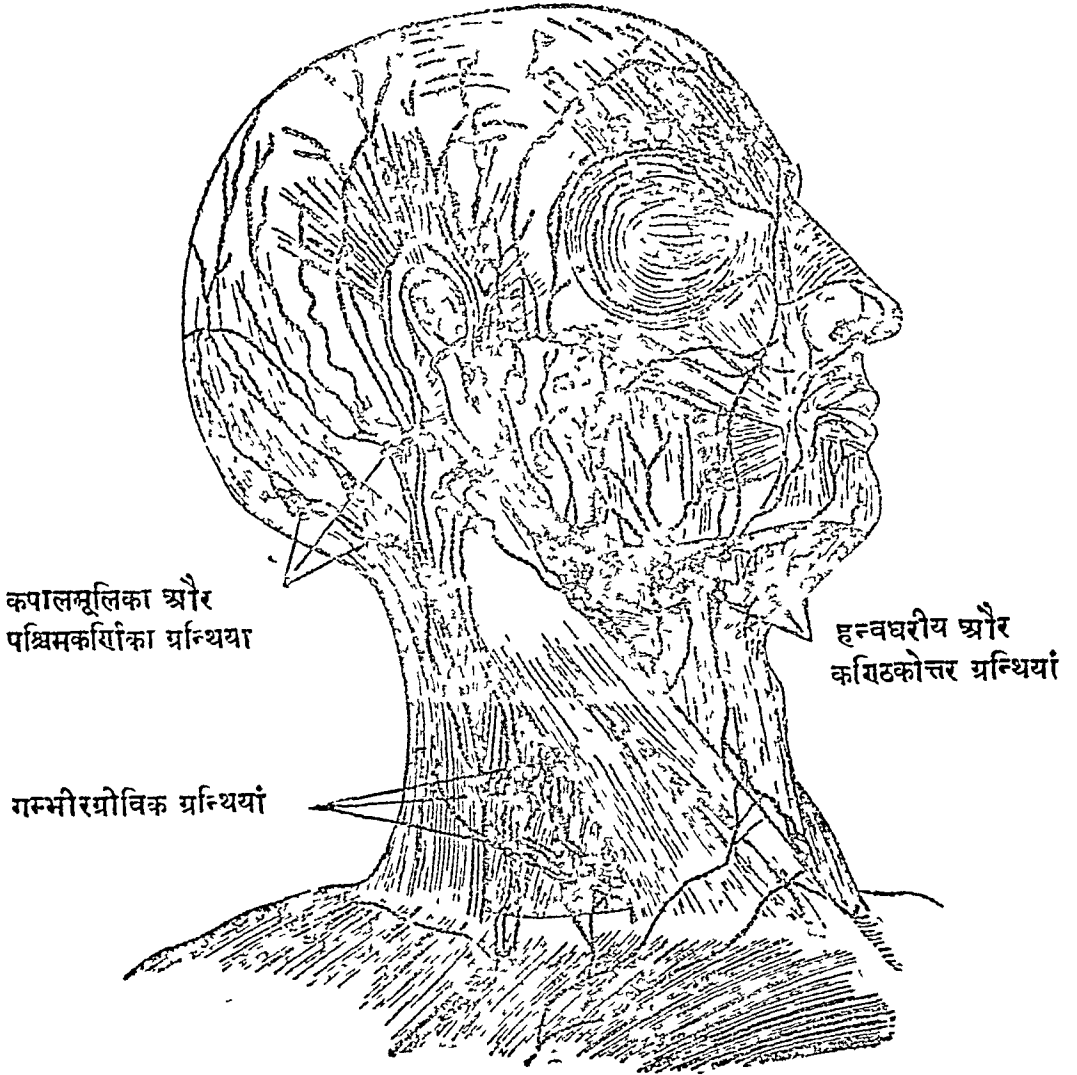
क कर्णमूलिक लालाग्रन्थि और उसके पृष्ठ भागस्थ रसग्रन्थियां ।

करोटिबाह्या, करोटिगुहान्तरीया और गम्भीरग्रैविका नामकी सभी रसायनियोंका इन्हीं से अन्तिम सम्बन्ध है ।

इनसे निकली सभी रसायनियां क्रमशः परस्पर मिल कर ग्रीवामूल के प्रत्येक पार्श्व में दो तीन स्थूल रसायनियों को बनाती हैं । इनका प्रवेश दक्षिणा या वामा रसकुल्या में यथासम्भव होता है—यह कह चुके ।

[१२६ चित्र]

ऊर्ध्वशाखीय रसग्रन्थियां और रसायनियां।
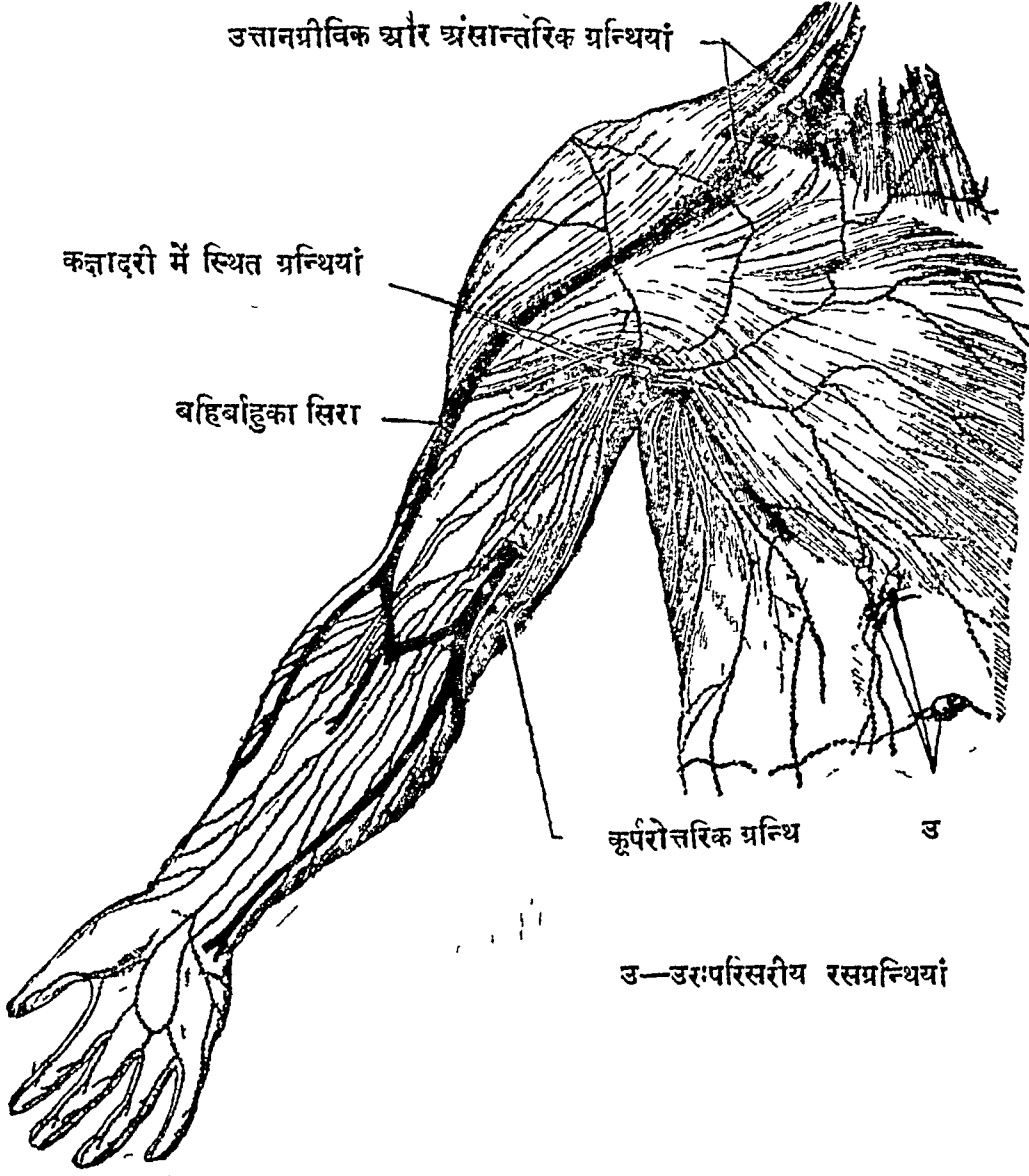
ऊर्ध्वशाखा की रसग्रन्थिया और रसायनिया।

प्रत्येक ऊर्ध्वशाखा मे दो प्रकार की रसग्रन्थिया हैं—उत्तान और गम्भीर। (१२६ चित्र)। इनमें—

उत्तान रसग्रन्थिया—कूर्पर की अन्तःसीमामें और अंश के सम्मुख मे हैं। इनमें **कूर्परोत्तरिक**[1] नामकी एक (अथवा दो) गून्थि कूर्परसन्धि के ऊपर अन्तर्बाहुका सिरा के पार्श्व में है। इनमें कर और प्रकोष्ठ की अन्तःसीमा में स्थित कुछ उत्तान रसायनिया घुसती हैं। **अंसोत्तरिक** नामकी एक या दो गून्थि भी अंसच्छदा पेशी की अन्तःसीमा में और सम्मुख में दिखायी देती है। इसमें अंसदेश की उत्तान रसायनिया घुसती है।

गम्भीर रसगन्थिया—**कक्षान्तरीय**[2] नामकी हैं। ये प्रत्येक ओर कक्षादरी में और इसके समीप दिखायी देती है। ये प्रायः कक्षाधरा नामकी सिरा और धमनी का अनुसरण करती है, और उरच्छदा नामकी दोनों पेशियों से ढंपी जाती हैं। इनसे सम्बन्ध वाली कुछ ग्रन्थिया अक्षकास्थि के नीचे भी पेशी से ढंपी रहती है। इनमें विशेषतः उरके सम्मुखभाग और स्तनसे उत्पन्न होने वाली कुछ रसायनियों का प्रवेश होता है। इन ग्रन्थिया में बाहु की और अंस की सब रसायनियों का तथा उरके सम्मुखस्थ बहुत सी रसायनियों का अन्त में प्रवेश होता है।

कक्षान्तरीय ग्रन्थियों से निकली रसायनियां क्रम से परस्पर मिल कर ग्रीवामूल में एक-एक ओर दो-तीन स्थूल रसायनियों में परिणत होती है। ये पूर्वोक्त प्रकार से शिरोग्रीव की स्थूल रसायनियों से मिलकर दो रसकुल्याओं में प्रविष्ट हो जाती है, और कभी वहीं पृथग्रूप से पूर्वोक्त सिरासन्धि मे प्रविष्ट होती है।

अधःशाखा की रसग्रन्थिया और रसायनिया।

प्रत्येक अधः शाखा में दो प्रकार की रसग्रन्थिया है—उत्तान और गम्भीर। इनका तीन प्रदेशों में विभाग है—जानुपृष्ठिक खात में, अनुवंक्षणीय छिद्र के चारों ओर, और वंक्षण देश मे। इनमें—

जानुपृष्ठिक[3]—नामकी क्षुद्र रसग्रन्थिया—छः या सात हैं। इनमें चार या पाच उत्तान है, जो जानुपृष्ठ में स्थित खात मे मेद से ढंपी रहती है। ये जंघा के पश्चिम की रसायनियों का रस संग्रहण करती है। अवशिष्ट एक या दो ग्रन्थि जानुसन्धि-कोप के पृष्ठ में है, यह जानुसन्धिवेष्टनी रसायनियों का रस ग्रहण करती है। इनसे निकली रसायनिया प्रायः और्वी नामकी सिरा और धमनी का अनुसरण करती हुयी गम्भीर वंक्षणीय ग्रन्थियोंमें घुस जाती है।

---

१ Supra-trochlear Lymph-glands २ Axillary Lymph-glands.
३ Popliteal Lymph-glands
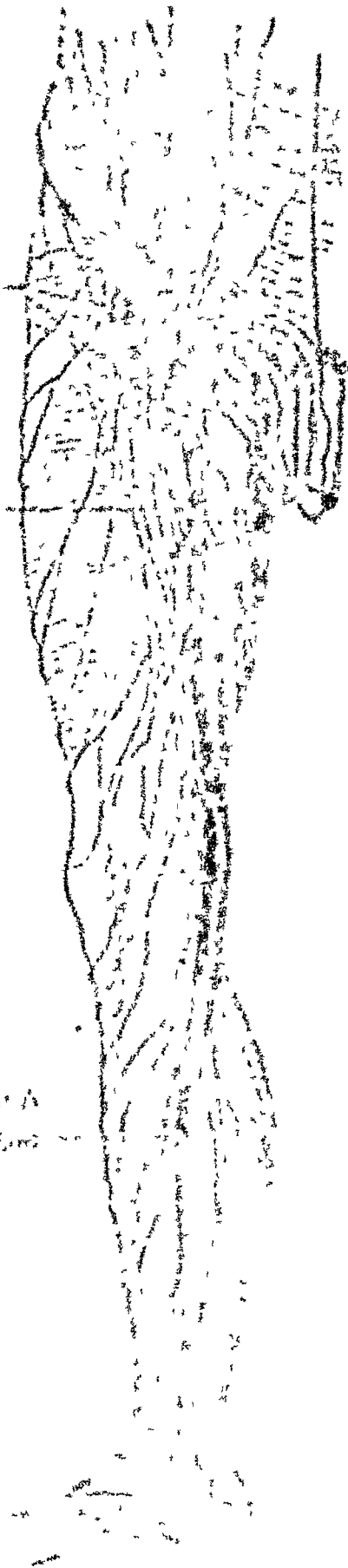
अनुवंक्षणीय[१]—नामकी पाच छः गून्थिया—वंक्षण के नीचे ऊरुमूल के सम्मुख भाग में, अनुवंक्षणीय "ठकार छिद्र" के चारों ओर रहती हैं (१२७ चित्र)। इनमें तीन-चार ग्रन्थि उत्तान और दो तीन ग्रन्थि गम्भीर हैं। इनमें मुख्यतः शिश्न और अण्डकोष की तथा अधःशाखा की वहुत सी रसायनियों का प्रवेश होता है।

वंक्षणीय[२] नामकी रसग्रन्थियां—वंक्षणिका नामकी स्नायुरज्जु के साथ साथ तिरछे रूपसे रहते है, ये भी उत्तान और गम्भीर दो प्रकार की हे (१२७ चित्र)। इनकी संख्या दस से लेकर वीस तक है। ये गुद, उपस्थ, वृषण, नितम्ब और अधःशाखा की रसायनियों की (पूर्वोक्त ग्रन्थियों से निकलती हुयी) लसीका का शोधन करती है। उदर-निम्नार्द्ध के चारों ओर की रसायनिया भी इन्हीं में प्रवेश करती है। पाव के क्षत या व्रण से उत्पन्न वीसर्प आदि का विष और शिश्नक्षत आदि से उत्पन्न फिरङ्ग रोगादि का विष वंक्षणग्रन्थियों में ही प्रथम फैलता है, यह याद रखना चाहिए।

किसी किसी मनुष्य के गृध्रसी द्वार में भी एक या दो रसग्रन्थि दिखायी देती है, जिनका नाम गृध्रसीद्वारिक ग्रन्थि है। इनकी स्थिति अनिश्चित है।

वंक्षणीय ग्रन्थियों से निकली हुयी रसायनिया वंक्षणदरी से और्वी नामकी सिरा-धमनियों के साथ-साथ जाती हैं और उदर गुहा में पहुंच कर वाह्य अधि-श्रोणिक नामकी रसग्रन्थियों में घुसती है।

उदर्य रसग्रन्थियां और रसायनिया।

उदर्य[३] नामकी असंख्य रसगून्थिया उदर में दो प्रकार की हैं—परिसरीय और आशयिक। परिसरीय ग्रन्थिया महाधमनी को और उसकी काण्डशाखाओं को विशेष कर अनुसरण करती है, कहीं अन्य शाखा-प्रशाखाओं की भी। सब परिसरीय रसग्रन्थिया धमनी-शाखा के समान नामकी है। आशयिक ग्रन्थिओं के नाम आशयों के नाम से बनाये जाते है। उदर रोगों की सम्प्राप्ति को जानने के लिये यहा पर मुख्य रसग्रन्थियों का वर्णन किया जायगा।

---

१ Sub-inguinal Lymph-glands २ Inguinal Lymph-glands
३ Abdominal Lymph-glands

इनमें—

(१) परिसरीय रसग्रन्थियों में बाह्य रसग्रन्थियों का वर्णन नहीं किया जायगा। आभ्यन्तर रसग्रन्थियों में अधिश्रोणिक उत्तर, अधिश्रोणिक अधर और अनुकटिक—ये तीन प्रकार की परिसरीय ग्रन्थि मुख्य है।

[१२८ चित्र]

अधिश्रोणिक रसग्रन्थियां।
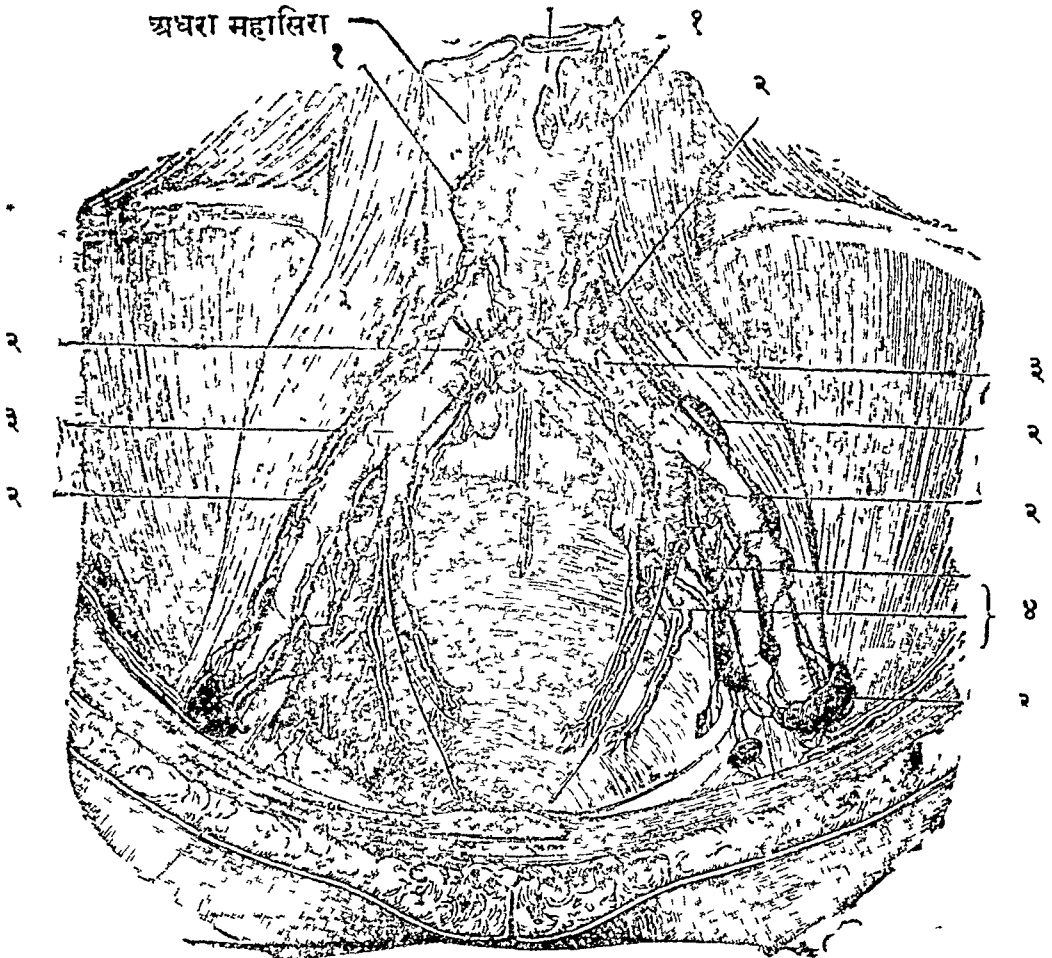
१।१ अधिश्रोणिक उत्तर रसग्रन्थियां। २।२ अधिश्रोणिक अधर रसग्रन्थियां।
३।३ अधिश्रोणिका साधारणी धमनी। ४ वस्तिसे आई हुई रसायनियां।

अधिश्रोणिक उत्तर[1] नामकी आठ अथवा दस स्थूल रसग्रन्थिया—एक एक ओर जघनोदर में महाधमनी और अधर महासिरा के साथ साथ रहती है।

---

१ Upper Pelvic Lymph-glands

इनमें अधःशाखीय तथा वंक्षणोदर की परिसरीय रसायनिया घुसती है । उपस्थमूल और वस्ति से उत्पन्न होने वाली रसायनिया तथा योनिगर्भाशयिक नामकी कुछ रसायनिया इनमें प्रवेश करती है ।

अधिश्रोणिक अधरा[1] नामकी वहुत सी गून्थिया—वस्तिगुहा के अन्दर दिखायी देती हैं । वस्तिगुहा की परिसरीय रसायनिया एवं गुद, वस्ति, मूलाधार आदि से आयी हुयी रसायनिया प्रायः इन्हीं में घुसती हैं ।

अनुकटिक नामकी असंख्यप्राय गून्थिया (१२४ चित्र)—कटिवंश के सम्मुख महाधमनी के चारों ओर हैं । इनमे पूर्वोक्त ग्रन्थियों से उत्पन्न होने वाली रसायनियों का प्रवेश होता है । और इनसे उत्पन्न होने वाली रसायनियों का प्रवेश रसप्रपा में होता है ।

(२) **आशयिक** नामकी गून्थिया—महाधमनी की त्रिधारा अक्षशाखा को तथा उत्तरान्त्रिकी और अधरान्त्रिकी धमनियों को अनुसरण करती है । इनमे त्रिधारा अक्षशाखा की तीन प्रधान शाखाओं के नामों के अनुसार ग्रन्थियों के भी नाम अभियाकृत, अभ्यामाशयिक और अभिप्लीहिक है । आन्त्रिकी धमनियों के साथ साथ रहने वाली गून्थिया अन्त्रमूलवन्धनियों के अन्दर रहती है, ये अन्त्रमूलिक उत्तर और अधर नामकी है । इनमें—

अभियाकृत नामकी वहुत सी क्षुद्र गून्थिया गृहणी के निम्नदेश में और यकृत् के मूल में रहती है । ये अधिकतः याकृत रसायनियों के रससंगृहण के लिये है ।

अभ्यामाशयिक नामकी वहुत सी क्षुद्र गून्थिया आमाशय के चारों ओर इसके उत्तर और अधर देशों मे रहती है । आमाशय से उत्पन्न होने वाली रसायनिया इनमें प्रवेश करती है ।

अभिप्लीहिक नामकी गून्थिया अग्न्याशय की ऊर्ध्वधारा के साथ साथ प्लीहामूल तक रहती है । ये प्लीहा और अग्न्याशय से उत्पन्न होने वाली रसायनियों के रस संगृहण करती है ।

अन्त्रमूलिक[2]—नामकी रसगून्थिया प्रायः एक सौ पचास हैं । इनमें आतोंसे सौम्यरस को आकर्पण करने वाली पयस्विनी नामकी रसायनिया घुसती है । इनसे निकली रसायनिया रसप्रपा में प्रवेश करती है (१२४ चित्र) ।

---

१ Upper Pelvic Lymph-glands २ Mesenteric Lymph-glands

'उदर्य क्षयरोग' मे इन ग्रन्थियों में दर्द, शोथ, और कठिनता होती है। आन्त्रिक ज्वर आदि रोगों में भी ये सब लक्षण सामान्य रूप से होते है—यह स्मरण रखना चाहिये।

उदर्या रचायनिया तीन प्रकार की है — (क) बहिःपरिसरीय रसायनिया—नाभि के नीचे की वाह्य रसायनिया वंक्षणीय ग्रन्थियों में और नाभि के ऊपर की रसायनिया उर के अन्तःपरिसर मे स्थित ग्रन्थियों में और कटि पृष्ठ में स्थित रसायनिया पेशियों का भेदन करके उदर के अन्तःस्थित अनुकटिक नामके पश्चिम ग्रन्थियों में प्रवेश करती है। (ख) अन्तःपरिसरीया रसायनिया—ये यथासम्भव अन्तःपरिसरीय अधिश्रोणिक आदि ग्रन्थियों में पहुंचती है। (ग) आशयिक ग्रन्थियों में घुसती है।

उरस्य रसग्रन्थियां और रसायनिया

ये दो प्रकार की है—परिसरीय और आशयिक। परिसरीय फिर दो प्रकार की है—वाह्य और आभ्यन्तर। आशयिक केवल आभ्यन्तर ही हैं। इनमें—

(१) **परिसरीय वाह्य रसग्रन्थि** थोड़े से हैं, ये उर के सम्मुखभागमे रहते हैं (१२६ चित्र। इनमें कक्षाणतरीय और अक्षकाधरीय ग्रन्थिया उर और बाहुके सन्धिस्थानमें दीखतीं हैं, इनका वर्णन प्रथम कहा गया है। इनमे अधिकतः उरःपूर्विक वाह्य रसायनियों का एवं कुछ अन्दर की रसायनियों का प्रवेश होता है, और प्रायः इन्हीं में स्त्रियों की स्तनपरिसरीया मोटी रसायनिया भी घुसती हैं। उर अन्तःपरिसरीय रसायनियों का प्रवेश अन्दर की ही रसग्रन्थियों में होता है।

परिसरीय आभ्यन्तर रसग्रन्थि तीन प्रकार के है। यथा—

उरःफलकपार्श्वस्थ[१] (अथवा उपपर्शुकान्तरालीय) नामकी ग्रन्थिया उरःफलक के दोनों ओर स्थित अन्तःस्तनिका नाम की धमनियों का अनुसरण करती है। ये प्रत्येक पार्श्व मे पाच छः तथा बहुत छोटे २ हैं और उपपर्शुकान्तरालों में दिखायी देते हैं। इनमे स्तनों से उत्पन्न होने वाली कुछ रसायनिया, नाभि के ऊपर की रसायनिया तथा उदरपरिसरीय रसायनिया और उरःपूर्विका गम्भीरा नामकी रसायनिया घुसती है। इनसे निकलने वाली रसायनिया दो मोटी रसायनियों में परिणत होती है जो कि रसकुल्याओं मे घुसती हैं।

---

१ Sternal or Internal Mammary Lymph-glands

(१२६ चित्र)

अधिक्लोमका रसग्रन्थियां ।
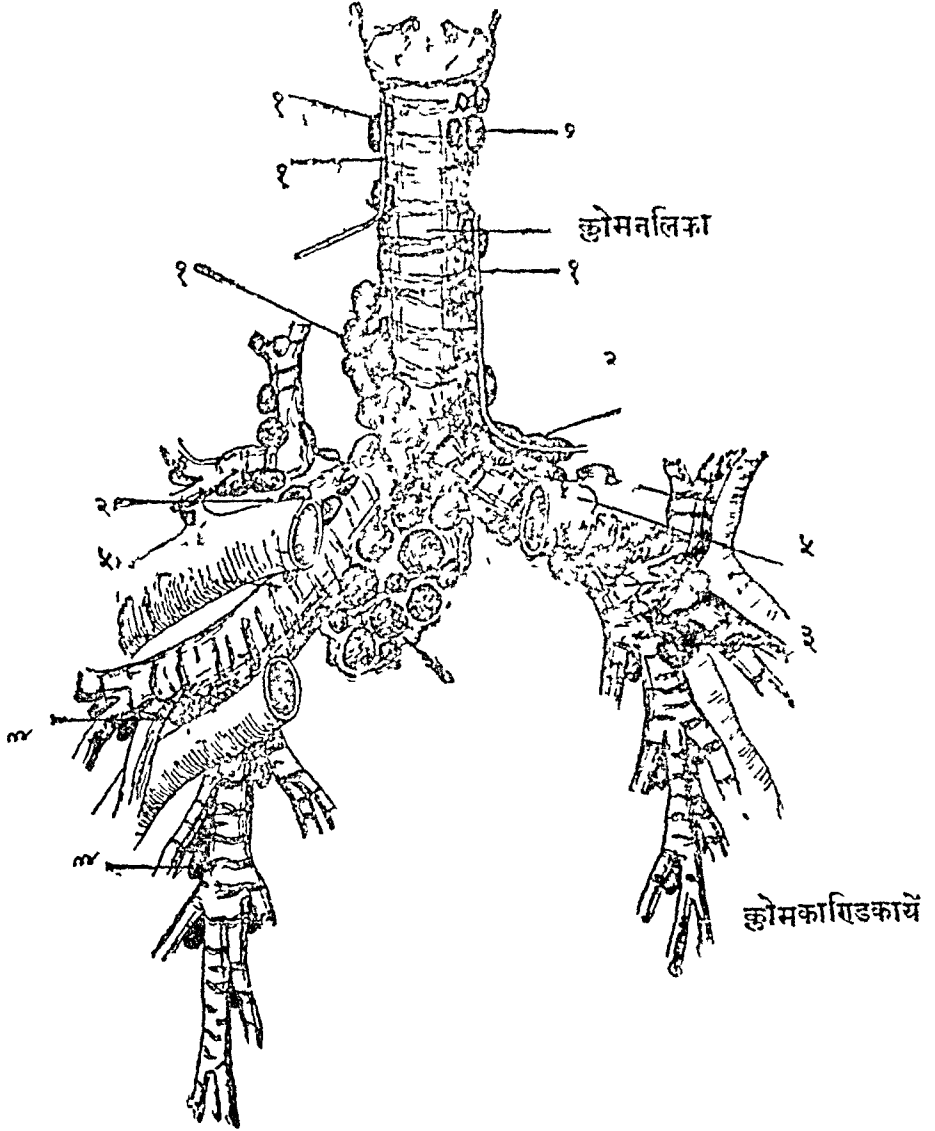
१।१।१ क्लोमनलिका के दोनों तरफ स्थित रसग्रन्थियां।
२,२ क्लोम के चारों तरफ स्थित रसग्रन्थियां
३।३ क्लोमकाण्डका और चारों तरफ स्थित रसग्रन्थियां।
४ फुस्फुसान्तरीय रसग्रन्थियां।
५।५ फुस्फुस में जानेवाली धमनी।

पृष्ठवंश-पार्श्वस्थ[1] [अथवा पर्शुकान्तरालीय] नामके ग्रन्थि पृष्ठवंश के दोनों ओर पर्शुकान्तरालों में प्रत्येक ओर दस या बारह है। पृष्ठ में स्थित रसायनिया पृष्ठ पेशी आदि का भेदन करके अन्दर घुसकर इनमें घुसती है। इनमें से निकली रसायनियों का क्रमशः मोटी रसायनियों में परिणाम होता है, जो कि फिर रसप्रपा में या दो रसकुल्याओं में प्रवेश करती है।

महाप्राचीरोत्तर[2] नाम के रसग्रन्थि महाप्राचीरा पेशी के सम्मुख, पश्चिम और पार्श्वों मे है। इनसे पेशियों से उत्पन्न और यकृत् पृष्टादि से उत्पन्न होने वाली कुछ रसायनिया घुसती है। इनसे निकली हुयी रसायनियों का पूर्वोक्त ग्रन्थियों में यथासम्भव प्रवेश होता है।

आशयिक नामके ग्रन्थि उरोगुहा में तीन प्रकारके है—अग्रिम फुस्फुसान्तरीय पश्चिम फुस्फुसान्तरीय और अधिक्लोमक। इनमें—

अग्रिम-फुस्फुसान्तरीय[3] नामकी रसग्रन्थिया — सम्मुख में उत्तर फुस्फुसान्तर में, तोरणी महाधमनी के ऊपर और काण्डसिरा-धमनी के चारों ओर रहते है, इनमें बालग्रैवेयक ग्रन्थि से, और हृत्कोष से उत्पन्न होनेवाली रसायनिया घुसती हैं। इनसे निकली रसायनियों का अधिक्लोमिक नामके रस-ग्रन्थियों मे प्रवेश होता है।

पश्चिम-फुस्फुसान्तरीय[4] नामकी रसग्रन्थिया—हृत्कोष के पश्चिम में है। ये अवरोहिणी महाधमनी के और अन्ननलिका के चारों ओर रहते है। इनमें घुसने वाली रसायनिया हृत्कोप और अन्ननलकादि से उत्पन्न हुयी है। इनसे निक-लने वाली रसायनिया प्रायः दीर्घा रसकुल्यामें घुसती है।

अधिक्लोमक[5] नामके रसग्रन्थि बहुत से और नानाविध आकार के हैं (१२६ चित्र)। ये क्लोमनलिका के दोनों ओर तथा इसके दोनों काण्डों के और शाखा-प्रशाखा आदि के चारों ओर श्रेणीरूप में दिखायी देते है। इनमें सब से छोटे ग्रन्थि क्षुद्र क्लोमकाण्डिकाओं के साथ साथ फुस्फुस के अन्दर घुसी है। ये सब ग्रन्थिया क्लोम, फुस्फुस और हृदय से उत्पन्न होने वाली रसायनियों के रस का

---

१ Intercostal Lymph-gland २ Diaphrgmatic Lymph-glands ३ Anterior Mediastinal Lymph-glands ४ Posterior Mediastinal Lymph-glands ५ Tracheo bronchial Lymph-glands

शोधन करती हैं। इनसे निकली हुयी रसायनिया दो मोटी रसायनियों में परिणत हो जाती हैं। ये ऊपर जाकर गलमूल के दोनों ओर रसकुल्याओं में अथवा वहीं पृथग् रूपसे गलमूलिका सिराओं में घुसती है।

ये अधिक्लोमक ग्रन्थि जनतासङ्कुल शहरों में रहने वाले व्यक्तियों में कुछ काले और कठिनता प्राप्त दिखायी देते है—जिसका कारण यह है कि श्वास वायु के द्वारा धूल तथा धूम आदि का फुस्फुस में प्रवेश होता रहता है। ये ग्रन्थिया राजयक्ष्मा आदि रोगों में कहीं कहीं विशेष रूप से सूजकर क्लोमकाण्डिका आदि को दबाती हैं, इसलिए अत्यन्त कष्ट कर शुष्क कासादि लक्षण उत्पन्न होते हैं—यह स्मरण रखना चाहिये।

उनकी रसायनिया सम्पूर्ण उरःपरिसर मे फैली है और आशयिक धमनी और स्रोतों को घेर कर रहती है। इनका प्रवेश और निगम आदि यहाँ ग्रन्थियों के व्याख्यान में वर्णन कर चुके, इसलिए यहा विस्तार से उरस्या रसायनियों का पृथक् वर्णन नहीं किया।

॥ रसायनीखण्ड समाप्त ॥

———:o:———

प्रत्यक्षशारीर ।

(:-o-:)
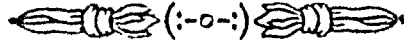
आशयखण्ड ।
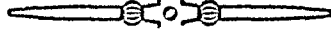
पहला अध्याय ।

सामान्यरूप से आशयों का वर्णन ।

अन्न, मल, मूत्र आदि के आधारों को प्राचीन आचार्यों ने "आशय"[१] कहा है। इनसे शरीर के प्रायः सभी कार्य परिचालित होते है, इसलिए इनकी और एक संज्ञा "शारीरयन्त्र" भी है*। शारीर कार्यों के गौण सहायक होने से दांत, जीभ, गलविल आदि भी कभी कभी शारीर यन्त्र के नाम से ग्रहण किये जाते है।

आशय दो प्रकार के हैं—सगर्भ और अगर्भ। अथवा तीन प्रकार के हैं—महागर्भ, अल्पगर्भ और अगर्भ। इनमें महागर्भ आशय, यथा आमाशय, पक्काशय, मूत्राशय, गर्भाशय आदि, जिनमें शून्यभाग अधिक है। अल्पगर्भ यथा—वृक्क, मस्तिष्क आदि, जिनमे शून्यस्थान अल्प है। और अनेक छोटे छोटे शून्यगर्भ (वायुकोप) युक्त होने से दोनों फुस्फुस भी अल्पगर्भ कहे जाते हैं। अगर्भ आशय यथा यकृत्, प्लीहा आदि। इनमें महागर्भ आशयों की संज्ञा प्रायः अपने आधेय वस्तु के नाम से बनती है, जैसे—आमाशय अर्थात् आम (कच्चा) अन्न का आधार। अन्य आशयों संज्ञाये दूसरी प्रकार की है—जैसा वृक्क, मस्तिष्क, यकृत्। कई एक के मत से अगर्भ आशय—स्रोतों से रहित ग्रन्थि को कहना चाहिये। इनके मत से दो ही प्रकार के आशय है—कोपरूप और ग्रन्थिरूप।

आशयों की वनावट दो प्रकार की है—स्वतन्त्रपेशी प्रधान और विलक्षणवस्तु-प्रधान। इनमे महागर्भ आशयों की वनावट प्रथम प्रकार की है, और शेषों की दूसरे प्रकार की। आशयों को वनाने वाली वस्तुओं में सिरा, धमनी, जालक और रसायनी आदि सर्वत्र फैले है।

---

१ Viscera

* शारीरयन्त्र—शब्द अधिक व्यापक है अर्थात् आशयों के अतिरिक्त भी शारीरयन्त्र हैं, यथा—दर्शनयन्त्र, श्रुतियन्त्र।

सव आशयों को वाहर और भीतर का आवरण कलामय अर्थात् झिल्ली से वना हुआ है। सगर्भ आशयों में भीतर की आवरण-कला से स्वच्छ तरल श्लेष्मा का स्रवण होता रहता है।

प्रत्येक आशय के वर्णन में वनावट के विशेष कहेंगे। आशय प्रसङ्गों मे ही उन आशयों के संश्लिष्ट लालाग्रन्थि आदि का भी वर्णन होगा, क्यों कि उनका प्रयोजन आशयों के साथ ही समझना चाहिये।

कार्यो के भेद से प्रधान शारीरयन्त्रों का विभाग छै प्रकार का है। यथा—संज्ञा-चेष्टायतन यन्त्र, रक्तसंवहन यन्त्र, श्वसनयन्त्र, अन्नपचन यन्त्र, मूत्रयन्त्र और प्रजनन-यन्त्र। ये यन्त्र शारीर के तीन गुहाओं मे रहते है। इनके अनुवन्धों की स्थिति गुहा के वाहर भी देखी जाती है।

इनमें शिरोगुहा के अन्दर मस्तिष्क आदि प्रधान संज्ञा-चेष्टायतन यन्त्र रहते है—इनको नाडीखण्ड मे विस्तार से कहेंगे। रक्तसंवहनयन्त्रों का वर्णन पहिले कहा गया। यहा पर श्वासयन्त्र और उदरगुहान्तरीय यन्त्रों का वर्णन किया जायगा।

उदर और उरस के अन्दर रहने वाले यन्त्रों की प्राचीनों ने "कोष्ट" संज्ञा की है। यथा—

"स्थानान्यामाग्निपक्काना मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुण्डुकः फुस्फुसौ च कोष्ट इत्यभिधीयते॥" (सुश्रु_त०)

अर्थात् आमाशय, अग्नाशय, पक्काशय, मूत्राशय, रुधिराशय, हृदय, उण्डुक और दोनों फुस्फुस—इनकी "कोष्ठ" संज्ञा है।

वैद्यक मत से वायु, पित्त, कफ—ये तीन धातु स्थूल और सूक्ष्म रूप से सव यन्त्रों के सारथि वने हुए है। इनके प्रकृतिस्थ रहने पर सव स्वाभाविक शारीरिक क्रियायें सम्यक् रूप से प्रवर्तित एवं नियमित होती है। और इनके विकृत होने पर सव क्रियायें अनियमित भाव से प्रवृत्त होती है, जिससे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते है।

इनमें वायु सम्पूर्ण यन्त्र तन्त्रों को धारण करता है, और पित्त एवं कफ सदा इसके पीछे चलते है। यद्यपि ये तीनों धातु सम्पूर्ण शरीर में रहते है, तथापि कितने आशयों में और रक्त-मासादि धातु में इनके कार्य विशेष रूपसे स्पष्ट दिखायी

देते है। यथा—संज्ञा-चेष्टायतन यन्त्रों मे वायु का, अन्नपचन यन्त्रों में पित्त का और श्वसन यन्त्र में कफ का। इनका विस्तार चरक-सुश्रुतादि संहिता ग्रन्थों में और "सिद्धान्तनिदान" में देखना चाहिये।

यहा तक आशयसामान्यविज्ञानीय अध्याय संक्षेप से कहा गया। विस्तार से आगे कहेंगे।

कहा भी हे—

"नित्याः प्राणभृता देहे वातपित्तकफास्त्रयः।
विकृताः प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सेत पण्डितः॥
उत्साहोच्छ्वास-निःश्वास-चेष्टा धातुगतिः समा।
समो मक्षो गतिमता वायोः कर्म्माऽविकारजम्॥
दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माऽविकारजम्॥
स्नेहो बन्धः स्थिरत्वं च गौरवं वृषता बलम्।
क्षमा धृतिरलोभश्च कफकर्म्माऽविकारजम्॥"

(चरक० सूत्र० १८ अ०)

अर्थात्—वात, पित्त और कफ—ये तीन प्राणिमात्र के शरीर में नित्य है। ये शरीर में प्रकृतिस्थ या विकृतिस्थ रहते हैं। वैद्यों को इन अवस्थाओं को समझने का यत्न करना चाहिए। इनमे प्रकृतिस्थ वायु के कर्म ये है यथा—प्रकृतिस्थ वायु के कार्य उत्साह, उच्छ्वास-निःश्वास, चेष्टा, अङ्गप्रत्यङ्गों के धातुओं के समान गति और सचल वस्तुओं का स्वाभाविक रीति से त्याग। प्रकृतिस्थ पित्त के कार्य—दर्शन, पचन, ऊष्मा (गरमी), क्षुधा, तृष्णा, देह की मृदुता और कान्ति, चित्त की प्रसन्नता और मेधा (स्मरण शक्ति)। प्रकृतिस्थ कफ के कार्य—स्नेह (चिकना रखना), बन्धन (संहत रखना), स्थिरता, गुरुता, जननेन्द्रिय को शक्ति, बल, क्षमा, धैर्य और संतोष।

दूसरा अध्याय।

श्वासयन्त्र का वर्णन।

उरोगुहा में दोनों फुस्फुस, श्वासनलिका, अन्ननलिका, और अनुवन्धों के सहित हृदय रहते है—यह पहिले कह चुके। इनमें स्वरयन्त्र, श्वासनलिका आदि के सहित दोनों फुस्फुसों की "श्वासयन्त्र" संज्ञा है। यद्यपि अन्ननलिका उर में भी है, तथापि अन्नपचन यन्त्रों के वर्णन मे उसका विवरण कहा जायगा, क्यों कि यह उसी का अनुवन्ध। हृदय की व्याख्या पहिले धमनीखण्ड मे हो चुकी है।

उरोगुहा[१]—उरःपञ्जर के अन्दर है। यह नीचे मे महाप्राचीरा के कूर्मपृष्ठाकार ऊर्ध्वतल के आधार पर है। यह पार्श्वों में धनुप के समान वक्र पर्शुकाओं से, सम्मुख में पर्शुका और उपपर्शुकाओं के सहित उरःफलक से, और पीछे मे पृष्ठवंश के सम्मुखभाग से सुरक्षित है। पर्शुकाओं और उपपर्शुकाओं के अन्तरालों को भरने वाली पर्शुकान्तरिका नामकी पेशिया है। उरःफलक के दोनों ओर उसी के पृष्ट में स्थित "उरस्त्रिकोणिका"* नामकी पेशी है। इसके अतिरिक्त—उरःफलक, पर्शुका, उपपर्शुका आदि में लगी हुयी उरश्छदा आदि और भी पेशिया है, जो कि श्वासकार्य में सहायता देती है।

उरोगुहा अन्दर में कला द्वारा ढंपी है—इस कला का नाम फुस्फुसाधरा व उरस्या कला है। उरोगुहा का आयतन विशाल वड़े के समान नीचे से चौड़ा एवं ऊपर से सङ्कुचित है। इसका आयतन पार्श्वों में अधिक है और तलदेश में इस प्रकार का है—मध्य में और सामने कम गहरा और पीछे तथा पार्श्वों में अधिक गहरा। परन्तु उरोगुहा का आयतन प्रश्वास-निःश्वास काल में परिवर्त्तित होता रहता है, क्यों कि दोनों फुस्फुसों के वायु-पूर्ण अवस्था में उरःपञ्जर का विस्तार होता है और वायु त्यागकी अवस्था में संकोच होता है।

स्वरयन्त्र।

स्वरयन्त्र[२]—पेशी तथा स्नायुजाल से वन्धे हुए तरुणास्थियों के जुड़ने से बना है (१३० चित्र)। यह ऊपर नीचे छिद्रवाला मुकुटाकार सम्पुट है, जो गले के सम्मुखभाग में श्वासनलिका के शिखर पर रहता है और जिसके द्वारा श्वास वायु का प्रवेश होता है और कण्ठ का स्वर निकलता है। यह कण्ठिकास्थि मूल से आरम्भ

---

१ Cavity of the Chest २ स्वरयन्त्र—Larynx

* इस पेशी का वर्णन पेशीखण्ड (३६ पृष्ठ) में देखिये।

कर के ग्रीवा के सम्मुखस्थ अवटु नालका उत्सेधकी अध सीमा तक है और मध्यरेखा में पेशियों से घिरा है। इसको त्वचा के नीचे अनुभव कर सकते है। यह ऊपर में कण्ठिकास्थि से और नीचे में श्वासनलिका से मिला है। यह नौ तरुणास्थियों से वनता है—इनमें तीन वडी और अकेली है और छै छोटी और युग्म हैं। यथा—अवटुक, कृकाटक, और अधिजिह्विक—ये तीन अकेली है। घाटिका, कोणिका और कर्णिका—ये छै युग्म है। इनमें—

अवटुक[1]—(१३० चित्र) नामकी फैले हुए युग्म पक्षों के समान प्रधान तरुणास्थि स्वरयन्त्र सम्पुट को वनाती है। इनका उभार युवावस्था में दिखायी देता है, विशेष कर पुरुषों में। इसके दोनों पक्ष मध्यरेखा के दोनों ओर है और सम्मुख में कोण वना कर पीछे फैले हुए है और अन्तराल में स्थित अवटुपट्टिका नामकी स्नायुपट्टिका से पीछे जोडे जाते है। इसके ऊपर और नीचे दो दो शृङ्ग है, इनमें ऊपर के शृङ्गों में कण्टिकास्थि के दोनों पार्श्व जोडने के लिये कण्ठिकावटुका नामकी दो स्नायुरज्जु वन्धती हें। नीचे के दोनों शृङ्ग कृकाटक पार्श्वों से मिलते है। दोनों पक्षों के सन्धिकोण के ऊर्ध्व भाग में अधिजिह्विका मूल से मिलने के लिये त्रिकोण खात है। इसकी ऊर्ध्व धारा स्थूलकलामयी स्नायुपट्टिका को वीच में रख कर कण्ठिकास्थि से मिलती है, इस स्नायुपट्टिका का नाम कण्ठिकावटुका मध्यमा हैं। और इसकी अधोधारा इसी प्रकार की स्नायु को वीच मे रख कर कृकाटक नामकी तरुणास्थि से मिलती हैं, इस स्नायु का नाम अवटु-कृकाटिका है।

प्रत्येक पक्ष के वाह्य पृष्ठ में तीन पेशिया लगती है—उरोऽवटुका, अवटुकण्ठिका, और कण्ठसंकोचनी अधरा मे। दोनों पक्षों के अन्दर में पाच रचनाये लगी है। यथा—मध्यमें स्नायुवन्धनियों से युक्त अधिजिह्विका, दोनों ओर अर्गल की भाति सामने से पीछे वन्धी हुयी दो मुख्य स्वरतन्त्री और दो गौण स्वरतन्त्री। यहीं पर एक एक ओर तीन तीन पेशिया है। यथा—अवटु घाटिका, अवटु गोजिह्विका और अनुतन्त्रिका।

कृकाटक[2]—[१३० चित्र] स्वरयन्त्र के नीचे का अवयव बनी हुयी अंगूठी के आकार की एक तरुणास्थि है। इसके दो भाग है—सम्मुख भाग पतला और गोल है, और पश्चिम भाग स्थूल और चौड़ा है। सम्मुख भाग मे ऊपर अवटुक की

१ Thyroid Cartilage २ Cricoid Cartilage

अधोधारा और नीचे में श्वासनलिका की ऊर्ध्वधारा संयोजनी कला की व्यवधान से जुडी है। पश्चिम भाग डेढ़ अंगुल चौड़ा है, इसके पीछे मध्यरेखा में अन्ननलिका का सम्मुख भाग वन्धा है। इसके प्रत्येक ओर कृकाट-घाटिका पश्चिमा नामकी पेशी है, और इसके वाहर के दोनों स्थालक अवटुपक्ष के अधःशृङ्गों से संहित है। इसकी ऊर्ध्वधारा में घाटिका नामकी दो तरुणास्थिया वन्धती है, अधोधारा कलामयी स्नायु द्वारा श्वासनलिका के शिखर से वन्धी है।

[१३० चित्र]

स्वरयन्त्र और क्लोमनलिका।
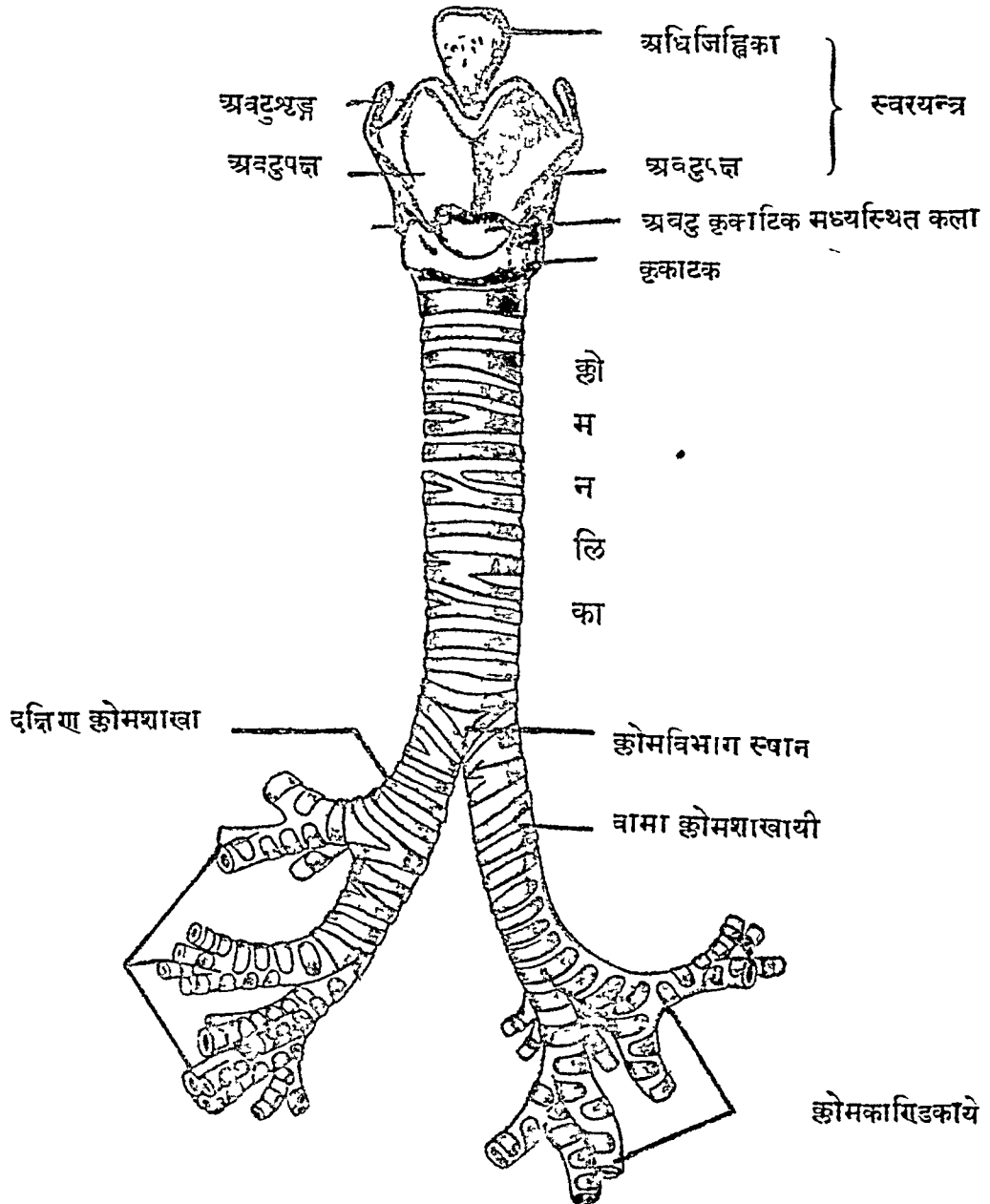
घाटिका[1]—नामकी प्रायः त्रिकोणाकार युग्म तरुणास्थिया (१३१ चित्र) कृकाटिका पश्चिमार्द्ध शिखर में बन्धी हैं। इनकी दोनों चूड़ाये आगे से अङ्कुश की भाति फैली है। प्रत्येक अङ्कुश के पीछे दो स्वरतन्त्री जुड़ती है—जिनमे एक मुख्य है और दूसरी गौण। दोनों को संव्यूहन करने वाली एक ही पेशी दोनों चूड़ाओं के मूल में पीछे आड़े भाव से स्थित है—इसका नाम घाटान्तरीया है। दूसरी पेशी स्वस्तिकाकार माससूत्रों द्वारा दोनों का पीछे से संव्यूहन करती है, इसका नाम स्वस्तिक घाटान्तरीया हे। प्रत्येक घाटिका के पीछे एक एक ओर दो पेशी हैं कृकाटघाटिका पश्चिमा और पार्श्वगा।

कोणिका[2] **और कर्णिका**[3]—नामकी दो - दो पतली तरुणास्थिया घटिकाओं की दोनों चूड़ाओं को मिलाने वाली स्नायुसूत्रिका के अन्दर उसको दृढ बनाने के लिये रहती है। इनमें प्रथम दोनों छोटी, आगे से वर्त्तूल और वक्र दण्डिका के आकार की है, ये पार्श्व मे रहती है। अन्तिम दोनों छोटे पुष्प के मुकुल के समान हैं और मध्यरेखा के दोनों ओर रहती है। इनको धारण करने वाली स्नायुसूत्रिका अर्ध-चन्द्राकार होकर अधिजिह्विका के पार्श्वों में मिलती है।

(१३१ चित्र)

स्वरयन्त्र का ऊर्ध्वमुख।
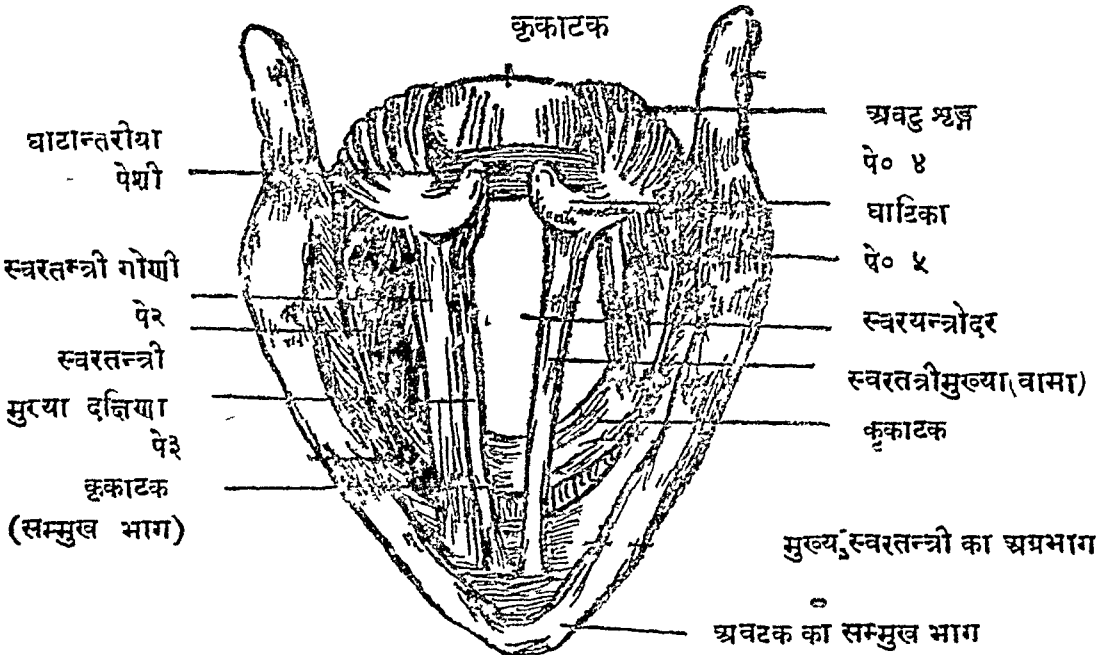
१ Arytenoid Cartilages २ Cuneiform Cartilages ३ Corniculate Cartilages.

तरुणास्थि संघात से बने हुए स्वरयन्त्र के अन्दर की गुहा का नाम स्वरयन्त्रोदर (१३१ चित्र) है। इसकी अन्तःपरिधि पतली श्लेष्मा को स्रवण करने वाली पतली कला द्वारा सब स्थान पर ढंपी है। इसका ऊर्ध्वद्वार गलबिल से मिला है, यह ऊर्ध्वमुखी अधिजिह्विका द्वारा सदा सुरक्षित रहता है। यह अन्नादि के निगलने के समय में स्वयमेव स्वरयन्त्र को पूर्णरूप से बन्द कर लेती है। स्वरयन्त्र का अधोद्वार श्वासनलिका से मिला है।

स्वरतन्त्रिया।

स्वरतन्त्री[१]—नामकी चार तन्त्रिया अर्थात् डोरिया (१३१ चित्र) स्वरयण्त्र के अन्दर बाण की गतिसे सम्मुख से पीछे फैली है। ये पतली कला से आवृत्त स्नायु-सूत्र स्वरतन्त्री है। इनमे ऊपर की दोनों तन्त्रिया गौणी कहलाती है, और नीचे की दोनों मुख्या स्वरतन्त्री। इन चारों का संयोग सम्मुख में अवटुशिखर मे स्थित कोण में और पीछे घाटिकाओं के दोनों अङ्कुश के समान शिखरों के पृष्टदेश मे ऊर्ध्वाधः क्रम से होता है। इनके बीच के त्रिकोण अवकाश का नाम तन्त्रीद्वार[२] है। तन्त्रियों के विकाश और मुद्रण से अर्थात् कुछ खुलने और बन्द होने से नाना प्रकार के विचित्र स्वर उत्पन्न होते है। विकास ओर मुद्रण घाटिकास्थियों के आकर्पण और अपकर्पण से पेशियों के द्वारा सम्पादित होते है। इन पेशियों का नाम स्वरतन्त्री पेशिया है। ये प्रत्येक ओर चार-चार अर्थात् कुल आठ है। यथा—अवटुघाटिका, अवटुकृकाटिका, अवटुगोजिह्विका और अनुतन्त्रिका। और इनकी सहायता करने वाली श्वासमार्गद्वारिणी नामकी नौ पेशिया है—मध्य में एक घाटान्तरीया नामकी और एक एक ओर चार कृकाटघाटिका पश्चिमा और पार्श्वगा, स्वस्तिकघाटिका और गोजिह्वाघाटिका नामकी। इन सत्रह पेशियों के प्रभव और निवेश इनके नामों से ही स्पष्ट है।

इनके कार्य दो प्रकार के है। स्वरतन्त्रियों का कर्पणात्मक और तन्त्रीद्वार का विकाशमुद्रणात्मक। इनमे तन्त्रियों का साक्षात् रूप से तीव्र और मन्द आकर्षण करने वाली छः पेशिया है, यथा—दो अवटुकृकाटिका, दो अवटुघाटिका, दो अनुतन्त्रिका। तन्त्रीद्वार के विकाश और मुद्रण करने के लिए शेप अन्य ग्यारह पेशिया है।

---

१ Vocal Cords २ Glottis

स्वरयन्त्र को पोषण करने वाली धमनियां—उत्तरग्रीविका, अधरग्रीविका और बहिर्मातृका धमनी की प्रशाखायें है। इनकी सहचरी सिरायें अनुमन्या नामकी दोनों सिराओं में और गलमूलिका में धमनिया घुसती है। स्वरयन्त्र की नाडिया—मुख्यरूप से दोनों प्राणदा की चार शाखाये है, यथा — दो स्वरयन्त्रारोहिणी और दो उत्तरस्वरिणी।

यहा तक स्वरयन्त्र का वर्णन संक्षेप से कहा गया। इस विवरण को सुख से स्मरण करने के लिये मूल प्रत्यक्षशारीर में ये तीन निम्न श्लोक है—

श्वासमार्गप्रतीहार-भूमिः स्यात् स्वरयन्त्रकम्।
घटितं सम्पुटं चारु नवभिस्तरुणास्थिभिः ॥
गोजिह्विकाऽवटु-कृकाटक-घाटिकेति
मुख्यानि तेषु, गिलने तु पिधानमाद्यम्।
सत्स्नायुजालकलितं ललितस्वरं तद्
यन्त्रं नियन्त्रितमुखं स्वरतन्त्रिकाभिः ॥
विकाशमुद्रणाभ्याञ्च तासा स्वरशतोद्भवः।
तत्साधनाय चेष्टन्ते सप्त पेश्यो दशाधिकाः ॥

अर्थात्—स्वरयन्त्र श्वासमार्ग की प्रतीहार-भूमि है, यह सुन्दर सम्पुट नौ तरुणास्थियों से बना है। इनमें गोजिह्विका, अवटु, कृकाटक और घाटिका मुख्य है, इनमें प्रथम निगलने के समय स्वरयन्त्र का ढक्कन बनती है। स्नायुजालो से वना हुआ इस ललित स्वरयन्त्र का मुख स्वरतन्त्रियों से नियन्त्रित है। इनके विकाश और मुद्रण से अनेक स्वर उत्पन्न होते है, इसके लिये सतरह पेशिया चेष्टा करती हैं।

श्वासनलिका।

श्वासनलिका या **क्लोमनलिका**[१] (१३० चित्र)— प्रायः छः अंगुल लम्बी और अपने अंगूठे के समान मोटी नलिका है। यह ग्रीवा के सम्मुख में अवटुदेश की अधःसीमा से आरम्भ हो कर उर के बीच में घुस कर फुस्फुस-मूल तक गयी है। यह ऊपर-ऊपर चिने हुए और पीछे से असम्पूर्ण स्नायु-बद्ध तरुणास्थिमण्डलों से वनी है। कण्ठकूप में त्वचा के नीचे दो-तीन अंगुल तक इसका अनुभव की जा सकती है। फिर उरोगुहा के अन्दर घुस कर यह पश्चम

१ Trachea.

पृष्टकशेरुका सन्धि के सम्मुख दोनों फुस्फुस में घुसने के लिये दो शाखानलिकाओं मे विभक्त हो जाती है। प्रत्येक शाखा नलिका फिर शाखा-प्रशाखा और अनुशाखाओं में विभक्त होती हुयी अन्तिम शाखा प्रतानों द्वारा छोटे वायुकोपों में घुसी है। यह शाखा - प्रशाखादि वाली श्वासनलिका सब जगह अन्दर की परिधि में अवलम्बक नामकी श्लेष्मा को स्रवण करने वाली सूक्ष्मकला से घिरी है। श्वासवायु के आने-जाने का यही मार्ग है।

श्वासनलिका का व्यतिकर इस प्रकार का है—

ग्रीवा में—इसके सम्मुख ग्रैवेयक ग्रन्थि, अधरग्रैवेयकी नामकी दो सिरायें, दोनों उरोऽवटुका और दोनों उरःकण्ठिका पेशिया है। पीछे अन्ननलिका। इन सब को ढापने वाली पतली सिरा-धमनी आदि के सहित ग्रीवाप्रच्छदा नामकी प्रावरणी। उर में—उत्तर फुस्फुसान्तराल मे क्लोमननिका के सम्मुख दीखने वाली (सामने से पीछे) ये है—उरःफलक, बालग्रैवेयक नामक ग्रन्थि का अवशेप, वामा गलमूलिका नामकी सिरा, महाधमनी का तोरण भाग, काण्डमूला धमनी, वामा महामातृका धमनी, और "अनाहतचक्र" नामका नाडीचक्र। क्लोमनलिका के पीछे—अन्ननलिका। दक्षिण मे —काण्डमूला धमनी और प्राणदा दक्षिणा नामकी नाडी। वाम मे—महाधमनी का तोरणाश, महामातृका धमनी और अक्षाधरा।

यहा पर विभाग भेद को समझाने के लिए मुख्य श्वासनलिका की क्लोमनलिका* संज्ञा की है। दो प्रधान शाखाओं की दक्षिण और वाम क्लोमशाखा यह संज्ञा है—इनकी शाखा - प्रशाखाओं की क्लोमकाण्डिका। कहीं पर सब शाखा - प्रशाखा की क्लोमकाण्डिका नाम है। इनमे—

दक्षिणा क्लोमशाखा[1]—अधिक मोटी और डेढ़ अंगुल लम्बी है, यह पश्चाद् भाग को आश्रय कर के हृदय के और उत्तरा महासिरा के दक्षिण में रहती है। यह स्नायुजालों से बन्धे छः या आठ तरुणास्थिमण्डलों से बनी है और दो क्लोमकण्डिकाओं मे विभक्त होती है, जो कि फुस्फुसाभिगा धमनी के उत्तर और अधर देश मे रहती है। इनमें उत्तरा दक्षिण फुस्फुस के उत्तरपिण्ड मे घुसती है। और अधरा फिर दो भागों में विभक्त हो कर नीचे के दो पिण्डों मे।

---

१ Right Bronchus

* दो शाखाओं में विभक्त सम्पूर्ण श्वासनलिकाकी क्लोम संज्ञा वेदवादियों ने की है।

वामा क्लोमशाखा[1] प्रायः छः अंगुली है, यह दस अथवा बारह मण्डलाकार तरुणास्थि से बनी है। यह महाधमनी तोरण के नीचे अन्ननलिका और रसकुल्या के सम्मुख एवं फुस्फुसाभिगा धमनी के पीछे रहती है। यह वाम फुस्फुस के दोनों पिण्डों में घुसने के लिये तीन शाखाओं में विभक्त हो जाती है।

समग्र श्वासनलिका का तर्पण करने वाली धमनिया ये है—श्वासनलिका की —अक्षाधरा से उत्पन्न अधरग्रीविका नामकी धमनी। क्लोमकाण्डिकाओं की—क्लोमकाण्डनुगा धमनिया, जिनकी व्याख्या औरसी धमनियों में हो चुकी है। इनकी सिरायें तुल्य संज्ञा वाली हैं। नाडिया मुख्यरूप से दोनों प्राणदा की शाखा-प्रशाखाये है।

उरस्या अथवा फुस्फुसधरा कला।

उरस्या या फुस्फुसधरा कला[2]—दो है। ये विशाल आयतन वाली पतली और चिकनी झिल्ली है। इनमें प्रत्येक कला उरोगुहा के एक एक आधे मे रहती है, और प्रत्येक फुस्फुस को एक स्तर से घेर कर धारण करती है, और दूसरे स्तर से उरःपश्चरार्द्ध के प्राचीर की अन्तःपरिधि में एवं उरोगुहा के ऊर्ध्व तथा अधःस्तल मे जुडती है। एक एक कला इस प्रकार दो दो स्तरों से बनी है और लम्बी, चौडी तथा चारों ओर से बन्द थैली के समान है। इसके दोनों स्तरों के अन्दर थोडी सी पतली लसीका दिखायी देती है, जिससे दोनों स्तर परस्पर घर्षण से बचे रहते है। इनमे बाह्य स्तर की "परिसरीय भाग" संज्ञा है, क्यों कि यह उरःपरिसर का अन्दर का आवरण है। आभ्यन्तर स्तर की 'पर्याशय भाग' संज्ञा है, क्योंकि यह फुस्फुस आदि आशय के चारों ओर लगा है। ऐसा नहीं समझना चाहिये की कोषरूप कला के अन्दर आशय है—क्योंकि दोनों स्तर परिसरीय सीमाओं में परस्पर से सर्वथा मिले है।

उरस्या कला का परिसरीय भाग[3] पार्श्वों मे, सम्मुख में और पीछे क्रमशः पर्शुकामय प्राचीर के अन्दर, उर फलक के पीछे और पृष्टवंश के सम्मुख भाग मे सटा हुआ है। ऊर्ध्वभाग मे इसका स्पर्श 'फुस्फुसशीर्षण्या" नामकी गम्भीर प्रावरणी के तलदेश से हुआ है और अधोभाग मे महाप्राचीर के ऊर्ध्वतल से। यह उत्तराश द्वारा मध्यरेखा की ओर फैल कर क्लोमनलिका के पार्श्वों को छू कर

---

१ Left Bronchus २ Pleura (प्लुरा), ३ Parietal Layer

फुस्फुसवृन्त तक पहुंची है। और अधराश द्वारा हृत्कोप पार्श्व को चूम कर ऊपर मध्यरेखा की ओर जा कर उसी की भांति फुस्फुसवृन्त को छूता है। यह परिसरीय भाग फुस्फुसावरणी कला के पर्याशय भाग से चारों ओर मिला हुआ है।

दूसरा त्रिकोणिकाकार प्रदेश द्विगुणित हुआ परिसरीय भाग पश्चिम में और नीचे फैला है, यह फुस्फस को महाप्राचीरा के मूल से बांध रखता है। इसका नाम फुस्फुसबन्धनी है।

उरस्या कला का पर्याशय भाग[१]—प्रत्येक फुस्फुस को घेर कर फुस्फुसवृन्त के चारों ओर बटुर कर पूर्वोक्त प्रकार से परिसरीय भाग के साथ मिल जाता है। यह उरस्या अथवा फुस्फुसधरा नामकी कला विचित्र बनावट की है, जो फुस्फुस को गोद में धारण करती हुयी भी अपने अन्दर ग्रहण नहीं करती। प्रश्वासकाल में फुस्फुस के वायु से भरने पर इस कला के दोनों स्तर समीप आ जाते हैं। और निःश्वासकाल में फुस्फुसके संकोच होने पर अधिक दूर हो जाते हैं। शीति - वर्षा - आदि के कारण कभी कला के एक देश में "व्रणशोथ" हो जाता है, तब प्रश्वासकाल में दोनों स्तरों के रगड़ खाने से तीव्र दर्द उत्पन्न होती है। और दोनों स्तरों के अन्तःस्थ अवकाश में क्रमशः बढते हुए जलसञ्चय का नाम उरस्तोय[२] है। इस अवस्था में चिकित्सा ठीक न होने से फुस्फुस का क्रमशः दृढ संकोच और क्रिया का लोप हो जाता है।

✓ फुस्फुस।

✓**फुस्फुस**[३]—नामके दो यन्त्र श्वासकर्म्म के प्रधान साधन हैं, ये उरोगुहा के अन्दर प्रत्येक आधे में एक-एक है। इनके अन्तराल में हृदय, क्लोमनलिका और सिरा-धमनी-नाडी आदि रचनायें हैं। फुस्फुसान्तराल चार प्रकार से विभक्त है यह धमनीखण्ड में वर्णन कर चुके हैं (१९८ पृष्ठ देखिये)।

ये दोनों फुस्फुस सर्वत्र फुस्फुसधरा कला से ढंपे हुए चिकने, कोमलस्पर्श और वायुकोषों की अधिकता के कारण हल्के एवं जल में तैरने के योग्य है। श्वासनलिका के द्वारा फूत्कार से वायु भरने पर इनका विचित्र विशाल आकार बन जाता है, और इनको अंगुली से दबाने पर उस समय मृदु मर्मर शब्द होता है।

---

१ Visceral Layer २ Pleurisy, ३ Lungs

[१३२ चित्र]

फुस्फुसद्वय और हृदय (सिरा-धमनी सहित)
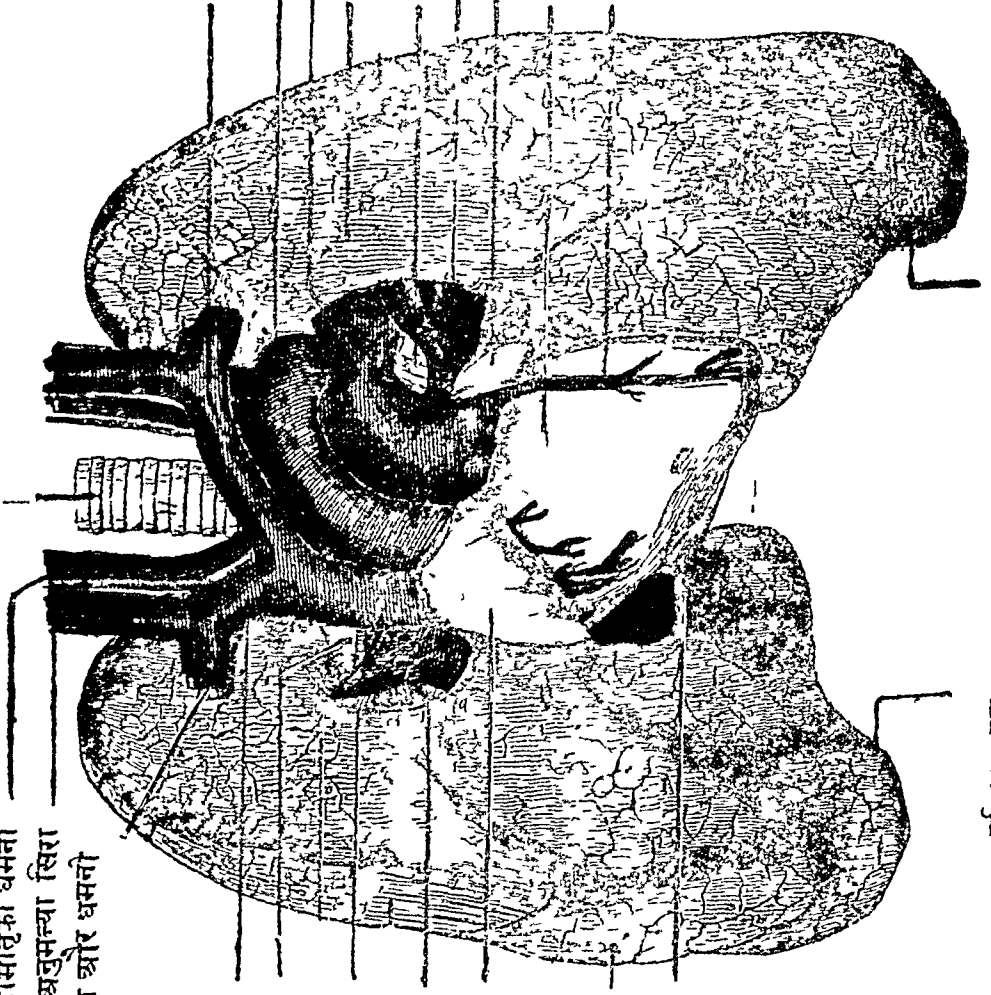
(To face page 312)

[१४० चित्र]

अन्ननलिका

(सम्मुखस्थ हृदय-फुफ्फुसादि यन्त्रों को निकाल कर दिखायी)

(To face page 228)
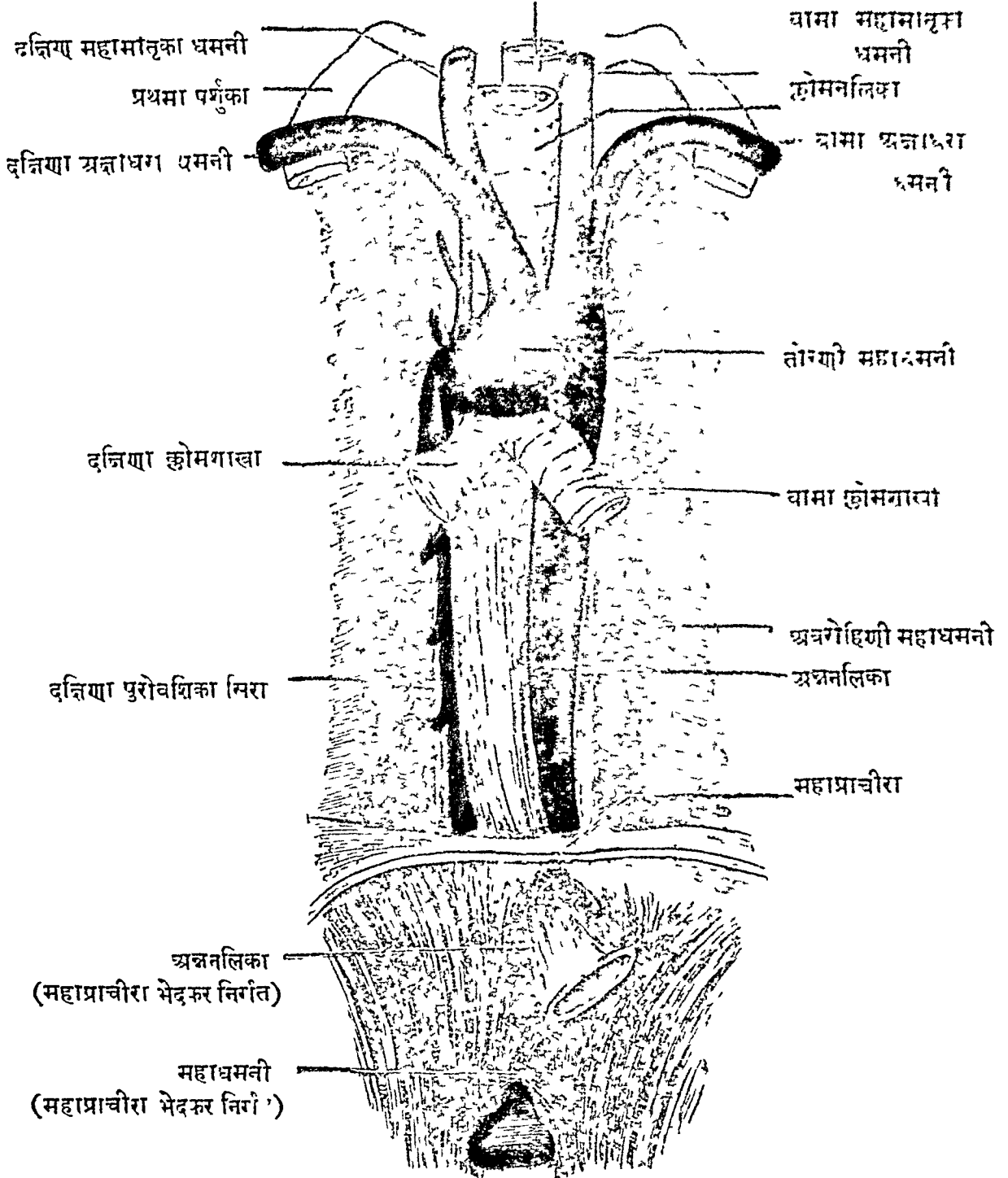
इनमे पुरुष का दक्षिण फुस्फुस प्रायः ५५ तोले का और वाम फुस्फुस ५० तोले का होता है। स्त्रियों का प्रत्येक फुस्फुस में पाच तोले की कमी होती है। नवजात वालक के फुस्फुस कमल के रङ्ग के होते है किन्तु उमर बढने पर फुस्फुस का रङ्ग कुछ श्याम और चितकवरा होता हे।

आकृति मे—प्रत्येक फुस्फुस ऊपर से सङ्कुचित और नीचे से चौडा है। यह वहिःपार्श्व मे प्रायः गोल और अन्तःपार्श्व में कुछ कोरोदर है। इसकी सम्मुखधारा पतली और शिथिल है, यह एक-एक ओर से हृदय को थोडा ढाप कर रहती है। प्रत्येक फुस्फुस मे पाच अंश विशेष दर्शनीय है। यथा—

फुस्फुसचूडा, फुस्फुसमूल, फुस्फुसखात, फुस्फुसवृन्त, और पिण्डविभाग। इनमें—

फुस्फुसचूडा[1] —गोल और शिखराकार है। यह गलमूल मे अक्षकास्थि के ऊपर और पीछे दो अंगुल तक उठी हुयी हे, तथा उरःकर्णमूलिका पेशी की दो प्रभव-कण्डराओं से ढंपी है।

फुस्फुसमूल[2]—फुस्फुस के अधोदेश में महाप्राचीरा के पृष्ठ को आश्रय करके रहता है। यह कुछ कोरोदर एवं चौडा हे परन्तु इसका पश्चिमाश पतला पत्राकार है। यह अंश फुस्फुस के वायु से भरे जाने पर महाप्राचीरा-पृष्ठ के पश्चिमस्थ खात मे घुस जाता है।

फुस्फुसखात[3]—अनेक है—उत्तान और गम्भीर। इनमे तीन मुख्य है दो वृन्तखात और एक हृदयखात। इनमे वृन्तखात प्रत्येक फुस्फुस के मध्यदेश मे अन्दर की सीमा पर है, इसका आश्रय करके फुस्फुसवृन्त घुसता है। हृदयखात वाम फुस्फुस की अन्तःसीमा मे विशेषतः दिखायी देता है, यह हृदय के वामाश को धारण करता है। दक्षिण फुस्फुस के अन्तःसीमा मे भी यह खात थोड़ा दिखायी देता हे। और-और खात फुस्फुस के साथ अधरा महासिरा, महाधमनी, अन्ननलिका आदि के स्पर्श से वने है, ये विशेष गहरे नहीं है।

फुस्फुसवृन्त[4] — प्रत्येक फुस्फुस के अन्तःपार्श्वस्थ खात मे घुसने वाली फुस्फुसीय नाडी-सिरा-धमनी तथा क्लोम-शाखा आदि का संघात है। यह फुस्फुस-धरा कला के द्विगुणित भाग से घिरा हुआ हे। इसके सम्मुख मे "अनुकोष्ठिका"

१ Apex of Lung २ Base of Lung ३ Depressions on Lungs
४ Root of Lung

नामकी नाडी और पश्चिम मे "प्राणदा" नामकी नाडी है। फुस्फुसवृन्त के अन्दर सिरादियों की स्थिति इस प्रकार की है—सम्मुख मे दो फुस्फुसीय सिरायें, मध्य में फुस्फुसाभिगा धमनी की शाखा, पश्चिम मे काण्डशाखाओं के साथ क्लोमनलिका।

पिण्डविभाग—दक्षिण फुस्फुस मे तीन और वाम मे दो पिण्ड[1] है। प्रत्येक पिण्ड पृथग् रहता है—और उसमे एक-एक क्लोमकाण्डिका घुसती है। यह शाखा-प्रशाखाओं में क्रमशः विभक्त होती हुयी, अंगूर के गुच्छे के समान वायुकोप पुञ्जों मे अन्तिम शाखा प्रतानों द्वारा फैलती है। प्रत्येक कोप-पुञ्ज प्रायः एक अंगुल के सोलवें भाग के समान है, इसमे प्रायः पाच छः वायुकोप होते है। इनके संघातों से फुस्फुस बना हुआ है।

(१३३ चित्र)

क्लोमकाण्डिका विभाग वायुकोषों के साथ।
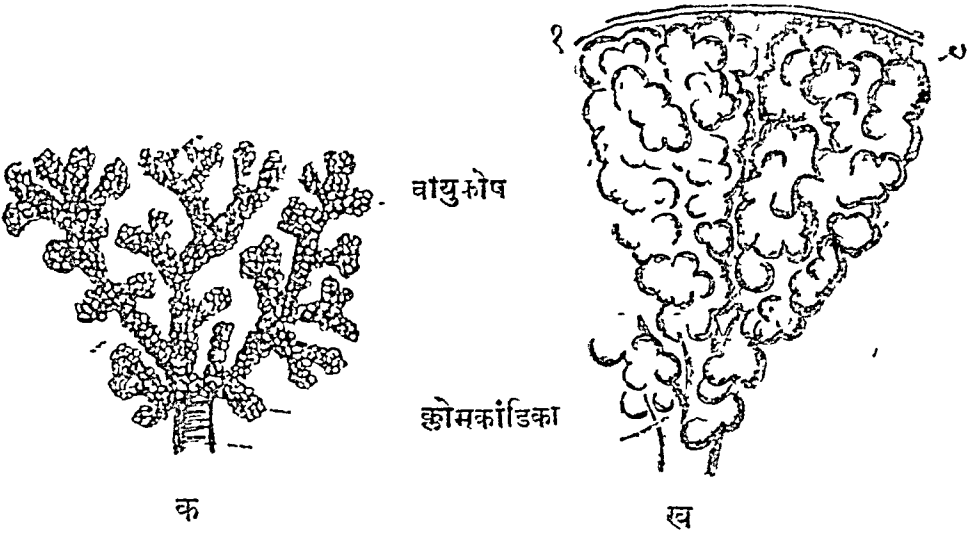
चित्रव्याख्या—क क्लोमकाण्डिका को शाखा-प्रशाखा विभाग (स्वाभाविक आकृति)। ख—उसीका अंश (वर्द्धितायतन)। १।२ –वायुकोषपुञ्ज।

वायुकोपों का निर्माण और कार्य इस प्रकार के है। प्रत्येक वायुकोप[2] स्थिति स्थापक गुण वाले स्नायुसूत्रों से बाहर घिरा है और अन्दर में बहुत पतली कला से ढंपा है। इनके अन्तराल मे वायुकोप के चारों ओर सूक्ष्म सिराधमनियों से बने हुए जालक रहते है। इनमे सिरारक्त फुस्फुसाभिगा धमनी के अन्तिम शाखाप्रतानों द्वारा पहुंचता है। और वह रक्त वहा श्वासवायु के सम्पर्क से—वाष्प-विनिमय द्वारा—शोधित होकर सूक्ष्म-सूक्ष्म फुस्फुसीय सिराओं द्वारा हृदय की ओर लौट जाता है।

---

१ Lobes of Lungs २ Alveolus ३ Gaseous Exchange.

सिरारक्त सर्व शरीर में सञ्चरण करने के कारण, धात्वग्नि से परिपक्व धातुओं के मलभूत आगारिक[1] वाष्पसे मलिन हो जाता है। यह वाष्प वायुकोषों के चारों ओर स्थित सिरा जालकोंमें से वायुकोषों मे छोडा जाता है, इसलिये उस वाष्प से पूर्ण होने के कारण निश्वास वायु दूषित हो जाता है।इसके अनन्तर प्रश्वास वायु द्वारा लाया हुआ विशुद्ध वायुकोषों में पहुंचता है और उसके सम्पर्क से वही रक्त'विष्णुपदामृत'[2]के संयोग से विशुद्ध और उज्ज्वल हो जाता है। यह विशुद्ध रक्त फुस्फुसीय सिराओं द्वारा हृदय में लौट कर वहा से महाधमनी मार्ग द्वारा सम्पूर्ण शरीर में सञ्चरण करता है।

यह फुस्फुसीय रक्त संवहन का प्रयोजन संक्षेप से कहा गया।

॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय।

अन्नपचन यन्त्र वर्णनीय।

अन्नपचन यन्त्र दो प्रकार के है—मुख्य और गौण। इनमें आमाशय, क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र मुख्य है, क्यों कि इन्ही मे साक्षात् रूप से अन्न का पाक होता है। दाँत, जिह्वा, लालाग्रन्थि, ग्रसनिका, अन्ननलिका आदि गौण यन्त्र हैं, क्योंकि इनके द्वारा अन्नका ग्रहण, चर्वण, क्लेदन, (भिगोना) और निगरण (निगलना) आदि कार्य होते है।

इनमें—मुख, ग्रसनिका, अन्ननलिका, आमाशय, क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र इन सब को प्राचीनों ने—**महास्रोत**[3]—संज्ञा (१३४ चित्र) दी है, क्योंकि ये सव यन्त्र एक ही बहुत वड़े स्रोत या नल का अङ्ग है। गर्भ की प्रथमावस्था में तथा कई प्राणियों में सारा आयु यह महास्रोत एक ही नल के रूप से रहता है।

यह महास्रोत वास्तव में कहीं कही विस्फारित होने पर भी प्राय वीस हाथ लम्बा और स्वतन्त्र पेशी निर्मित एक ही नल है। इसमे प्रथम विस्फार (फैलाव) मुखकुहर में, और आगे ग्रसनिका में अन्नादि के धारण, क्लेदन, चर्वण और

१ Carbon Dioxide २ Oxygen ३ Alimentary Canal

[१३४ चित्र]

महास्रोत का प्रदर्शक कोष्ठ चित्र।
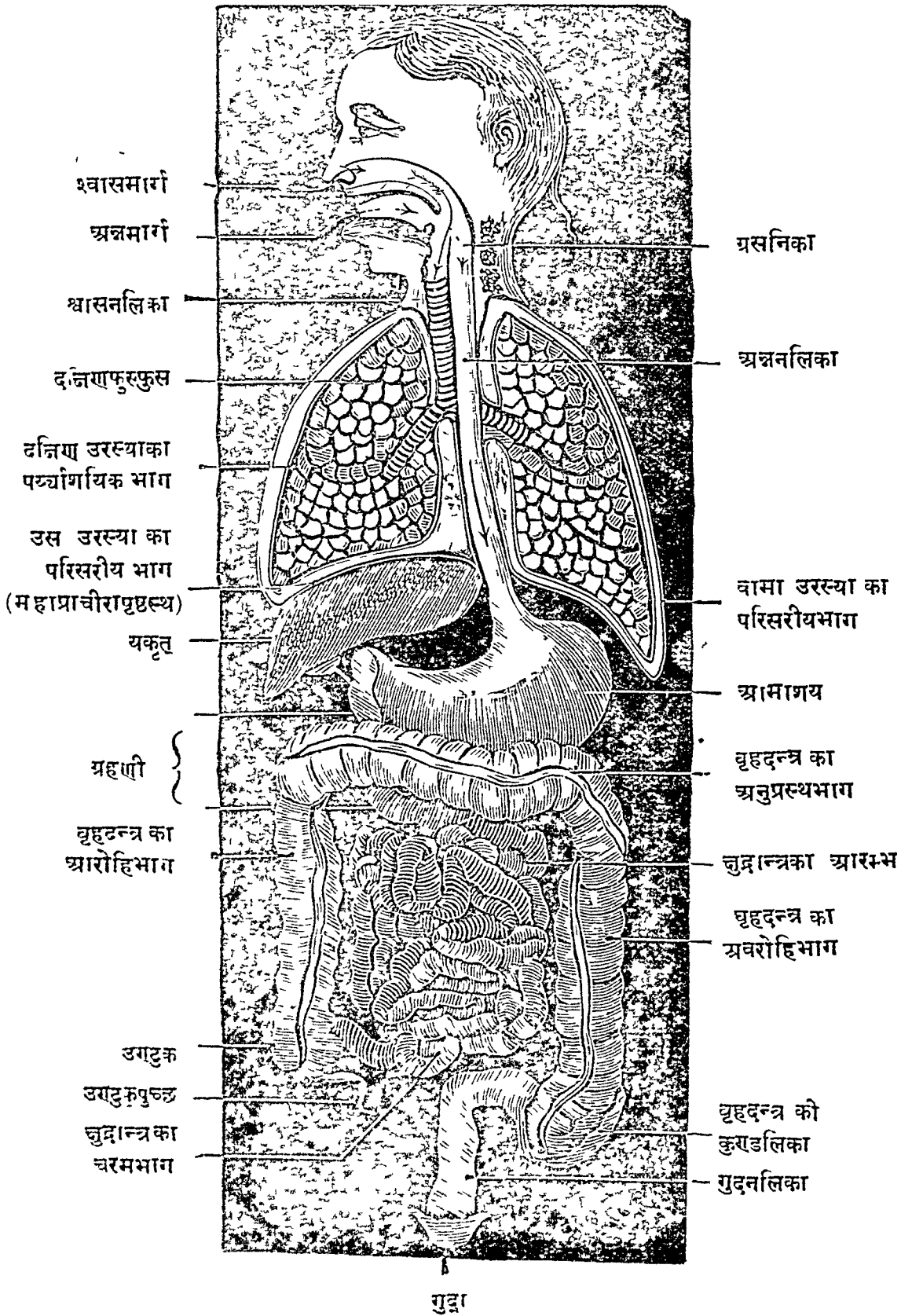
निगरण के लिये है। इसके पीछे अन्ननलिका मे नलिकाकृति स्पष्ट है। दूसरा विस्तार आमाशय में बहुत से अपक्व अन्न-पान को धारण करने के लिये और उसके प्रथम पाकके लिये है। इसके आगे क्षुद्रान्त्रों में फिर भी इसकी बहुत लम्बीपतली नलकाकृति हो जाती है। और वहा अर्धपक्व अन्न का शनैः शनैः सम्यक् पाक और उससे अन्नका रसाकर्षण होता है। इसके आगे बृहदन्त्र की स्थूल नलकाकृति दिखायी देती है। मलभूत अन्न के धारण, शोषण और निःसारण की सुगमता के लिये यह बना है। इस प्रकार विचित्र बनावट वाले प्रकाण्ड स्रोत का मुखकूहर से लेकर अपानदेश तक महान् आयतन होने से और अन्य सब स्रोतों के इसके अधीन होने के कारण "महास्रोत" संज्ञा हुयी है। अन्नरस ही धातुओं का मूल है और वह महास्रोत से ही सूक्ष्म-सूक्ष्म सिराओं और रसायनियों द्वारा खीचा जाता है।

वर्णन की सुगमता के लिये इस महास्रोत के छै विभाग किये जाते है—मुखकुहर, ग्रसनिका, अन्ननलिका, आमाशय, क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र। इसके सहायक दात, जिह्वा, लालाग्रन्थि, यकृत् और अग्न्याशय है,—इसी प्रसङ्ग में उनका भी वर्णन किया जायगा। इनमें आमाशय, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, यकृद् और अग्न्याशय उदरगुहा के अन्दर दिखायी देते है। अन्य यन्त्र इसके बाहर है। पहिले उन्हीं का वर्णन किया जायगा।

मुखकुहर

मुखकुहर[१]—(१३५ चित्र) मुख के अन्दर स्थित क्षुद्र नारियल के फल के आकार की गुहा है, जिसमे जिह्वा और दाँत रहते है। इसकी छदि कठिन तालु और कोमल तालु से बनी है, और इसकी भूमि प्रधानतः अधो-हनुमण्डल का अन्तराल है जो कि बृन्त के सहित जिह्वा से भरा गया है। मुखकुहर का द्वार ओष्ठो के बीच मे मुखद्वार नामका है। इसके अन्दर प्रारम्भ में मुखालिन्द नामक अर्द्धचन्द्राकार अंश है, यह दन्तपंक्तियों के सामने है। दन्तपंक्तियों के पीछे गलबिलद्वार तक मुख की अन्तर्गुहा है, इसके पीछे गलबिल। मुखकुहर के अन्दर और इसके परिसर मे स्थित दश रचनायें दर्शनीय है। यथा—

दोनों ओष्ठ, दोनों कपोल, दोनों दन्तवेष्ट, बत्तीस दात, जीभ, तालुपटल, दो गलतोरणिकाये, दो उपजिह्विकाये, अधिजिह्वा, और चार लालाग्रन्थिया। इनमें मुखकुहर के अन्दर स्थित सभी भाग पतले श्लेष्मा को क्षरण करने वाली सूक्ष्मकला से घिरे है। इनमें—

---

१ Oral Cavity

[१३५ चित्र]

मुखकुहर और लालाग्रन्थि ।

(पार्श्व से छेदन करके प्रदर्शित)
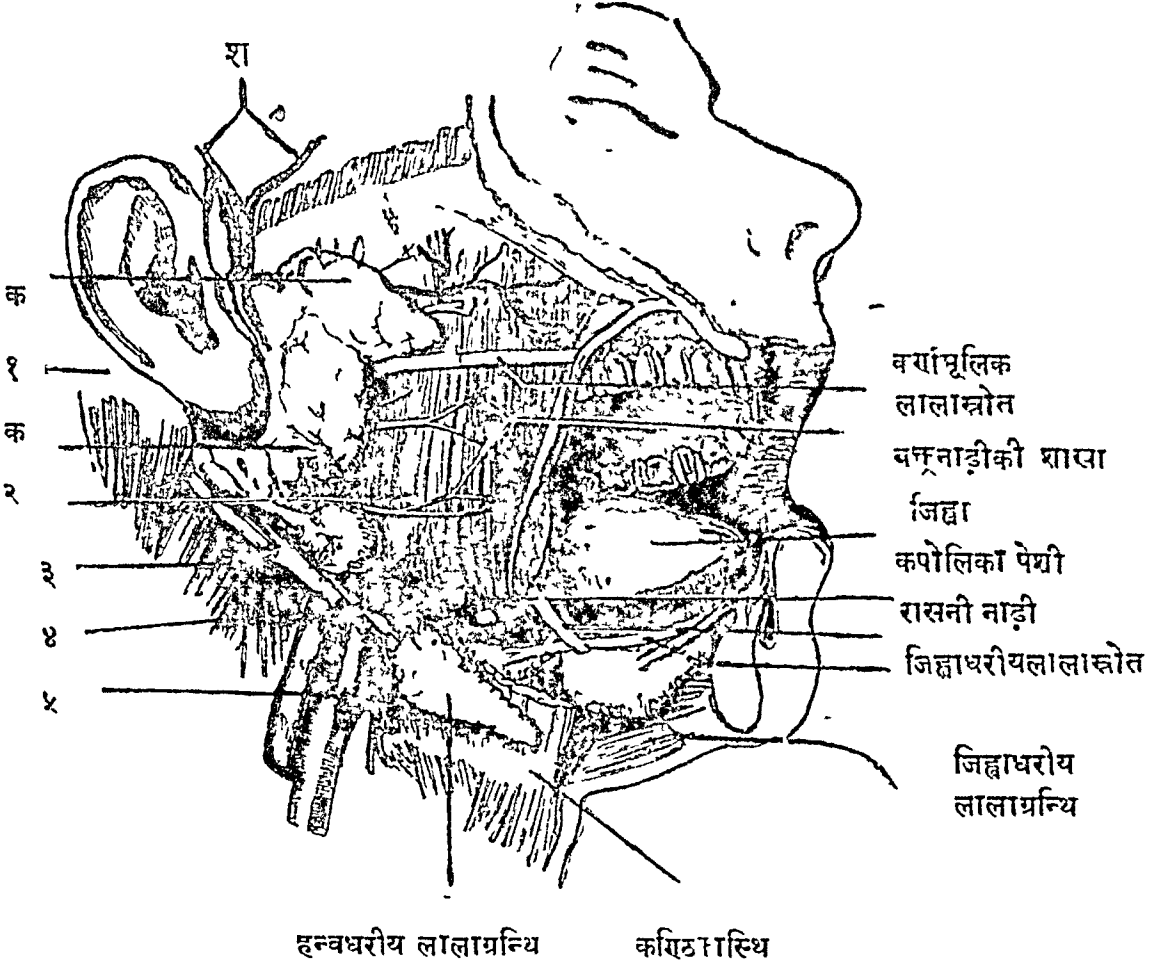
[क-क—कर्णमूलिक नामक लालाग्रन्थि । श—अनुशङ्खा उत्ताना धमनी]

१ गोस्तनप्रवर्द्धन । २ हनुकूटकर्पणी पेशी ।

३ शिफाकण्ठिका स्नायु । ४ वक्त्रनाडी ।

५ अन्तर्मातृका धमनी और अनुमन्या सिरा ।

(१) **दोनों ओष्ठ**—मुखद्वार के दो किवाड से है, ये प्रधानतः मुखमुद्रणी पेशी से बने है। विशेषतः मेदोबहुल और जालक तथा रसायनियों से भरे होने के कारण यह अत्यन्त कोमल होते है। ये बहिर्भाग मे त्वचा से ढंपे है और अन्दर श्लेष्मक्षरण करने वाली सूक्ष्मकला से। त्वचा और कला का सन्धि-स्थान सर्प की केंचली की भाति ही परिवर्त्तनशील अति पतली त्वचा से ढंपा है। इनमे अधरोष्ट् की अधर और उत्तरोष्ट की ओष्ठ — ये दो संज्ञायें प्रसिद्ध है। दोनों की "ओष्ठ" सज्ञा भी प्रसिद्ध है। इनके सन्धिकोणों की "सृक्कणी" अथवा "सृक्किणी" यह सज्ञा है। प्रत्येक ओष्ठ के अन्दर मध्यरेखा में स्नायुसूत्र से बनी हुयी सेवनी है, जो दन्तवेष्ट के सन्मुख भाग मे इसको बाधती है। इसका नाम ओष्ठसेवनी (उत्तरा और अधरा) है।

(२) **कपोल** (गाल)—दो है। ये कपोलिका पेशियों से बने और बहुत से मेद एवं जालकों से भरे है। ये बहिर्भाग मे त्वचा और अन्दर श्लेष्मा स्राविणी सूक्ष्मकला से ढंपे है। ये सम्मुख मे दोनों ओष्ठों से मिले है और ये ऊर्ध्व और अधःसीमा मे दन्तवेष्ट तक पहुंचे है। इनमे उत्तर दन्तवेष्ट के दोनों ओर द्वितीय चर्वणक दन्तमूलों मे लालास्रावी कर्णमूलिक ग्रन्थियोंके दो स्रोत दीखते है। इनका नाम कर्णमूलिक स्रोत[1] है।

(३) **दन्तवेष्ट**—दो है। ये अस्थिमय दन्तोदूखलमण्डल के दृढ स्नायु-सूत्रों से बने हुए वेष्टन हैं, जो कि भीतर अस्थिधरा कला से सम्बद्ध है और ऊपर श्लेष्मा स्राविणी कला से ढंपे है। ये दन्तमूलो को अपने उदूखलों मे भलीभाति बाध रखते है। इनमे स्पर्शज्ञान बहुत कम है। दातों को अच्छी प्रकार सफाई न करने से दन्तवेष्ट मे बहुत से रोग होते है।

(४) **दन्त** (दांत)—बत्तीस है—यह प्रथम कह चुके। इनके कार्यों की व्याख्या कर्त्तनक आदि संज्ञाओं से हो चुकी है। इनका निर्माण सूक्ष्मशारीर मे कहा जायगा।

(५) **जिह्वा**—यह स्वाद के ग्रहण, चर्वण और अन्न निगलने का साधन है। यह मुख्यतः पेशियों से बनी और पतली श्लेष्मस्राविणी कला से ढंपी है। यह स्वादांकुरों का आधार है। यह मुखभूमि के तल मे कण्ठिकास्थि से एवं सेवनी से

---

१ Parotid duct or Stenson's ducts

[१३६ चित्र]

गलबिलद्वार।

(सामने से दृष्ट)

कोमलतालु

गलस्तम्भिका पश्चिमा

उपजिह्विका

काकलक

गलस्तम्भिका पूर्वा

कपोलिका पेशी

गलबिल

२

अ धो ह नु म ण्ड ल
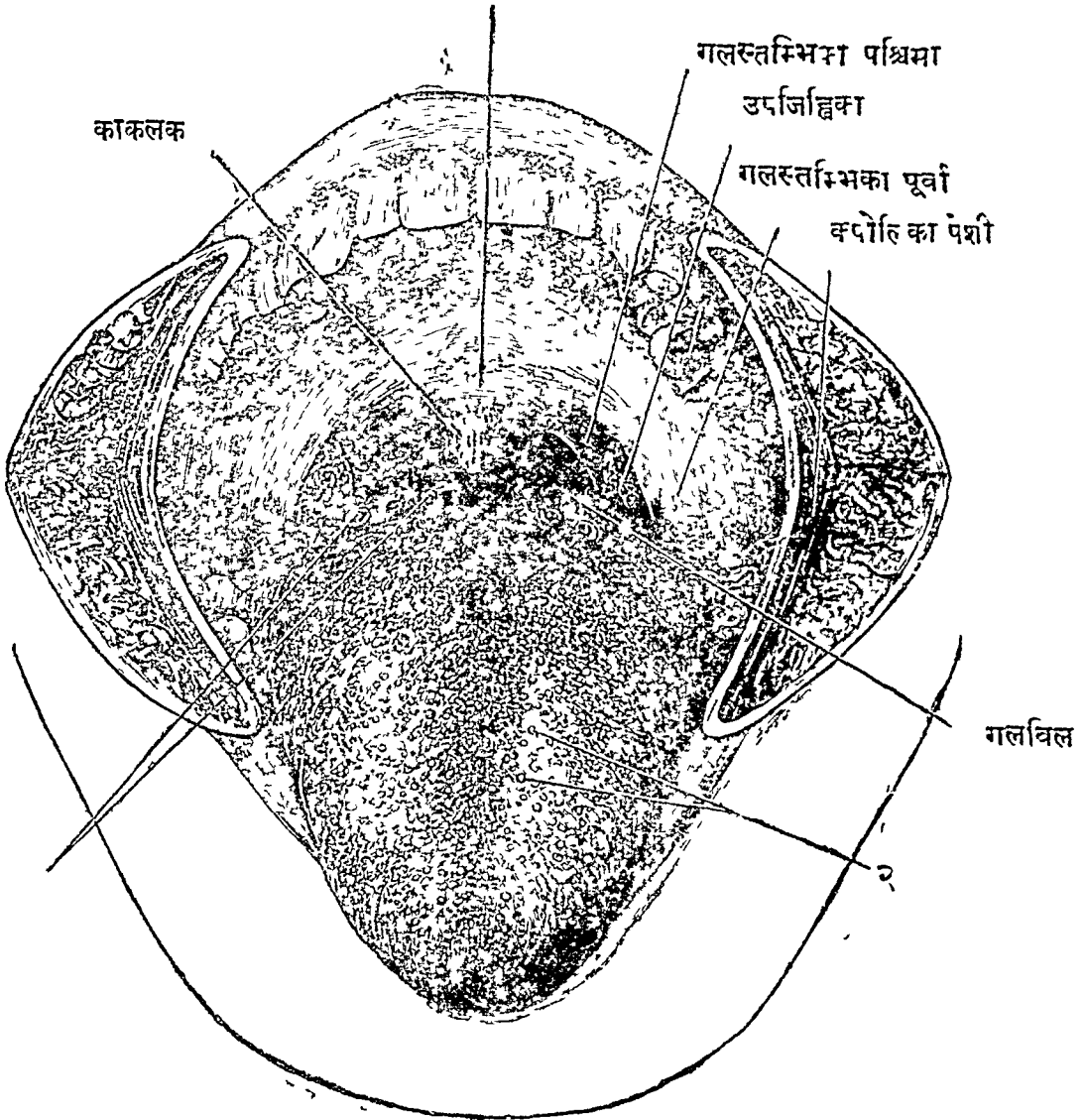
[१।२—स्वादांकुर (बड़े और छोटे यथाक्रम)।]

वन्धी है। इसके पीछे मध्य मे अधिजिह्विका और एक एक ओर गलस्तम्भिका (पूर्वा) लगती है। जिह्वा की वनावट का वर्णन विशेष रूप से रसनेन्द्रिय के वर्णन में आयेगा।

(६) **तालुमण्डल**[1]—मुख के अन्दर और ऊपर अञ्जलि के समान आकार की छत है। पूर्व और पश्चिम क्रम से इसके दो भाग है, कठिनतालु और कोमलतालु। इनमे—

(क) **कठिनतालु**[2]—कला से ढंपा हुआ कठिन अस्थि-पत्रकों से बना है। यह मुखान्तर्गुहा के ऊपर और सम्मुख मे स्थित कोरोदर छत है। यह सामने ऊर्ध्व-हनुमण्डल के दोनों तालुपत्रकों के परस्पर मिलने से और पश्चिम मे ताल्वस्थि के ह्रस्व-पत्रकों के मिलने से बनता है।

(ख) **कोमलतालु**[3]—कठिनतालु की पश्चिम सीमा में संलग्न है। यह कोमल मास और स्नायु-तन्तुओं से बनी, और कला से ढंपी हुयी अधोमुखी जवनिका (पर्दा) हे, जो कि गलबिल के ऊपर के अर्द्ध को घेर कर रखती है। अन्न के निगलने के समय में यह पीछे और ऊपर खीची जा कर गलबिल के आयतन को चौड़ा करती हे, एवं अन्न को नासा-पश्चिम द्वार में जाने से रोकती है। कोमलतालु की पश्चिम सीमा में मध्यरेखा पर लटकती हुयी छोटी शुण्डाकार की एक पेशी है, जिसका नाम काकलक या गलशुण्डिका[4] हे। यह कोमलतालु को अपने कार्य में सहायता देती हे।

तालुसम्बन्धिनी पेशिया नव हे। इनमें तालुत्तोलनी, तालुत्तन्सनी, तालुजिह्विका, और गलतालुका—ये चार जोडी पेशिया एक - एक ओर है और काकलकिनी बीच में अकेली हे। इनका वर्णन पेशी अध्याय में कहा गया है। इनमें तालूत्तोलनी सम्पूर्ण कोमलतालु को ऊपर खींचती है,—यह शङ्खास्थि के अश्मकूट से उत्पन्न होकर मध्यरेखा में इसी नामकी पेशीसे मिलती है। तालूत्तन्सनी जतूकास्थि के चरणफलक से उत्पन्न होकर इसके अग्रभाग मे स्थित अङ्कुश को आश्रय करके चलती हुयी कोमलतालु को ऊपर तानती है। शेप दोनों का प्रभव और निवेश इनके नाम से स्पष्ट है। गलद्वार के विस्फोरण से निगलने के कार्य्य मे सहायता करने के लिये ये पेशिया जिह्वामूल के पार्श्व से और गलविल के पार्श्व से तालु का आकर्पण करती है। काकलकिनी काकलक को ऊपरु उठाती है।

---

१ Palate २ Hard Palate ३ Soft Palate ४ Uvula

√(७) **गलतोरणिका**[1]—(१३६) गलविलद्वार के दोनों ओर दो तोरणाकार भाग है, जो मध्यविन्दु से मिल जाते है। प्रत्येक तोरणिका काकलक से आरम्भ हो कर एक-एक ओर दो-दो भागों में विभक्त हो कर तोरणाकार से सामने और पीछे उतरती है। इन दो भागों की संज्ञा गलस्तम्भिका है। इनमें सामने की स्तम्भिका की पुरःस्तम्भिका[2] और पीछे का स्तम्भिका की पश्चिम-स्तम्भिका[3] संज्ञा है। इनमे दोनों पुरःस्तम्भिकाये जिह्वामूल के नीचे दोनों ओर मिलती है, ये जिह्वातालुका पेशियों से बनी है।

√(८) **उपजिह्विका**[4]—(१३६ चित्र) गलविलद्वारके दोनों तरफ अग्रिम और पश्चिम स्तम्भिका के मध्य मे बेर कीं गुठली के बरावर दो ग्रन्थिमय पिण्डिकाये है जिनकी संज्ञा उपजिह्विका हे। इनकी बनावट प्राय. लसीकाग्रन्थि की भाति है। ये शिशुओं में कफ की अधिकता के कारण वडी हो जाती हे, इनके वडने पर शुष्क कासादि रोग होते है। शारीरशास्त्र के पण्डितों का विचार है कि ये स्वभाव से गलविलद्वार की रक्षा करने वाली ग्रन्थिया है।

√(९) **अधिजिह्विका**[5]—स्वरयन्त्र के ऊपर की एक तरुणास्थिमय ढकनी हे, इसका वर्णन प्रथम आ चुका है। इसकी जड रसना मूल से लगी है, यह अन्नादि के निगलने के समय शीघ्रता से श्वासमार्ग द्वार को बन्द कर लेती है।

√(१०) **लालाग्रन्थियां**[6]—ये चार है—दो कर्णमूलिक, एक चिवुकाधरीय और एक जिह्वाधरीय। इनसे निकलने वाली पतली चिकनी लाला :(लार) मुखकुहर के अन्दर अन्न का क्लेदन एवं चर्वण करने मे सहायक होती है। इससे क्लिन्न अन्नादि शीघ्र ही मधुर-विपाक हो जाता है। इनमे—

√**कर्णमूलिक**[7] (१३५ चित्र) नामक वडा, रुई के पिण्ड के समान लालाग्रन्थि दो-तीन तोले वजन का हे। यह कर्णमूल के सम्मुख और नीचे हनुमण्ड सन्धि को वेष्टन करके रहता है। इसके सम्मुख मे हनुकूटकर्पणी पेशी दीखती है, जो सङ्कुचित होती हुयी इस ग्रन्थि को पीड़न करके चर्वण कर्म की सहायता के लिये लाला का स्रवण करती है। प्रत्येक ओर इसका स्रोत कपोलिका पेशी का भेदन कर के मुख के अन्दर फैला है, उसका नाम कर्णमूलिक स्रोत[8] हे। यह तीन अंगुल लम्बा और कुश के नाल के बरावर मोटा है। इसका

---

१ The palatine Arches of Fauces, २ Anterior Pillar of the Fauces
३ Posterior Pillar of the Fauces ४ Tonsils (Palatine), ५ Epiglottis
६ Salivary glands ७ Parotid gland, ८ Porotid Duct or Stenon's Duct

[१३७ चित्र]

गलबिलद्वार।

[ग्रसनिका के पश्चिम भाग को विदारण करके दर्शित]
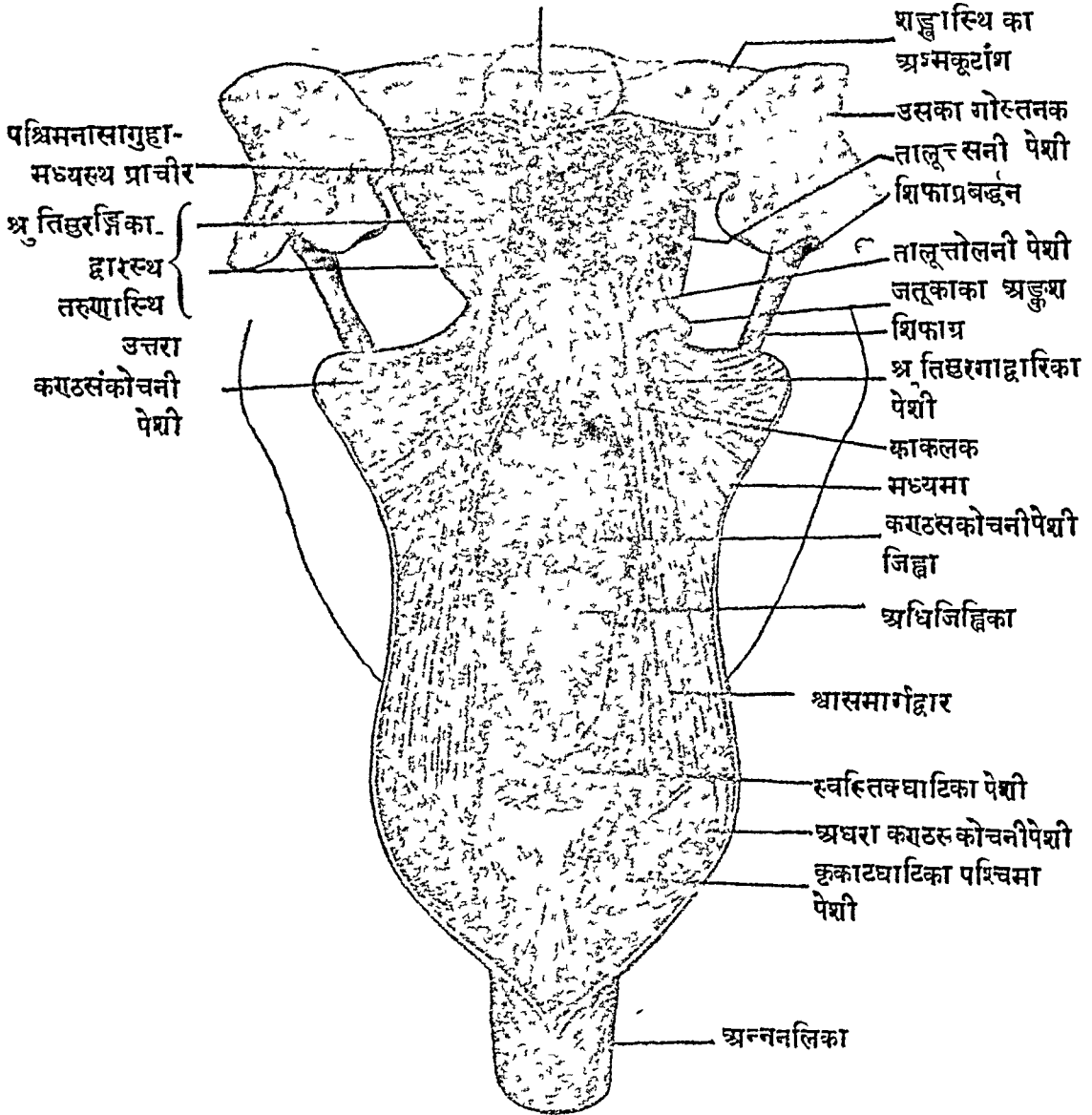
मुख मुखालिन्द मे ऊर्ध्व हनुमण्डल के द्वितीय चर्वणक दन्त के उदूखलके ऊपर है, जिसमें पतली शलाका प्रवेश हो सकता है।

यहा इस बात को विशेषतः स्मरण रखना चाहिये ताकि कर्णमूल पाक होने पर निर्विघ्न रूप से शस्त्र कर्म किया जा सके। इस ग्रन्थि का भेदन कर के बहिर्मातृका नामकी धमनी अन्तर्हानव्यादि दो शाखाओं के साथ ऊपर फैली है, और श्रुतिनाड़ी की शाखा के साथ वक्त्रनाड़ी भी इसी ग्रन्थि का भेदन करके गयी है। इसलिए भ्रम से धमनी का छेदन होने पर रक्त का अतिस्राव हो सकता है, और वक्त्रनाडी के छेदन से अर्दित[1] रोग हो सकता है। सन्निपात ज्वरादि मे मुख पाक के कारण प्रायः कर्णमूलिक ग्रन्थि का पाक हो जाता है। पहले से भली प्रकार मुख शोधन करने से इसका प्रतिषेध किया जा सकता है।

हन्वधरीय[2] ग्रन्थि—अधोहनुमण्डल के नीचे और गोद मे स्थित है। (१३५ चित्र)। यह आखरोट के फल के आकार की है। इसको पश्चिम मे भेदन करके वहिर्हानव्या नामकी धमनी (वक्त्रधमनी) फैली है। यह मुखभूमि को वनाने वाली पेशियों के नीचे गलप्रच्छदा नामकी प्रावरणी से दृढ़ रूप से ढंपी है। इसका भी स्रोत प्रायः तीन अंगुल लम्बा है। यह जिह्वाधरीय सेवनी के पार्श्व मे स्थित जिह्वाधरीय ग्रन्थि स्रोतों के मुख से प्रायः मिला है।

√**जिह्वाधरीय**[3] ग्रन्थि—(१३५ चित्र) निमौली के समान एक ग्रन्थि जिह्वा सेवनी के नीचे श्लैष्मिक कला से ढंपी एवं अधोहनुमण्डल के मध्य मे स्थित खात मे छिपी है। इसके दस अथवा वारह (कहीं पर वीस भी) स्रोत है। इनके मुख हन्वधरीय ग्रन्थि के स्रोत से मिल कर अथवा पृथग् ही जिह्वा सेवनी के पार्श्व मे खुलते है।

ग्रसनिका।

√**ग्रसनिका**[4]—(१३८ चित्र) अन्नादि के निगरण का द्वार सी वनी हुयी, आयतोदर मास कलामयी नलिका है, यह अन्ननलिका के शिखर मे रहती है। यह ग्रीवाकशेरुकों के सम्मुख में और मुख एवं नासागुहा के तथा स्वरयन्त्र के पीछे में है। इसका आकार धत्तूर के फूल के समान (ऊपर फैला हुआ और नीचे से सङ्कुचित) है। यह मुख्यतया कण्ठसंकोचनी नामकी तीन पेशियों से वनी है, इसका अभ्यन्तर भाग कला वेष्टित है।

---

१ अर्दित नाम मुखमण्डलार्धस्य पेशीक्रियालोपकरो वातव्याधि (Facial Paralysis).
२ Submaxillary gland ३ Sub-lingual gland ४ Pharynx.

[१३८ चित्र]

ग्रसनिका, अन्ननलिका और श्वासनलिका ।

(पृष्ठ भाग से देखी गयी)
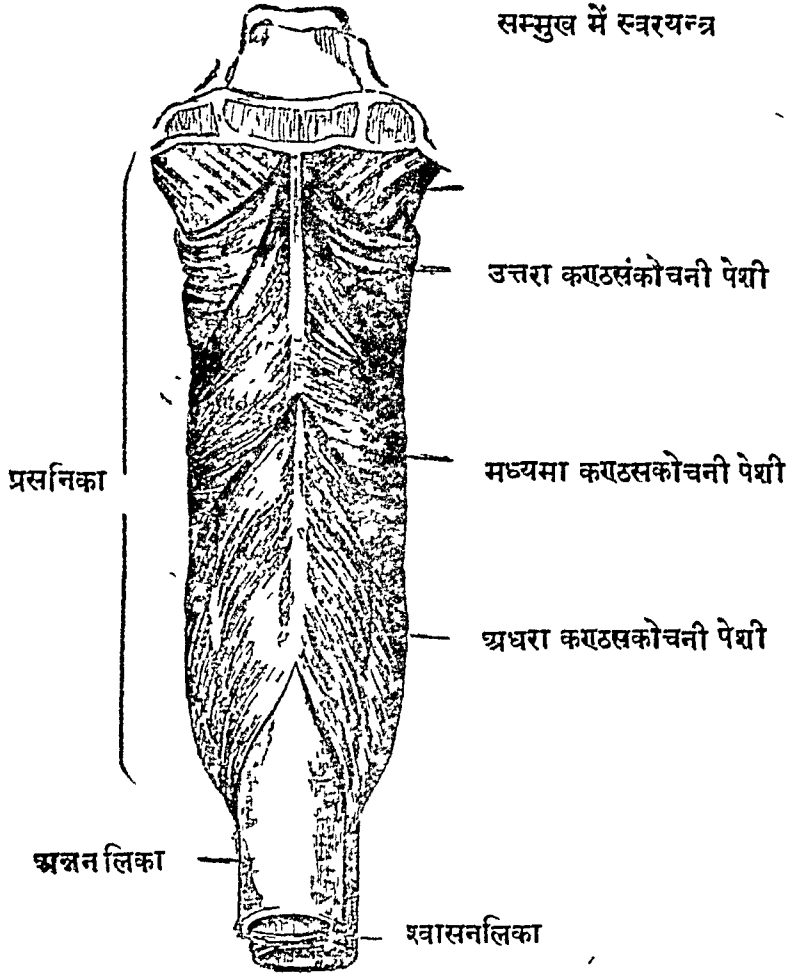
वर्णन की सुगमता के लिए इसके तीन भाग कल्पना किये गये हैं—ऊपर में नासा-गुहा पश्चिम, मध्य में गलद्वार पश्चिम और नीचे में स्वरयन्त्र पश्चिम भाग। इनमें—

(क) **ग्रसनिका का नासागुहा-पश्चिमभाग**[१]—में ये विशेषतायें दीखते हैं—यथा सम्मुख में नासा मध्यप्राचीर, इसके दोनों ओर दो पश्चिम नासागुहाद्वार,[२] उसके दोनों ओर श्रुतिसुरंगाद्वार[३] नामके दो पिण्ड जिनको दो

---

१ Naso-pharynx २ Choanoe, ३ Mouths of Auditory tubes

त्रिकोणतरुणास्थियां[1] वेष्टन करती है । नासागुहा के पीछे शिरोग्रीव सन्धि के सम्मुख तूलपिण्डाकार की ग्रसनिका ग्रन्थि[2] नामकी छोटी ग्रन्थि लगी है, इसकी वनावट उपजिह्विका की भांति है । नासागुहा के पश्चिमांश का अधोद्वार गलविल से मिला है, उसको अन्नादि के निगलने के समय सम्मुखस्थ कोमल तालु ऊपर उठ कर सर्वथा वन्द कर देता है, इससे अन्नादि नासागुहा के पश्चिमद्वार में नहीं घुसते हैं ।

√(ख) **ग्रसनिका का गलद्वार-पश्चिम**[3] भाग **गलविल** नामका है (१३६) । यह ऊपर में नासागुहा के पश्चिमांश से मिला है और नीचे में स्वरयन्त्र के पश्चिमांश से—कण्ठिकास्थि तक । इस के सम्मुख में सङ्कुचित गलविल-द्वार है, जो गलतोरणिकाओं से उपलक्षित है । पश्चिम में द्वितीय-तृतीय ग्रीवाकशेरुओं के कलावृत पिण्ड हैं । दोनों ओर उत्तरा और मध्यमा कण्ठसंकोचनी पेशियों के कला से ढंपे हुए पक्षांश हैं ।

√(ग) **ग्रसनिका का स्वरयन्त्र-पश्चिम भाग**[4] प्रायः कण्ठिकास्थि के पृष्ठ से आरम्भ कर के कृकाटिका-पृष्ठ के अन्त तक फैला है । यह कला से ढंपी हुयी "अधरा कण्ठसंकोचनी" नामकी पेशी से घिरा है (१३६ चित्र) । यह ऊपर गलविल से और नीचे अन्ननलिका से मिला है । इसके सम्मुख स्वरतन्त्रियों से उपलक्षित और अधिजिह्विका से युक्त त्रिकोण स्वरयन्त्रद्वार है ।

पूर्व कही हुयी दश पेशियां ग्रसनिका के चारों ओर रहती हैं । उनको यहां विस्तार से कहते हैं । ये एक एक और पांच पांच हैं—तीन कण्ठसंकोचनी, एक शिफागलान्तरीया और एक श्रुतिसुरङ्गाद्वारिका । इनमें—

कण्ठसंकोचनी नामकी तीन पेशियां[5]—उत्तरोत्तर आश्लेप कर के ग्रसनिका को घेरती हैं और दूसरे पार्श्व की तीन पेशियों से मिलती हैं (१३७।१३८ चित्र) । इन तीनों की कहीं पर "ग्रासनी पेशी" यह साधारण संज्ञा है । इसकी प्रावरणी दृढ़ स्नायुमय चद्दर के आकार की है, जो पश्चिम में ग्रीवावंश के सम्मुख भाग में बन्धी है । वहीं पर मध्यरेखा में इन छः पेशियों की सन्धिरेखा ग्रसनिका सेवनी[6] नामकी दिखायी देती है । इनमें—उत्तरा कण्ठसंकोचनी पेशी का प्रभव एक एक ओर जतूकास्थि का चरणफलक और अधोहनुमण्डल का पश्चिम दन्तोदूखल-

---

१ Torus २ Pharyngeal Tonsil ३ Oral part of Pharynx (or Cavity of Throat) ४ Laryngeal part of Pharynx ५ Constrictor muscles of the pharynx ६ Pharyngeal Raphe.

[१३९ चित्र]

शिरोग्रीवार्द्ध ।

(मुख नासिका-गल तालु आदि दिखाने के लिये मध्यरेखाछेद से प्रकोटकृत)
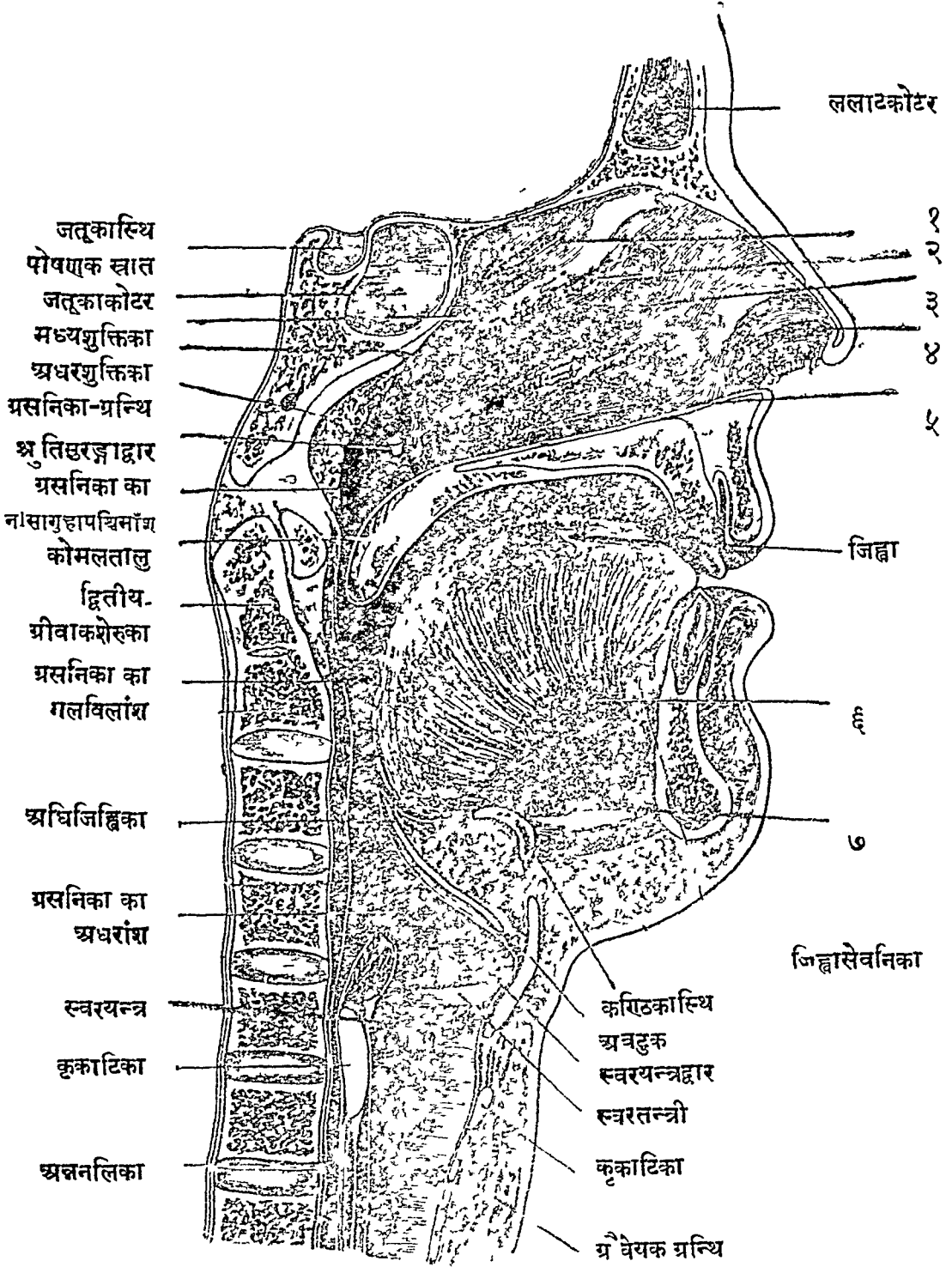
[१ । नासासुरङ्गा उत्तरा । २ ऊर्ध्वशुक्तिका । नासाशुरङ्गा मध्यमा । ४ नासालिन्द । ५ । नासासुरङ्गा अधरा । ६ । चिबुकाकजिह्वाकण्ठिका । ७ । चिबुककण्ठिका पेशी ।]

मूल है। यह मध्यमा का प्रभवस्थान कण्ठिकास्थि के अन्तराल के सहित दोनों शृङ्ग और शिफाकण्ठिका स्नायु है। अधरा पेशी मोटी प्रच्छदाकृति है, उसका प्रभव स्थान अवटु और कृकाटिका के दोनों पार्श्व हे । ग्रसनिका सेवनी दृढ़ स्नायुसूत्रों से बनी है ।

अन्ननलिका ।

अन्ननलिका[1] (१४० चित्र) प्रायः एक बालिश लम्बी और दो अंगुल मोटी मासमयी नलिका है, यह ग्रसनिका से निगले हुए अन्नपान को आमाशय मे पहुंचाती है। इसका ऊर्ध्व मुख ग्रसनिका से और अधोमुख आमाशय से मिला हे।

यह छठी ग्रीवाकशेरुका से आरम्भ हो कर ग्यारहवीं पृष्ठकशेरुका तक, पृष्ठवंश के सम्मुख भाग का आश्रय कर के, इसके साथ साथ रहती हे। वर्णन की सुगमता के लिये इसके तीन अंश कल्पना किये जाते है—ग्रीवागतांश, उरोगतांश और उदरगतांश। इनमें आदि और अन्त के भाग छोटे और तीन चार अंगुल लम्बे हैं । मध्यभाग दीर्घ और सात आठ अंगुल लम्बा है।

(व्यतिकर) इसके ग्रीवा में स्थित आदिम भाग के सम्मुख मे ये रचनाये दीखती है—यथा ग्रैवेयकग्रन्थि का वाम पिण्ड, अधरग्रैवेयकी सिरा धमनिया और नाड़ी आदि। पीछे में पृष्ठवंश। दक्षिण मे दक्षिणा महामातृका धमनी, अनुमन्या सिरा और आरोहिणी स्वरयन्त्र नाडी। वाम मे—ये ही सब वामा नामकी और मुख्या रसकुल्या।

उरोगुहा में घुसे हुए मध्यभाग के समुख उत्तर फुस्फुसान्तराल से दीखने योग्य रचनायें ये है—क्लोमनलिका, "अनाहत" नामका नाडीचक्र, वामा अक्षाधरा धमनी और महामातृका। महाधमनी का तोरण भाग अन्ननलिका को तिरछा लाघ कर पीछे फैला है। अन्ननलिका के वाम में वे ही दो धमनिया और महाधमनी के तोरण की शेष भाग। दक्षिण मे दक्षिणा उरस्या कला और आरोहिणी स्वरयन्त्रनाड़ी। पश्चिम में पृष्ठवंश और रसकुल्या।

इसके अनन्तर क्लोमविभाग स्थान को अतिक्रमण कर के पश्चिमाधार फुस्फुसान्तराल में घुसी अन्ननलिका के सम्मुख में क्रम से वामा क्लोम शाखा और दक्षिण फुस्फुसाभिगा धमनी है। इसके नीचे सम्मुख में हृदयधर कलाकोप पीछे में अवरोहिणी महाधमनी, मुख्या रसकुल्या और पुरोवंशिका सिरायें है।

---

१ Œsophagus of Gullet.

दोनों ओर फुस्फुसधर कलाकोष, प्राणदा नाड़िया, और चारो ओर इनकी शाखाओं से बना हुआ नाडीचक्र है।

इसके अन्तर महाप्राचीरा का भेदन कर के उदरगुहा में प्रविष्ट इसका अन्तिम भाग तिरछा हो कर आमाशय मुख से जुडा है। वहा पर इसके सम्मुख में यकृत् का वामपिण्ड, और वायी ओर वही एवं आमाशय स्कन्ध है। दक्षिण में यकृत्पिण्डिका दीर्घा। पश्चिम में महाप्राचीरा।

अन्ननलिका का निर्माण बहिर्भाग में आड़े और सीधे रूप में स्थित स्वतन्त्र पेशी-तन्तुओं से होता है, इनमे सीधी तन्तु सब से बाहर है। और सब से अन्दर में कुल तन्तुओं को ढापने वाली स्थूलकला है, जो इसके चारों ओर स्थित शलेष्मस्रावि ग्रन्थियों से चूती हुयी श्लेष्मा से सदा गीली रहती है। इसके चारों ओर नाड़ी-जालक और सिरा-धमनियों के जालक है। नाड़िया-नागिनी और प्राणदा की शाखा-प्रशाखायें है। धमनिया—अधर ग्रैवेकी, पर्शुकानुगा और अन्ननलिकानुगा धमनियों के शाखा प्रतान है।

यहा तक कहा हुआ अन्नपचन यन्त्र का पूर्व भाग उदरगुहा के बाहर में स्थित और अन्नपचन के सहायक गौण यन्त्र है। मुख्य यन्त्र आमाशय आदि उदरगुहामें है।

उदरगुहा।

उदरगुहा[1]—(१४१ चित्र) उदर के अन्दर स्थित बड़ी गुहा लौकी फल के सदृश आयतन वाली है, यह ऊपर में मध्य प्राचीरा के द्वारा उरोगुहा से विभक्त है, और नीचे में श्रोणिगुहा से मिली है। इसकी पश्चिम सीमा पृष्ठवंश, कटिलम्बिनी नामकी चार पेशियाँ और दो कटिचतुरस्रा पेशिया है। सब गम्भीर प्रावरणी से ढंपी है। सम्मुख सीमा मे और पार्श्वों में उदरान्तश्छदा नामकी पूर्व वर्णित गम्भीर प्रावरणी, निम्नस्थ पर्शुका और उपपर्शुकायें, और दोनों जघन कपाल है। सम्पूर्ण उदरगुहा की अन्तःपरिधि को ढापने वाली पतली कला—उदर्य्या नामकी है। इसको आगे कहेगे।

यह उदरगुहा बहुत से यन्त्र-तन्त्रों का धारण करती है। ये यन्त्र-तन्त्र आमाशय, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय, दोनों बृक्क, दोनों गवीनी, वस्ति, (मूत्र भरने पर), अवरोहिणी महाधमनी, अधरा महासिरा, रसकुल्या के सहित रसप्रपा, और मणिपूर नामक नाड़ीचक्र है।

---

१ Abdominal Cavity

वर्णन की सुगमता के लिये उदर का वहिर्भाग नव प्रदेशों में विभक्त किया गया है (१४१ चित्र)। इसको विभक्त करने वाली चार रेखाओं की कल्पना की जाती है—दो सीधी और दो आड़ी। इनमें दो सीधी रेखायें मध्यरेखा के दोनों ओर अष्टम उपपर्शुका के मध्यभाग के अनुक्रम से ऊपर से नीचे फैली है, और प्रत्येक रेखा स्तनचूचूक से वंक्षणरज्जु के मध्य विन्दु तक है। आड़ी रेखाओं में उत्तरा अर्थात् ऊपर की रेखा का नाम उत्तर-नाभिका है, यह नाभि के ऊपर दोनों नवम उपपर्शुकाओं के अग्रभागों को छूकर जाती है। अधरा अर्थात् नीचे की रेखा का नाम अधर-नाभिका है, यह दोनों जघनकपालों के शिखरों को छूती है। इस प्रकार नव भाग होने से नव प्रदेश वनते है। यथा—ऊर्द्धभाग में दक्षिण और वाम अनुपार्श्विक प्रदेश, मध्य मे हृदयाधरिक प्रदेश। मध्यभाग में—कटि के सम्मुख दोनों ओर दो कुक्षि या दो कटिपार्श्विक प्रदेश और मध्य में नाभि के चारों ओर परिनाभिक प्रदेश। अधोभाग मे दोनों ओर दो वंक्षणोत्तरिक प्रदेश, मध्य में अधिवस्तिक अथवा वस्ति प्रदेश।

इन प्रदेशों मे स्थित शरीर भागों को सदा स्मरण रखना चाहिए। यथा—

(१) दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेश मे[१]—यकृद् दक्षिणापिण्ड, वृहदन्त्र वा याकृत-कोण, और दक्षिण वृक्काश। हृदयाधरिक प्रदेश में[२]—अग्न्याशय का दक्षिणार्द्ध, यकृत का वाम पिण्ड, और दक्षिण पिण्ड का कुछ अंश पित्तकोष, ग्रहणी, अग्न्याशय, अधिवृक्क के सहित वृक्काश, अधरा महासिरा, प्रतीहारिणी, सिरा, अवरोहिणी महाधमनी, मणिपूर नामक नाड़ीचक्र और रसकुल्या आदि है। वाम अनुपार्श्विक प्रदेश में[३]—आमाशयस्कन्ध, प्लीहा, अग्न्याशय का पुच्छ, वृहदन्त्र का प्लैहिक-कोण और वाम वृक्काश है।

(२) दक्षिण कटिपार्विक प्रदेश में[४]—वृहदन्त्र का आरोहिभाग, दक्षिण वृक्क का अधरार्द्ध, और क्षुद्रान्त्र का एक भाग है। परिनाभिक प्रदेश में[५] वृहदन्त्र का आडाभाग, ग्रहणी का कुछ अंश वपामध्य भाग, अन्त्रबन्धनिकाओं के अनेक अंश और अधिकतः क्षुद्रान्त्र है। वाम कटिपार्श्विक प्रदेश मे[६] वृहदन्त्र का आरोहिभाग, वाम वृक्क का अधरार्द्ध, और क्षुद्रान्त्र का एक भाग है।

(३) दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश में[७]—दक्षिणा गवीनी, उण्डुक, उण्डुकपुच्छ

---

१ Right Hypochondriac Region २ Epigastric Region ३ Left Hypochondriac Region ४ Right Lumbar Regioh, ५ Umbilical Region. ६ Left Lumbar Region ७ Right Inguinal Region

(१४१ चित्र)

उदर और उरस के सम्मुख बहिर्भाग में कल्पित रेखायें और उनसे किये गये विभाग।
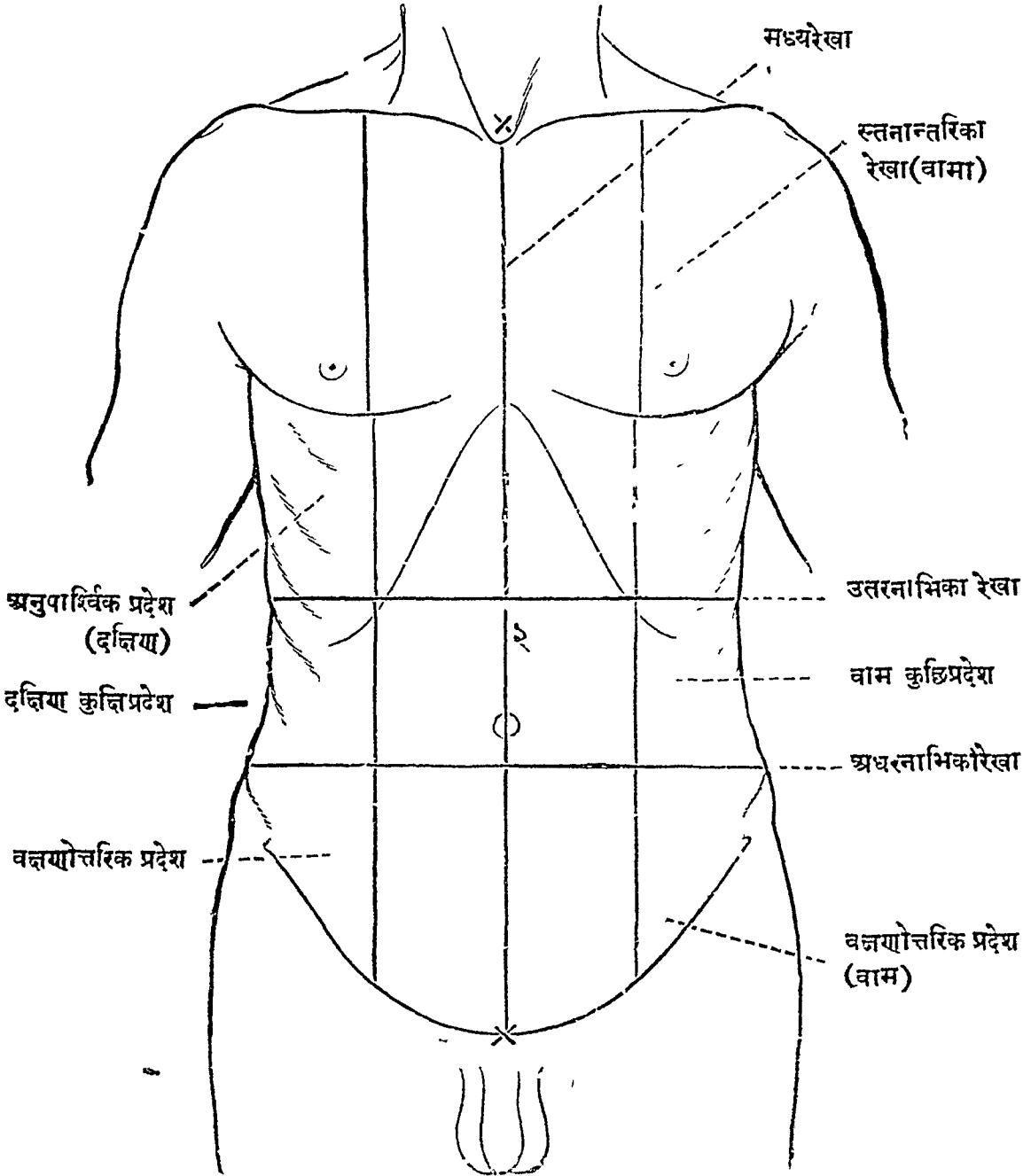
[१ हृदयाधरिक प्रदेश । २परि नाभिक ३ अधिवस्तिक प्रदेश वा वस्तिप्रदेश ।]

और वृषण की धमनी आदि है। अधिवस्तिक प्रदेश में[1]—क्षुद्रान्त्र का एकदेश, बालकों की वस्ति (युवकों में मूत्र से भरी जाने पर) और गर्भिणियों का गर्भाशय। वाम वंक्षणोत्तरिकप्रदेश में[2]—वाम गवीनी, बृहदन्त्र की कुण्डलिका और वृषणधमनी आदि है।

उदरगुहा में चारों ओर आठ छिद्र है। इनमे महाधमनी का छिद्र, अधरमहासिरा का छिद्र, और अन्ननलिकाविवर—ये तीन उदरगुहा की छत बनाने वाली महाप्राचीरा में हैं। दो अन्तर्वंक्षणीय नामके छिद्र दो वंक्षणप्रदेशो में है, और वही पर वंक्षणिका नामकी स्नायुरज्जुओं के नीचे वंक्षणदरी नामके और दो छिद्र हैं।

उदर्य्या कला।

√**उदर्य्या**[3]—नामकी एक पतली स्वच्छ चिकनी दो स्तर वाली महाकला उदर गुहा में (१४२ चित्र) है। यह एक स्तर द्वारा सम्पूर्ण उदरगुहा परिसर को, और दूसरे स्तर से इसके अन्तःस्थ यन्त्रों को भली प्रकार ढापती है। यह उरस्या कला की भाँति एक महाकोषरूप निश्छिद्र कला है। इस महाकोष के दोनों स्तरों के अन्दर पतली-चिकनी थोड़ी सी लसिका रहती है, जो स्निग्धता के कारण यन्त्रों के परस्परघर्षण से होने वाली क्षय को रोकती है। यही लसीका रोग के कारण विकृत हो कर बढ़ जाने पर जलोदर रोग उत्पन्न होता है।

इस कला के दो अंश कोष रूप के है—बाह्य महाकोष और आभ्यन्तर लघुकोष। इनमें बाह्य कोष के बहिः स्तर से प्रायः सर्वत्र उदरगुहा की परिधि ढंपी है। अन्तःस्तर से यकृत, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी, बृहद्न्त्र, क्षुद्रान्त्र, वस्तिशिखर और बीजकोषादि के साथ स्त्रियों का गर्भाशय ढंपा है। इन यन्त्रों को अच्छी तरह बाँधने के लिये यह कला जहा - जहा दुहरी हुयी है, वहा वहाँ यकृद् आदि की बन्धनिया बनती है। इनमे मुख्य बन्धनिया यकृत्, प्लीहा, आमाशय, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, बस्ति, गर्भाशय, गुदा आदि को धारण करती है। इनका विस्तार उस उस आशय के प्रकरण में कहेंगे।

आभ्यन्त्रर लघुकोष की स्थिति (रचना) यकृत-आमाशय के अन्तराल में इसके नीचे और पीछे है। इसका दीर्घाकृति अधराश स्थूलकला से बने हुए वपा नामक प्रच्छद में घुसा है (१४२ चित्र)। यकृद्वृन्त के नीचे दोनों कलाकोषों को मिलाने वाला उदर्य्यान्तरिक नामका छिद्र है। इस मार्ग से ही दोनों कलाकोषों के बीच में स्थित लसीका का परस्पर सम्बन्ध होता है।

---

१ Hypogastric Region २ Left Inguinal Region ३ Peritoneum,

(१४२ चित्र)

उदर्य्या नामकी महाकला के दोनों कोषों को दिखाने के लिये उदरगुहा का ऊपरसे नीचे किया हुआ छेद (स्त्री शरीर का)
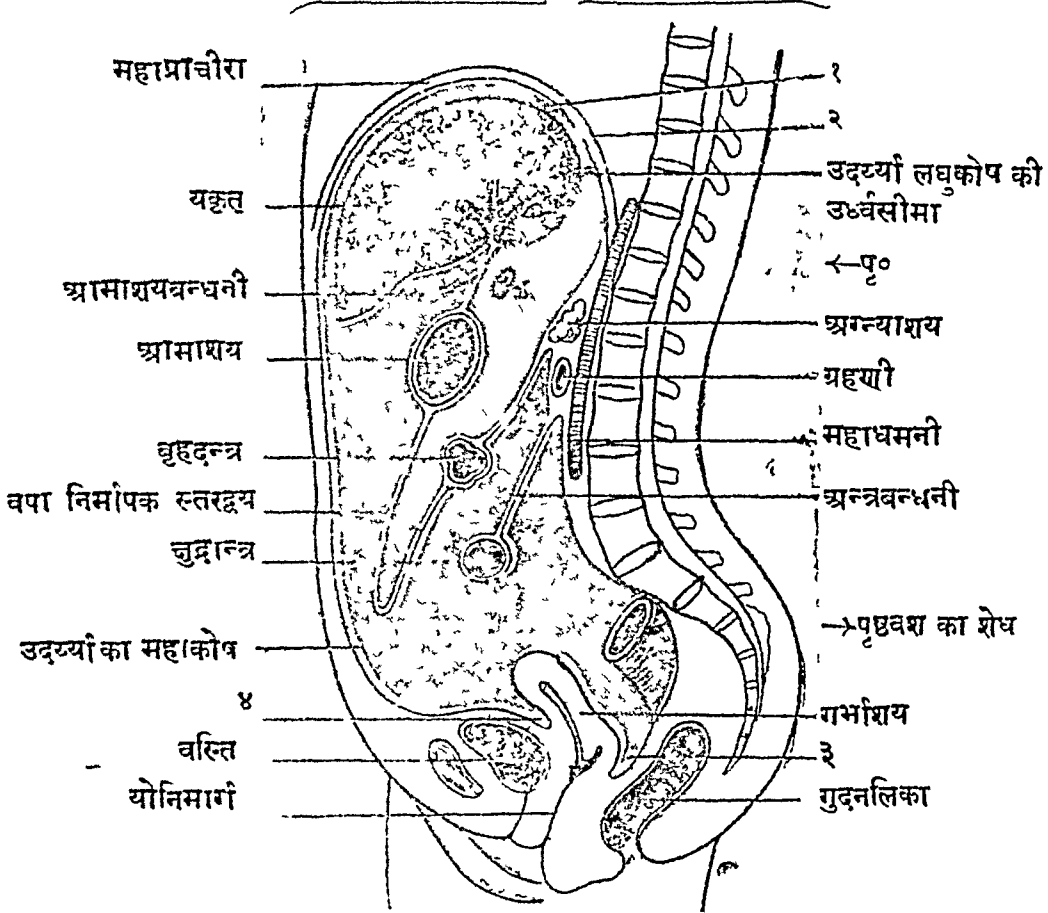
१ महाकोष के यकृतपृष्ठ स्थित चरमसीमा।

२ उदर्य्या से रहित यकृतपृष्ठांश।

३ योनिगुदान्तरीय स्थालीपुट।

४ वस्तिगर्भाशयान्तरीय स्थालीपुट।

पृ० पृ० पृष्ठवंश।

[चित्रमेंबाण के अग्रभाग से चिह्नित उदर्यान्तरिक छिद्र और लघुकोष।

वपा[१]—उदर्य्या कला के चार स्तर वाला भाग वेद में "वपा" नाम से प्रसिद्ध है (१४३ चित्र)। यह मोटी उजली पर्दे के समान हो कर अन्त्रों को सम्मुख में ढापती है। यह आमाशय की अधोधारा से लटकती हुयी बृहदन्त्र के अनुप्रस्थ भाग की ओर क्षुद्रान्त्र की रक्षा करती है। इसकी अधोधारा खुली अर्थात कहीं पर नहीं जुडी है। मेदस्वी पुरुषों के उदर मे मेद का सञ्चय विशेषतः इसी कला में हुआ करता है।

उदर्य्या कला के स्थान - स्थान पर दुहरे होने से बने हुए कई स्थालीपुट हैं—इसमे गुदा, वस्ति, योनि, गर्भाशय आदि के सम्बन्ध से स्त्रियों मे दो स्थालीपुट है—वस्ति-गर्भाशयान्तरीय[२] और योनि-गुदान्तरीय[३], ये अपने नामों से स्पष्टार्थ हैं। पुरुषों मे उसी स्थान पर वस्ति-गुदान्तरीय[४] नामका एक ही स्थालीपुट रहता है। अन्य स्थालीपुट ग्रहणी के चारों ओर पाच-छः, उण्डुक के चारों ओर तीन और कुण्डलिकान्तराल मे एक है।

निम्नलिखित आशय चारों ओर पूर्णतः उदर्य्या कला से ढंपे रहते है—यकृद्, आमाशय, ग्रहणी का उत्तरा, प्लीहा, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र का अनुप्रस्थ भाग, कुण्डलिका और उत्तरगुद। स्त्रियों में दोनों वीजकोप, दोनो वीजस्रोत और गर्भाशय भी, यह विशेपता है। वीजस्रोतों के पुष्पित मुख उदर्य्या कोप के भीतर खुलते हैं[५]।

निम्नलिखित आशय अंशमात्र में उदर्य्या कला से ढंपे है ग्रहणी का अनुप्रस्थ भाग और अधर भाग, उण्डुक, बृहदन्त्र का आरोहि भाम और अवरोहि भाग, मध्यगुद, योनि का उत्तराश, वस्तिपृष्ट। उदरच्छदा कला निम्नलिखित आशयों का किञ्चिन्तमात्र स्पर्श करती है यथा—अग्न्याशय, दोनों बृक्क और दोनों अधिवृक्क।

आमाशय।

√ **आमाशय**[६]—खाये पीये अन्न पान का प्रथम आधार, मृदुमांश से बना, छोटी मशक के आकार का है। यह उदर के वाम अनुपार्श्विक भाग और हृदयाधरिक भाग को आश्रय कर के तिरछा रहता है (१४४।४५)। इसका ऊर्ध्वमुख महाप्राचीरा का भेदन कर के निकली हुयी अन्ननलिका के मुख से मिला है और अधोमुख ग्रहणी मुख से।

---

१ Great Omentum २ Vesico uterine Pouch ३ Recto-uterine pouch ४ Recto-vesical Pouch ५ जिससे कभी बीज स्रोतों में भी गर्भ उत्पन्न होता है। ६ Stomach

[१४३ चित्र]

वपा और अन्त्रबन्धनियां।

(यहा वपा को ऊपर खींच कर नीचे भाग दिखाये गये है।)
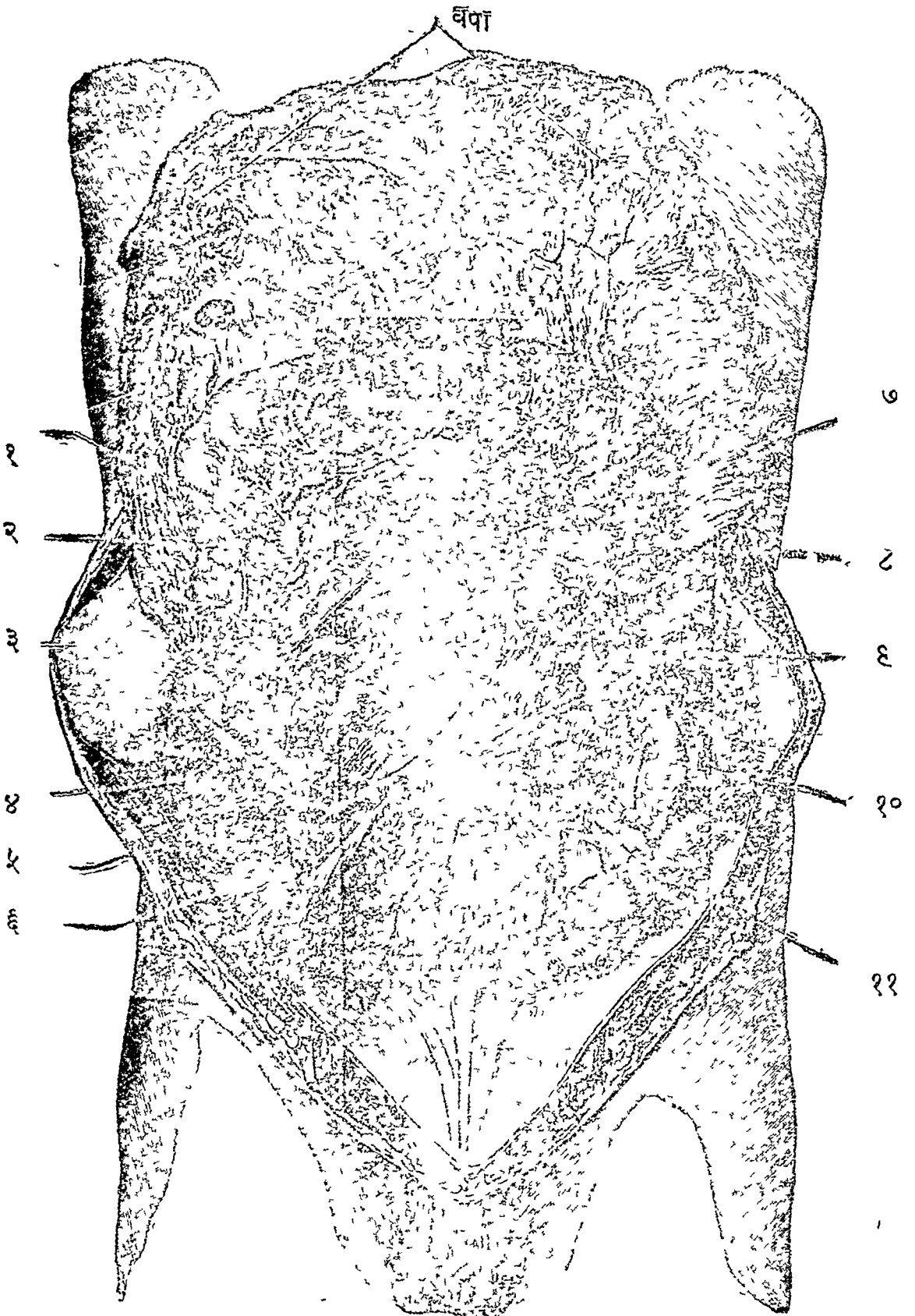
[१ बृहदन्त्रीय मेद पुष्पिकाये। २ बृहदन्त्रपट्टिका। ३ उदर्या नामकी कला का परिसरीय-भाग। ४ उण्डुकबन्धनी। ५ उण्डुक खात। ६ उण्डुक पुच्छ। ७ अनुप्रस्थ बृहदन्त्र की बन्धनी। ८ बृहदन्त्र का प्लीहान्तिक कोष। ९ क्षुद्रान्त्र (बायी तरफ खींच कर गिराया गया)। १० उण्डुक (रज्जुबन्धनसे आकृष्ट)। ११ क्षुद्रान्त्र बन्धनी।

[१४४ चित्र]

आमाशय की आकृति तथा निर्माण।
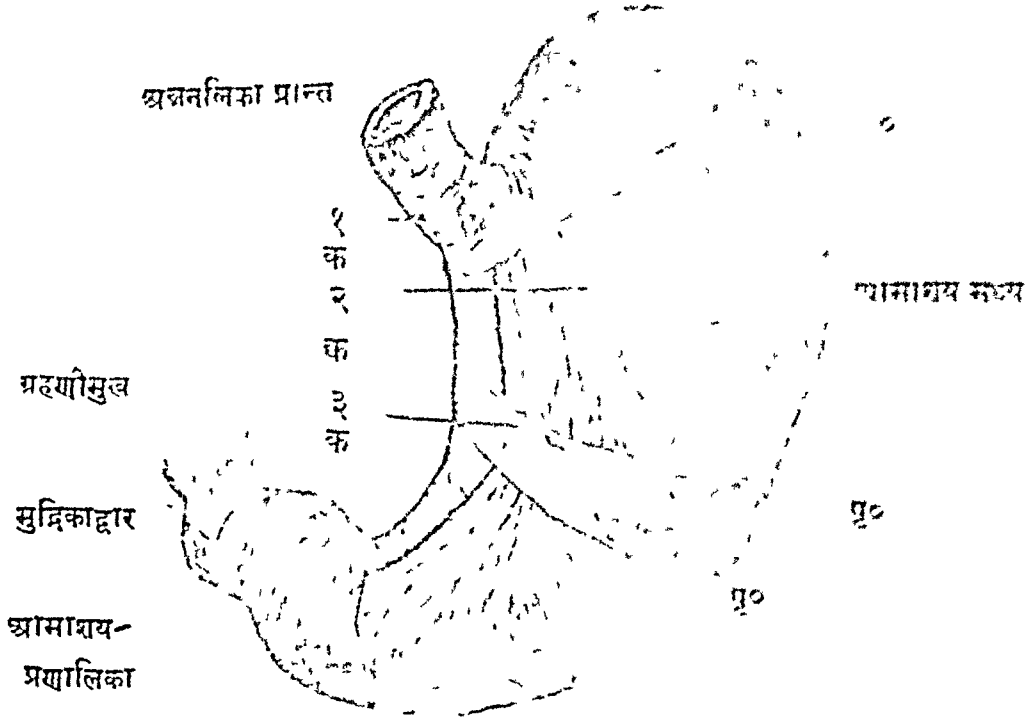
[क-क-क—आमाशयकोष्ठिका धारा। पृ-पृ-पृ—आमाशयपृष्ठिका धारा।
१ हार्दिकद्वार। २ तिरश्चीन मांसतन्तु। ३ अनुप्रस्थ मांसतन्तु।]

इसकी लम्बाई लगभग एक बालिश्त की है और चौड़ाई पांच-छः अंगुल है परन्तु खाने वालों में अधिक होती है। इसके ऊपर और वाम में महाप्राचीरा। नीचे वपा से ढंपा हुआ बृहदन्त्र का अनुप्रस्थांश। दक्षिण में यकृत्। वाम में प्लीहा। पीछे में अग्न्याशय है।

अन्नपान के अधिक खाने से आमाशय फैल कर लम्बाई और चौड़ाई में बढ़ कर कुछ मुड जाता है। तब यह नाभि तक लटक कर मध्योदर तक आ जाता है। बहुत खाने वालों में यह सदा ही फैला रहता है, और क्रमशः आमाशयविस्फार[1] नामके दुःख देने वाले रोग को उत्पन्न करता है।

इसमें नौ अवयव विशेष दर्शनीय हैं—दो द्वार, दो धारायें, दो तल, आमाशयस्कन्ध आमाशय-मध्य और आमाशय प्रणालिका। इनमें—

---

१ Dilatation of Stomach

(१) **दो द्वार**—दो प्रान्तों में स्थित है। इनमें ऊर्ध्व द्वार अन्ननलिका द्वार से मिला है—इसका नाम हार्दिकद्वार[१] है (हृदय के समीप होने से)। अधो-द्वार-ग्रहणीमुख से मिला है—इसका नाम मुद्रिकाद्वार[२] है। क्योंकि यह मुद्रिका (अंगूठी) के आकार की, संकोच विस्फारशील कला से आवृत माशमय कपाटिका द्वारा सुरक्षित है। इस कपाटिका नाम—मुद्राकपाटिका[३] है।

(२) **दो धारायें**—ऊर्ध्व धारा और अधोधारा। खाली आमाशय की यही पूर्व-पश्चिम धारायें होती है। इनमे ऊर्ध्व धारा अन्ननलिका की दक्षिण धारा से मिली हुयी छोटी और दक्षिण की ओर मुख किये है। इसका नाम आमाशय क्रोड़िका[४] धारा है। अधोधारा आमाशयस्कन्ध को बायीं ओर से ढाप कर आमाशय-तल तक पहुंचती है। इसका नाम आमाशय पृष्ठिका अथवा आमाशय तलिका[५] धारा है। इस धारामें पूर्व वर्णित नामी स्थूल कला लगा है।

(३ (**दोनों तल**—दोनों धाराओं के अन्तराल मे स्थित आमाशय के बाह्यप्रदेश है। इनका पुरस्तल और पश्चिम तल है। रिक्त आमाशय की संकुचित अवस्था में कुछ पलट जाने पर ये ही ऊर्ध्वतल और अधस्तल हो जाते है। आमाशय के अन्दर का वर्णन इसकी वनावट के वर्णन में आवेगा।

(४) **आमाशयस्कन्ध**[६]—आमाशय का कुब्जाकार स्कन्ध है। यह बामानुपार्श्विक प्रदेश मे महाप्राचीरा की गोद मे स्थित है। यह आमाशय का सब से फैला हुआ भाग है। यह बायीं ओर कलाबन्धनी से बन्धा हुआ है।

(५) **आमाशयमध्य**[७]—आमाशय का मध्यभाग, चौड़ा पेट वाला है, यही प्रधान रूप से अन्नपान को धारण करता है।

(६) **आमाशय प्रणालिका**[८]—मोटे नल के आकार की आमाशय का अन्तिम भाग है। यह पित्तकोप के समीप में स्थित ग्रहणी से मिली है, और इसके अन्त में अन्दर-मुद्राकपाटिका दिखायी देती है।

आमाशय चार (बृत्ति) दिवारो से वना है। यथा—बहिर्भाग में उदर्य्या कला-मयी बृत्ति, इसके अन्दर मासमयी बृत्ति, इसके अन्दर संयोजक तन्तुमयी बृत्ति, और इसके अन्दर (अन्दर की बृत्ति स्थूलकलामयी आभ्यन्तरी बृत्ति है। इनमें--

---

१ Cardiac Orifice २ Pyloric Orificc, ३ Pyloric Valve ४ Lesser Curvature ५ Greater Curvature, ६ Fundus, ७ Body of Stomach, ८ Pyloric Vestibule,

[१४५ चित्र]

आमाशय का अभ्यन्तर भाग ।

(चीर कर दिखाया गया है)
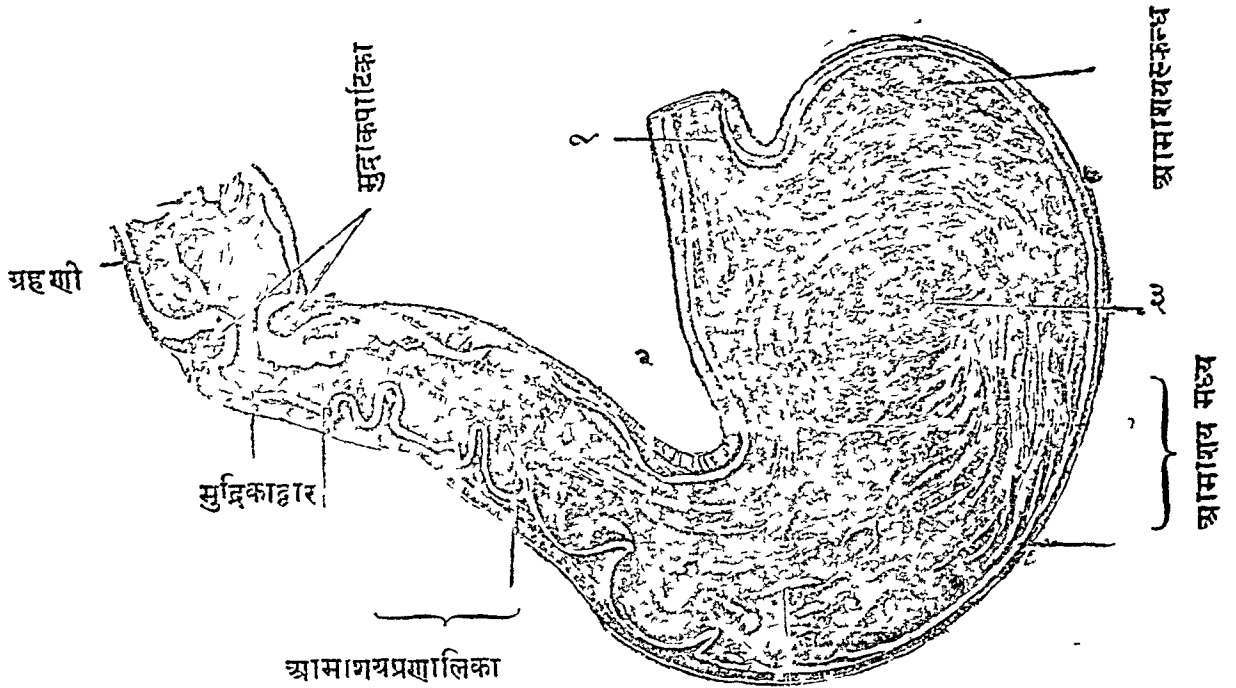
वलीराजियां

[१ आमाशय का हार्दिकद्वार । २ आमाशयक्रोड़ । ३ आमाशयपृष्ठिका धारा ।]

(क) बहिर्वृतिः[१]—उदर्य्या कला के सामने और पश्चिम देशों में फैले हुए दो स्तरों से बनती है। यह प्रबन्धन स्थानों को छोड कर अन्यत्र सब जगह सम्पूर्ण आमाशय के बहिर्देश को ढापती है। इनमें दुहरे हुए उदर्य्या कला के अंश आमाशय को कलामयी बन्धनियों के द्वारा यकृत्, प्लीहा और महाप्राचीरा के साथ बांधते हैं। आमाशय की अधोधारा वपाबन्धन के द्वारा बृहदन्त्र के अनुप्रस्थांश से बन्धी है।

(ख) मांसमयी वृति[२]—यह लम्बाई में आड़े रूप में और तिरछे रूप में लगे हुए तीन प्रकार के स्वतन्त्र पेशीतन्तुओं से बनती है। इनमें लम्बाई के तन्तु सब से बाहर की ओर हैं। इसके अन्दर आड़े तन्तु सम्पूर्ण आमाशय को घेर कर स्थित हैं, इसके अन्दर तिरछे तन्तु हैं।

---

१ Serous Coat २ Muscular Coat.

(ग) संयोजनतन्तुमयी बृति[1]—आभ्यन्तर कला के सम्यक् प्रबन्धन के लिये है। संयोजनतन्तु मकडी के धागे की भाति सूक्ष्म स्नायुसूत्र है। इसी बृत्ति में पाचक रस को स्रवण करने वाली ग्रन्थिया सिरा, धमनी और रसायनियों के जालक फैले है।

(घ) आभ्यन्तरी बृति[2]—स्थूलकलामयी है। यह कला आमाशय की रिक्तावस्था में बृद्ध पुरषों के शरीर की त्वचा की भाति वलियों से चिह्नित और प्रशिथिल होती है (१४२ चित्र में)। इसमें पाचक-अम्लरस को स्रवण करने वाली अनुग्रन्थियों के एवं क्लेदन श्लेष्मा को स्रवण करने वाली अणुग्रन्थियों के मुख खुलते है। इनमे पाचक रस को स्रवण करने वाली ग्रन्थिया अंगुल मात्र स्थान में सौ से अधिक है—ऐसा परीक्षकों का सिद्धान्त है। भोजन के समय यह प्रयोजन के अनुसार भुक्त विपाक के लिये अम्लरस का क्षरण करती है।

आमाशय का पोषण—आमाशय क्रोडिका और आमाशय तलिका धमनियों की शाखा प्रतानों मे होता है। ये सब धमनिया महाधमनी की अर्द्धोदरिका नामकी शाखा से उत्पन्न होती है। इसी नामकी सिराये (अधिक) भुक्तरस युक्त रक्त को लेकर प्रतीहारिणी महासिरा मे घुसती है। यहा चारों ओर से आमाशय को घेरने वाली रसायनिया दोनों धाराओं के समीप में स्थित रसग्रन्थियों से व्याप्त है।

यहा के नाडी प्रतान दोनों प्राणदा नाड़ियों की शाखा - प्रशाखा - अनुशाखा रूप तथा मणिपूर चक्र से उत्पन्न नाड़िया है। यहा पर यह स्मरण रखना चाहिए कि आमाशय में अजीर्णादि से उत्तेजित हुए प्राणादा नाड़ियों के शाखा प्रतान हृदय-फुस्फुस आदि में फैले दूसरे शाखा प्रतानों को कुपित कर देते है। तब प्रायः वातिक हृद्रोग और वातिक श्वास कास उत्पन्न होता है। प्रायः तमक श्वास भी इसी कारण से उभरता है।

क्षुद्रान्त्र।

क्षुद्रान्त्र[3] (अथवा क्षुद्रान्त्र समूह)—कोमल मास से बनी बहुत लम्बी नलिका है, (१३४।१५३ चित्र में), यह नाभि के चारों ओर रज्जुराशि की भाति इकट्ठी कर के रक्खी है। आमाशय का अर्धपक्व अन्न यहा पर धीरे - धीरे भली प्रकार पचता है। इसीलिये इसकी "पच्यमानाशय" संज्ञा है। कही-कही पर बृहदन्त्र के सहित क्षुद्रान्त्र की पक्वाशय संज्ञा भी होती है। परन्तु यह संज्ञा प्रधानतः बृहदन्त्र की

---

१ Sub Mucous or Arcolar Coat २ Mucous Coat ३ Small Intestine
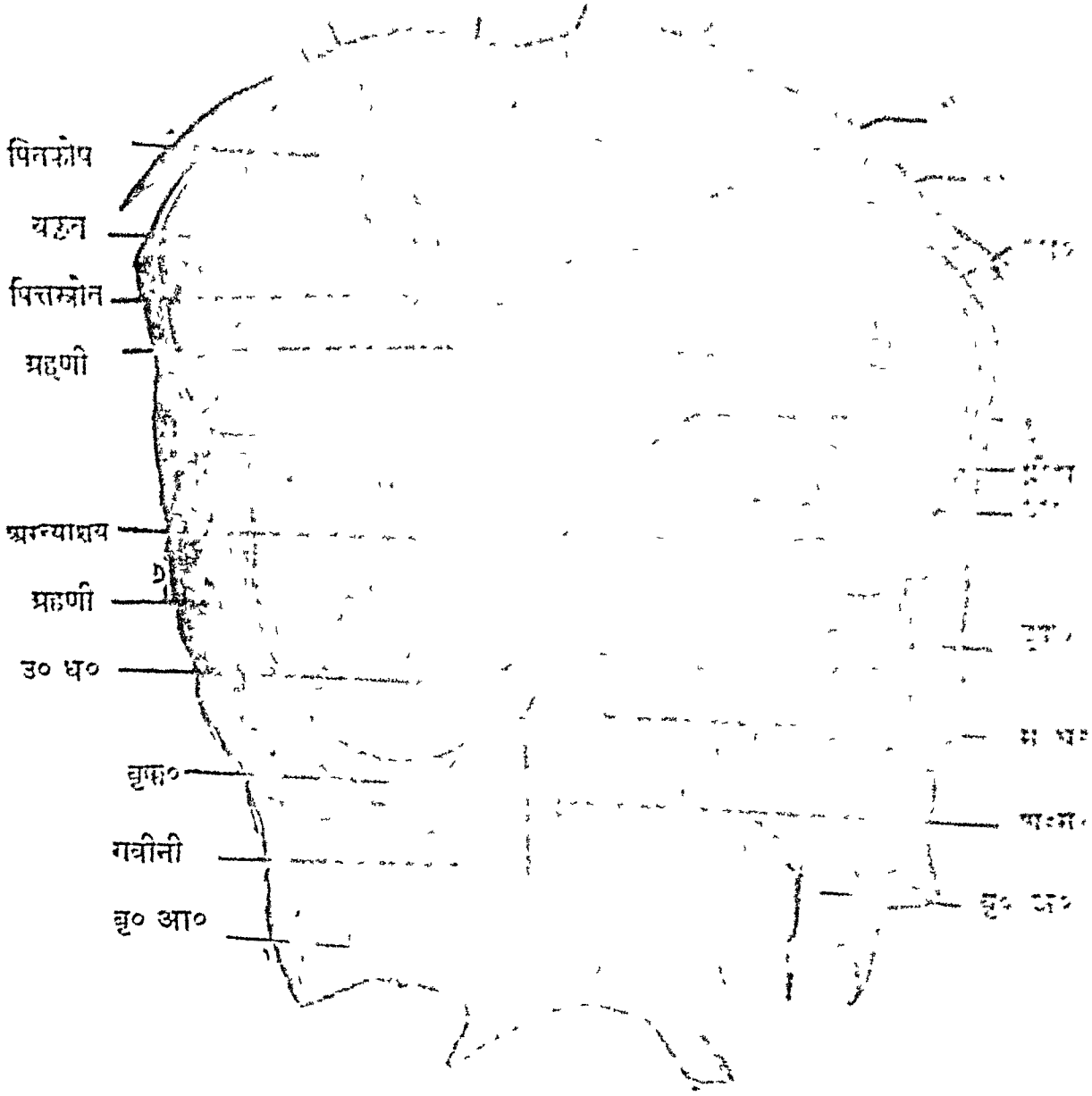
ही है। इसका ऊर्द्धमुख आमाशय से और अधोमुख बृहदन्त्र के उण्डुक भाग से मिला है। इन क्षुद्रान्त्रों की लम्बाई पुरुषों में साढ़े तीन व्याम (पाच हाथ) और स्त्रियों में तीन व्याम है—ऐसा प्राचीनों का कथन है। यह लगभग मान है, क्योंकि प्राय. अधिक या न्यून लम्बाई देखी जाती है। इनकी मोटाई हाथ के अंगूठे की भांति है।

ये उदर्य कला से बनी बन्धनियों के द्वारा पृष्ठवंश के सम्मुख भाग में मिली रहती है। इनका नाम "अन्त्रबन्धनी"[१] है।

बृहदन्त्र अनुप्रस्थ भाग के साथ क्षुद्रान्त्र वपा नामकी मेदो बहुल स्थूलकला से सम्मुख से ढंपे हे। क्षुद्रान्त्रों के चारों ओर बृहदन्त्र दिखायी देता हे। वर्णन की सुगमता के लिये क्षुद्रान्त्र के तीन भाग कल्पना किये जाते है—ग्रहणी, मध्यान्त्रक और शेषान्त्रक। इनमें—

ग्रहणी[२] क्षुद्रान्त्र का आदि भाग का नाम ग्रहणी है। यह बारह अंगुल लम्बा (१३४।१४६।१४७ चित्र) है यहा पर पित्तकोष से आया हुआ पाचक पित्त, और अग्न्याशय से आया हुआ आग्नेय रस अर्द्धपक्व अन्न के सम्यक् परिपाक के लिये सम्मिलित-मुख दो स्रोतों से चूता है। आमाशय का शेषभाग और ग्रहणी मुख के बीच में मुद्रिका द्वार[३] नामका द्वार है।

अन्त्र का यह भाग कुटिल गति से अग्न्याशय के शीर्ष भाग को गोद मे लेकर नीचे फैला है और अनुप्रस्थ बृहदन्त्र के पश्चिम में रहता है। फिर बायीं ओर मुख करके पृष्ठवंश को लांघते हुए द्वितीय कटिकशेरुका के बाम पार्श्व तक जाता है। इसके पश्चात् फिर तिरछा हो कर नाभि की ओर चलता है—यह इसकी स्थिति की बिचित्रता हे। ग्रहणी को चीरने पर इसकी आभ्यन्तर वृत्ति में पूर्वोक्त दोनों स्रोतों का एक सम्मिलित मुख दीखता है, जो शलाका प्रवेश के योग्य (१४७ चित्र। और इससे रसाकुरिकाओं को धारण करने वाली वलीराजिया भी इसके चारों ओर दिखायी देती है।

यहा पर यह स्मरण रखना चाहिये—ग्रहणी की दुर्वलता से और क्रिया की हानि होनेके कारण प्रायः ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है। यह आधे पके अन्न को लेती है और इससे भुक्त मार्ग का अर्गल सी रह कर अन्न को विशेषतः पचाती है। कहीं कहीं ग्रहणी पद से ग्रहणी की अन्तरावरणी कला का भी वोध होता है।

---

१ Mesenteries २ Duodenum, ३ Pyloric Orifica

[१४७ चित्र]

ग्रहणी और अग्न्याशय।
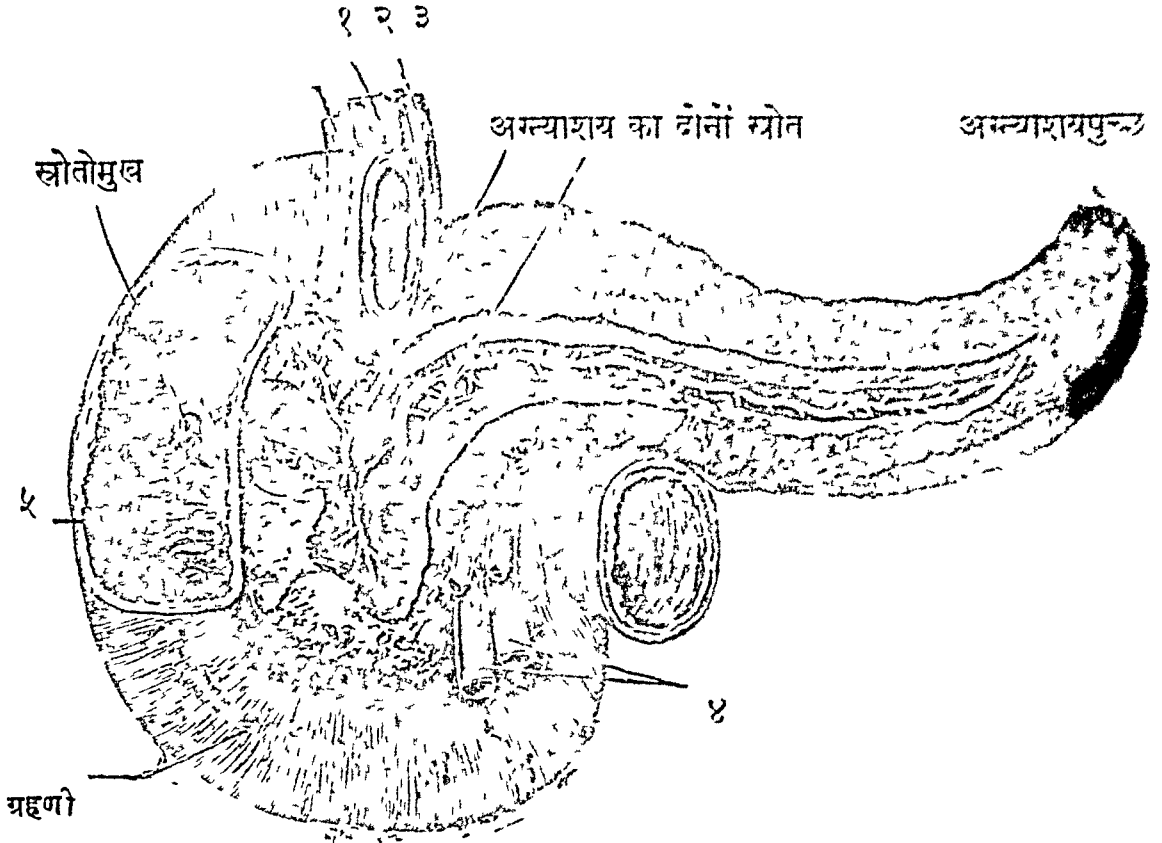
[१—पित्तस्रोत। २—प्रतीहारिणी महासिरा। ३—याकृती धमनी। ४—उत्तरान्त्रिकी सिरा और धमनी। ५—ग्रहणी का अभ्यन्तर भाग (चीर कर दिखाया गया) अग्न्याशय भी बीच मे चीर कर दिखाया गया।]

मध्यान्त्रक[१] यह क्षुद्रान्त्रों का ग्रहणी से मिला पाच-छ: हाथ लम्बा मध्यभाग है। यह अधिकत: नाभि के चारों ओर स्थित है, और पीछे में अन्त्रबन्धनियो से दृढ बन्धा हुआ है।

शेषान्त्रक[१] यह क्षुद्रान्त्र का अन्तिम भाग है। यह अधिकतः अधिवस्ति देश में स्थित है। इसका अध:प्रान्त बृहदन्त्र के उण्डुक नाम वाले आदि भाग से दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश मे बन्धा है। इसकी बन्धनी अर्द्धचन्द्राकार दो खातों से अंकित है।

१ Jejunum Ileum.

क्षुद्रान्त्रों की रचना आमाशय की भांति चार वृतियों से बनी हुई है। यथा—

(क) उदर्य्या वृति[1]—उदर्य्या कला से बनी है, यह ग्रहणी को छोड़ कर शेष सब अन्त्रों को ढापती है। यह अन्त्रनलिका को सम्पूर्ण रूप से वेष्टन करके फिर दूसरी हो कर अपनी दो स्तरों से बनी हुयी दीर्घा अन्त्रबन्धनियों द्वारा अन्त्रों को धारण करती है। परन्तु ग्रहणी, सम्मुख में उदर्य्या कला से थोडी सी मात्र ढंपी है, इसके पीछे में कोई अन्त्रबन्धनी नही है।

(ख) पेशीवृति[2]—स्वरतन्त्र पेशीतन्तुओं से बनी है। पेशीतन्तु बाहर से लम्बाई के रूख, और अन्दर अन्ननलिका को आड़े रूप मे घेर कर फैले है।

(ग) योजनी वृति[3]—मकडी के तन्तुओं की भांति सूक्ष्म स्नायु सूत्रिकाओं से बनी संयोजनी द्वारा आभ्यन्तरा कला से जोडने वाली है। यह श्लेष्मस्रावि और क्षाररसस्रावि अणुग्रन्थियों का स्थान हे।

(घ) आभ्यन्तरी वृति[4]—मृदु-चिकनी कला से बनी हे और पूर्वोक्त अणुग्रन्थिकों के स्रोतों के मुख को धारण करती (१४८ क चित्र) है। यह कला कदम्बकेशर की समान रस को आकर्पण करने वाली अकुरिकाओं से भरी है और आड़े रूप वाली वलीराजियों से उपलक्षित है। ये रसाकुरिकायें[1] क्षुद्रान्त्रों के अन्दर हजारों दिखायी देती है। प्रत्येक रसाकुरिका के मध्य मे एक - एक सूक्ष्म रसायनीजालिका है (१४८ ख चित्र), यह सिराधमनीजालकों से चारों ओर घिरी है और मासतन्तुओं से सुरक्षित है। परीक्षकों का कथन हे कि क्षुद्रान्त्रों मे इन अंकुरिकाओं की संख्या पचास लाख हे। इन रसाकर्पणियों द्वारा खीचा हुआ सौम्य अन्नरस उदर की रसायनियों में सञ्चरण करता हुआ मध्यमार्ग मे अन्त्रमूलिक रसग्रन्थियों से शोधित हो कर क्रम से रसप्रपा में घुसता है। रसग्रन्थिया अधिकत. अन्त्रबन्धनियों की दोनों स्तरों के अन्दर और चारों ओर दिखायी देती है—यह कह चुके है।

अन्त्रपोपणी धमनिया—उत्तरान्त्रिकी और अधरान्त्रिकी धमनियों के पूर्व वर्णित शाखा प्रतान है। इनकी सहचरी सिरायें प्रतीहारिणी महासिरा मे घुसती हैं और रक्त से मिले आग्नेयरस को ले जाती है—यह विशेपता है।

अन्त्रों की नाडिया प्रधानतः मणिपूर नामक नाडीचक्र से उत्पन्न होती है। ये समान वायु का क्रिया साधन है। इनकी क्रिया रस का आदान और अन्त्रसंकोचन आदि है, इनका वर्णन नाडीतन्त्र वर्णन मे आवेगा।

---

१ Peritoneal coat २ Muscular Coat ३ Sub mucous Coat
४ Mucous Membrane

[१४८ चित्र]

क्षुद्रान्त्राभ्यन्तर स्थित बलिराजियां और रसांकुरिकायें।
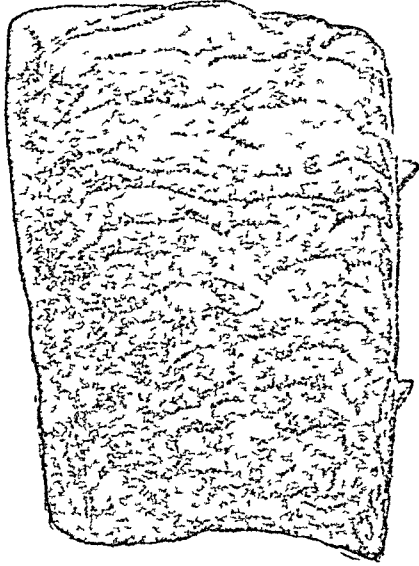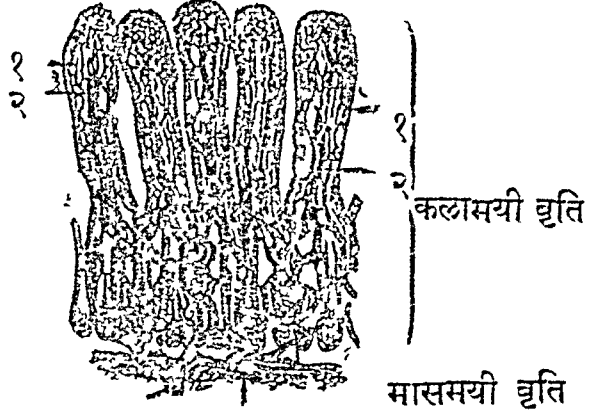
[१ । रसायनीजालिका । २ । मध्यसिरा ।
(ख) चित्रस्थित सूक्ष्मपदार्थ अणुवीक्षणयन्त्रकी सहायता से देखी जाती है ।

बृहद्न्त्र ।

बृहद्न्त्र[1]—क्षुद्रान्त्र से विपक्क और मल वनते हुए अन्नका आधार स्थूलनलक (१३४।१४६ चित्रों मे) है । इसकी लम्बाई साढ़े तीन हाथ और मोटाई पादागुष्ठ के समान अथवा कुछ अधिक है । यह उदरगुहा में दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश से उठ कर वामावर्त्त से (वामचक्र से) क्षुद्रान्त्रों को प्रदक्षिण कर के वाम वंक्षणोत्तरिक प्रदेश मे पहुंचता है । और फिर वहा से कुण्डलिका वना कर पीछे मध्यरेखा में सीधे हे और उतरता पृष्ठवंश के सम्मुख धनुप के समान टेढ़ी गुदनलिका मे परिणत हो जाता है ।

इस बृहदन्त्र की पक्वाशय या मलाशय संज्ञा प्राचीन है । यह पचे हुए अन्न के जलीय भाग को शोपण करता है, जिससे वह सर्वथा शुष्क मलरूप हो जाता है ।

इसकी वनावट क्षुद्रान्त्र की भाति है, किन्तु यहा अंकुरिकाओं का अभाव होता है। विशेपतः पेशीमयी वृति तीन पतली दीर्घ पटिकाओं से चिह्नित है, जिनसे बृहदन्त्र के छोटे-छोटे अंश थैलियों के समान गुथे से रहते है ।

---

१ Large Intestine or Colon

वर्णन की सुगमता के लिए इसके छः विभाग किये जाते है, यथा—उण्डुक, आरोहि-भाग, अनुप्रस्थभाग, कुण्डलिका और गुदनलिका । इनमे—

उण्डुक अथवा **पुरोपोण्डुक**[१]—बृहदन्त्र के आदि भाग का नाम है, जो कि चार अंगुल चौडी थैली के आकार का हे, यह दक्षिण वंक्षणोत्तरिक प्रदेश में रहता है (१४९।१५० चित्र) । इसमें वाम पार्श्व से क्षुद्रान्त्र का अन्तिम भाग घुसता है। यह अपनी वन्धनियों के वीच मे दो खातों से उपलक्षित है। इसका प्रवेश द्वार सन्दंश के आकार वाली दो मासतन्तुमयी और कलावृत कपाटिकाओं से उपलक्षित है, ये कपाटिकायें मल की विपरीत गति को रोकती है। इन दोनों कपाटिकाओं की सन्दंशकपाटिका[२] संज्ञा है। उण्डुक के नीचे मे शरनलिका के आकार की प्राय चार अंगुल लम्बी एक पतली नलिका लगी है, इसका नाम उण्डुकपुच्छ[३] है। यह गर्भस्थ शिशु के अन्त्र निर्माण से वचा हुआ निष्क्रिय अंश है। इसमें कभी - कभी निम्वु के वीज आदि दुर्जर वस्तु के घुसने से (अथवा अन्य कारण से) विद्रधि[४] उत्पन्न होती है।

आरोहि बृहदन्त्र[५]—उण्डुक के ऊपर स्थित बृहदन्त्र का आरोहिभाग है। यह दक्षिण कुक्षिदेश में रहता है। यह यकृत् के तल तक पहुंच कर, फिर टेढ़ा हो कर बृहदन्त्र के अनुप्रस्थभाग से मिला हे । इस प्रकार से वने बृहद्रन्त्रकोण की याकृतकोण[६] संज्ञा है।

अनुप्रस्थ बृहदन्त्र[७]—यकृत् के तल देश से प्लीहा के तल तक अर्गल की भाति रहता है—यह नाभि के ऊपर आमाशय तल के साथ - साथ धनुप की भाति कुछ टेढ़ा है। इसको गोद में ले कर उदर्या महाकला का वपा नामक स्थूलतम भाग अन्त्रों को ढाप कर लटकता है ।

अवरोहि बृहदन्त्र[८]—वृहद्रन्त्र के उस भाग का नाम है, जो कि अनुप्रस्थ बृहद्रन्त्र के प्लीहातलस्थ भाग से आरम्भ कर के वाम कुक्षिदेश में उतरा है । बृहद्रन्त्र के इन भागो के सन्धिस्थान की प्लैहिककोण[९] संज्ञा है । अवरोहि बृहद्रन्त्र का अधः प्रान्त वाम वंक्षणोत्तरिक प्रदेश मे टेढ़ा होकर बृहदन्त्रकुण्डलिका से मिला है।

---

१ Coecum २ Ileo-caecal Valve ३ Appendix ४ Appendicitis. ५ Ascending Colon ६ Hepatic Flexure ७ Transverse Colon ८ Descending Colon ९ Splenic Flexure

[१४९ चित्र] उण्डुक (सप्रबन्धन)

बृहदन्त्र का आरोहिभाग

ऊपर का
अन्त्रबन्धनी खात

क्षुद्रान्त्र का शेष प्रांत
(उण्डुकमें घूसता हुआ)

क्षुद्रान्त्र

नीचे का
अन्त्रबधनीखात

उण्डुकपुच्छ की कलाबन्धनी

उदर्याकलासे आच्छादित-
जघनकूट

उण्डुक

उण्डुकपुच्छ

उदर्या कला
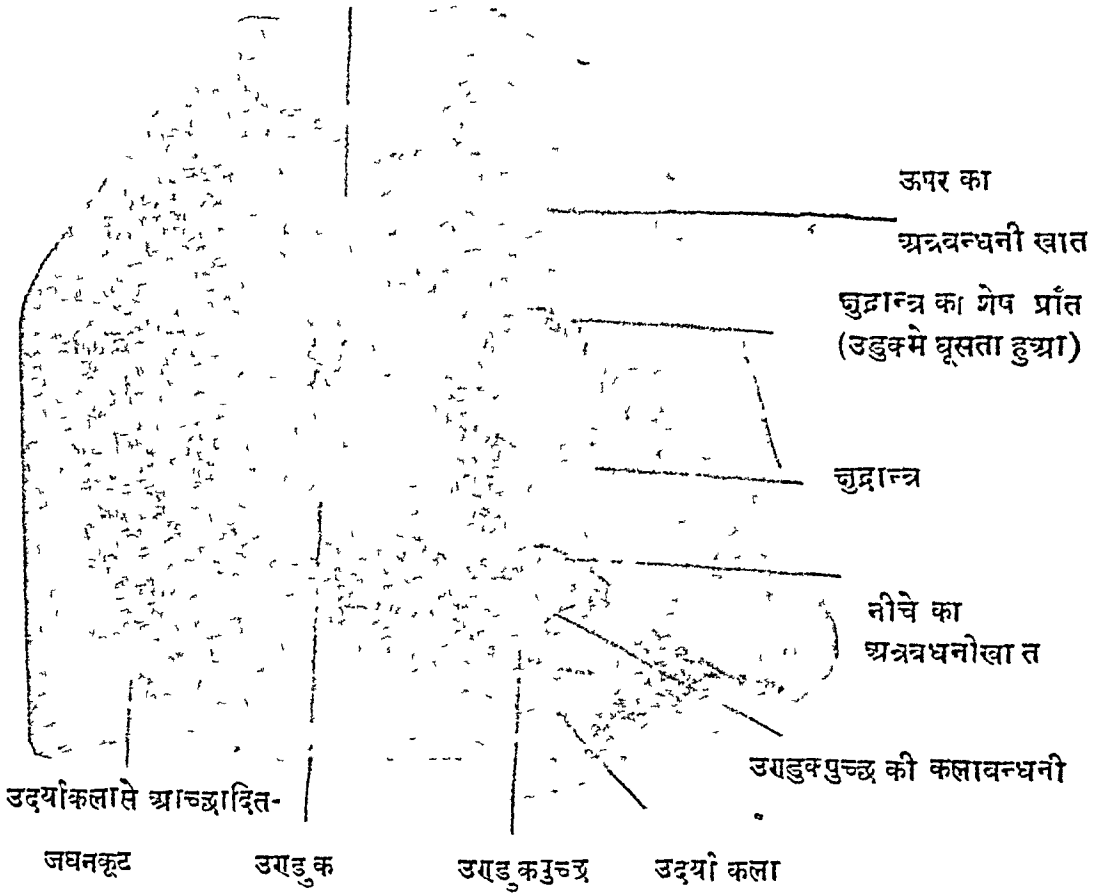
[१५० चित्र] उण्डुक का अभ्यन्तर भाग (चीरकर दिखाया गया)।
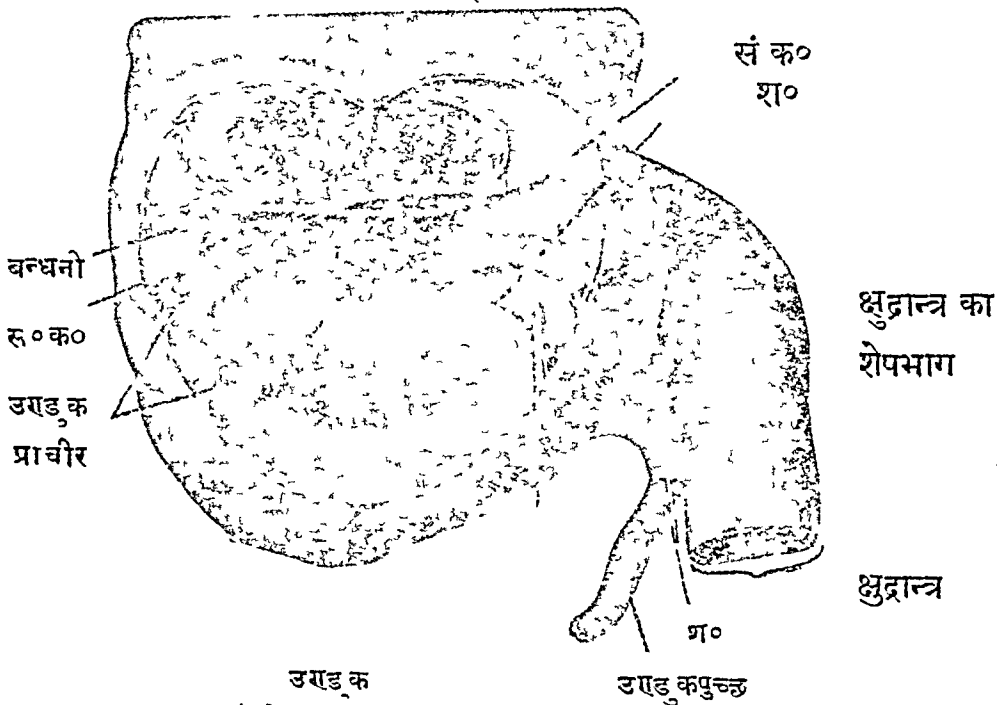
'स क०' दोनों सन्दश कपाटिकायें। 'श०' उण्डुकपुच्छ में प्रवेशित शलाका।

वृहदन्त्र-कुण्डनलिका[१]—बृहदन्त्र के शेषभाग का नाम है, यह लुप्त अकार के चिह्न (ऽ) की भाति टेढ़ा होकर अधिवस्तिक प्रदेश में और वस्तिगुहा में रहता है, और नीचे में गुदनलिका से मिलता है। (१५१ चित्र)

गुदनलिका[२]—बृहदन्त्र का एक वालिश लम्बा चरम प्रान्त है (१५२ चित्र)। यह त्रिकास्थि के सम्मुख में प्रायः धनुप के समान में टेढी हो कर फिर सीधी गयी हुयी सरल नलिका हे । यह ऊपर बृहदन्त्र कुण्डनलिका से और नीचे पायुद्वार में मिली है। इसके सन्मुख पुरुपों में वस्ति, एवं स्त्रियों मे गर्भाशय तथा योनि है । इसके पश्चात् त्रिक के सम्मुखस्थित "अनुत्रिका" नाम की नाडि-प्रवेणिया और "वामा अधिश्रोणिका अभ्यन्तरी" नाम की शाखायें हें । वर्णन की सुगमता के लिये इसके तीन भाग कल्पना किये जाते है—उत्तरगुद, मध्य-गुद, और अधरगुद । इनमें प्रथम भाग थैली के समान आयत और प्रायः साढ़े चार अंगुल परिणाम का हे, यह शुण्डिका पेशी के सम्मुख में स्थित है। दूसरा भाग दो अंगुल परिमित, कुछ सङ्कुचित, एवं पुरुपों में वस्तिद्वार के पीछे रहता है, इसका सम्मुख भाग पोरुषग्रन्थि और शुक्रधारिकाओं के छू कर रहता है, स्त्रियों में इसका सम्मुख भाग योनि के पृष्ठ प्राचीर से मिला है । अधरगुद अधिक सङ्कुचित एवं डेढ़ अंगुल अथवा दो अंगुल लम्बा है, यह अनुत्रिकास्थि के सन्मुख में रहता है और गुदसंकोचनी पेशियों से तथा पाधारिणी नाम की पेशी से घिरा है । इसका "पायु" नामका अन्तिम प्रान्त "पायव्य-त्रिकोण" के मध्य में स्थित है।

इस गुदनलिका के अन्दर आड़े रूप में स्थित, कला से ढंपी हुयी मासतन्तुओं से वनी, प्रायः चक्राकार तीन या चार वलिया दिखायी देती है। ये गुदा के संकु-चित होने पर मल के रोकने में सहायक होती है और मध्य में जवनिका (परदे) सी वनी है। गुदा के विस्फारण से मार्ग के खुल जाने पर ये मल को विसर्जन करती है । प्रवहण क्रिया (कूंथना) औदरी पेशियों के और उत्तर गुद के संकोचन से, एवं पायुधारणी पेशी के शिथिल होने से होती है । मल विसर्जन कार्य गुदनलिका के कमशः नीचे - नीचे सङ्कुचित होने से होता है। गुदा का संवरण "गुदसंकोचनी" नामकी दो पेशियों के संकुचन से और पायुधारणी द्वारा पायु के कर्पण से होता है।

---

१ Sigmoid Flexure, २ Rectum

[१५१ चित्र]—बृहदन्त्र की कुण्डलिका।
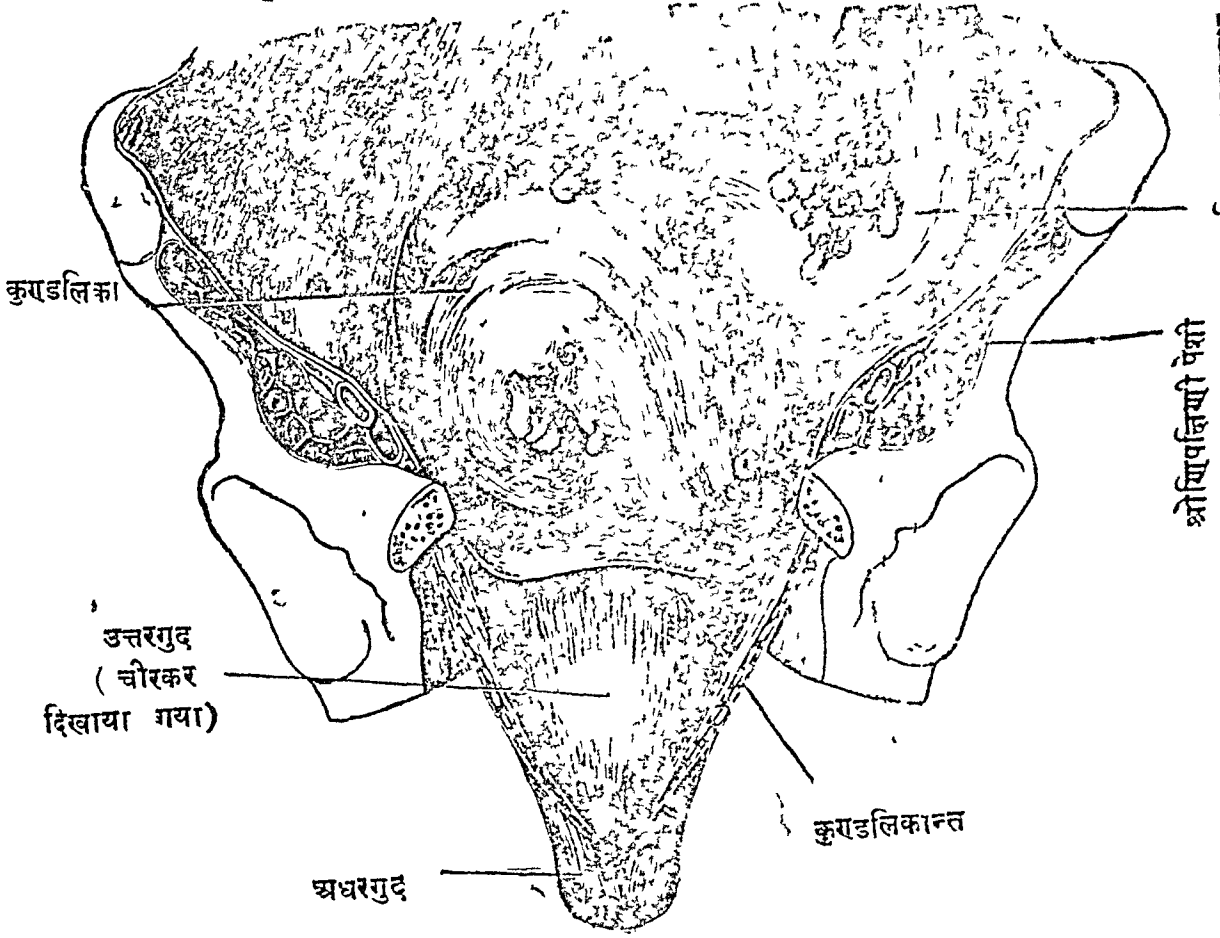
[१५२ चित्र]—गुदनालिका (चीरकर दिखायी गयी)
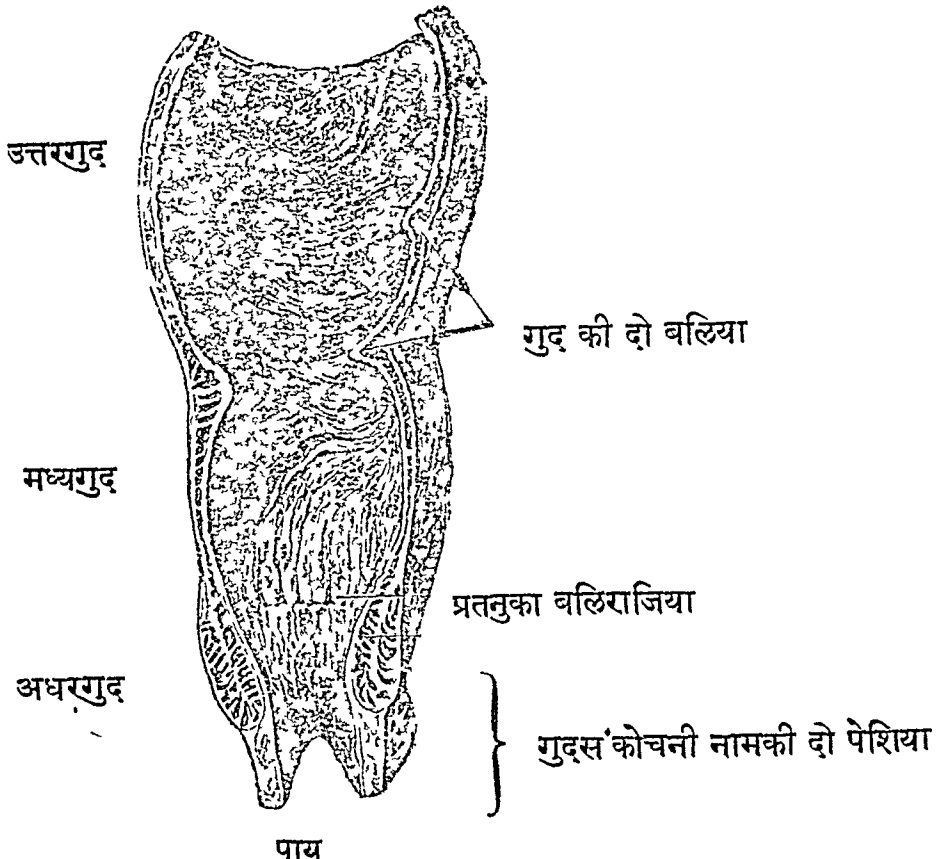
प्राचीनों के मत की तीन वलिया पूर्वोक्त तीन वलियों से कुछ भिन्न प्रतीत होती हैं। प्रवाहणादि क्रियाधिष्ठान के समीप्य से ही उन उन वलियों में किसी प्रकार ऊर्ध्वाध क्रम से प्रवाहणी, विसर्जनी और संवरणी—इन तीन नामों की सङ्गति की गयी है, अर्थात् प्रथम वलिचक्र से उपलक्षित भाग द्वारा मल के अधःपीड़न होने से यह प्रथमा प्रवाहणी, गुदा के विस्फारण द्वारा मल के विसर्जन होने से दूसरी विसर्जनी, गुदसंकोचनी नामकी दो पेशियों से चक्राकार बनी हुयी वलि का नाम संवरणी। (१५२ चित्र मे १-२-३)।

गुदद्वार या पायुद्वार[1]—(१५२ चित्र) अधर गुद का अधःप्रान्त है। यह अनुत्रिकास्थि के सम्मुख दोनों नितम्बों के बीच में दिखायी देता है। संक्षेप से इसका नाम कहीं - कहीं "पायु" अथवा "गुद" है। इसके चारों ओर की पतली त्वचा वहुत ही पतली और लम्बी वलीराजियां से उपलक्षित है, यह गुदा के अन्दर स्थित श्लेष्मल कला से मिली है। त्वचा और कला का सन्धिस्थान नील झाई युक्त श्वेत रेखाओं से चिह्नित है। श्लेष्मल कला में भी इसी प्रकार की परन्तु अधिक गहरी वलिराजिया[2] है। पायु के चारों ओर "गुदसंकोचनी वाह्या" नाम की पेशी है। सम्मुख में गुदा एवं उपस्थ के बीच में स्थित सेवनी से उपलक्षित "मूलाधार" नामका प्रदेश है। गुदा के चारों ओर का खात मेद से भरा, भगन्दर रोग का आयतन है—इसका नाम गुदकौकुन्दर है। इसका घर्णन प्रथम कर चुके है।

यहा पर यह स्मरण रखना चाहिये कि गुद नलिका के चारों ओर स्थित सिराचक्र के अधिक रक्त पूर्ण हो जाने पर नीचे स्थित सिरामुख फैल जाते है, जिससे प्रथम तीव्र दर्द और फिर सिराओं के फट जाने पर रक्तस्राव होता है। ये सिरामुख ही रक्तार्श के स्थान है, यह सिराध्याय मे कह चुके है। गुदद्वार के चारों ओर स्थित त्वक् और कला से वनी बहुत पतली वलियों के शिथिल हो जाने से शुष्कार्श उत्पन्न होते है। प्रवाहिका आदि रोग मे अधरगुद के आभ्यन्तर आवरण सम्पूर्ण कला भाग जव विशेष शिथिल हो जाना है, तव मल त्याग के समय गुदा बाहर आ जाती है—यह प्रायः बालकों मे होता है।

अन्त्रों का पोषण उत्तरा आन्त्रिकी और अधरा आन्त्रिकी नाम की धमनियों के शाखा - प्रतानों से होता है। इसके साथ जानेवाली सिरायें प्रतिहारिणी

---

१ Anus २ Rectal Columns (of Morgagni)

महासिरा में घुसती है, इस कारण से यकृत् मे थोडासा रक्तावरोध होने पर भी इनको भरनेवाली सिराओं में रक्ताधिक्य हो जाता है, जिससे रक्तपित्त अथवा रक्तार्श उत्पन्न होते है।

अन्त्रों की नाडिया "मणिपूर" नाम के नाडीचक्र से उत्पन्न होती है। ये संज्ञावहा और चेष्टावहा दो प्रकार की है यह मूलाधार चक्र से उत्पन्न कुछ नाड़िया गुदा और उपस्थ आदि मे फैली है। गुदप्रान्त को छोड कर शेष अन्त्रों की क्रिया पुरुष की इच्छा के अधीन नहीं है, क्योकि समान एवं अपान वायु के अनुलोमता होने पर अन्त्र संकोचन आदि कार्य स्वयमेव प्रवृत्त होते है।

सम्पूर्ण अन्त्रों के आभ्यन्तरावरण कलाभाग की प्राचीनों ने "मलधरा कला" संज्ञा की है।

अन्त्रबन्धनिया

अन्त्रबन्धनियां[1] क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र की कलामयी प्रबन्धनी है। ये अन्त्रों के चारों ओर फैली उदर्या कला के दुहरे होने से बनी हे और सिरा, धमनी, रसायनी, रसग्रन्थि आदि को धारण करती है। याद रखना चाहिये कि—उदर्या कला क्षुद्रान्त्रों को, अनुपस्थ नाम के बृहदन्त्र को कुण्डलिकात्र को सम्पूर्ण रूप से ढापती है जिससे क्षुद्रान्त्रबन्धनी[२], अनुप्रस्थान्त्रधरा[३], और कुण्डलिकान्त्रधरा[४] नामकी तीन दृढ़ बन्धनिया बनी है। आरोही बृहदन्त्र के और अवरोही बृहदन्त्र के सन्धारण के लिये सब स्थान पर प्रबन्धनिया समान नहीं है, और ये प्रबन्धनिया प्रायः विशेष छोटी है। इनकी संज्ञा उस समय अन्त्र भागके अनुसार हे। बृहदन्त्र की अधोधारा से लटकी हुयी, चमेली फूल के गुच्छे के आकार की, कला से ढंपी मेदो गुच्छिका है—इनका नाम अन्त्रपुष्पिका[५] है।

गुदनलिका उदर्याकला से ढंपा हुआ उत्तर गुदाश है। पुरुषों मे उदर्या कला के दुहरे होने से "गुदबस्त्यन्तरीय" स्थालीपुट बनता है, परन्तु स्त्रियों मे योनि-गुदान्तरीय और बस्तिगर्भाशयान्तरीय नाम के दो स्थाली पुट बनते है। इनका वर्णन प्रथम कर चुके है।

यकृत्

यकृत्[६] शरीर मे सब से बडा और सब से मुख्य ग्रन्थि अथवा ईषद् गर्भ आशय है। (१५३-१५४ चित्र)। यह उदरगुहा में, विशेषतः दक्षिणानुपार्श्विक प्रदेश मे

---

१ Mesenteries and Meso colon २ Mesenteris ३ Transverse Meso-Colon ४ Sigmoid Meso-colon ५ Appendices Epiploicoe ६ Liver

[१५३ चित्र]

यकृत्

(सम्मुख से देखा गया)
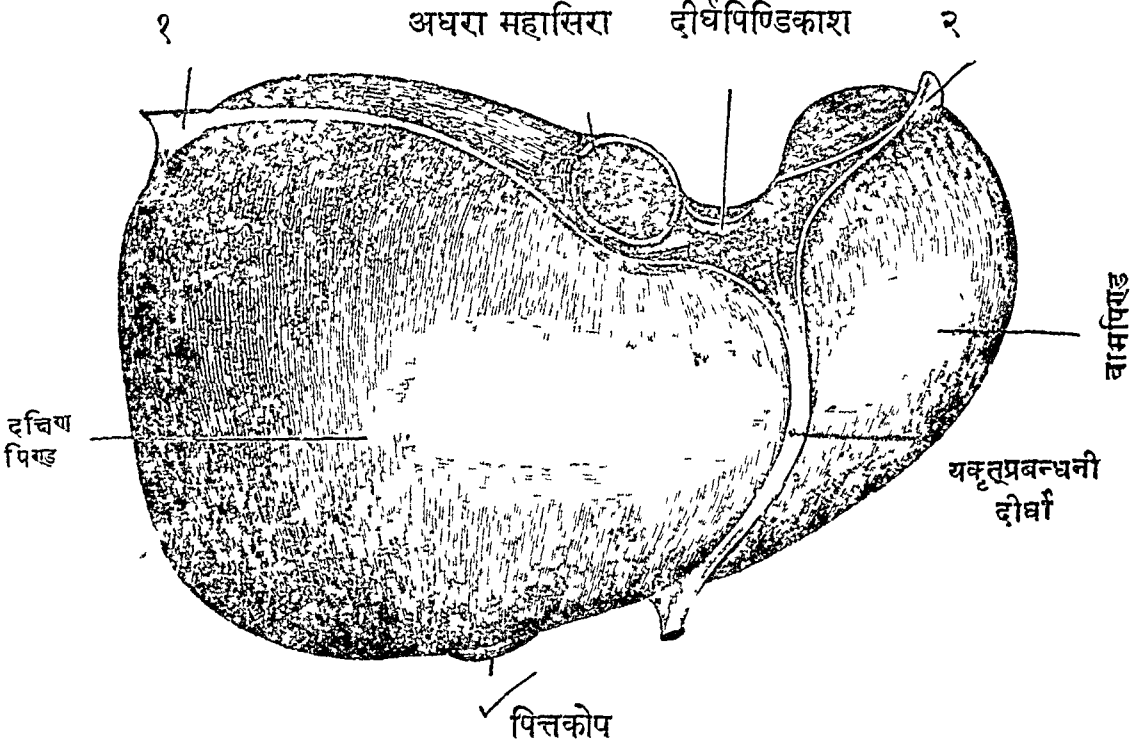
[१-२—यकृत्-पार्श्विकप्रबन्धनी (दक्षिणा और वामा) क्रम से—]

छिपा है और हृदयाधरिक देशमें (और कहीं वामानुपार्श्विक प्रदेश मे भी) थोड़ा दूर तक फैला है।

यह ग्रन्थि बाहर से स्निग्ध, चिकना, ठोस, प्राय त्रिकोण और महायतन है। इसका रङ्ग पके हुए ताल फल या खजूर के समान है। यह वहिर्भाग में प्रायः सर्वत्र उदर्य्या कला के बहुत पतले स्तर से ढंपा है। इस कलाकोष का नाम 'याकृत् कोष' है। यकृत् की लम्बाई प्राय' एक बालिश, और चौड़ाई मध्य मे छै अंगुल एवं प्रान्तों मे कम है। इसका भार डेढ सेर अथवा दो सेर है। इसके आयतन में न्यूनता अथवा वृद्धि रोग के कारण होती है। इसके दो तल है—ऊर्ध्वतल और अधस्तल। दो धाराये है—पुरोधारा और पश्चिम धारा। दो पिण्ड—दक्षिण और वाम। दो पिण्डिकाये—दीर्घपिण्डिका और चतुरस्र पिण्डिका। पाच सीताये, पाच प्रबन्धनियाँ और इसका पाच आशय-सम्बन्ध है।

इसके दो तल यथा—

[१५४ चित्र]

√यकृत्

(पीछे से देखा गया)
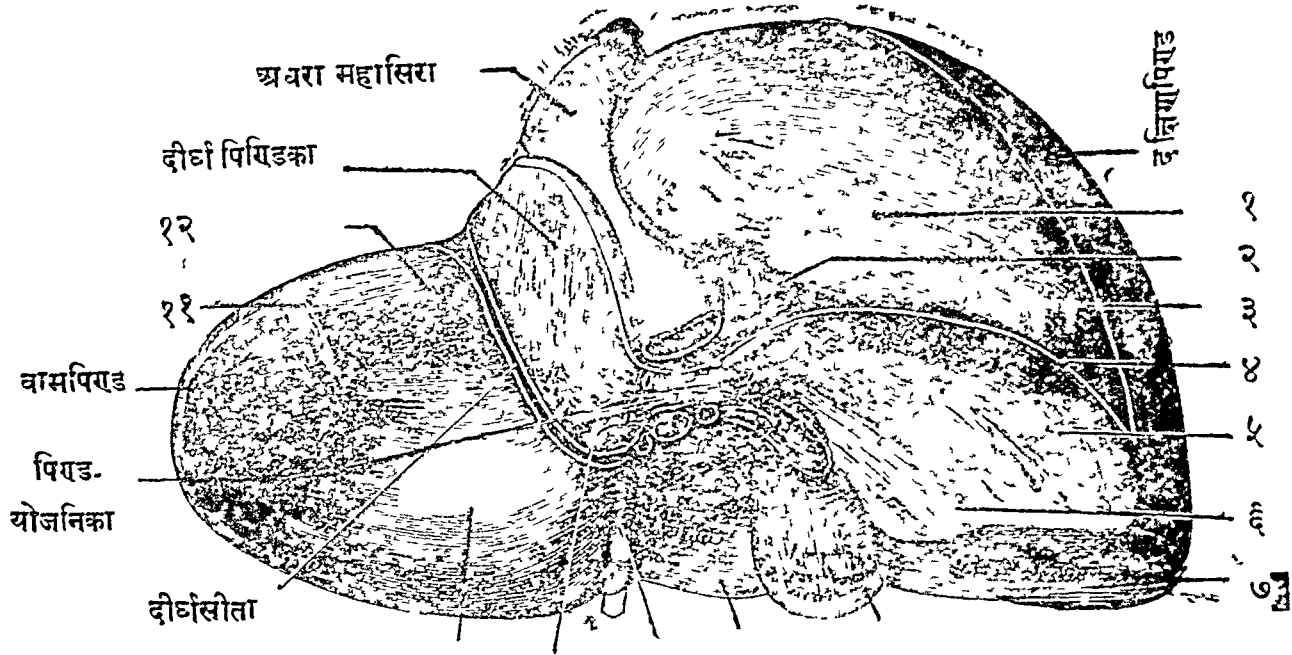
१ । उदर्या से अनावृत प्रदेश । २ । अधिवृक्क के स्पर्श से उत्पन्न खात । ३।४ । यकृत्बन्धनीके , पूर्व और पश्चिम भाग । ५ । वृक्कस्पर्श से उत्पन्न खात । ६ । ग्रहणी के स्पर्श से उत्पन्न खात । ७ । बृहदन्त्रकोण के स्पर्श से उत्पन्न खात । ८ । चतुरस्रपिण्डिका । ९ । सवाहिनी सिरा का अवशेष । १० । पिण्डकूट । ११ । आमाशय के स्पर्श से उत्पन्न खात । १२ । अन्ननलिका के स्पर्श से उत्पन्न खात ।

√**ऊर्ध्वतल**—कछुवे की पीट के आकार का है, यह महाप्रचीरा के नीचे भीतर घुसा है, यह दक्षिण की ओर मुख करके रहता है और अधिकाश भाग से सम्मुख लटकता रहता है। सन्मुख मे इसको ढापने वाली छ, या सात नीचे की पर्शुका-उपपर्शुकायें है, जिनके अन्तराल पेशियों से भरे है। यही पर कला से वनी हुयी यकृत्प्रवन्धनी नाम की वन्धनी दिखाई देती है, जो यकृत को वाम और दक्षिण पिण्डों में विभक्त करती है, और गर्भस्थ वालककी संवाहिनी नामकी पूर्ववर्णित महासिरा को धारण करती है।

√**अधरतल**—कुछ कोरोदर तथा वाम और पश्चिम की ओर मुख किये हुए है। सीताओं को अधिकता और आशयों के सम्वन्ध के कारण यह शिशेपतः ऊंचा-नीचा है। इसमे पिण्ड को विभक्त करनेवाली पाच सीतायें है, जिनका वर्णन आगे

आवेगा। इसको स्पर्श करते हुए आशय पाच हैं—आमाशय, ग्रहणी, बृहदन्त्र का याकृतकोण, अधिवृक्क के साथ दक्षिण वृक्क और पित्तकोप।

यकृत् के दो धारायें यथा—

पुरोधारा दक्षिणानुपार्श्विक देश में स्थित पर्शुका- उपपर्शुकाओं कि अधोधारा का अनुसरण करनेवाली पतले पत्र के आकार कि है। यह पित्तकोप के धारण करने के लिये और यकृत्प्रबन्धनी के संयोग के लिये दो अंशों में थोडीसी खण्डित है।

पश्चिम धारा अधर महासिरा को धारण करने के लिये बडि गम्भीर खात से अंकित है।

दक्षिण पिण्ड[१]—यह अधिक बड़ा है और दक्षिणानुपर्श्विक देश में छिपा हुआ है। यह वाम पिण्ड से छै गुण आयतन का है। इसके ही वाम पश्चिम सीमा में अधरा महासिरा को धारण करने वाला खात है और अधस्तल में अधिवृक्क, वृक्क, ग्रहणी, बृहदन्त्र इन चार आशयों के स्पर्श के चिह्न हैं।

वाम पिण्ड[२]—बहुत छोटा पत्राकार है। यह हृदयोधरिक प्रदेश में रहता है। इसके अधस्तल में अन्ननलिका से संयुक्त आमाशय के स्पर्श से बना थोड़ा गहरा खात दिखायी देता है।

चतुरस्र पिण्डिका[३] **और दीर्घपिण्डिका**[४]— ये यकृत् के तल में, दक्षिण और वाम पिण्डों के अन्तराल में सामने और पीछे क्रम से रहती है। इनमें प्रथम के सम्मुख और दक्षिण में पित्तकोष दिखायी देती है। दूसरी के पीछे और दक्षिण में गम्भीर खात मे घुसी अधरा महासिरा दिखाई देती है। दोनों पिण्डिकाओं के अन्तराल मे प्रतिहारिणी महासिरा को धारण करने वाली द्वारसीता दीखती है।

द्वारसीता के सम्मुख यहा पर दक्षिण पिण्ड को चतुरस्र पिण्डिका से जोड़ने वाला पिण्डयोजनिका[५] नाम का एक अवयव है कोई लोग इसको पञ्चम पिण्डिका कहते है।

यकृत् की पाच सीतायें—

पाच सीतायें यकृत् के पश्चिम तल मे स्पष्ट दिखायी देती है, ये H अक्षर के आकार में रहती है। इनमे यकृत् का द्वारभूत मध्यस्थ सीता का नाम

---

१ Right Lobe २ Left Lobe ३ Quadrate Lobe ४ Caudate or Spigelian Lobe. ५ Caudate Process.

[१५५ चित्र]

प्रतीहारिणी महासिरा की कन्दिकान्तराला शाखा ।

(भीतरका दृश्य—अणुवीक्षणयन्त्र की सहायता से)
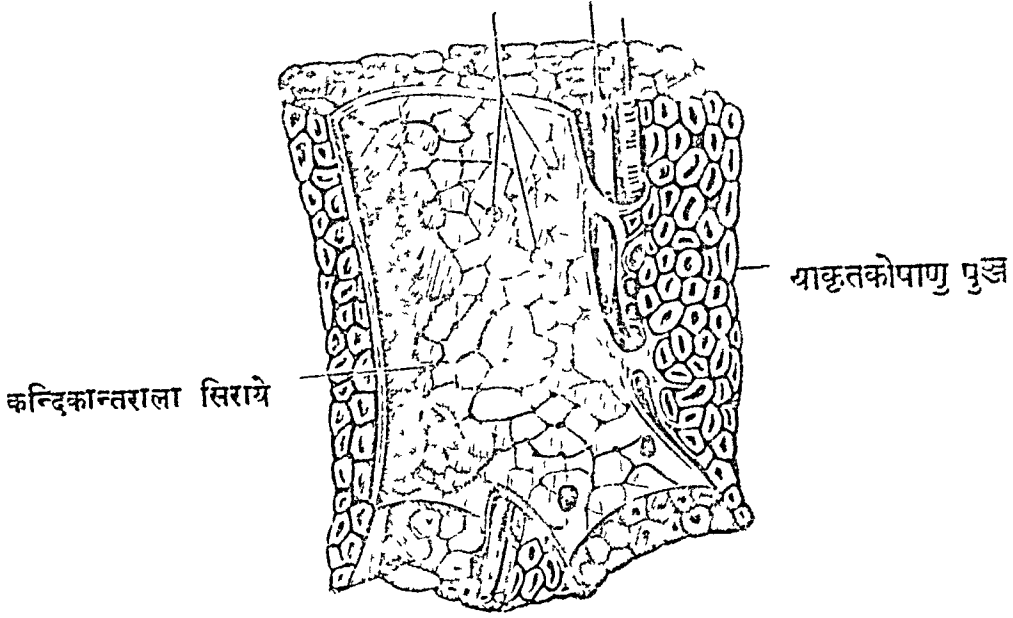
[१५६ चित्र]

यकृत्कन्दिको-संस्थान ।

(अणुवीक्षण की सहायता से दृश्य)
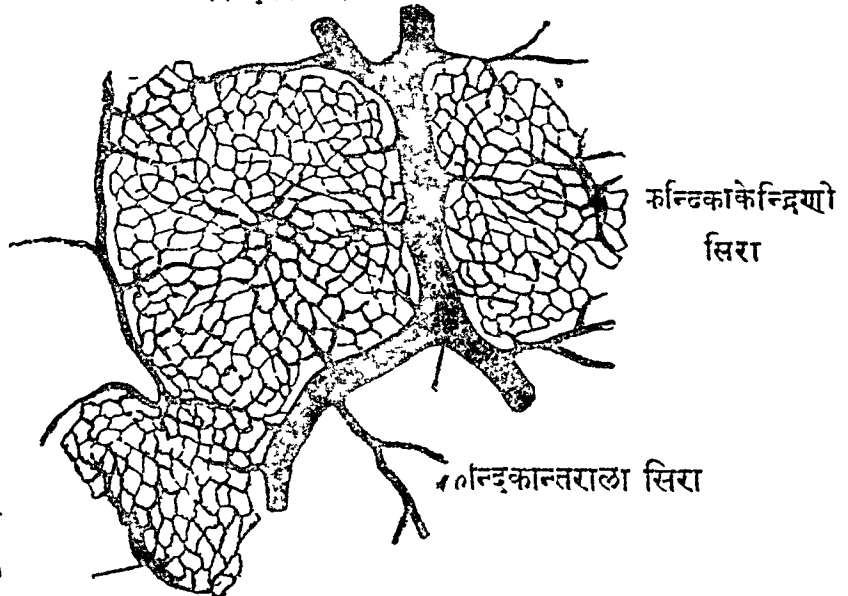
चतुर्थ अध्याय ।

मूत्र-प्रजनन-यन्त्र[1] वर्णनीय ।

मूत्र के बनाने और निकालने वाले यन्त्रों का नाम **मूत्रयन्त्र** है। शुक्र, या आर्तव और गर्भ के बनाने, धारण करने तथा निकालने वाले यन्त्रों का नाम **प्रजननयन्त्र** है। ये दोनों प्रकार के यन्त्र परस्पर के समीपस्थ और कार्यापेक्षी होने से इनका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। इसलिये इन सब यन्त्रों को कभी कभी **'मूत्र-प्रजनन यन्त्र** कहते हैं।

इनमें दो वृक्क, दो गवीनी, एक वस्ति और एक मूत्रप्रसेक—ये मूत्रयन्त्र है। पुरुषों के प्रजनन यंत्र शिश्न, दो वृषण, दो शुक्रवाहिनी और दो शुक्रप्रपिका है। इनके समीपवर्ती, "शिश्नमूलीक" नामक दो ग्रन्थियों के साथ 'पौरुषग्रन्थि' नाम का एक बड़ा ग्रन्थि है। स्त्रियों के प्रजननगात्र योनि, गर्भाशय, दो वीजकोष और दो वीजवाहिनिया है। और इनके समीपस्थ 'योनिद्वारिक' नाम के दो ग्रन्थि है।

मूत्रयन्त्र ।

वृक्क[2] मूत्र वनाने के यन्त्र है। ये देखने में दो बड़े सेम के बीज के आकार के होते है और स्त्री-पुरुषों के समान होते है (१६० चित्र)। इनकी स्थिति उदरगुहा के भीतर पृष्ठवंश के दोनों ओर ग्यारहवीं और बारहवी उपपर्शुकाओं के समीप है। इनमे दक्षिण वृक्क की स्थिति वाम वृक्क से कुछ नीचे है, क्योंकि दक्षिण पार्श्व में यकृत् अधिक स्थान को घेर कर रहता है। उदर्या कला वृक्कों के सम्मुख मात्र को ढांपती है अर्थात् इनकी चारों ओर से नहीं ढापती है।

प्रत्येक वृक्क की धनुष के समान वहिर्धारा कटिपार्श्व के ओर दीखती है। यह 'कटित्रिकोण' के अवकाश में वाहर से स्पर्श की जा सकती है (पेशीखण्ड में कटित्रिकोण का वर्णन देखिये)। वृक्क की अन्तर्धारा मध्य में खात से चिह्नित है और पृष्ठवंश के अभिमुख है, इस खात का नाम वृक्कद्वार[3] है। इसका आश्रय करके पांच-छै शाखाओं मे विभक्त 'अनुवृक्का' नाम की धमनी और वृक्क के अन्दर फैलनेवाली नाडिया घुसती है। वृक्क से उत्पन्न होनेवाली सिरायें, रसायनिया तथा गवीनी भी इसी द्वार से बाहर आती है।

(सम्बन्ध) उदरगुहा में पृष्ठवंश के दोनों ओर मेदःपुञ्ज से घिरे हुए वृक्कों का अन्य आशयों से सम्बन्ध इस प्रकार का है। (१६१ चित्र)। दक्षिण वृक्क के सम्मुख भाग को यकृत् का दक्षिण पिण्ड, ग्रहणी का निम्न भाग और आरोहि बृहदन्त्र छूते

१। Uro-genital Apparatus २। Kidneys. ३। Hilum of Kidney

[१६२ चित्र] वामवृक्क (अनुलम्बछेद से दिखाया गया)।
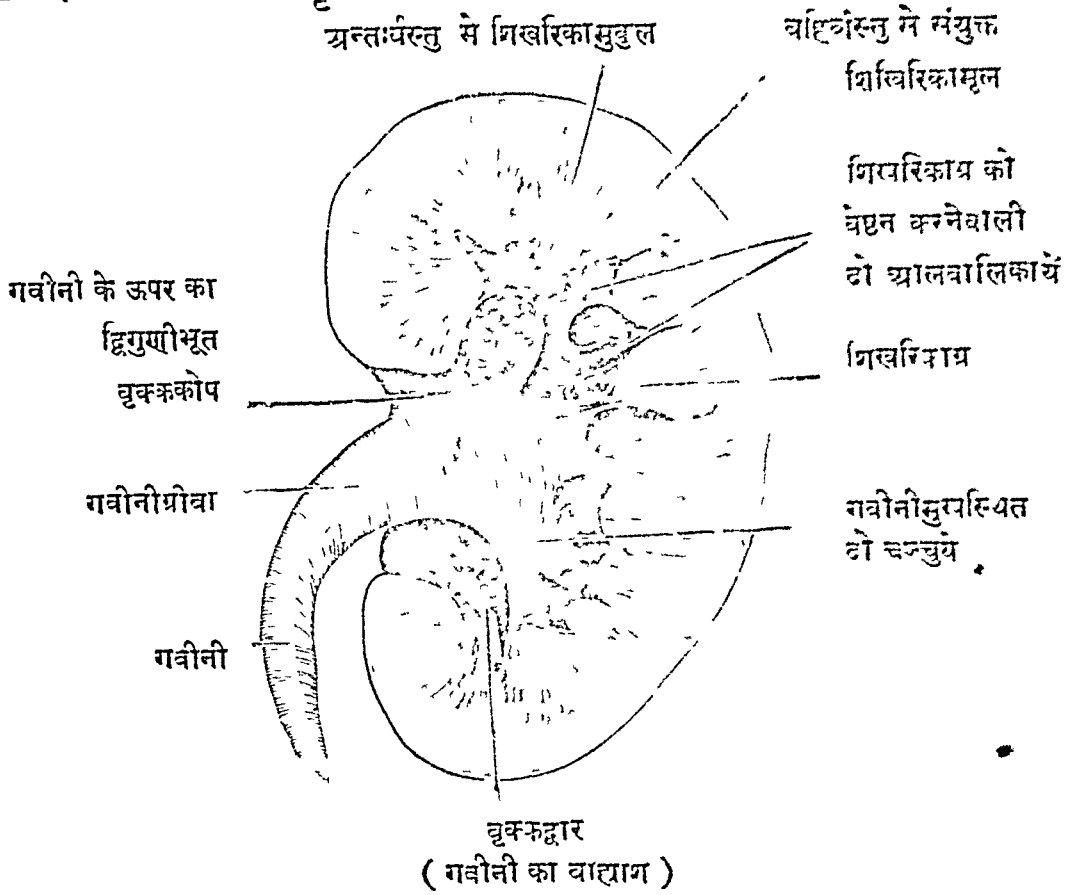
है। वाम वृक्क के सम्मुख भाग को प्लीहा, अग्न्याशय का पुच्छ, आमाशय का कुछ अंश और अवरोहि बृहदन्त्र छूते है। दोनों वृक्को के पश्चिम देश को ग्यारहवीं और बारहवी पर्शुकायें, महाप्राचीरा के दोनों मूल, दो कटिलम्बिनी पेशिया और दो कटिचतुरस्रा पेशिया छूती है।

✓**अधिवृक्क**—प्रत्येक वृक्क के ऊपर प्रायः त्रिकोणाकार या टोपी के आकार का एक ग्रन्थि रहता है, उसका नाम 'अधिवृक्क' है (१६३ चित्र)। इनमे दक्षिण का स्पर्श यकृत् के अधःप्रदेश से और वाम का प्लीहा के अधःप्रदेश से है। निःस्रोतस्क[२] अर्थात् अन्तःस्रोत ग्रन्थियों मे यह प्रधान है।

✓**वृक्कनिर्माण**—वृक्क का लम्बाई मे छेदन करने पर स्थूल रूप से स्पष्ट दिखाई देता है। सूक्ष्म रचना अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से देखी जाती है।

वृक्क के काटने पर स्थूल रूप से दीखनेवाले रचनायें ये है—वृक्कवस्तु, वृक्कद्वार, वृक्कालिन्द और वृक्ककोप। (१६० चित्र)। इनमें—

१। Adrenals or Suprarenal Bodies २। बाहर से स्रोतोरहित वा 'निःस्रोत' ग्रन्थियों में उत्पन्न सूक्ष्म निःस्रव सर्वशरीर में रक्त प्रवाह के साथ सञ्चरण करता है। अधिवृक्क का आभ्यन्तर निःस्रव शरीर-रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

[१६३ चित्र]

दोनों बृक्क और दोनों गवीनियों का व्यतिकर।

(उदर को चीर कर अन्त्रों को निकाल देकर दिखाया गया)
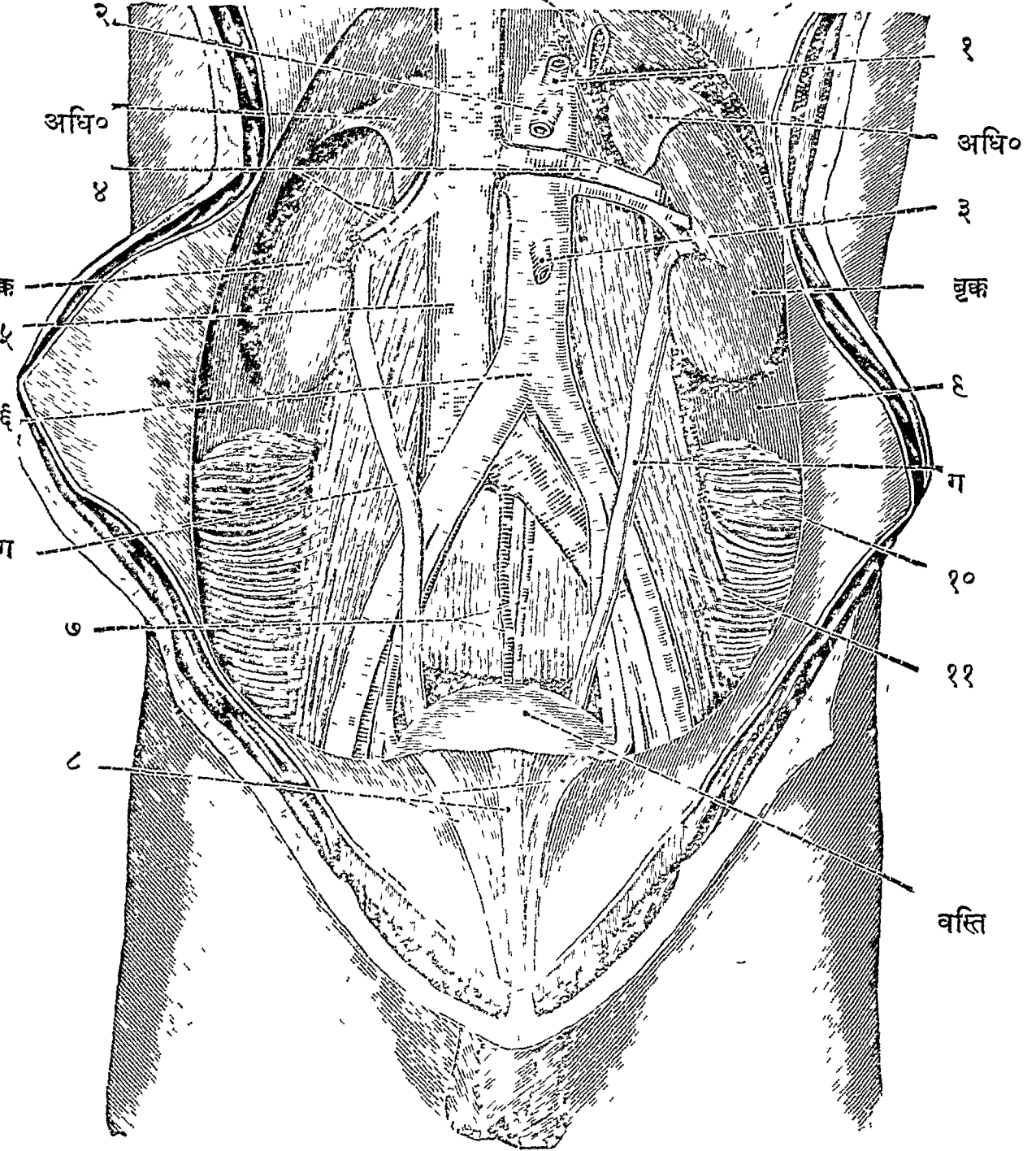
[१। महाप्राचीरिका धमनी (कटी हुई) । २। उत्तरान्त्रिकी धमनी (कटी हुई । ३। अधरान्त्रिकी धमनी (कटी हुई) । ४। दो अनुवृक्का धमनियाँ । ५। अधरा महासिरा। ६। महाधमनीका चरणभाग। ७। अनुत्रिकिणी सिरा और धमनी। ८। वस्तिशिर स्थित तीन रज्जुकायें। ९। कटिप्रावरणी। १०। कटिचतुरस्रा पेशी। ११। कटिलम्बिनी दीर्घा पेशी। अधि०—अधिवृक्क।

(१) वृक्कवस्तु—वृक्क का स्थूल उपादान है। इसका दो विभाग है—वहिर्वस्तु और अन्तर्वस्तु । इनमें—

(क) वहिर्वस्तु[१] वृक्क की वाह्य परिधिभाग को बनाती है । (ख) अन्तवस्तु[२] अन्दरमें रेखावलियों से अंकित है और वृक्कद्वार की ओर मुख की हुयी शिखरिकाओं से उपलक्षित हैं । इन शिखरिकाओं के स्थूल मूल वहिर्वस्तु में बन्धे है । इनके पुश्पमुकुल के समान अग्र भाग "वृक्कालिन्द" नाम के शून्य स्थान में दिखायी देते है।

(२) वृक्कद्वार[३]—वृक्ककी अन्तःपरिधि में स्थित खात है, जहा गवीनीका मुख खुलता है ।

(३) वृक्कालिन्द[४]—गवीनी का मुख चौड़ा हो कर वृक्कद्वार में लगा है । यह वृक्ककोष नाम की स्थूलकला से घिरा है । इनमें वृक्कशिखरिकाओं के अग्र भाग से शनैः शनैः चूते हुए मुत्रविन्दु एकत्रित होते है । वृक्कशिखरिकाओं के दस वारह मुकुलाकृति अग्र भाग यहा दीखते है जो कि कलामय आलवालों * से वेष्ठित है ।

(४) वृक्ककोष[५]—प्रत्येक वृक्क के चारों ओर स्थूलकला से बना हुआ एक कोप है। यह वृक्कद्वार के समीप में इकट्ठा हो कर वृक्कद्वार में घुस कर वृक्कालिन्द के परिसर को वनाता है और फिर पलट कर गवीनी की वेष्टनी स्थूल कला से मिल जाता है ।

वृक्क की सूक्ष्म रचना—बहुत विचित्र है। वृक्क की परिधि में स्थित वहिर्वस्तु मूत्र को वनाने वाले सूक्ष्म वर्तुलाकृति यन्त्रों से प्रधानतः बनी है। इनका नाम मूत्रोत्सिका[६] है, क्यों कि उत्स (चश्मे) में से जैसे पानी उठता है, उसी प्रकार इनमें से मूत्र निकलता रहता है। ये अंगुलमात्र स्थान में प्रायः ६० होते है। ये मूत्रोत्सिका "ऋजुका" नाम की सूक्ष्म धमनियों के अन्तरालों में उसकी अतिसूक्ष्म शाखाओं से लटकते हुए फल के गुच्छों की भाति रहती है।

प्रत्येक उत्सिका में गुच्छमुखी नामकी एक - एक सूक्ष्म धमनी घुसती है । इसकी शाखा - प्रशाखायें वर्तुलाकृति गुच्छों में परिणत हो जाती है और कोषाकृति कलापुटक से ढंपी रहती है। प्रत्येक कलापुटक के अन्दर रक्त का त्याज्य जलीय

१ Cortical Metter २ Medullary or Pyramidal Matter ३ Hilum of Kidney ४ Pelvis of Kidney ५ Renal Capsule ६ Bowman's Capsules, * पेड़ के चारों ओर जो खात काट करके जल भर दिया करते हैं, उसका नाम 'आलवाल' है।

[१६४ चित्र]

वृक्क का सूक्ष्मनिर्माण ।

(अनुवीक्षणयन्त्र की सहायता से दृश्य)

उत्सिका १

ध१
स१
सि० जा०
स२
ध२
३
५
४
ध०
सि०
ध०जा०
९
२
६
७
८
बहिर्वस्तु
मध्यसीमा
अन्तवस्तु
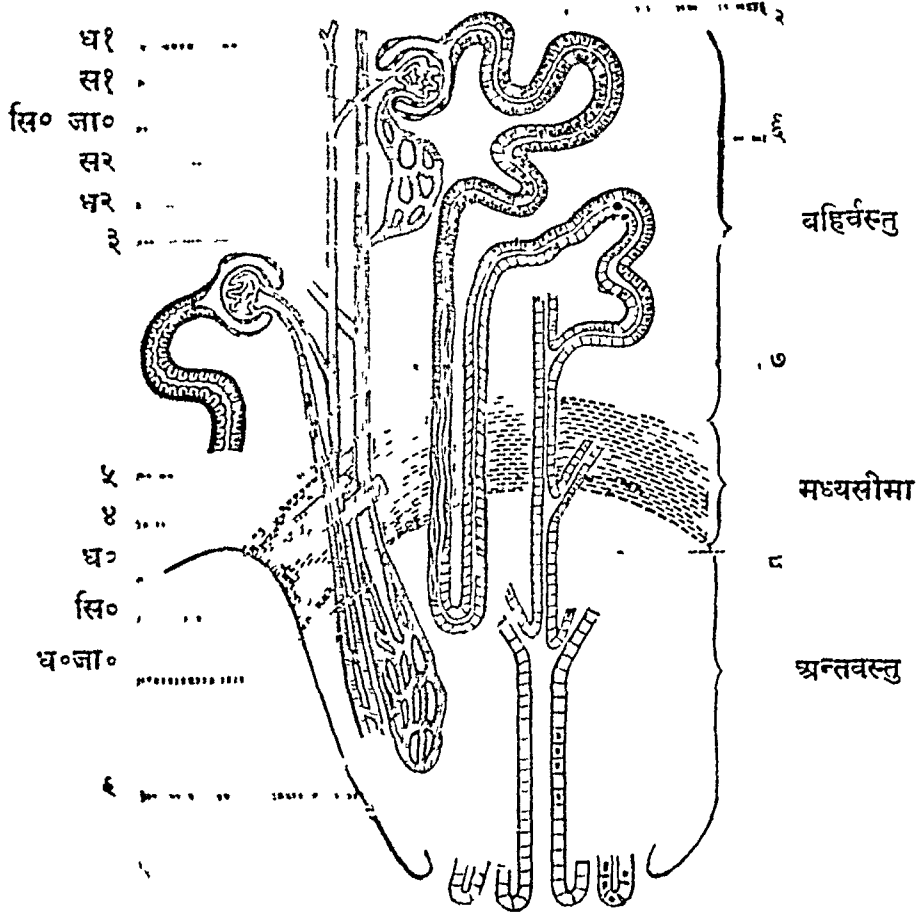
शिखरिका का अग्रस्थित मूत्रस्रोत का मुख

[ध १ उत्सिकाप्रवेशिनी 'गुच्छमुखी' धमनी । स १ उत्सिका से निकली हुई सिरा । सि० जा० सिराजालक । स २ ऋजुका सिरा । ध २ ऋजुका धमनी । ध स्थूलतरा धमनी । सि० स्थूलतरा सिरा । ध० जा० धमनीजालक । १ उत्सिका से निकला हुआ आन्त्र नाम का मूत्रस्रोत का मुख । २ उसीकी पहली कुण्डलिका । ३-४-५ उसीका पाशाकार भाग । ६-७ उसीका शेषकुण्डलिका । ८ वृक्कस्थ ऋजु मूत्रस्रोत । ९ चरम मूत्रस्रोत ।]

भाग अर्थात् मूत्र अति सूक्ष्म कणों से शनैः शनैः चूता रहता है। यह सञ्चित मूत्र उत्सिका से निकले सूक्ष्म मूत्रवह स्रोत के द्वारा बृक्क के अन्दर लाया जाता है। उत्सिकाओं से निकले मूत्रस्रोत क्षुद्रान्त्र की भांति कुण्डलीभूत हो कर केन्द्र की ओर प्रवृत्त होते है। प्रत्येक स्रोत मे चार भाग दिखायी देते है—(१) आद्य कुण्डलिकाभाग[१] (२) पाशभाग[२] (३) शेष कुण्डलिकाभाग (४) और ऋजुभाग[४]। परस्पर के पार्श्व स्थित ऋजुस्रोत बृक्क-शिखरिकाओं को बनाते है। मूत्रस्रोतों की स्थिति अन्त्रों की भांति होने से प्राचीनों ने इनकी "आन्त्र" संज्ञा की है। इसलिये अथर्ववेद में यह सूक्त मिलता है।

"यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रितम्।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम्॥"

(अथर्ववेद १म काण्ड)

अर्थात्—आन्त्रों में, गवीनियों में एवं वस्ति में जो मूत्र रुका है, वह सब मूत्र बलबल शब्द से बाहर आ जाये। [यह अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के प्रथम अनुवाक में मूत्र कराने का मन्त्र है, जिसका प्रयोग तृण की पोरी शलाका—क्याथिटर (Cathetor) रूपसे व्यवहार करने के समय होता था।

रक्त से मूत्र भाग के निकल जाने पर बचा हुआ रक्त प्रत्येक उत्सिकासे सूक्ष्म सिरा मार्ग द्वारा लौट जाता है। ये सूक्ष्म सिरायें परस्पर मिल कर धमनियों की सहचरी सिराओं में घुसती हैं। ये भी केन्द्र की ओर मुख किये हुए मूत्रवह स्रोतों के साथ क्रमशः एकत्रित हो कर बृक्क से उत्पन्न स्थूल सिराओं में परिणत हो जाती हैं। विशेषतः यहा पर यह देखना चाहिए—अनुबृक्का धमनी की प्रत्येक अन्तिम अणुशाखा, बृक्क बहिर्वस्तु में स्थूल सीधी फलवती शाखा की भांति, दोनों ओर स्थित उत्सिकाओं को धारण करती है और इसमें घुसी शाखा-प्रतानों द्वारा पोषण करती है। ये "ऋजुका" नाम की धमनियां[५] एवं इसी प्रकार उसकी पार्श्ववर्तिनी "ऋजुका" नामकी सिरा[६] उत्सिकाओं से निकली हुयी सिराओं का संग्रहण करती है।

"आन्त्र" नाम के मूत्रस्रोतों का सन्निवेश, उत्सिकाराजियों के अन्तरालों में बृक्क की अन्तर्वस्तु में दीखता है। ये क्रमशः सीधे और किञ्चित् स्थूल हो जाने पर इनके मुख शिखरिकाओं के अग्र भाग मे खुलते है। ८

१ First Convoluted Tubule २ Henle's Loop ३ Second Convoluted Tubule ४ Straight Tubule ५ Arteriæ Rectæ. ६ Venæ Rectae

√ **गवीनी**[1] बृक्कों से निकली हुयी अधोमुखी दो नलिकाओं का नाम है (१६३ एवं १६५ चित्र)। ये बृक्क से निकले भूत्र को मूत्राशय में पहुंचाने का साधन हैं। इनमें प्रत्येक का मुख बृक्क से बृक्कालिन्द्र में लगा है और आकृति से टेढ़ा धत्तूर पुष्प के समान है और वह पाच-छः पपड़ियों से या चञ्चुओं से उपलक्षित है। दोनों गवीनिया तिरछी नीचे जा कर क्रमशः सङ्कुचित हो कर वस्ति की ओर गयी है। प्रत्येक गवीनी बृक्कालिन्द से चल कर वस्तिपार्श्व तक प्रायः बीस अंगुल लम्बी, हंस की पक्षनलिका के समान मोटी और ऊपर चौडी - ग्रीवा वाली है, यह तिरछी गति से पृष्ठवंश के सम्मुख जाती हुयी महासिरा और महाधमनी को लाघ कर श्रोणिगुहा में उतरती है। इसका मुख मूत्राशय के पीछे, एक एक ओर वस्तिवार्श्व में घुस कर वस्ति के अन्दर खुलता है, इस द्वार का नाम गवीनीद्वार[2] है। गवीनियों की रचना लम्वाई के रुख में स्थित, स्वतन्त्र पेशी तन्तुओं से होती है। प्रत्येक गवीनी वाहर और भ तर कला से ढंपी है। इनमें वाह्या कला मोटी है, जो कि बृक्ककोप के साथ मिली है।

गवीनियों की विचित्र वनावट के कारण बृक्कालिन्द में संचित्र मूत्र से उत्पन्न सिकतायें (वालु सा पदार्थ) एकत्रित हो कर गुड़िका[3] वा अश्मरी (पथरी) रूप से गवीनी मार्ग को कभी कभी रोक लेती हैं। इससे अश्मरीशूल[4] नाम का तीव्र दर्द उत्पन्न होता है, और गुडिका के नीचे उतरने पर शान्त हो जाता है। कहा भी है—"मत्रस्रोतो-निरस्ताभि प्रसमं याति वेदना। यावदस्य पुनर्नैति गुडिका स्रोतसो मुखम्"। सु० नि० ८ अ०)।

बृक्क और गवीनियों का पोपण महाधमनी की उदर्या नाम की शाखओं से इस प्रकार होता है। अनुबृक्क नामकी दो धमनिया, महाधमनी पार्श्वों से उत्पन्न हो कर, बृक्कद्वार का आश्रय करके बृक्कों में घुसती है। इनमें प्रत्येक धमनी पाच-छः शाखाओंमें विभक्त होकर बहुत पतली शाखाओं द्वारा इसकी पार्श्ववर्तिनी गवीनी और अधिबृक्का तर्पण करती है। और शेप शाखायें बृक्क के अन्दर घुस कर बृक्क की अन्तर्वस्तु में बृक्कपोपणी सूक्ष्म धमनियों में परिणत हो जाती है। इनकी अतिसूक्ष्म अन्तिम शाखायें "ऋजुका" नामकी धमनिया वनती है। ये गुच्छमुखी धमनियों द्वारा उत्सिकाओं का तर्पण करती है, यह पहले कह चुके है। अधिबृक्कों का तर्पण उत्तरा, मध्यमा, तथा अधरा अधिबृक्किणी नाम की धमनियों से होता है।

---

१ Ureter २ Orifice of Ureter ३ Renal Calculus ४ Renal Colic

बृक्कों की सिरायें प्रायः धमनियों का अनुसरण करती है। विशेपतः मूत्रक्षरण से बचे रक्त को उत्सिकाओं से लेकर जाने वाली सूक्ष्म सिरायें जालकों में घुस कर फिर भी ऋजु सिराओं में परिवर्तित हो जाती हैं—इनमें यह विचित्रता है। गवीनियों को पोपण करने वाली धमनिया "अनुबृक्का", "अनुबृपणिका" और "वस्तिगा" नाम की धमनियों से उत्पन्न हुई है।

वस्ति।

✓ **वस्ति** या **मूत्राशय**[१] (१६३।१६५) छोटे लौकी के आकार का मूत्राधार है, यह वस्तिगुहा मे भगास्थि सन्धि के पीछे रहता है। यह पुरुपों में और स्त्रियों में योनि तथा गर्भाशय के सम्मुखवर्त्ती है। यह ऊपर और गुदनलक के पश्चिम में उदर्या नामकी कला से ढंपा रहता है। वस्ति के ऊपर पतली शिखर के आकार वाली कलामयी प्रबन्धनी से नाभि तक बंधा है, इसका नाम वस्तिशीर्पिका[२] है। प्राचीनों ने इसका नाम वस्तिशिर रक्खा है। इसकी दोनों ओर की धाराओं में शुष्क संवाहिनी नाम की दोनों धमनियों की अवशेपभूत दो वन्धनिकायें दिखायी देती हैं, और मध्य रेखा में एक ओर स्नायुमयी वन्धनी है। इन वन्धनियों का नाम वस्तिरज्जुका[३] है।

वस्ति द्वार को घेर कर पौरुषग्रन्थि नामकी ग्रन्थि वस्ति से बाहर रहती (१६६ चित्र) है। वस्तिपृष्ठ के प्रत्येक पार्श्व में एक शुक्रवाहिनी और एक शुक्रप्रपिका तिरछे रूप में स्थित हैं। वस्तिद्वार के समीप मे इनके अग्रभाग परस्पर मिले हुए है, और इस मिलित मुख का नाम शुक्रप्रसेक है। इन सब का वर्णन प्रजनन यन्त्र के साथ करेंमे।

वस्ति का निर्माण आमाशय की भाति तीन प्रकार से सन्निविष्ट स्वतन्त्र मासतन्तुओं से होता है। वस्ति जब मूत्र से भर जाती है, तब मूत्र निष्कासन के लिए उसका सम्पीड़न, इन मासतन्तुओं से होता है। वस्ति के अन्दर झुरियों से चिह्नित कलामयी वस्त्यन्तरीया नामकी बृति दिखायी देती है। उसमे वस्त्यन्तरीय त्रिकोण[४] नामका एक त्रिकोणाकार प्रदेश (१३५ चित्र) है। इसके ऊर्ध्व भाग के दोनों कोणों में दो गवीनी द्वार दिखायी देते है और अधःकोण में मूत्रप्रसेक से मिला हुआ मूत्रद्वार[५] है, जो छोटे मटर (कलायिका) के आकार वाले उत्सेध से उपलक्षित है। इस उत्सेध का नाम मूत्रार्गलिका[६] है। यह अर्गल की

---

१ Bladder २ Urachus ३ Ligaments of the bladder ४ Trigone
५ Orifice of Urethra ६ Uvula Vesicae

[१६५ चित्र] वस्ति का अभ्यन्तर ।

(वस्ति को चीर कर दिखाया गया)
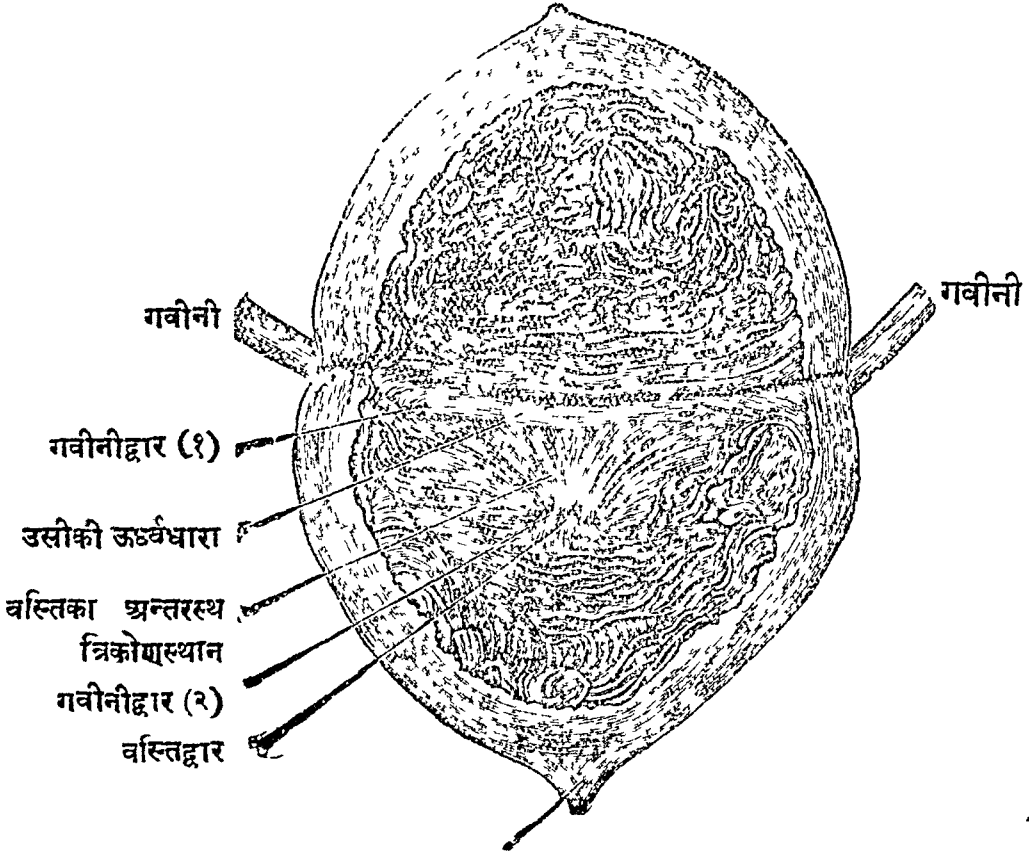
वस्ति शिर को काट कर उलट दिया है

भांति मूत्रद्वार को रोकती है। कई शारीरवित् कहते हैं कि मूत्रप्रवाहण के समय पायुधारिणी पेशी के संकुचित होने से यह उठ कर मूत्रद्वार को खोल देती है।

मूत्रप्रसेक[1] मूत्र को बाहाने वाली, कलामयी एक वालिश्त लम्बी नलिका है (१३८ चित्त)। यह पुरुषों में वस्ति द्वार से शिश्न के अग्रभाग तक शिश्न के निम्न धारामें मध्य रेखा के साथ फैली है। इसके तीन भाग है—आद्य भाग वस्तिद्वारिक[2] नाम का, मध्य भाग मूलाधारिक[3] नाम का, और शेष भाग शैश्निक[4] नाम का है। इनमें आद्य भाग दो अंगुल मात्र लम्बा वस्तिद्वार के साथ मिला है—यह पौरुषग्रन्थि को बीच से भेदन कर के फैला है। इसके विदारण करने पर दोनों पार्श्वों में शुक्रप्रसेक को दो छिद्र दिखाई देते है। मध्य भाग मूलाधार देश में रहता है — यह वहुत पतली कला से वना अंगुल मात्र लम्वा है, इसका

१ Urethra २ Prostatic portion (of Urethra) ३ Membranous Portion (Do) ४ Penile Portion (Do).

कही पर कलामय भाग भी कहते है। इसको वेष्टन कर के मूत्रद्वार संकोचनी पेशी स्थित रहती है, और इसको ढापनेवाली एक स्थूल कला है—जो औपस्थिक नामक दीर्घ त्रिकोण का आच्छादन करती हे इसका नाम त्रिकोण प्रावरणी[1] है। शिश्न के नीचे लगा हुआ अन्तिम शैश्निक भाग दीर्घतम है। यह आदि और अन्त में कुछ आयतोदर और प्रायः नौ आंगुल लम्बा है। इसका आदि भाग आयत प्रायः गोल और शिश्नमूल में स्थित हे। इसके बाहार दोनों ओर मूंग के दाने की भांति शिश्नमूलिक[2] नाम की दो ग्रन्थियाँ दिखायी देती है, इनके दोनों मुख मूत्रमार्ग के अन्दर है।

[१६६ चित्र] पौरुषग्रन्थिसहित शिश्न। (निम्नदेश से दृश्य)

१ Triangular Fascia २ Cowper s glands
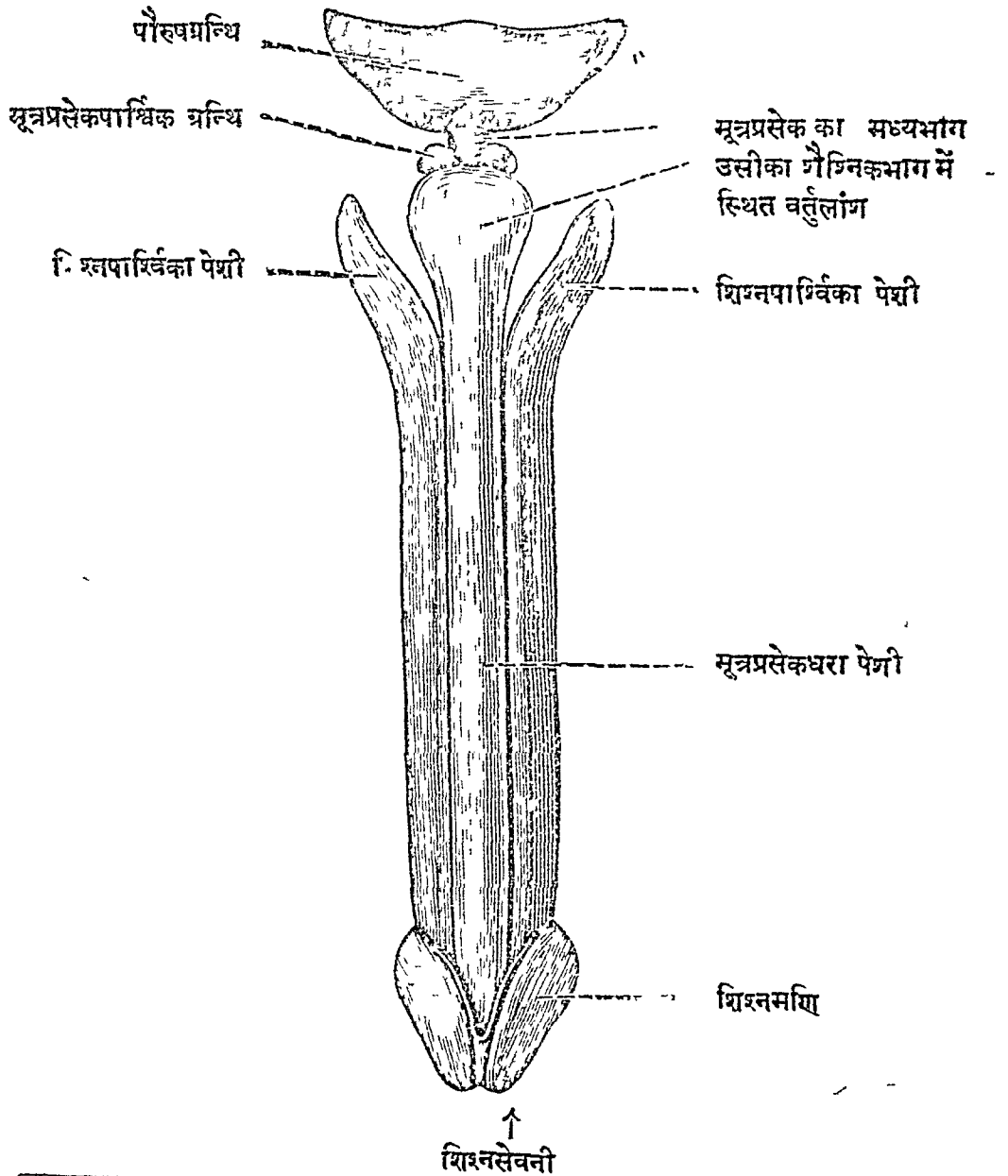
स्त्रियों का मूत्रप्रसेक दो अंगुल मात्र लम्बा और योनि के सम्मुख प्राचीर में बन्धा है। इसकी मोटाई सरकण्ढे की पोरी के समान है। इसका द्वार योनिद्वार के ऊपर और सम्मुख में भगशिश्निका के नीचे दिखाई देता है।

प्रजनन यन्त्र

प्रजनन यन्त्र की मूल दो ग्रन्थि है, जो गर्भोत्पादन के प्रधान साधन है। ये दो ग्रन्थिया पुरुषों में उदर से बाहर दीखाती है' जो शुक्र के उत्पत्तिस्थान है, इनकी "वृषण" संना है और इनके दोनों स्रोतों का नाम "शुकवाहिनी" है। स्त्रियों की दोनों ग्रन्थि उदर के अन्दर, गर्भाशय के दोनों पार्श्वों में

[१६७ चित्र] शिश्ननिर्माण।
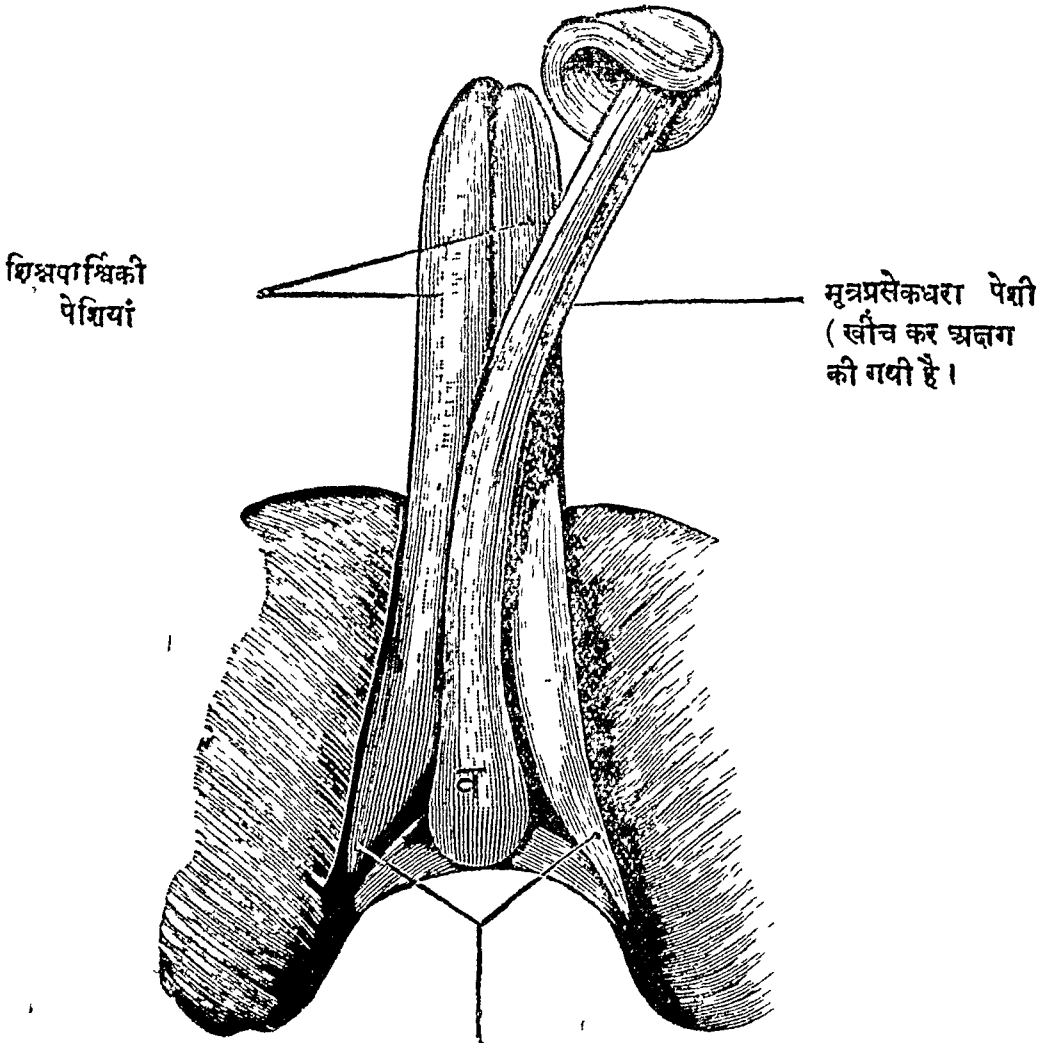
शिश्नपार्श्विकी पेशियों के दोनों मूल
(व—मूत्रप्रसेकधरा पेशी का वर्तुलभाग)

रहती हैं, इनका नाम बीजकोष है। ये बीज रूप आर्तव को उत्पन्न करती हैं, इनके स्रोत गर्भाशाय के पार्श्वों में घुसते हैं। गर्भधान का साधन पुरुषों में शिश्न और स्त्रियों में योनि है। गर्भ का आधार गर्भाशय है। यह बीज रूप से प्रजनन यन्त्रों का वर्णन कर दिया, आगे विस्तार से कहते हैं।

पुरुषों के प्रजनन यात्र

शिश्न दो वृषण, दो शुक्रवाहिनी, दो शुक्रप्रपिका, पौरुषग्रन्थि, और दो शिश्नमूल पार्श्विक ग्रन्थियां, इन दसों को ले कर पुरुषों का प्रजनन यन्त्र बना है। इनमें—

शिश्न[१] (मेढ़ या मेहन) पुरुषों में मैथुन का साधन है—यह मूत्रप्रसेक को भी धारण करता है। यह लम्बी दण्डाकृति तीन पेशियों से बना है। यह उत्तेजित अवस्था में प्रायः तीन धार वाले दण्डकी भाति हो जाता है। इन पेशियों का उत्ते-जन होने से शिश्न का "प्रहर्षण" (खडा होना) होता है। ये पेशियां दृढ़ स्नायु जाल द्वारा परस्पर बन्धी हुई है।

प्रधानतः शिश्न को बनाने वाली दो स्थूल मासला पेशिया शिश्न पार्श्वों में मिली हुयी है जिनका नाम शिश्नपार्श्विका[२] है। (१३७ चित्र)। इन के दोनों मूल भगास्थि सन्धि के दोनों ओर बन्धे है। इन पेशियों के नीचे मध्य रेखा में मृणाल के समान दूसरी पतली स्पञ्ज के समान पेशी है, जिसका नाम 'मूत्रप्रसेकधरा'[३] है। मध्य रेखा में मूत्र मार्ग को धारण करती है।

[१६८ चित्र] **शिश्ननिर्माण।**

(अनुप्रस्थच्छेद से दिखाया गया)
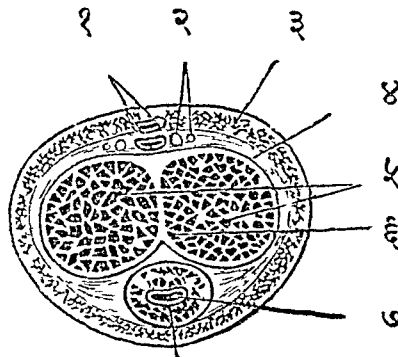
[चित्रव्याख्या –१। शिश्नपृष्ठिका सिराधमनी। २ कामसवेदिनी दो नाड़ियां। ३-४ त्वक् और प्रावरणी। ५ शिश्नपार्श्विका नामकी दो पेशियां। ६ पेशीद्वयकी अन्तरालस्थित स्नायुप्राचीरिका। ७ मूत्रप्रसेकधरा पेशी।]

---

१ Penis २ Corpora Cavernosa Corpus Spongiosum.

इस "मूत्रप्रसेकधरा" पेशी का पश्चिम भाग प्रायः गोलाकार होकर मूलाधार देश में रहता है। मूत्रप्रसेक इसको भेदन कर के शिश्न में गया है। इस पेशी के छत्राक के समान अग्र भाग का नाम शिश्नमुण्ड[१] अथवा शिश्नमणि है, यह शिश्नपार्श्विका नामकी दोनों पेशियों के सम्मुख प्रान्तों को ढापता है।

यह शिश्नमुण्ड पतली, मृदुल, रक्तवर्ण कला से ढंपा है, और चक्रनेमि के समान चारों ओर उठी हुयी धारा से उपलक्षित है। इस धारा में एक प्रकार का दुर्गन्ध चिकने रस का स्राव करने वाली श्वेत सर्षप के समान ग्रन्थिया दीखती है। इस धारा का नाम शिश्ननेमिका[२] है। और इस धारा के चारों ओर पीछे शिश्नमुण्ड को ढापने वाला जो खात है, उसका नाम शिश्नकण्ठिका[३] है।। इसके चारों ओर शिश्न को ढापने वाली शिश्नच्छदा[४] नाम की शिथिल-कोमल त्वचा है। यह अन्दर में कला से आवृत रहती है और स्वभाव से ही शिश्नमुण्ड को ढाप कर रखती है, और पीछे खीची जाने पर इसको प्रकाशित कर देती है। यह यदि शिथिल न हो कर कस जाय और शिश्नमुण्ड के प्रकाशन को रोक दे तो उसे पीछे खींचना असम्भव होता है। इस रोग का नाम निरुद्धप्रकश[५] है। शिश्नच्छदा यदि उल्टी होकर पीछे तन जाय और शिश्नमुण्ड को ढापने में असमर्थ हो तो उस रोग का नाम अवपाटिका[६] कहा जाता है।

शिश्नमुण्ड के नीचे मध्य रेखा में शिश्नच्छदा का प्रबन्धनस्थान शिश्नसेवनी[७] नाम का नाम दिखायी देता है। यह शिश्नमुण्ड को चने के दो दलों की भांति पीछे में विभक्त करता है। इसके सम्मुख बाहर में मूत्रप्रसेक द्वार[८] नाम दिखायी देता है, जो शिश्नमुण्ड के अन्दर कुछ फैला हुआ है और बाहर से सङ्कुचित है।

शिश्नमूल के दोनों ओर उपस्थ संकोचनी नाम की पेशी मध्य रेखा में सेवनी से मिली हुयी दिखायी देती है। दूसरी भी एक पेशी शिश्न प्रहर्षणी नामकी शिश्नमूल में एक-एक ओर लगी है। इन सब को त्रिकोण प्रावरणी नामकी दृढ़ कला ढापती है। इन सब को पहिले कह चुके है। ऊपर शिश्न पृष्ठ के मध्य में एक या दो शिश्न सिरा, दोनों ओर शिश्न धमनिया और इनके दोनों ओर कामसंवेदिनी[९] नामकी दो नाड़िया दिखायी देती है।

---

१ Glans Penis २ Corona glandis ३ Cervix of Glans ४ Prepuce. ५ Phimosis ६ Para Phimosis ७ Fronum Preputii ८ External Urinary Meatus

स्त्री और पुरुष दोनों के भग और शिश्न के ऊपर मृदु मेद से भरा, कोमल त्वचा से ढंपा एक उभार है, जो यौवनारम्भ होते ही कोमल बालों से ढंप जाता है। इसका नाम कामपीठ अथवा भगपीठ है[1]।

वृषण

√**अण्ड, मुष्क या वृषण**[2] नाम की शुक्रजनक दो ग्रन्थियां पुरुषों में है। ये वृषणबन्धनियों के द्वारा वृषण कोष के अन्दर लटकते है। ये गर्भस्थ शिशु में सात मास तक वस्तिगुहा के अन्दर ही रहते है। अनन्तर क्रमशः वंक्षणसुरंगापथ से उतरते हुए सम्मुखस्थ त्वचा प्रावरणी आदि के द्वारा ढंपे जा कर वृषण कोषों में आ जाते है। ये कभी कभी इस प्रकार से नीचे न उतर कर भीतर ही रहते है, ऐसे पुरुषको "गूढ़ाण्ड" कहते है। वृषण वर्णन में जानने योग्य रचनाये—वृषणकोष, दो वृषणग्रन्थि, दो वृषणबन्धनी और दो शुक्रवाहिनी है।

√**वृषणकोष** अथवा **अण्डकोष**[3] ढीले चर्म से घिरा, स्थूल कलामय बाह्य पुटक (थैली) है। यह बन्धनिया के सहित वृषण को धारण करता है। इस चर्मपुटक की चर्मकोष संज्ञा है। इसके अन्दर एक स्थूल कलामय पुटक है, दृढ़ प्रावरणीसे बने होने के कारण उसकी प्रावरणकोष संज्ञा है। यह मध्यस्थकलाप्राचीर द्वारा दो भागों में विभक्त है, पत्येक भाग में एक एक वृषण दिखाई देता है, जो कि छोटे कच्चे आम के फल के समान आकार का है।

प्रत्येक वृषण मे इसको ढापने वाला पतली कला से बना हुआ एक ओर पुटक है। यह एक स्तर से वृषणग्रन्थि को घेर कर और दूसरे स्तर से इसको धारण करने वाले कोष को बनाता है। इसका नाम अण्डधर पुटक[4] है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह वृषण के उतरने के समय वृषण के साथ साथ सम्मुख आयी हुयी उदर्या कला का ही पृथक् हुआ अंश है। इस कोष में दोनों स्तरों के अन्दर संचित होता हुआ जल, प्राचीनों के मत से, "मूत्रवृद्धि"[5] नामक उदकवृद्धिरोग को उत्पन्न करता है। वस्तुतः यह जलवृद्धि मात्र है।

"अण्डधर" पुटक के बहिःस्तर में संलग्न और कला के अन्दर बने हुए कितने पेशीसूत्र भी दिखायी देते है। ये सूत्र अण्डों के उतरने के साथ साथ आये हुए मध्यमा उदरच्छदा नाम की पेशी के ही सूत्र है, यह गर्भ व्याकरण के विद्वानों का

१ Mons Veneris २ Testes or Testicles, ३ Scrotum, ४ Tunica Vaginalis
५ Hydrocele इसमें मूत्र नहीं रहता है अतः 'मूत्रवृद्धि' संज्ञा ठीक नही है।

[१६६ चित्र]

वृषणबन्धनी सहित वृषणग्रन्थि।

(वृपणकोण को हठा कर और आभ्यन्तर वृपणवृतियों को चीर कर दिखाया गया)
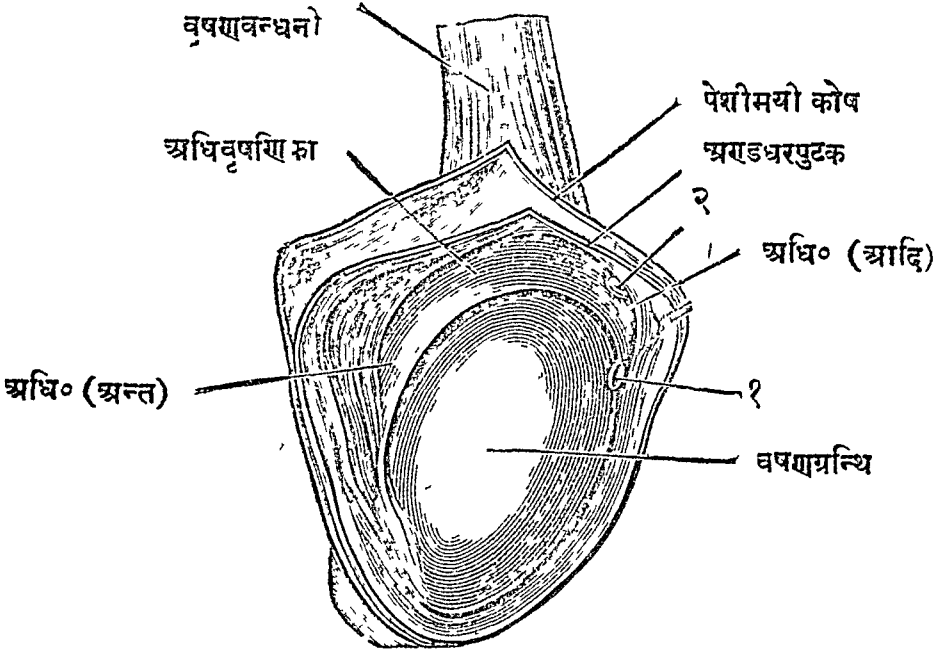
[अधि० (आदि) से (अन्त) अधिवृषिणिका का आदि से अन्त भाग। १।२ वृषण और अधिवृषण पर दृश्य दो स्वाभाविक बिन्दुचिह्न]

सिद्धान्त है। 'फलकोपकर्षणी' नाम की पतली सूत्रवाली पेशी है, यह पहले कह चुके है। यही कला से युक्त हो कर वृपण का पेशीमय कोप[१] बनता है।

वृषण ग्रन्थि[२] (या फल) नाम के दो ग्रन्थिया कच्चे आम के फल के समान अथवा पक्षी के अण्डे के सदृश है, ये वृपणबन्धनियों के साथ अण्डधर पुटक के अन्दर रखती है (१६६ चित्र)। अथर्ववेद के शारीर में इनका नाम 'अण्ड' अथवा 'आण्ड' है।

प्रत्येक वृपणग्रन्थि के पार्श्व मे अधिवृषणिका[३] नाम का प्रायः अर्धचन्द्राकार एक अवयव लगा हुआ है। इसमें अण्डशिखर से निकले हुए अनेक सूक्ष्म शुक्रवह स्रोत घुसते हैं। यह अधिवृषणिका देखने मे छोटीसी होने पर भी वस्तुतः अतिलम्बी सूक्ष्म शुक्रनलिका ही है, जो कि बार बार दुहरी हो कर अण्ड के पार्श्व मे रहती है। सावधानी से खींच कर सीधी की हुई यह शुक्रनलिका प्रायः तेरह हाथ लम्बी होती है, यह विधाता का विचित्र निर्माण है।

---

१ Cremasteric Fascia २ Testes ३ Epidydimus

[१७० चित्र]

वृषणग्रन्थि का सूक्ष्मनिर्माण।
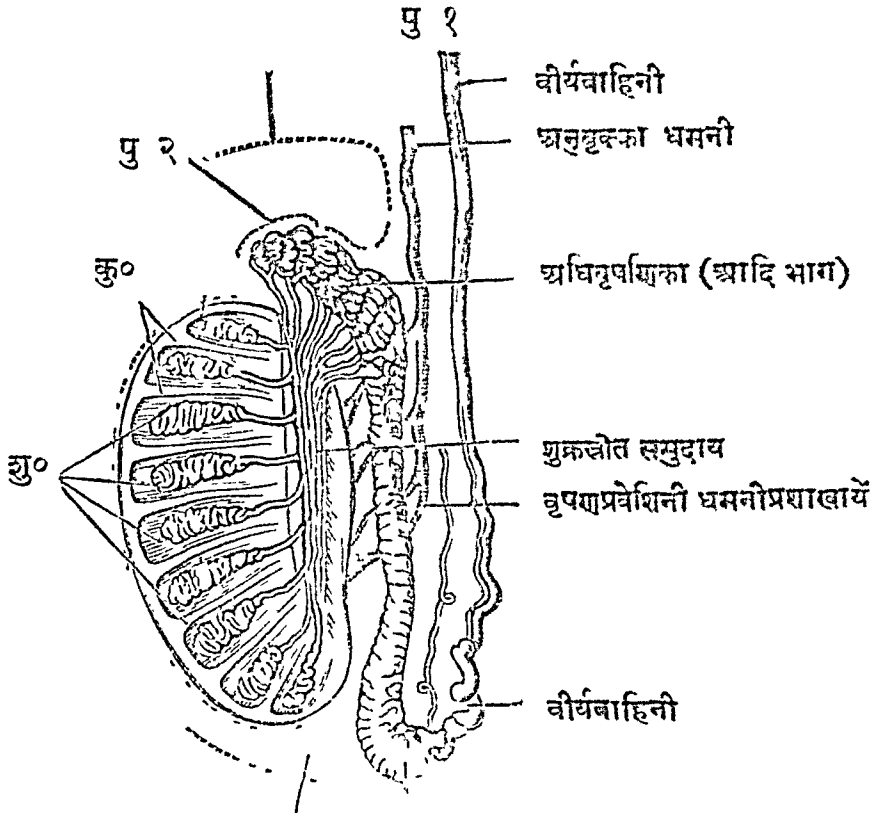
पु० ३ अधिवृषणिका का चरमभाग

[पु १ अण्डधर पुटक का परिसरीय भाग। पु २ उसीका आशयिकभाग। पु ३ दोनों स्तरों का अवकाश। शु० शुक्रनिर्मापक ग्रन्थियां। कु० अन्तरालस्थ स्नायुपत्रिकायें।]

यह अधिवृषणिका ऊपर मे स्थूल ग्रन्थि के समान है, और नीचे के प्रान्त मे पतली हो कर वृषणग्रन्थि को गोद में लेकर रहती है। इसको बनाने वाली तन्तुयें क्रमशः लताशुङ्ग की भाति पतली नलिका रूप से चक्कर देती हुई पार्श्व से उठी है। ये मिल कर मोटी होने पर शुक्रवाहिनी हो जाती है, जो कि वृषणबन्धनी का आश्रय कर के ऊपर जाकर वंक्षण सुरंगा मे प्रवेश करती है।

यह वृषणग्रन्थि और अधिवृषणिका जीवित शरीर में भी स्पर्श करने योग्य हैं। पूयमेह (गनोरिया) आदि रोगों में प्रायः इनकी सूजन और पकने की सम्भावना हो जाती है, और कालान्तर में इसमें कठिनता भी हो जाती है। तब वीर्य स्रोतों के रुक जाने से मनुष्य नपुंसक हो जाता है।

वृषणों का सूक्ष्म शरीर—लम्बाई के रुख मे काटने पर स्थूल रूप में स्पष्ट दिखाई देता है, और अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से अधिक स्पष्ट देखा जा

(१७१ चित्र)

शुक्रवाहिनी, शुक्रप्रपिका और पौरुषग्रन्थि ।

(वस्तिपृष्ठ से देखा गया)
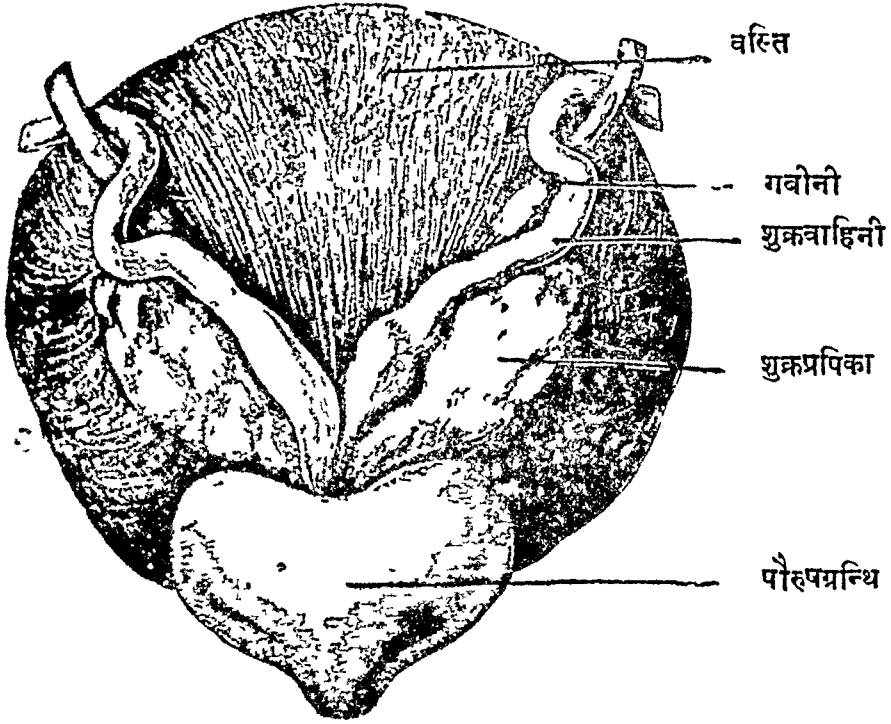
रहने वाली शुक्रवाहिनियों की सहचरी है । ब्रह्मचर्य काल में इसमें शुक्र सञ्चित होता है । प्रत्येक शुक्रप्रपिका का अधोमुख पतला हो कर शुक्रवाहिनी के मुख से मिल जाता है । और दोनों के सम्मिलित मुखों का साधारण स्रोत बस्तिद्वार के पार्श्व में रहता है, इसका नाम शुक्रप्रसेक[1] है । प्रत्येक शुक्रप्रसेक का सूक्ष्म द्वार मूत्रप्रसेक के मूल भाग के अन्दर एक एक पार्श्व में दिखायी देता है ।

प्राचीनों ने कहा है—"द्वयंगुले दक्षिणे वामे[2] वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ।
मूत्रस्रोतः पथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते ॥

(सु० शा० अ० ४)

अर्थात्—वस्तिद्वार के दक्षिण एवं वाम में दो अंगुल छोड कर और नीचे मूत्रस्रोत से पुरुष का शुक्र प्रवृत्त होता है ।

---

१ Ejaculatory Duct २ । सुश्रुत मे 'दक्षिणे पार्श्वे' ऐसा जो पाठ मिलता है उसको लिपिकरप्रमाद समझना चाहिये, क्योंकि वह पाठ प्रत्यक्ष विरुद्ध है ।

सकता है (१७० चित्र। इनमें अण्डधर पुटक के अन्दर, वृषण ग्रन्थि को ढापने वाला पतली कला से बना हुआ अण्डच्छद[1] नाम का एक कोष है। इसकी शाखाभूत पतले कुश-पत्र के समान, स्नायुपत्रिकायें दस अथवा बारह हैं—ये ग्रन्थिवस्तुओं के अन्दर घुस कर प्रत्येक अण्डग्रन्थि को इतनी ही प्रकोष्ठिकाओं मे विभक्त करती है। प्रत्येक प्रकोष्ठिका मे शुक्र निर्मापक ग्रन्थिवस्तु से निकला हुआ एक एक सूक्ष्म शुक्रस्रोत दिखायी देता है, जो कि मूल में कुण्डली के आकार का है। प्रत्येक प्रकोष्ठिका में ग्रन्थिवस्तु को वेष्टन करने वाला सूक्ष्म सिरा धमनियों का जालक दीखता है, शुक्र बनाने के लिए इससे लसीका सदा बहती रहती है। इस प्रकार ग्रन्थिवस्तु में बना हुआ शुक्र, सूक्ष्म शुक्रवह स्रोतों से बहता हुआ, शेष मे मुख्य शुक्रस्रोतों का आश्रय कर के, अण्ड-शिरःस्थित अधिवृषणिका मे पहुच जाता है। फिर इसके अन्दर क्रमशः बढ़ता हुआ शुक्रवाहिनी द्वारा ऊपर ले जाया जाता है, यह सक्षेप मे शुक्र-निर्माण कहा गया। इसीलिये प्राचीनों ने कहा है "शुक्रवहाना स्रोतसा वृषणौ मूलम्"—शुक्रवह स्रोतों का मूल वृषण है। शुक्र बहुत से सूक्ष्म कीटाणुओं से बना है, ये ही शुक्र कीटाणु गर्भाधान कारक हैं।

शुक्रवाहिनिया।

√**शुक्रवाहिनी या वीर्यवाहिनी**[2] अधिवृषणिका से निकली हुयी कबूतर की पक्षनलिका के आकार की दो स्नायुबहुल मासतन्तु निर्मित नलिका (१६९।१७० चित्र) है, जो वृषण से निकले शुक्र को वस्ति द्वार तक ले जाती हैं। ये वृषण बन्धनियों में प्रवेश कर के शुक्र को ऊपर ले जाती है और अनुवृषणिका नाम की सिराओं तथा इसी नाम की धमनी और नाडियों से लिपटी हुयी है। इनकी गति वंक्षणसुरंगाद्वार तक सरल और ऊर्ध्वमुखी है, वंक्षणसुरंगा के बाहर तिरछी है। फिर श्रोणिगुहा के अन्दर घुस कर ये दुहरी हो कर तिरछी नीचे जा कर वस्तिपृष्ठ के आश्रय से वस्तिद्वार के दोनों ओर रहती है। इनके पार्श्वों मे गवीनी की सहचरी "शुक्रप्रपिकायें" दिखायी देती है। प्रत्येक ओर वस्तिद्वार के समीप शुक्रप्रपिका और शुक्रवाहिनी के मिलने से "शुक्रप्रसेक" उत्पन्न होता है। इसका द्वार मूत्रप्रसेक के अन्दर दीखता है।

शुक्रप्रपिकाथें।

√ **शुक्रप्रपिका**[3] शहद के छत्ते के समान रचना वाली, स्नायुतन्तु-बहुल, दो शुक्रधारिकायें (१७२ चित्र) है। ये प्रायः चार अंगुल लम्बी तथा कनिष्ठिका के समान मोटी है और देखने मे रुई की ग्रन्थि के समान है, ये वस्तिपृष्ठ में तिरछी

---

१ Tunica Albnginea २ Ducta Deferentia ३ Vasiculate Seminales

पौरुषग्रन्थि ।

पौरुषग्रन्थि[1] वस्तिद्वार को और मूत्रप्रसेक के प्रथम भाग को घेर कर रहता है और अखरोट के फल के आकार का है (१६६।१७१ चित्र)। यह बाहर में स्नायुमय कोष से ढंपा है। अन्दर में इसकी रचना मधुचक्र (शहद के छत्ते) समान है। यौवन में कामोत्तेजना के समय, इसमें से एक पिच्छिल जलवत् पदार्थ[2] झरता रहता है। इसके दस अथवा बारह (कहींपर बीस) स्रोत, अति सूक्ष्म छिद्रों द्वारा मूत्रप्रसेक के अन्दर खुलते है।

वृद्धावस्था में, स्नायुतन्तुओं की अधिकता हो जाने पर यह ग्रन्थि कभी कभी वढ़ जाती है और मूत्रप्रसेक के द्वार को सङ्कुचित कर देती है, जिससे "जराकृत मूत्रकृच्छ्र" हो जाता है।

[१७२ चित्र] **बहिर्भग।**
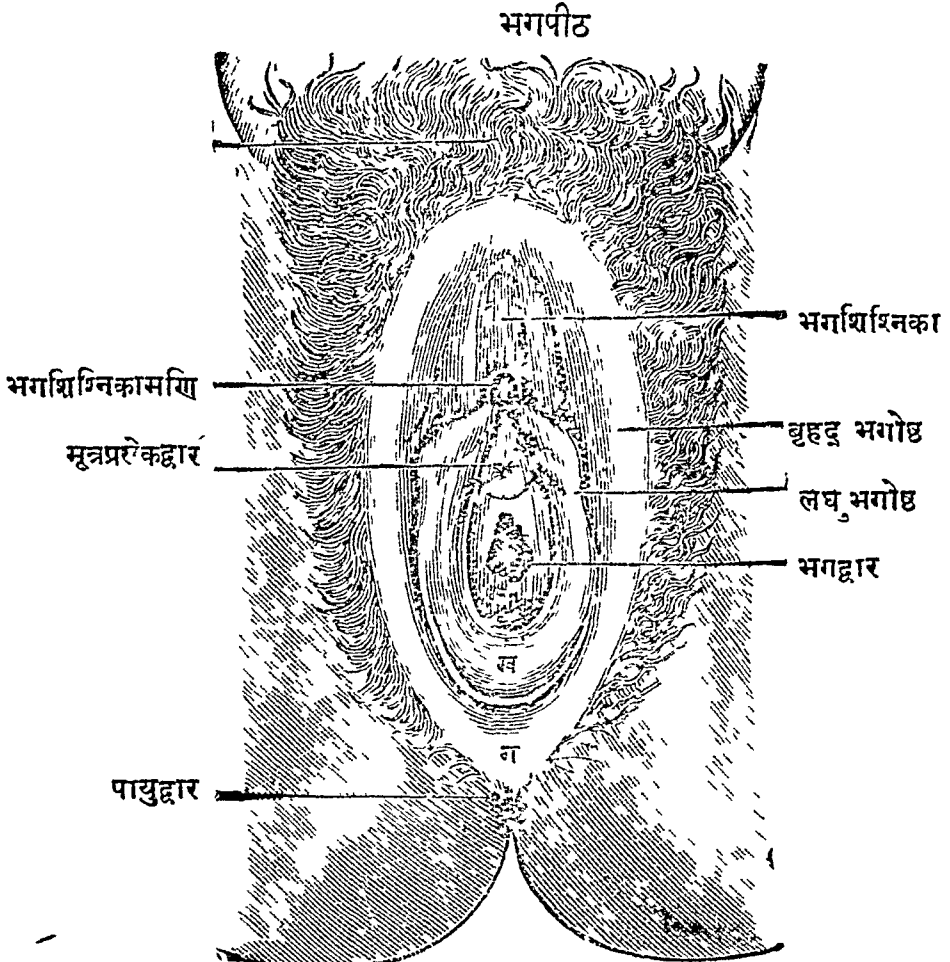
('क' कुमाराच्छद। 'ख' भगाञ्जलिका। 'ग' मूलीपीठ।)

---

१ । Prostate gland २ । इस पिच्छिल पदार्थ का नाम 'पौरुष रस' कहा जा सकता है (Prostatic Secretion)

शिश्नमूलिक या शिश्नमूलपार्श्विक[1] नामक दो ग्रन्थि मूङ्ग के दाने के वरावर है। ये मूत्रप्रसेक के मध्य भाग के वाहर दोनों तरफ रहती हैं (१६६ चित्र)। इनके दोनों स्रोत मूत्रप्रसेक के अन्दर में दिखायी देते है। कोई-कोई शारीरविद् कहते है कि इनमें से निकला हुआ चिकना पदार्थ मूत्रप्रसेक को हर वक्त तर रखता है।

स्त्रियों के प्रजनन यन्त्र

भग, गर्भाशय, दो वीजाधार और दो वीजवाहिनिया—इनको ले कर स्त्रियों के प्रजनन यन्त्र वना है।

भग अथवा **योनि**[2] स्त्रियों के वाह्य अवयवों के साथ अपत्यपथ का नाम है। वर्णन की सुगमता के लिये इसके दो भाग—वहिर्भग और अन्तर्भग—कल्पना किये जाते है। (भगपीठ—भग के ऊपर स्थित मृदु और मेद से भरा उत्सेध है—इसका वर्णन पहिले हो चुका है)। इनमें—

वहिर्भग

वहिर्भग[3] गवाक्ष (आख की आकृति का झरोखा) के आकार का है, यह भग का सात अवयव वाला वाह्य प्रदेश है (१७२ चित्र)। ये अवयव—दो बृहद् भगोष्ट, दो लघु भगोष्ट, भगशिश्निका, भगालिन्द, मूत्रप्रसेकद्वार, भगद्वार और भगाङ्कलिका है। भगद्वार तथा पायुद्वार के मध्य मे सेवनी से अंकित भाग का नाम मूलाधारपीठ अथवा मूलपीठ है। इनमें—

(१) **बृहद् भगोष्ट**[4] भगपीठ से मूलपीठ तक दोनों ओर स्थित, कुछ स्थूल-कोमल ओष्ट के समान दो भगावयव हैं (१७२ चित्र)। ये वाहर में लोमश पतली त्वचा से ढंपी हैं और अन्दर मे मेदुर है एवं स्नायुसूत्र से वने प्रावरण से दृढ़ वनाये गये है। सूक्ष्मदर्शियों का विचार है कि पुरुषों के जो दो अण्डकोष है, वही अण्ड के विना दो भाग मे वंट कर दो वड़े भगोष्टों मे परिणत हुए है।

ये दोनों भगोष्ट ऊपर मे भगशिश्निका के दोनों ओर मिलते है और नीचे भगाङ्कलिका मे। इसके अन्दर कामसंवेदनी नाड़ियों के सहित सूक्ष्म सिरा-धमनी-जालक तथा दुर्गन्ध-रसस्रावी ग्रन्थियां दिखायी देती है।

---

१ Cowper's glands २ Female External Genital Apparatus ३ External Genital organs ४ Labia Majora

(२) **लघु भगोष्ठ**[1] पतले, छोटे दो ओष्ठ-जैसे अवयव है, ये बृहद् भगोष्ठों के अन्दर छिपे हुए है और दोनों ओर दो-दो अंगुल मात्र चौड़े है। (१७२ चित्र)। ये मूत्रप्रसेक द्वार और योनिद्वार के पार्श्वों में तनिक लगे है। और विशेष कर, पूतिरसग्रन्थि स्रोतों से बंधे हुए है।

(३) **भगशिश्निका**[2] भगपीठ के नीचे, मध्य रेखा में, त्वचा के अन्दर छिपे हुये वटाकुर की भाति छिद्र रहित अवयव है (१७२ चित्र)। इसका केवल अग्रभाग शिश्नमुण्ड की भाति लघु भगष्ठों के ऊपर की सन्धि स्थान में दीखाता है। यह शिश्निकाच्छदा नाम की पतली त्वचा द्वारा थोड़ा-सा ढंपा रहता है।
गर्भविज्ञान के जानने वालों का विचार है कि भगशिश्निका स्त्रियों में क्षुद्र शिश्न का अवशेप है।

(४) **भगालिन्द**[3] लघु भगष्ठों के अन्तराल में योनिद्वार से ऊपर स्थित त्रिकोणाकार प्रदेश हे (१७२ चित्र)। इसके मध्य में कौवे की पक्षनलिका के प्रवेश योग्य, मूत्रप्रसेकद्वार नामका छिद्र दीखाता है। स्त्रियों का मूत्रमार्ग दो अंगुल लम्वा होता है, यह पहले कह चुके है।

(५) **भगद्वार या योनिद्वार**[4] मुर्गो के अण्डे के बराबर वीचमें चौडा और लघु भगोष्ठों के अन्तराल में, मूत्रप्रसेक द्वार के नीचे स्थित है (१७२ चित्र)। यह योनिसंकोचनी नाम की दो पेशियों से वेष्टित है। यह द्वार कुमारियों में कुमारीच्छदा नाम की स्थूल जवनिका[5] से प्रायः निम्नार्द्ध मे सुरक्षित रहता है। यौवन में पुरुष सहवास से यह कला क्रमशः नष्ट हो जाती है। परन्तु यह कला कभी कभी सम्पूर्ण योनिद्वार को रोकती हुई मासिक आर्तव को रोक लेती है। तब योनिमार्ग में भयानक शूल होता है और वहुत सा आर्तव सञ्चित हो जाता है।

दोनों पार्श्वो में योनिद्वार के अन्दर कला के अन्दर छिपी योनिद्वारिक[6] नामकी दो ग्रन्थिया दिखाई देती हैं। ये स्पष्ट सूक्ष्म स्रोतों द्वारा पिच्छिल उपस्नेह का स्रवण करती है। कई मतवादियों का विचार है कि यह उपस्नेह स्त्रियों का शुक्र है। सुश्रुत आदि मे भी इस शुक्र का उल्लेख[7] देखा जाता है।

---

१ Labia Minora २ Clitoris ३ Vestibule ४ Vaginal Orifice ५ Hymen
६ Gland of Bartholin ७ यथा—'यदा नार्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कदाचन। मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते।" (सु० शा० २ अ० ४७ श्लोक (

(६) **भगाञ्जलिका**[१] भगद्वार की अधोधारा से अञ्जलि की भाति स्थित कलामय भगावयव है (१७२ चित्र)। यह मूलाधारपीठ की सम्मुख सीमा मे रहता है। यह कभी कभी प्रसव काल में, सेवनी प्रदेश में मूलपीठ के साथ फट जाती है। प्रसूतितंत्र के विद्वान् से 'मूलावदरण'[२] कहते हे। इससे योनिव्यापद नाम की दुःखदायी व्याधि होती हे। यह सात अवयवों वाले वहिर्भग की व्याख्या हो गई।

अन्तर्भग।

अन्तर्भग अथवा **योनिमार्ग**[३] भगद्वार से गर्भाशय मुख तक, टेढ़ा फैला हुआ भाग वस्ति और गुदा के वीच में है (१७३ चित्र)। यह सम्मुख प्राचीर के अनुक्रम से चार अंगुल लम्बा, पश्चिम प्राचीर के अनुक्रम से पाच-छै अंगुल चौड़ा है, क्योंकि इसका प्राचीर नियत स्वभावतः संकुचित रहता है। योनिमार्ग प्राय वन्द रहने पर भी, प्रयोजन होने पर फैल सकता है। इसका ऊर्ध्वप्रान्त जरायु ग्रीवा को वेष्टन कर के रहता है। यह मार्ग पश्चिम भाग में तिरछा और कुछ अधिक दूर तक फैला हुआ है। इसीका नाम 'अपत्यपथ' हे।

(व्यतिकर) सम्मुख में—योनि की सम्मुख प्राचीर के व्यवधान से वस्तिमूल और मूत्रप्रसेक है। पश्चिम से—योनि की पश्चिम प्राचीर के व्यवधान से गुदनलिका, और 'योनिगुदान्तरीय स्थालीपुट' (उदर्या कला से बना) है (१४२ चित्र)। पार्श्वों में—पार्श्वप्राचीर के व्यवधान से' पायुधारिणी' नाम की दोनों पेशिया है।

योनि के प्राचीरों की रचना स्वतन्त्र पेशीतन्तुओं से और अन्दर में तनु-श्लेष्मस्राविणी कला से होती है। यह कला संकोचके समय अंगूठी के आकार की वलिरेखाओं से और सम्मुख तथा पीछे मे मध्यरेखा पर सेवनी चिह्न से अंकित है।

योनिद्वार की व्याख्या कही गई, योनी संकोचनी नाम की दोनों पेशिया उसके पार्श्व में रहती है।

योनि का पोषण—आभ्यन्तरी अधिश्रोणिका धमनियों की अनुयोनिका नामकी दो शाखाओं से और गुदोपस्थिका धमनी की पतली शाखाओं से होता है।

गर्भाशय।

✓**गर्भाशय**[४] अधोमुख छोटी तुम्बी के समान स्थूल पेशी से वनी हुई थैली है जो योनि के उर्ध्वमुख में वन्धी है। अगर्भा स्त्री में इसका अपनी

---

१ Fourchette २ Rupture of Perinæum ३ Vagimal Canal ४ Uterus

मुट्ठी के समान होता है, और गृहीत गर्भा मे गर्भ के अनुसार आयतन बढ़ता जाता है।

वर्णन की सुगमता के लिये गर्भाशय के तीन भाग माने गये है—मुख, ग्रीवा और शरीर। (१७३ चित्र) इनमे—

गर्भाशय-मुख[1] नीचे की ओर मुख कर के योनि के शिखर में अवलम्बित है। इसमे दर्शनीय छिद्र वाह्य गर्भछिद्र[2] नामका है, यह गर्भाशय का द्वाररूप है और सदा सङ्कुचित रहता है। यह मासिक आर्त्तव काल में सोलह दिन तक गर्भ धारण करने के लिए थोड़ा खुला हुआ रहता है,* और प्रसव काल में वहुत खुल जाता है। रज:कृच्छ्र रोग मे इस छिद्र के भली प्रकार न खुलने से स्राव रुक-रुक कर होता है, जिससे रजःशूल आदि लक्षण उत्पन्न होते है।

गर्भाशय-ग्रीवा[3] गर्भाशय के मुख और शरीर के मध्यस्थ दो अंगुल लम्बा सङ्कुचित भाग है। इसकी प्राचीरों की मोटाई एक अंगुल की चौथाई मात्र है। इसके अन्दर का मार्ग छोटे पटोल के आकार का है, जो रजःकाल के सिवा अन्य समय में प्रायः श्लेष्मार्गलिका से वन्द रहता है। इसका नाक ग्रीवासरणि[4] है।

गर्भाशय-शरीर[5] छोटी तुम्बीफल के स्थूल भाग के समान है। इसके अन्दर त्रिकोणाकार अवकाश (खाली स्थान) दिखायी देता है। इस त्रिकोण के ऊपर के दोनों पार्श्वस्थ कोण (छिद्र) बीज स्रोतों से मिले है, और नीचे के कोण छिद्र रूप होकर ग्रीवासरणी से मिला है। इस छिद्रका नाम आभ्यन्तर गर्भच्छिद्र[6] है। गर्भाशय की प्राचीरिकायें यहां स्थूलतम है—ये मिल कर प्रायः अर्द्धांगुल मोटी हैं। गर्भाशय शिखर का नाम गर्भतुम्वी है।

गर्भाशय—वस्ति और गुदा के अन्तराल मे आठ वन्धनिकाओं द्वारा यथास्थान सुरक्षित है, और इसकी ग्रीवा के चारों ओर दुहरी हुयी उदर्या कला द्वारा सम्पूर्ण घिरा है। इस कला के दुहरे होने से दोनों स्तरों के अन्तराल में सामने वस्ति-गर्भाशयान्तरीय नाम का एक स्थालीपुट और पीछे योनिगुदान्तरीय नाम का दूसरा स्थालीपुट वनता है। (देखो १४२ चित्र)

✓**गर्भाशय की आठ बन्धनिकायें**—इस प्रकार की है—एक अग्रिमा, एक पश्चिमा, दो पक्षवन्धनिया, दो रज्जुवन्धनिया, और दो त्रिक-गर्भाशयिका नाम की वन्धनिया। (१४२ चित्र) इनमे—

---

१ Os Uteri २ External Os ३ Cervix ४ Cervical Canal
५ Body of the Uterus ६ Internal Os ७ Fundus Uteri

[१७३ चित्र]

गर्भाशय, बीजाधार और बीजवाहिनी तथा अन्तर्भग।

(चीर कर दिखाया गया)
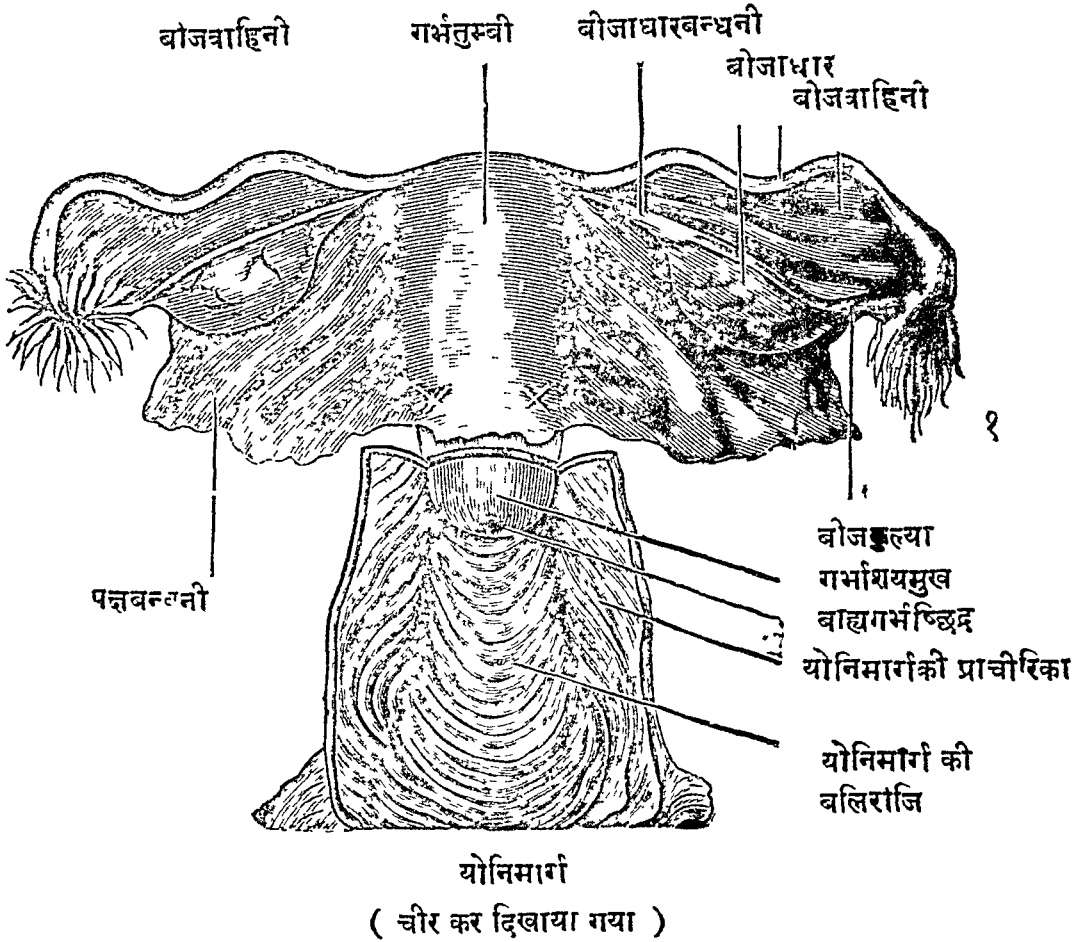
१।१ दोनों बीजवाहिनियों के पुष्पितप्रान्त। × चिह्नित स्थान। गर्भाशय-ग्रीवा

अग्रिमा और पश्चिमा नाम की दो बन्धनिकायें उदर्या कला के दुहरे होने से बनी है, ये पूर्वोक्त दोनों स्थालीपुटों के पूर्व और पश्चिम अंशों को बनाती है।

पक्षबन्धनियां[1] गर्भाशय के पार्श्व में स्थित, पक्ष के समान चौड़ी बन्धनिकायें (१४२।१७३ चित्र) है। ये वस्तिगुहा में मध्यप्राचीर की भाति रहती है, इसलिये इनके द्वारा वस्तिगुहा पूर्व और पश्चिम अंशों में विभक्त हो जाती है। पक्षबन्धनियों की रचना नाडी-सिरा-धमनी आदि के जालो को ढंपने वाली उदर्या नाम की कला के दूहरी होने से बनी है। प्रत्येक पक्षबन्धनी मे उदर्या कला के दो

१ Broad Ligaments

[१७४ चित्र] गर्भाशय का अभ्यन्तर ।

(अनुलम्बच्छेद से दिखाया गया)

गर्भाशय का शिखर या गर्भतुम्बी

१ १

२

३

शरीर

४

५

ग्रीवा

६

७

अपत्यपथ वा योनि
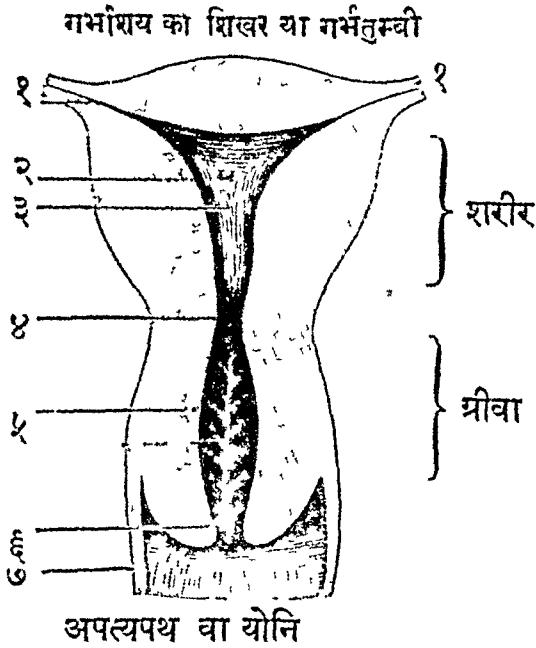
[१।१ दोनों बीजवाहिनियों के द्वार (गर्भाशय के पार्श्व कोण)। २ गर्भाशय-प्राचीर। ३ गर्भाशय का अभ्यन्तर (चित्र में काला अंश)। ४ आभ्यन्तर गर्भच्छिद्र। ५ ग्रीवासरणि (ग्रीवा के अन्दर काला अंश)। ६ बाहर का गर्भच्छिद्र। ७ योनि-प्राचीरिका।]

स्तरों के अन्तराल में दोनों वीजस्रोत, प्रबन्धन के साथ दोनों वीजाधार, दो रज्जुबन्धनिकायें तथा यहा की नाड़ी, सिरा, धमनी और रसायनिया दीखती है।

रज्जुबन्धनिकायें[१] रज्जु के आकार की, पाच-छः अंगुल लम्बी दो बन्धनिकायें है। ये गर्भाशय शरीर के पार्श्ववर्ती कोणों के सम्मुख तिरछी फैली है, और वंक्षण-सुरङ्गाओं में घुसकर वहीं पर क्रमशः विलुप्त हो गयी है। गर्भव्याकरण जानने वालों का सिद्धान्त है कि वृषणबन्धनिकाओं के साथ इनका स्पष्ट सादृश्य है।

त्रिकगर्भाशयिका[२] नामकी दो छोटी बन्धनिकाये है, ये गर्भाशय के पार्श्ववर्ती कोणों से उत्पन्न हुयी है और पीछे धनुप की भाति टेढी हो कर त्रिकास्थिपार्श्वों में बन्धी हैं।

ये सभी बन्धनिकायें प्रधानतः पेशीसूत्र और स्नायुसूत्रों से बनी है। ये गर्भाशय को चारों ओर से भली प्रकार बाधती हैं और सब अवस्था में उसको यथास्थान धारण करती है।

---

१ Round Ligaments, २ Sacro-uterine Ligaments

वीजाधार और वीजवाहिनियां ।

बीजाधार या **बीजकोष**[1] छोटी चिड़िया के अण्डे के समान, गर्भाशय के दोनों पार्श्वों में स्थित दो ग्रन्थिया हैं। ये पक्षवन्धनियों के दोनों स्तरों के बीच में और गर्भाशय के पार्श्व कोणों के समीप तिरछी रहती है। प्रत्येक बीजाधार के दो प्रान्त हैं—अन्तर्मुख और बहिर्मुख। इनमें अन्तर्मुख प्रान्त गर्भाशय की ओर मुख किये हुए है और दो-तीन अंगुल लम्बी रज्जुवत् छोटी वन्धनी द्वारा गर्भाशय से वन्धा है। इस बन्धनी का नाम वीजाधार-बन्धनिका[2] है। वहिर्मुख प्रान्त से एक पतली कुल्या (छोटी नाला) बीज रूप आर्तव के बहने के लिए चली है, इसका नाम वीजकुल्या[3] है। यह बीजवाहिनी के पुष्पित प्रान्त से मिली है।

बीजाधार की रचना स्नायुमय वस्तु के अन्दर अतिसूक्ष्म सिरा-धमनी-स्नायुसूत्रमय जालकों से और उनके वीच में रेत के कणों की भाति सूक्ष्म स्त्री-वीजों[4] से होती है। प्रत्येक बीजाधार सूक्ष्म कलापुट से घिरा हुआ है। सूक्ष्म-दर्शन से प्रत्येक बीजाधार में प्रायः सत्तर हजार बीज मिलते है। ये वीज यौवनारम्भ में क्रमशः पुष्ट होकर कालान्तर में सुपुष्ट होते है। इनमें सब से अधिक पुष्ट हुए वीज प्रति मास बीजाधार गात्र के फट जाने पर बाहर निकलते हैं और वीजकुल्या मार्ग द्वारा चल कर बीजबाहिनियों के पुष्पित मुखों से पकड़ लिये जाते है, और शेष में वीजवाहिनी मार्ग से गर्भाशय में घुसते है।

ऐसा होने से प्रत्येक बीजकोप में बीज के निर्गमन के बाद बचे हुए अंश वीजकिण-पुट[5] नाम के सूक्ष्म पुटक रूप से दिखायी देते हैं। बीजाधार गात्रों में वीज निर्गम के लिये फट जाने के चिन्ह भी जहा तहां देखने में आते है।

दो बीजवाहिनियां या **बीजस्रोत**[6] गर्भाशय के पार्श्व कोणों से बाहु की भाति दोनों ओर फैली हैं, ये स्वतन्त्र पेशीतन्तुओं से बनी दो नलिका हैं। इनके वहि प्रान्त खिले हुए कूष्माण्ड के फूल के समान है, इसलिये ये पुष्पित प्रान्त[7] कहलाते है। वीजाधार गात्र के फटने से निकले हुए स्त्री-बीज इनके द्वारा महीने-महीने पकड़ लिये और गर्भाशय में पहुंचाये जाते हैं।

---

१ Ovaries, २ Ligament of the ovary ३ Ovarian Fimbria, ४ **स्त्रीबीज** Ovum ५ Corpus Luteum ६ Oviducts or Fallopian tubes of Uterine tubes. ७ Fimbriated ends,

१७५ चित्र] **बीजाधार का सूक्ष्मनिर्माण।**
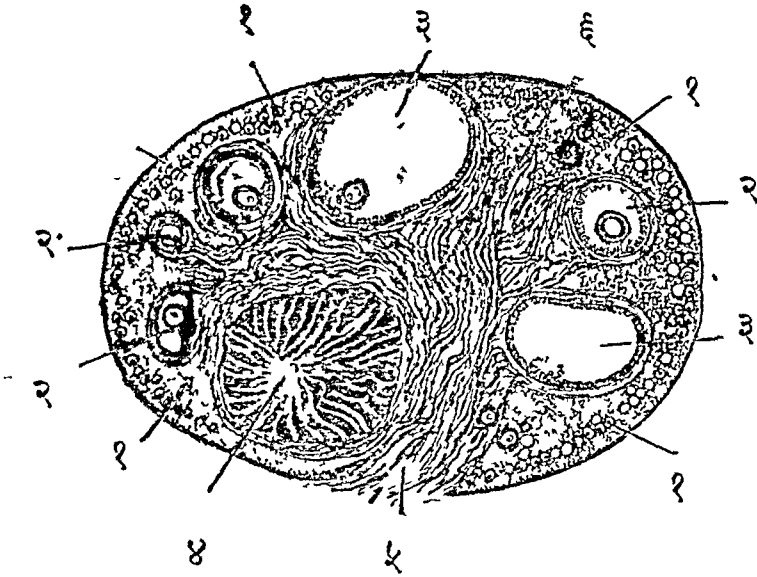
[क—बीजाधार का कलामय कोष। १।१।१—बीजों की बाल्यावस्था। २।२।२ पुटकों से बाहर जाने को तैयार बीजों की मध्यावस्था। ३।३ उनकी परिणतावस्था (पुटकों से बीज निकल रहे है)। ४—बीजपुटक का शुष्यमाण अवशेष। ५—बीजनिर्गमकृत विदार। ६—स्नायुवस्तु।]

बीजवाहिनियों के आभ्यन्तर दोनों स्रोत कुश की पोरी के प्रवेशयोग्य है, ये गर्भाशय के पार्श्व कोणों में खुलते है।

स्तन।

स्तन या **कुच**[१] स्त्रियों में दूध बनाने वाले ग्रन्थियों से बने हुए दो ग्रन्थिसंघात है। प्रजनन यन्त्रों के साथ इनका सम्बन्ध अतिघनिष्ठ है। ये प्रायः यौवनारम्भ में आधे विल्व फल के समान होते है। शैशवावस्था में पुरुष के स्तनों से[२] इनका कोई भेद नहीं होता। किशोरावस्था से पूर्ण यौवन तक इनकी क्रमशः पुष्टि होती है। गर्भिणी और प्रसूता में शनैः-शनैः दुग्ध से भरे जाने के कारण ये अधिक पुष्ट दिखायी देते है। ज्यादे उमर होने पर (या अकाल बृद्धावस्था में) ये क्रमशः सूख जाते हैं, और लटकती हुयी त्वचा से लिपट जाते है।

दोनों स्तन सम्यक् परिणत होने पर त्वचा एवं अधिक चर्वी युक्त कला से आच्छादित हो कर कठिन ग्रन्थि संघातमय हो जाते है। प्रत्येक स्तन में दुग्ध को उत्पन्न करने वाली सोलह अथवा अठारह अंगूर के गुच्छों के बराबर ग्रन्थिपुञ्ज रहते है।

---

१ Mammary glands or Breasts २ यौवनारम्भ में पुरुष के स्तन भी कभी कभी सुपारी के समान हो जाते हैं।

[१७६ चित्र]

स्तन का अभ्यन्तरस्थ दुग्धग्रन्थि और दुग्धस्रोत।
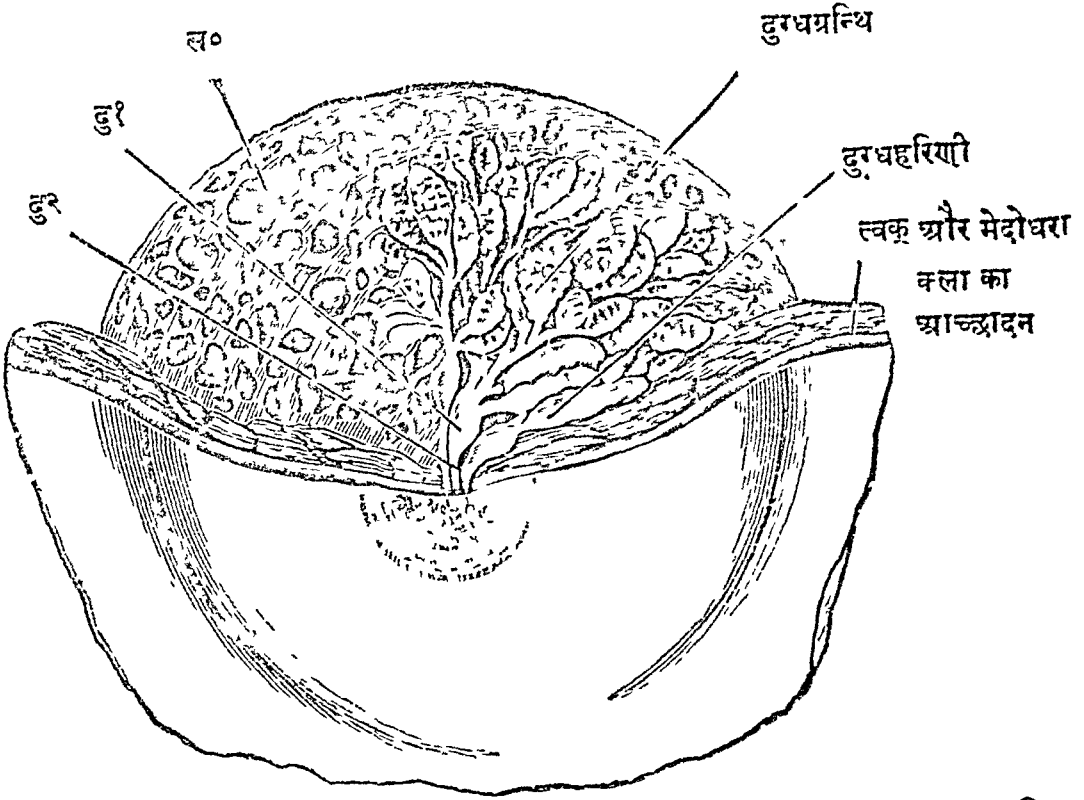
[दु१ दुग्धवहा का कलसिका भाग। दु२ उसीका चरम प्रान्त। स० स्नायुजालरचित कोष्टिकायें - जिनमें दुग्धग्रन्थियां रहती हैं (दुग्ध ग्रन्थियों को निकाल कर दिखाई हैं)।]

प्रत्येक ग्रन्थि से दुग्धवहा या दुग्धहरिणी[१] नाम की प्रणालिकायें उत्पन्न हुयी है। ये क्रमशः मिल कर शेष मे कलसी[२] की भाँति चौडी हो कर शेपमें नलिकाकार होती हैं और चारों ओर से एकत्रित हो कर चूचुक के केन्द्र पर मिलती हैं, और वहीं पर सूक्ष्म मुखों द्वारा खुलती हैं। दुग्धहरिणियो के अन्तरालों में मेद से घिरी और सिरा-धमनी -जालकों से व्याप्त स्नायुप्राचीरिकायें हैं। ये स्तन का आच्छादन स्नायु कोप से निकल कर स्तन के अन्दर फैली है।

चूचुक[३] दुग्धवाहि स्रोतों के मुख संघात से वना हुआ स्नायु-सूत्रों से रचित स्तनशिखर का नाम है। इसको ढापने वाली त्वचा स्वभाव से ही कुछ ताम्र या श्याम वर्ण की होती है। यह चूचुक गर्भिणी में विशेष कृष्णमण्डलों से उपलक्षित होते हैं। इसके फटने से प्रसूताओं को प्रायः स्तनविद्रधि[४] हो जाती है।

---

१ Lactiferous ducts सुश्रुत। चिकि० १८ अ०) में स्तन विद्रधि के पक जाने पर शस्त्र क्रिया की विधि में लिखा है "पक्वे तु दुग्धहरिणीः हरिहत्य नाली.।" 'दुग्धहरिणी' यह नाम प्राचीन है। २। Ampulæ ३ Nipple ४ Mammary Abscess

पञ्चम अध्याय।

त्रिविध शारीर ग्रन्थि वर्णनीय।

मनुष्य शरीर में ग्रन्थिया तीन प्रकार की हैं—बहिःस्रव, अन्तःस्रव और उभयतः-स्रव। सुस्पष्ट विशेष स्रोतों से अपने 'निःस्रव' को ग्रन्थि के बाहर निकालने वाली ग्रन्थियां "वहिःस्रव" कहलाती हैं। जो ग्रन्थिया निगूढ़ स्रोतों से सिरारक्त में अपने-अपने निःस्रव को डालती है, उनका नाम "अन्तःस्रव" है। और जो ग्रन्थिया दोनों प्रकार के निःस्रव को बनाती हैं, उनका नाम "उभयतःस्रव" है।

वहिःस्रव ग्रन्थियां पहले कहचुके—यथा लाला-ग्रन्थिया और बृक्क।

अन्तःस्रव ग्रन्थियों का विशेष परिचय आगे कहेंगे।

उभयतःस्रव ग्रन्थिया

उभयतःस्रव ग्रन्थियां—वहुत ग्रन्थिया ऐसी भी हैं जिनके निःस्रव स्पष्ट स्रोतों से बाहर जाते हैं और निगूढ़ रूप से भीतर क्षरित होते हैं—इन ग्रन्थियों को "उभयतःस्रव" कहा जा सकता है। यकृत्, अग्न्याशय, पुरुष के बृपण और स्त्री के वीजाधार (या बीजकोप) इसी प्रकार की ग्रन्थि हैं। इनके बहिर्निःस्रब और अन्त-र्निःस्रव निम्न लिखित प्रकार के हैं। यथा—

√१। **यकृत्**—इसका वहिर्निःस्रव पित्त है, जो पित्तस्रोतों द्वारा पित्तनलिकाओंमें और उनके पित्तकोप में और शेष में ग्रहणी में गिरता है। इसका अन्तर्निःस्रव 'मधुरक" (Glycogen) नाम का मधुर वस्तु और मूत्रक्षार (Urea) नाम का क्षारवस्तु से पूर्ण है, जो कि सिरारक्त में मिल कर सारे शरीर में सञ्चरण करता है। इनमें (Urea नामक) मूत्रक्षार बृक्कों द्वारा मूत्र के साथ निकाला जाता है।

√ २। **अग्न्याशय**—इसका वहिर्निःस्रव आग्नेय स्रोत से ग्रहणी में गिरता है, ओर अन्तर्निस्रव अग्न्याशय के अन्दर कहीं-कहीं वर्तमान पूर्वोक्त "अग्निद्वीपों" से निकल कर सिरापथ से स्रव शरीर में फैल कर यकृत् से रक्त में आये हुए "मधुरक" भाग का परिणाम कराता है—यह कह चुके हैं (आशयखण्ड २५८ पृष्ठ देखिये)। इसी पदार्थ का नाम इन्सुलीन (Insulin) रखा गया है। यह नित्य स्वाभाविक रीति से बनता रहता है और कृत्रिम उपाय से भी वनाया जाता है।

√३। **वृषण ग्रन्थियां**—इनका बहिर्निःस्रव शुक्र है। शुक्र में स्वाभाविक शुक्रकीटाणु रहते हैं, जिनमें गर्भोत्पादन शक्ति है। शुक्र वीर्यवाहिनियों के द्वारा

शुक्रप्रपिकाओं में पहुंच कर मैथुन से निकलता है, यह कह चुके। वृषणग्रन्थियों का आभ्यन्तर निःस्रव सूक्ष्म और सर्वशरीरचर है, जिसके द्वारा पुरुषोचित आकृत और शरीर की विशेष बनावट होती है।

४। **स्त्रियों के बीजकोष** के भी दो प्रकार के निःस्रव हैं। उनमें बाह्य निःस्रव बीजार्तव है, जो कि महीने-महीने आर्तव-रक्त के साथ निकल कर गर्भाधान का सहायक होता है। बीजार्तव में पोस्ते के दानेके बराबर जीव-कोषाणु रहते हैं, ये भी शुक्रकीटाणु के समान गर्भोत्पादक स्त्री-बीज है। ये प्रायः महीने-महीने पूर्ण परिणति लाभ करके रस के साथ निकलते हैं।

बीजकोष का आभ्यन्तर सूक्ष्म निःस्रव सर्वशरीर में रक्तप्रवाह द्वारा सञ्चारित हो कर स्त्रियों की विशिष्ट आकृति और गठन की सहायता करती है।

अबतक "उभयतःस्रव" ग्रन्थियों की विशेषता कही गयी है, अब "अन्तःस्रव" ग्रन्थियों की विशेषता कही जायगी।

अन्तःस्रव ग्रन्थिया

√अन्तःस्रव ग्रन्थियों का विशेष परिचय—मनुष्य के शरीर में अनेक ग्रन्थि (या यन्त्र) इस प्रकार के हैं, जिनके बाहर जाने वाले कोई स्रोत (सिवाय सिरा और रसायनियों के) नहीं दिखायी देते हैं। इन ग्रन्थियों या यन्त्रों का प्रयोजन क्या है, सो देखने से समझ मे नहीं आता। परन्तु बहुत परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि शरीर-रक्षा के लिए इनकी बडी आवश्यकता है। इनका नाम **अन्तःस्रव ग्रन्थि** है। इनकी विकृति हो जाने पर नाना प्रकार के रोग होते हैं अथवा शरीर पोषण की पृथक्-पृथक विकृत अवस्था हो जाती है। यह भी देखा गया है कि इनके खिलाने से या सूचीयन्त्र द्वारा त्वचा के नीचे इनके रस का प्रयोग करने से पूर्वोक्त रोगों का और अवस्थाओं का प्रतीकार हो जाता है।

इन ग्रन्थियों का साराश "आभ्यन्तर निःस्रव" रूप से सिराओं के द्वारा रक्त-प्रवाह में मिला करता है, उन सारांशों का नाम अन्तर्निःस्रव है। जीवित प्राणी के शरीर में से उन ग्रन्थियों को निकाल कर उनके अलग-अलग सारांश बनाये जा सकते हैं, जिनकी क्रियायें प्रायः स्वाभाविक अन्तर्निःस्रव के तुल्य है।

अन्तःस्रव ग्रन्थिया शरीर में प्रधानतः छै (या दश) है।

यथा—(१) ग्रैवेयक—१, (२) बालग्रैवेयक—१, (३) परिग्रैवेयक—४, (४) प्लीहा—१, (५) अधिवृक्क—२, (६) पोषणक ग्रन्थि—१, जो कि करोटि के अन्दर मस्तिष्क के नीचे जतूकास्थि के शरीर पर रहा करता है।

इन ग्रन्थियों का एक नाम 'निःस्रोत ग्रन्थि'[१] है, क्योंकि इनके विशिष्ट स्रोत बाहार निकलते हुए नही दीखते है।

अग्न्याशय के 'अग्निद्वीप'[२] नाम के अंश भी अन्तःस्रव है। यदि उनको पृथक् माना जाय, तो वे भी 'अन्तःस्रव ग्रन्थियों' मे है। उनका वर्णन और कार्य पहले (२५३ पृष्ठमें) कह चुके।

इन ग्रन्थियों के अलावे और भी कुछ ग्रन्थिया किसी-किसी आचार्य के मन से अन्तःस्रव माने जाते है, यथा—(१) मातृका ग्रन्थि[३] (महामातृका धमनीके विभाग स्थान पर वर्तमान), (२) तृतीयदृक्कन्दिका,[४] जो कि मस्तिष्क मूलपिण्ड के पीछे रहती है (२२०-२२१ चित्र—तृतीय भाग, मूलग्रन्थ) और (३) 'कन्दमूल'[५] नामक ग्रन्थि, जो कि मूलाधार स्थान में ईडा और पिङ्गला नाम कि स्वतन्त्र नाड़ी-शृङ्खलाओं के मूलस्थ सन्धिस्थान पर है (नाडीखण्ड-मूलग्रन्थ, २५३ चित्र)। परन्तु इन ग्रन्थियों के कार्य अभी तक सुनिर्णीत नहीं हुए, इसलिए इनको अन्तःस्रव ग्रन्थियों में लेना अभी तक युक्तियुक्त नहीं है।

अव पूर्वोक्त प्रधान-प्रधान अन्तःस्रव ग्रन्थियों के स्थान, स्वरूप और कार्य का वर्णन किया जाता है।

(१) **ग्रैवेयक ग्रन्थि**[६] यह ग्रन्थि स्वर यन्त्र के नीचे श्वास नलिका के सामने रहा करता है (२७७)। इसके दो पिण्ड है—दक्षिण और बाम जो कि सामने मध्य-रेखा पर एक योजक भाग से जोड़े हुए है, परन्तु पीछे में पृथक् रहते है। इसके वाहरी रूप फटे हुए अखरोट फल के समान है और भीतर का निर्माण मधुचक्रवत् पृथक् पृथक् कोषों में विभक्त है। इन कोषों के अन्दर गोंद के समान वस्तु रहती है (१७८ चित्र)।

इस ग्रन्थि के अन्तःस्थ कोषों की वृद्धि हो जानेपर 'गलगण्ड' (Goitre) अर्थात् घेघ' रोग की उत्पत्ति होती है। उसमें कहीं-कहीं आखे अंक्षिकूटों से निकले हुए दीखते है (Ex-opthalmic Goitre) पक्षान्तर मे इस ग्रन्थि के आभ्यन्तर निःस्रव की कमी होने से बालक जड़, गद्‌गद्‌भाषी, स्थूल और विशेष निर्बुद्धि हो जाता है, परन्तु उसको यदि मेषादि पशु को ग्रैवेयक ग्रन्थि स्वल्प मात्रा से खिलाई जाय, तो उसकी आकृति और प्रकृति क्रमशः स्वाभाविक हो जाती है (१७९ चित्र देखिये)।

१ Ductless glands २ Islets of Langerhans ३ Carotid body ४ Pineal gland, ५ Ganglion Cocygeum Impar ६ Thyroid body

[१७७ चित्र]

ग्रैवेयक ग्रन्थि का सम्मुख भाग।

[१७८ चित्र]

ग्रैवेयक ग्रन्थि का आभ्यन्तर निर्माण।
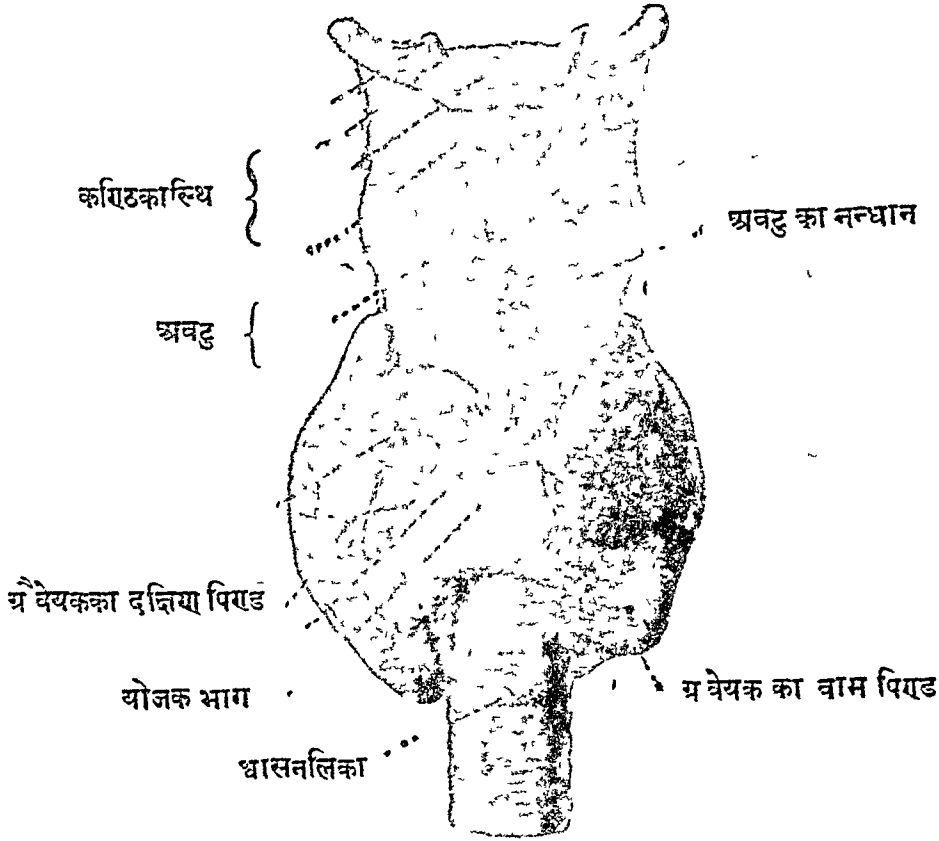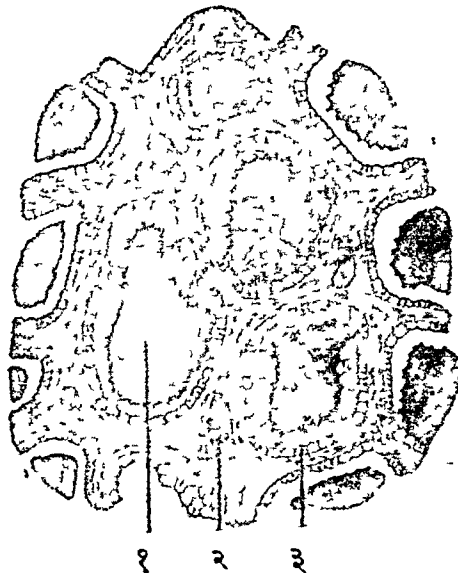
चित्र व्याख्या—१। कोप के भीतर गोंद के समान वस्तु। २ रसायनी (कत्तिता) ३। कोष की परिधि में स्थित पट्कोष कीषाणुक निमित्त वेटनी।

[१७६ चित्र]

ग्रैवेयक ग्रन्थि की न्यूनता रहने का फल ।

१ जड़ गद्गद बालक

२ । वही बालक ग्रैवेयक ग्रन्थि सेवन के पश्चात् ।

३ । वही बालक ग्रैवेयक ग्रन्थि सेवन बन्द करने पर ।

ग्रैवेयक ग्रन्थि के दोनों पिण्डों के पीछे दो-दो (कभी ३।३) छोटी छोटी चने के समान ग्रन्थि ग्रैवेयक की पीठ पर सटी हुयी दीखती है। इनका नाम 'परिग्रैवेयक' ग्रन्थि है। इन चार ग्रन्थियों के साथ ग्रैवेयक का और कोई सम्बन्ध नहीं है।

(२) **वालग्रैवेयक**[१]—यह ग्रन्थि बाल्यावस्था मे उरःफलक के पीछे और महाधमनी के तोरणाश के ऊपर रहा करता है (१८० चित्र)। इसका शिखर गले में श्वासनलिका के सामने कुछ दूर तक फैला है।

इस ग्रन्थि की विचित्रता यह है कि यह बाल्यावस्था में पुष्ट रह कर यौवनारम्भ में धीरे-धीरे क्षयप्राप्त होता जाता है, पूरी जवानी में इसका चिन्ह तक नहीं रहता। स्त्री और पुरुप—दोनों के शरीर मे प्रजनन यन्त्रों की पुष्टि के साथ इसका लोप होता है। बाल्यावस्था मे निरण्ड किये हुए मनुष्य और पशु में यह ग्रन्थि यावज्जीवन रहा करता है। यह भी देखा गया है कि यदि यह ग्रन्थि किसी की बाल्यावस्था मे ही निकाल दिया जाय, तो उसके शरीर मे बाल्यावस्था मे ही यौवन के लक्षण प्रकट हो जाते है। अतएव नव्य परीक्षकों का सिद्धान्त है कि इस ग्रन्थि का प्रधान कार्य शरीर जबतक सुदृढ न हो तबतक, यौवनोचित प्रजनन यन्त्रों की वृद्धि को रोक रखना है।

[१८० चित्र] **वालग्रैवेयक ग्रन्थि।**

(कण्ठ और उर स्थल को सम्मुख से फाड़कर दर्शित)
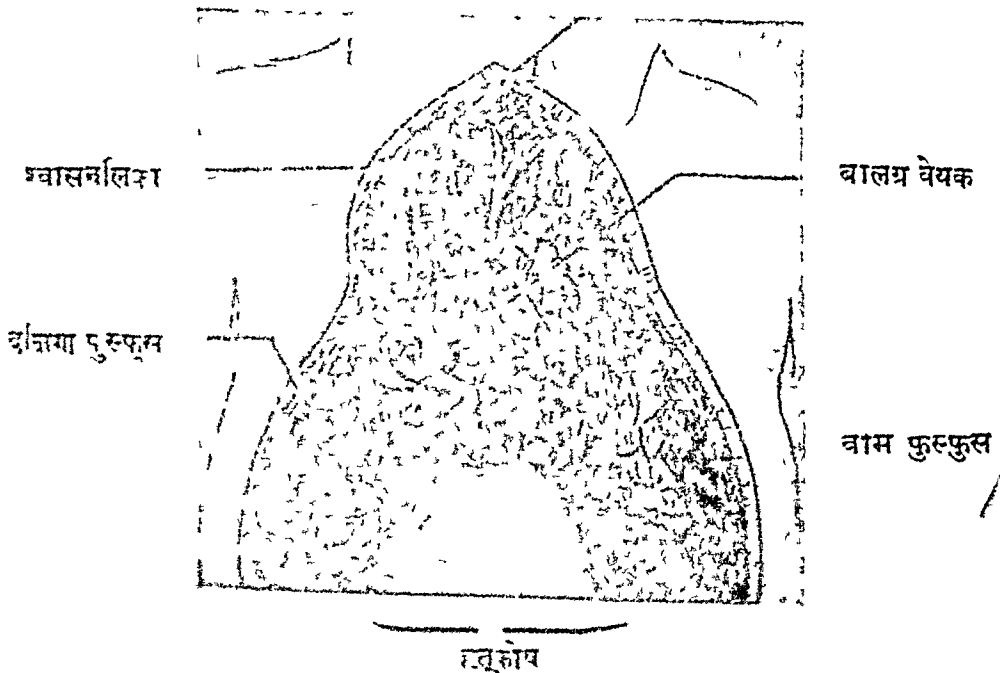
१ Thymus gland

(३) **परिग्रैवेयक[1] ग्रन्थियां** संख्यामे चार (या छः) है। ये ग्रैवेयक ग्रन्थि के दोनों पिण्डों के पीछे सटी हुयी हे (१८१ चित्र) इनका वर्णन कर चुके।

इन ग्रन्थियों का कार्य नव्य परीक्षकोंने इस प्रकार निश्चित किया है :—

मनुष्य के रक्त में स्वभावतः चूने (Calcium) का कुछ भाग रहा करता है जिसकी कमी होने पर रक्त की स्कन्दन-शक्ति[2] कम हो जाती है और अङ्ग-प्रत्यङ्गों का आक्षेप (Spasm) और कम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते है। इस चूने का भाग खाद्य द्रव्य से नित्य आहरण करना और यथोचित मात्रा से रक्त मे मिला देना—एक स्वाभाविक शरीर क्रिया हें। इस क्रिया को नियन्त्रित करना परिग्रैवेयक ग्रन्थियों के अन्तर्णिःस्रव का काम है। देखा गया है कि इन ग्रन्थियों को काट डालने पर रक्त में चूने का भाग कम हो जाता है और हाथ पैर के—विशेपतः अंगुलियों के—ऐंठन, कम्प, श्वासयन्त्रद्वार का तथा सम्पूर्ण शरीर की पेशियों का हठात् (आक्षेप)—आदि लक्षण क्रमशः हो जाते है। इस अवस्था में इन ग्रन्थियों को खिलाने से ये लक्षण मिट जाते है और रक्त में चूने का भाग फिर स्वाभाविक हो जाता है।

[१८१ चित्र]

ग्रैवेयक ग्रन्थि के पश्चिम भाग में दृश्य परिग्रैवेयक ग्रन्थियां।

१ Parathyroid bodies २ जम जाने की शक्ति (Coagulability)
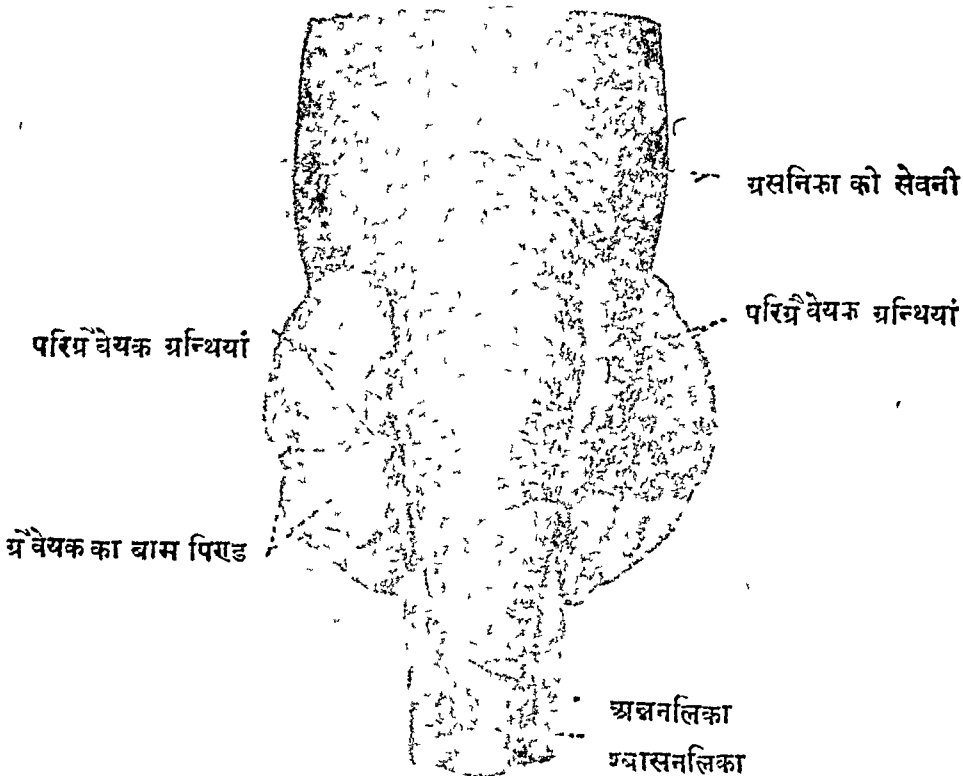
(४) **प्लीहा**[1] यह एक विशाल "निःस्रोत" ग्रन्थि है, जिसके कार्य निर्णीत हो चुके। इसका स्थान और स्वरूप तथा कार्य पहले प्लीहा के वर्णन में कहे गये (२६० पृष्ठ)। इस ग्रन्थि में से नवीन श्वेत और रक्त-कणिकायें प्रचुर रूपसे सिरा तथा रसायनियों के द्वारा निकलते रहते है। सूक्ष्मदर्शियों का अनुमान है कि इसके अन्तर्निःस्रव रोगकर सूक्ष्म जीवाणुओं के विष को नष्ट करता है।

(५) **अधिवृक्क**[2] नामके दो ग्रन्थि वृक्कों के शिखर पर रहा करते है, इनका वर्णन पहले किया गया (१६३ चित्र)। इनका अन्तर्निःस्रव अलग करके निकाला गया है और उसकी बहुत परीक्षा हो चुकी, जिससे साबित हुआ है कि प्राणधारण के लिए इसकी बड़ा उपयोगिता है।

प्रत्येक अधिवृक्क के दो भाग है—बहिर्वस्तु[3] और अन्तर्वस्तु[4]। इनके अन्तर्निःस्रव पृथक् प्रकार के गुणयुक्त है। इनमें—

(क) बहिर्वस्तु का सम्बन्ध प्रधानतः पुरुष के वृषणग्रन्थि और स्त्री के बीजाधार के साथ है। इसकी वृद्धि बाल्य में होने से अकाल में यौवन के लक्षण प्रकट हो जाते है। युवती स्त्रियों में इसकी वृद्धि हो तो उसकी पुरुषोचित पेशीबहुल आकृति हो जाती है। अधिवृक्क के बहिर्वस्तु को काट कर निकाल देने से थोड़े काल में

[१८२ चित्र] **अधिवृक्क का स्वरूप।**
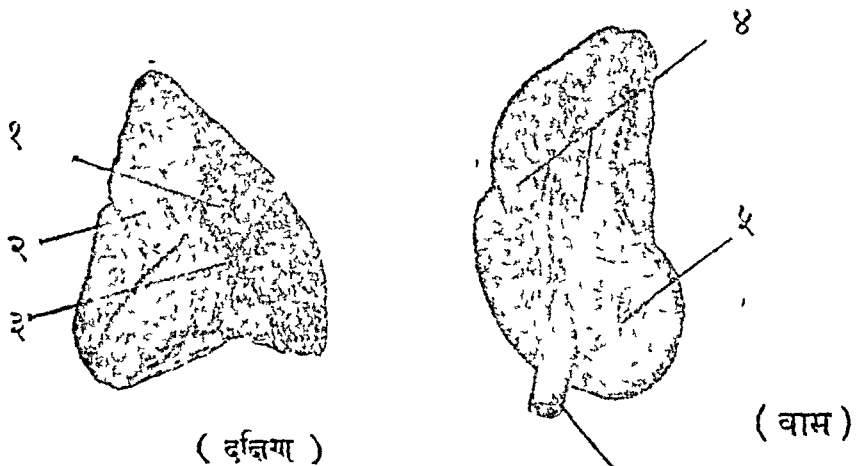
१ दक्षिण अधिवृक्कीया सिरा। २—दक्षिण अधिवृक्क का यकृत्स्पर्शी अंश। ३ उसीका अधर महासिरास्पर्शी अंश। ४ वाम अधिवृक्क का आमाशयस्पर्शी अंश। ५ उसीका अग्न्याशयस्पर्शी अंश। ६ वामा अधिवृक्कीया सिरा।

---

१ Spleen २ Suprarenal bodies or Adrenals ३ Cortex ४ Medulla

मृत्यु होता है। वहिर्वस्तु का रोगजन्य क्षय होने पर एक प्रकार की असाध्य व्याधि होती है, जिसमें शरीर का मांसक्षय और अत्यन्त दुर्वलता, त्वचा की विशेष कृष्णता तथा सिरा धमनियो की रिक्तता की जाती है। अधिवृक्क के वहिर्वस्तु के प्रयोग से इस रोग मे विशेष उपकार होता है।

(ख) अन्तर्वस्तु— अधिवृक्क के अन्तर्वस्तु का सम्वन्ध विशेष कर के स्वतन्त्र नाडी मण्डल के साथ है। इसका निर्माण सूक्ष्म तन्तु-जालकों से हुआ है, जिनके अन्दर रक्त के धारण के लिये अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्म अवकाश सूक्ष्म नाडी-तन्तुओं से और नाडी-ग्रन्थियों से घिरे हुए हैं। अन्तर्निःस्रव देनेवाले सूक्ष्म-सूक्ष्म दाने के आकार के कोषाणुक उनको घेर कर रहते हैं। इस अन्तर्निःस्रव का नाम "एड्रिनालीन" (Adrenalin) है। इसको अलग कर के चिकित्सा मे वहुत प्रयोग हुआ करता है। मानसिक उद्वेग, क्रोध, ज्वर और प्रतिश्याय होने से इस अन्तर्निःस्रव की वृद्धि शीघ्र हो जाती है।

'एडरिनालीन' को त्वचा के नीचे या सिरापथ मे प्रवेश कराने से रक्त-सञ्चरण पर वहुत प्रभाव पड़ता है—हृदय की क्रिया मन्द और सुसंयत होती है, धमनीवेष्टन नाड़ी-चक्रों की उत्तेजना से धमनियों का संकोच होता है, जिससे शरीर मे रक्तचाप की वृद्धि होती है, कोष्ठस्थ आशयो की पेशिया शिथिल होती है और नेत्रकनीनकों का विस्फारण होता है। कोष्ठ मे थोड़ा रक्तस्राव होता हो, तो इसको खिलाने से स्थानिक क्रिया द्वारा रक्तस्राव तुरन्त वन्द हो जाता है।

इसकी और एक विशेष क्रिया यह है कि इसके प्रयोग से रक्त में मधुरक भाग (Blood Sugar) की वृद्धि होती है।

(६) **पोषणक ग्रन्थि या अमृतग्रन्थि**[1]—यह ग्रन्थि करोटि के अन्दर मस्तिष्क के नीचे और जतूकास्थि शरीर के ऊपर "पोषणक खात" पर रहा करता है (आशयखण्ड, * षष्ठ अध्याय)। इसका प्रभाव अद्भुत है।

इसके तीन भाग है—अग्रिम भाग, मध्यभाग और पश्चिम भाग। इसके अग्रिम भाग और पश्चिम भाग मध्य भाग (योजक भाग) से जोडे गये है इसलिए अग्रिम भाग को पूर्वार्द्ध और अवशिष्ट भाग को शेषार्द्ध भी कहते है। इन दोनों भागों के पृथक् पृथक् अन्तर्निःस्रव और कार्य सिद्ध हुए है।

(क) पोषणक-पूर्वार्ध[2] के कार्य प्रधानतः तीन है। प्रथम—अस्थियों का यथोचित पोषण और वर्द्धन। द्वितीय — प्रजनन यन्त्रों का यथाकाल और

* मूलग्रन्थ, तृतीय भाग। १ Pituitary body, २ Anterior Pituitary,

यथोचित उपचय करना । तृतीय—मानसिक वृत्तियों का यथोचित विकासन । पोषणक पूर्वार्ध के अन्तर्निःस्रव की कमी रहने पर मनुष्य या पशु यौवन में भी बालक के समान रह जाता है—उसकी अस्थिया पुष्ट नही होती, प्रजनन यन्त्रों की यौवनोचित वृद्धि और शक्ति नही होती और मनोवृत्तिया बालकवत् रह जाती है। इस अवस्था में पोषणक ग्रन्थि पूर्वार्ध का साराश त्वचा के अन्दर नियम से प्रवेश कराया जाय, तो बहुत उपकार होता है। पक्षान्तर मे—यदि किसी की बाल्यावस्था मे ही इस ग्रन्थि के पूर्वार्ध की विशेष वृद्धि हो जाती है, तो बाल्य मे ही उसका शरीर बहुत ऊंचे कद का हो जाता है और यौवनोचित लक्षण दीखने लगते है। यदि किसी की जवानी अवस्था में इस ग्रन्थि की अस्वाभाविक वृद्धि हो जाय, तो उसका शरीर बहुत ऊंचा (८।९ फीट तक) हो जाता है और उसके हाथ पैर और मुखमण्डल अस्वाभाविक रूप के लम्बे चौडे हो जाते हैं। इससे साबित होता है कि शरीर-पोषण के साथ इस ग्रन्थि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए इस ग्रन्थि का नाम "पोषणक ग्रन्थि" या "अमृतग्रन्थि" रक्खा गया है। यह भी परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि पोषणक ग्रन्थि के पूर्वार्ध का साराश ग्रैवेयक ग्रन्थि की तथा स्त्रियों की बीजकोषों की स्वाभाविक क्रिया को विशेषतः उत्तेजित करता है।

(ख) पोषणक ग्रन्थि के पश्चिमार्द्ध[१] के कार्य—इस ग्रन्थि के पश्चिमार्द्ध का योजक भाग ही प्रधान है, क्योंकि अन्तर्निःस्रव इसी भाग से विशेषतः हुआ करता है। अवशिष्ट भाग नाडीनिर्मापक वस्तु से बना है। इस योजक सहित पश्चिमार्द्ध के साराश निकाल कर मनुष्य के शरीर मे प्रयोग करने पर रक्त का मधुरक भाग अधिक हो जाता है, सिरा-धमनियों मे सकोच आने से रक्त का चाप (Blood pressure) बढ़ जाता है, अन्त्रों की तथा वस्ति की पेशिया सङ्कुचित होती रहती है, मूत्र की मात्रा कम हो जाती है और गर्भाशय पेशियों का दृढ़ संकोच होने लगता है। चिकित्सा क्षेत्र में इस साराश (Pituitrin) का शेपोक्त दो प्रयोजनों के लिये—अर्थात् हस्तिमेह (Diabetes-Insipidus) में मूत्र की मात्रा घटाने के लिये और गर्भिणी के गर्भपात या प्रसव के अनन्तर होने वाले रक्तस्राव को संकोच द्वारा रोकने के लिये—प्रयोग किया जाता है। यह बहुत फलप्रद औषध है।

॥ पञ्चम अध्याय तथा आशयखण्ड समाप्त ॥

---

१ Posterior Pituitary.